संतप्रवर अनन्तश्री दादूजी के सुयोग्य शिष्य

कवि श्रेष्ठ छोटे सुन्दरदासजी कृत ४२ ग्रन्थ रूप

सुन्दर ग्रन्थावली

आवश्यक टीका, टिप्पणी, कठिन शब्दार्थ सहित

सुन्दर ने सुन्दर रचे, सुन्दरता के साज।
सुन्दर मन से मननकर, सुन्दरान्द लहैं आज ॥

आवश्यक टीका, टिप्पणी, कठिन शब्दार्थकार
संतकवि कविरत्न स्वामी नारायणदास

सपादक इच्छानुसार लागत मात्र

प्रथम वार—१६००
वि म २०४६ कार्तिक

मूल्य— २५ रुपये

ओं परमात्मने नम·

अथ भूमिका

सत प्रवर अनन्त श्री दादूजी महाराज के सुयोग्य शिष्य छोटे सुन्दरदासजी अपने समय के सत कवियो मे श्रेष्ठ सन कवि हुये हैं। दादूजी के मुख्य ५२ शिष्यों मे ये सबसे छोटे थे तदपि अपनी काव्य शक्ति के कारण सबसे अधिक ख्याति प्राप्त हुये हैं। आप की वाणी अति मधुर सरस सरल प्रसाद गुण युक्त है तथा शात रस प्रधान है। इन के रचित वृहत् तथा लघु ग्रन्थ सख्या मे ४२ हैं और वे इस सस्करण मे नम्बर से सख्या युक्त हैं, उनका यहा नाम देने की आवश्यकता नही है। जिन ने एक बार भी इनका सवैया (सुन्दर विलास) ग्रन्थ पढा सुना होगा वह अवश्य इनकी रचना का प्रेमी बन ही गया है।

शातरस की सरल सुन्दर कविता की रचना चातुर्य मे भक्ति मिश्रित ज्ञान तथा वेदान्त के प्रकरणो को मनोरजक सरल भाषा में सुगम रूप से बता देने का आपने अति उत्तम पुरुषार्थ किया है। भाषा वाङमय के सिद्ध-हस्त रचनाकारो मे आपका स्थान अति ऊचा है। इनकी रचना शैली निराली ही है। प्राय इनके सम कालीन स्वामी राघवदासजी ने अपनी भक्त माल मे इनके गुणो तथा शास्त्रज्ञता के कारण ही कहा है—'शकराचार्य दूसरा दादू के सुन्दर भया" और दादू सम्प्रदाय मे इनके विषय मे प्रसिद्ध है—

दादू दीन दयालु के, चेले दोय पचास।
कइ उडगण कई इन्दु है, दिनकर सुन्दरदास ॥१॥

इनकी रचना को पढने वाले विज्ञ कहते है—"सुन्दरे किन्न सुन्दर" अर्थात् सुन्दरदासजी की कोई भी रचना ऐसी नही होगी जो सुन्दर नही होगी।

सत साहित्य के भण्डार मे सुन्दरदासजी की रचना सब ही सुन्दरता युक्त है। जिन्होने सुन्दरदासजी की वाणी का प्रेम पूर्वक मनन करके आस्वादन किया है, वे सच्चे भक्त, तथा ज्ञानी और अध्यात्म तत्त्व के रस मे निमग्न हुये है। वे कभी उक्त कथन को अत्युक्ति नही मानेंगे, इसका समर्थन ही करेंगे। विविध प्रकार के छदो मे छद नियमानुसार तथा चौबोला, गूढार्थ चित्रकाव्य, निगडबन्धादि भी आपकी प्रतिभा के द्योतक हैं। आपकी वाणी अनुष्टप ३२ अक्षर का एक पद्य मानकर गिनने से ८००० है। ग्रन्थ गणना इसी प्रकार करी जाती है। आपका

सवैया (सुन्दर विलास) अनेक प्रेसो से छपा है। अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित हुये हैं किन्तु सपूर्ण वाणी पुरोहित हरिनारायणजी ने वि स. १९९३ मे सपादन करके कलकत्ते से छपवाई थी। वह बहुत वर्षों पूर्व ही समाप्त हो गई थी, फिर सम्पूर्ण वाणी नही प्रकाशित हुई। सम्पूर्ण सुन्दर ग्रन्थावलि का यह दूसरा सस्करण ही है। इसी सस्करण मे ग्रन्थो को उक्त प्रकार ही नम्बर मे रखा है किन्तु सुन्दरानन्दी टीका इसमे नही है। इसमे आवश्यक टीका, टिप्पणी व कठिन शब्दार्थ दिया है। इससे सत्सगी सज्जन सब समझ जायेगे और जो सत्सगी नही है वे तो संत साहित्य को पढते भी नही तब समझने का विचार ही कहा है।

सुन्दरदासजी की सपूर्ण वाणी पद्यमय ही है। गद्य आपने कुछ नही लिखा है। छद भी आपने अपनी वाणी मे ऐसे ही दिये है जो सर्व प्रिय हो, छदो के भेदो के झगडे मे आप नही पटे हैं। इनकी वाणी मे सर्व छद ३५९३ है ज्ञान समुद्र मे ३४ प्रकार के छद दिये है। पद्य सख्या ३१४ है। लघु ग्रन्थवाली मे १९ प्रकार के छद हैं और सब पद्य सख्या१२१६/सवैया सुन्दर विलास मे १० प्रकार के छद हैं और सर्व पद्य सख्या ५६३ है।

साखी ग्रन्थ मे एक प्रकार का ही छद है, सर्व पद्य सख्या १३५१ है। पद २७ रागो मे २१२ हैं। फुटकर काव्य मे १० प्रकार के छद हैं और सर्व पद्य १४९ है।

स्वामी सुन्दरदासजी की रचना शान्त रस मय होने पर भी काव्यागो को धारण करती है। काव्य के सब ही गुण इसमे है। अभिधा, लक्षणा, व्यजना (ध्वनि) छद रचना-चातुर्य, सुन्दर शब्द योजना, गुणी भूत व्यग रस अलकार, प्रसाद और माधुर्य गुणो से सवत्र परिप्लुत वारजित है, कही कही ओजगुण भी झलकता है। आपने रचनाओ से यह सिद्ध कर दिया है कि शृ गारादि अन्य रसो मे ही काव्यागो की रचना हो सकती है ऐसा नही है, शात रस मे सब प्रकार की रचना हो सकती है। काव्य शैली और प्रखर प्रतिभा का भला प्रकाश है ऐसा ज्ञात होता है। रस और प्रसगानुसार गोडी, वैदर्भी, लाटी आदि रीतियो का भी प्रदर्शन और अनुसरण हुआ है।

कोमला वृत्ति और माधुर्य की मात्रा इतनी है कि जिसकी जोड के तुलसीदासादिक कुछ कवियो को छोडकर सुन्दरदासजी अपने स्थान मे आपही हैं। आपकी कविता प्राय मौलिक और स्वतन्त्र है। शातरस मे ऐसी उच्चकोटि की और सुन्दर रचनाकर्ता सुन्दरदासजी रचनाकारो मे प्रसिद्ध है। भाषा ससार मे आप आदश कवियो मे है। आपने शृ गारा दि रसो पर मानो विजय पाकर, शान्तरस का यह किला बना कर उस पर विजय का झडा फहरा दिया है।

वेदांत जैसे गम्भीर विषयो को आपने बड़ी सरल भाषा मे समझाने का सुन्दर प्रयत्न किया है । अपने गुरु दादूजी महाराज की वाणी के भाव आपकी रचना मे भरे हुये हैं। अत. सुन्दरदासजी की वाणी—प्रसाद-माधुर्य सहित, सरल, सरस, सुन्दर लोक प्रिय भाषा, लोकोक्ति, सदोक्ति सपन्न गम्भीर विषयो को सीधे ढग से कहने वाली ज्ञान-भक्ति-वैराग्य-नीति सदुपदेशादि का भडार होने से सर्व-श्रेष्ठ है। आपने महाविद्वान् होकर भी सरल सीधी भाषा में रचना की है, इसमें उनका अभिप्राय संस्कृत ज्ञान शून्य सच्चे जिज्ञासुओ के उपकारार्थ ही की है। "परोपकारायसताविभूतय"। इस कथन का आपने पालन करके अति उपकार किया है।

साधारण हिन्दी जानने वाले के भी मन को आनन्द प्राप्त होता है। शात रस मे वीररस कहते हुये सतो को महाशूर कहा है—

'महाशूर तिनका यश गाऊ, जिन हरि से लय लाई रे'। उक्त प्रकार सुन्दरवाणी मे शूरातन का अग ही पूर्ण शौर्य से भरा है।

शातरस मे श्रृगार रस—' जो पिय को व्रत ले रहै, सो पिय हि पियारी।" उक्त प्रकार विरह और विरहनी का वर्णन श्रृगार रस पूर्ण है।

शात रस के विना कविता मृतक समान है, "उत्तम हरिरस लीन" "मध्यम वर्णन मनुष्य यश" "दोषन अधम अधीन" जो धम विरुद्ध कार्य का वर्णन करे—निन्दा, दोषारोपण अपकीर्ति आदि से युक्त घृणित कविता अधम है और ऐसी कविता करने वाले कवि भी अधम और महा कनिष्ठ हैं। सुन्दरदासजी उत्तम कवि हैं उनकी रचना हरियश पूर्ण है। अत· शातरस रसो मे सम्राट के समान विराजता है। ब्रह्म रस रूप है, ब्रह्म का वर्णन शातरस प्रधान है इससे ब्रह्म ही आधार है। अतः शातरस ही इसमे प्रधान रस है।

अलंकार भी सुन्दरदासजी की वाणी मे स्वाभाविक ही आये हैं। ज्ञान समुद्र के आरम्भ मे ग्रन्थ वर्णन शीर्षिक मे, ज्ञान-समुद्र का जल समुद्र के साथ रूपक अलंकार से कथन किया है।

अर्थालकार—गुरुदेव बिना नहिं मारग सुजय,
गुरु बिन भक्ति न जानो ।।१।।

इस में विवेकोक्ति अलकार है। जिस के बिना जो नही हो वह विवेकोक्ति होता है। 'गुरु बिन ज्ञान नाही' यहा वक्रोक्ति अलकार है। निद्रा मे सूता है जोनो, जन्म मरण का अन्त न तोलो। जाग पडे से स्वप्न समाना, तब मिट जाय सकल अज्ञाना (ज्ञान समुद्र)। यहा विचित्रालकार है। उक्त प्रकार स्वाभाविक अलकार सुन्दरवाणी में भरे पडे हैं। वे सब अलकारो को जानने वाले महानुभावों को पढते ही अपने आप ही ज्ञात होते जायेंगे।

लोकोक्ति – जो गुड खाय सो कान विंधावे । स २।१८ । "तीरलगी नवका कत बोरे।" स २।१९। "चूच दिई सो चू नहु देहै ।" स ७।२१ उक्त प्रकार सुन्दरवाणी मे लोकोक्ति अलकार बहुत है । शब्दालकार वृत्यानुप्रास "घरी घरी घटत, छीजत जात छिन छिन ।१। स २।१३ दत गये मुख के उखरे नखरे न गये सु खरो खर कामी।" वक्रोक्ति है स २।१५ चित्र काव्य मे अनेक शब्दालकार है, वे सब पढने से ही ठीक ज्ञात होगे । फुटकर काव्य मे "चोबोला मे श्लेषालकार हैं । गूढार्थ मे श्लेषालकार है । उक्त प्रकार सुन्दरदासजी की वाणी मे स्वभाविक अलकारो का भी प्रवेश हुआ है । यद्यपि सत अलकारो को विशेष महत्व नही देते, वे तो भक्ति ज्ञान वैराग्य पूर्ण केवल शात रस की ही रचना करते हैं ।

यह सभी सतो की वाणी पढने से ज्ञात होता है । सुन्दरदासजी महा विद्वान और प्रथम साधक सत और आगे चलकर सिद्ध सत हो गये थे, यह सब तो स्थान-स्थान पर उनके वचनो के पढने से ज्ञात होता है और उनका चरित्र पढने से पूर्ण निश्चय हो ही जाता है इनके पदो मे जिन पदो पर तालें थी उतने पर तो तालें दे दी हैं और आगे जिन पर ताल नही मिली उन पर नही दी। किसी गायक से बैठाने से तालें दी जा सकती थी मेरा शरीर तो कही आ जा नही सकता और ऐसे कोई सज्जन मिलें नही जो यह कार्य करा सकें। अत जहा तक तालें थी वहा तक देदी है शेष बिना ताल ही हैं । पदो पर विषय के द्योतक शीर्षक नही थे सो लगा दिये हैं। मेरा शरीर अब काम नही देता है, नेत्रो से कम दीखने लगा है और कानो से कम सुनने लगा है ।

साखी ग्रन्थ के साधु के अग मे आकर नेत्रो मे कष्ट हो गया, अत आगे का प्रूफ मैं नही देख सका फिर सेवा-निवृत्त उप-निदेशक शिक्षा-विभाग श्री जयन्तीलालजी सोमानी, भण्डारा गली अजमेर और माधवप्रसादजी सोमानी रिटायर्ड रेल डाक सेवा विभाग, मोदाना गली, अजमेर ने इसका प्रूफ ससोधन किया। आगे फुटकर काव्य ग्रन्थ ४२ के आरम्भ मे माधवप्रसादजी का स्वास्थ्य बिगडने पर प्रकाशचन्दजी जोशी, खजाना गली अजमेर और उक्त जयन्तीलाल सोमनी ने इसका प्रूफ सशोधन किया। रामस्वरूपजी तोषनीवाल ने इसमे बहुत सहायता की है । अत तीनो महानुभावो का मैं बहुत आभारी हू। इसमे जो मेरे नेत्र, कान ठीक न होने से अशुद्धि रह गयी है उनका शुद्धि-पत्र दे दिया है फिर छपे फार्म के सुनने मे ठीक न आने पर त्रुटि रह गई हो तो मेरे शरीर की स्थिति को देखते हुये मुझे क्षमा करेंगे। जैसे तैसे यह छपकर आपके कर कमलो मे आ गई है। इसे ही मैं भगवत् कृपा समझता हू । इसके प्रकाशन मे जिन ने १००) से अधिक सहायता दी है उन्हें एक पुस्तक भेंट देने की व्यवस्था है । अब इसके प्रकाशन की अर्थ व्यवस्था भी आपको अवगत कराना आवश्यक है—

१००२) एक सज्जन ने दिये, नाम छपाना ना कर दिया इससे नही छापा। ५०१) श्यामसुन्दरजी श्रोमप्रकाशजी भानीराम का बडा गाव। ५०१) राजेशकुमार जयपुर ने दिये। ५०१) रमेशचन्द्रजी लखोटिया कलकत्ता ने दिये। ३००) सरला प्रकाश देहली। आपने कई बार दिये हैं। २००) हनुमतदानजी वकील की धर्मपत्नी रतन कुमारी जोधपुर। २००) सरला प्रकाश देहली फिर दूसरी बार २००) दिये। २०१) भगवानदासजी, प्रेमदासजी महन्त सिहा। १५२) स्वामी शातिस्वरूपजी विरक्त जयपुर। १५०) रत्नकुमारी बजरगभवन पोलो न० २ जोधपुर।

१५१) चन्द्रप्रभा रामस्वरूपजी बाकलीवाल की धर्मपत्नी सापला वाले अजमेर। १०५) रतनकुमारी राजपुरा। १०१) पुष्पा अमरीका। १०१) रत्नकुमारी गुरु पूर्णिमा पर भेजे। १०१) ठाकुर हरिदासजी की धर्मपत्नी सुशीला खेमपुरा। १०१) चाडक परिवार हरनामा, १०१) डॉ अमरचन्द गगानगर। १०१) स्वामी गोविन्दरामजी प्रेमप्रकाशी आश्रम पुष्कर। १०१) रामस्वरूपजी तोषनीवाल अजमेर। १०१) नन्दकिशोरजी शर्मा इन्दौर त्रिरुपति कालोनी। १०१) श्रोमप्रकाश नरवर १०१) रत्नवाई जोधपुर।

शिव बाग सत्संग मडल की भेट फाल्गुण शुक्ला २०४५ का १२१) भक्तो की भेंट ६५/९० रामनवमी को भक्तो की भेट २०४६/१५१) शिवबाग सत्सग मण्डल वि स २०४६ गुरु पूर्णिमा को भक्तो की भेंट २२१)। ५१) सरोजा बाई बैंगलोर। शेष मुझे श्रद्धा पूर्वक प्राप्त भेट से इसका प्रकाशन हुआ है, इसमे आने वाला अर्थ ऐसे ही सत साहित्य के प्रकाशन मे आवेगा किसी अन्य कार्य मे नही लगेगा। इसके चित्र काव्य के ब्लाक स्वामी क्षमारामजी जयपुर ने कुछ दिये और प्रथम वृक्ष बध छपे हुये ११०० दिये किन्तु यह पुस्तक १६ सौ छपाई गई है उसके ५ मो के लिये ब्लाक बनाना पडा है २ सुन्दरदासजी का, ३ हार बन्ध, ४ वृक्ष बध १५ कमल बध ६ चौकी बन्ध यहा बनवाने पड़े है। पुस्तक छपने पर सब ब्लाक क्षमारामजी को ही दे दिये जावेंगे। कारण-मेरा शरीर तो अब आगे सपादन के योग्य नही रहा है। इस ग्रन्थ में सुन्दरता है वह तो श्री स्वामी सुन्दरदासजी की है और कोई त्रुटि रह गई है वह मेरी स्मृति नेत्र कानो की कमजोरी से या मेरे प्रमाद से रही है, उसे सुधार कर पढ़ें और मुझे क्षमा करने की कृपा करे। अनेक महानुभावो ने मुझे इसे छपाने की प्रेरणा की थी। प्रेस कापी तो सुगमता मे हो गई थी छपने के समय स्मृति, नेत्र, कानो ने काम यथार्थ रूप से नही दिया, दूसरे सज्जनो की सहायता लेनी पड़ी, तब ही भगवत् कृपा से यह कार्य पूर्ण हुआ है इसके पूर्ण होने में भगवान् का परम अनुग्रह ही कारण है। ऐसा ही मुझे विश्वास है। ॐ शाति शाति शाति।

वि० स० २०४६ — विनीत
कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा — नारायणदास स्वामी
श्री कृष्ण कृपा कुटीर पुष्कर

विषय सूची

पुष्कर मे श्री कृष्ण कुटीर का परिचय—

पुष्कर से प्राची दिशा, पथ पच कुड जाय। तटनी तट तिहि मार्ग मे कृष्ण कृपा कुटि धाम। अब यहा तटनी (नदी) नही है नदी को पर्वत के नीचे ले जाकर पुष्कर मे डाला है। अब कृष्ण कृपा कुटीर के पश्चिम मे आनन्द कुटीर आश्रम है। दक्षिण मे पच कुड का मार्ग है। पूर्व मे नित्यानन्दजी का गिरीशानन्द आश्रम है। उत्तर मे आश्रमो का मार्ग है।

कवि श्रेष्ठ महात्मा स्वामी श्री सुन्दरदास जी महाराज
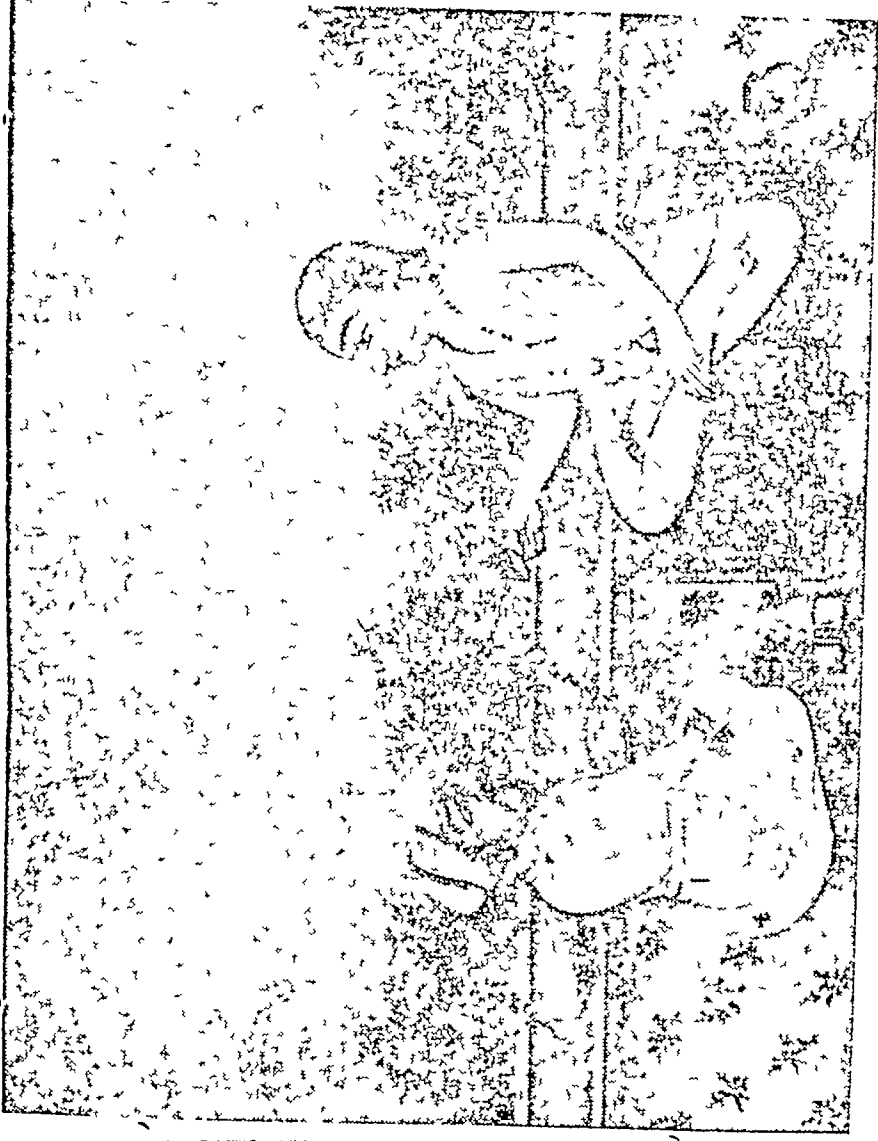
जन्म वि० स० १६५३ चैत्र शुक्ला नवमी। निर्वाण वि० स० १७४६ कार्तिक शुक्ला अष्टमी बृहस्पतिवार

ॐ श्री परमात्मने नम॰

अथ छोटे सुन्दरदासजी का संक्षिप्त जीवन चरित्र

मंगल—दादु नमो नमो निरंजन, नमस्कार गुरुदेवत ।
वंदन सर्वसाधवा, प्रणाम पारंगत ॥

सुन्दरदासजी पूर्व जन्म मे दादूजी के शिष्य जगाजी थे । आमेर मे भिक्षा लाने गये तब आड बंध टूट जाने से बोलने लगे दे माई सूत ले आई पूत । सौंक्या परिवार की सती बाई काते हुये सूत की कूकडियो की अंजली भरकर कहा लोबावाजी सूत दो बावाजो पूत । जगाजी ने कह दिया तेरे पुत्र होगा फिर भिक्षा लेकर आये तव दादूजी ने कहा तुम जिसको पुत्र का वर दे आये हो उसके पुत्र भाग्य मे ही नही है अब तुम को ही पुत्र होना पडेगा । तब जगाजी ने कहा पुत्र तो हूंगा । पर पुन आप के चरणो में ही आना चाहता हू । दादूजी ने तथास्तु कह दिया फिर जगाजी दादूजी का सत्संग इच्छानुसार करके शरीर छोडकर उसके सुन्दर रूप मे पुत्र हुये ।

छोटे सुन्दरदासजी का जन्म वि स १६५३ चैत्र शुक्ला नवमी को मध्यान्ह के समय दौसा मे हुआ था । इनके पिता का नाम परमानन्द चोखा था, वे बूसर गोती खण्डेलवाल वैश्य थे । उनकी पत्नी का नाम सती था । वह सौंक्या गोत्र खण्डेलवाल थी । सुन्दरदास जी ६ वर्ष के थे तब दादूजी दूसरी बार दौसा वि. स. १६५८ ग्रीष्म मे गये थे । माता पिता ने बालक को दादूजी के चरणो मे रखा तब दादूजी ने कहा—सुन्दर-आ गया । तब से इनका नाम सुन्दर रख ही दिया था और तब ये दादूजी के शिष्य हो गये थे फिर दादूजी दौसा मे रहे तब तक माता पिता के साथ प्रतिदिन दादूजी का प्रवचन सुनने जाते थे, दादूजी दौसा से विचर गये तब जगजीवन जी से दादू वाणी सुनने पिता के साथ जाते थे । लगभग ८ वर्ष की आयु मे दादूजी के महोत्सव में अपने पिता और जगजीवनजी के साथ नारायणा दादू धाम मे आये थे फिर प्रतिवर्ष मेले मे आया करते थे । वि स १६६३ के मेले म दादूजी के शिष्य संतो की सभा मे छोटे सुन्दरदासजी भी जगजीवनजी के पास बैठे थे । किसी प्रसंग वश गरीबदासजी ने छोटे सुन्दरदासजी को अबोध बालक समझ कर उनका उपहास कर दिया था, किन्तु सुन्दरदासजी शरीर दृष्टि से ही बालक थे, वैसे तो अति महान् ओजस्वी, तेजपुञ्ज ब्रह्मचारी थे । संत सभा मे किये हुये अपमान को नही सह सके और उसी समय संत सभा मे निर्भीकता के साथ बोल उठे—

क्या दुनियां असतूत करेगी, क्या दुनिया के रूसे से ।
साहिब सेती रहो सुरखरू, आतम बकसे ऊसे से ॥

क्या किरपन मूंजी की माया, नाम न होय नपूंने से ।
कूडा वचन जिन्होंने भाखा, बिल्ली मरे न मूसे से ॥

जन 'सुन्दर' अलमस्त दिवाना, शब्द सुनाया घू से से ।
मानो तो मरजाद रहेगी, नहिं मानो तो घू से से ।।

निर्भीकता के साथ कहे हुये बालक सुन्दरदासजी के उक्त वचन को सुन कर सभी सभा मे सन्नाटा-सा छा गया । गरीबदासजी के पक्षपाती सुन्दरदासजी को द्वेष दृष्टि से देखने लगे किन्तु उस सत सभा मे अधिक निष्पक्ष सत थे । उन्होने उक्त पद्य बोलने को अनुचित नही माना और कहा—सुन्दरदास जी ने तो गरीबदासजी के अनुचित व्यवहार पर कहा है और बालक भी है । अत ये विशेष रूप से किसी दण्ड के पात्र नही हो सकते । इस पर कुछ और विवाद बढने लगा तब रज्जब जी और जगजीवन जी सुन्दरदास जी को साथ लेकर सभा से चले गये । कारण दादूजी उक्त दोनो सतो को कह गये थे कि तुम छोटे सुन्दरदास का विशेष ध्यान रखना, वह होनहार महान् सत है । इससे उक्त दोनो सत सुन्दरदासजी का विशेष ध्यान रखते थे । फिर गरीबदासजी ने रज्जबजी व जगजीवन जी को पुन बुलवाकर उनके साथ सद्व्यवहार करना चाहा, किन्तु सुन्दरदासजी पुन नही गये । सुन्दरदास जी ने अपनी वाणी मे गरीबदासजी के विषय मे कुछ भी नही कहा है किन्तु अन्य अनेक सन्तो ने गरीबदासजी की श्लाघा की है ।

उक्त मेले के पश्चात् ही ११ वर्ष की अवस्था मे सुन्दरदासजी वि १६६३ मे अपने घर को त्याग करके रज्जबजी और जगजीवनजी आदि के साथ अध्ययन करने के लिये काशी चले गये थे और सुचारुरूप से अध्ययन करने लगे थे । एक दिन सुन्दरदासजी काशी के दशाश्व मेघ घाट पर स्नान करने गये थे, गगा मे जल लेकर मुख साफ करने को कुल्ला कर रहे थे। कही एक पण्डित के छीटा लग गया होगा, वह डाट कर बोला—अरे विद्यार्थी ! कुछ ध्यान रक्खा कर, तूने मेरे झूठे छीटे लगा दिये है । सुन्दरदास जी ने पूछा पवित्र कैसे हो ? पडित ने कहा धोने से । फिर सुन्दरदास जी अपने मुख को सौ बार धोकर पीछे एक कुल्ला ऐसे ढग से किया कि एक दो छीटे उस पडित की ओर चले गये । फिर पडित ने कहा—अरे विद्यार्थी फिर भी झूठे छीटे दे रहा है । सुन्दरदास जी ने कहा—पडित जी आपने कहा था धोने से शुद्ध होता है, इससे मैं इस झूठे मुख को सौ बार धो चुका हूँ । उसके पश्चात् भी जूठा कैसे रह गया, सुन्दरदासजी का उक्त वचन सुनकर पडित विचार मे पड गया और पीछे कुछ सोचकर बोला भाई यह विचार तो ऐसा ही हैं । हो सकता है तू तो कोई महान सत होने वाला है । काशी मे आप असी घाट पर वहा रहा करते थे जहाँ अब दादू मठ नामक स्थान बना है । काशी की घटना यह भी है—काशी मे एक विद्वान दार्शनिक प्रवचन करते थे, सुन्दरदास जी उनकी कथा सुनने ठीक समय पर प्रतिदिन ही आते थे । एक दिन किसी कारण से देर हो गई । कथा वाचक सत ने कथा आरम्भ नही की, तब जो अच्छे विद्वान आते थे ।

वे सब आ गये और समय ठीक होने पर कथा आरम्भ नही की तब आगत विद्वानो ने कहा कथा आरम्भ करें कथा सुनने वाले सब विद्वान् आ गये है, सत ने कहा — श्रोता नही आया। फिर सुन्दरदासजी आये तब कथा आरभ करदी किन्तु अन्य विद्वानो ने कथा समाप्ति पर कहा जिस विद्यार्थी के आने पर आपने कथा आरम्भ की वह तो अभी हमारे पास पढता है उसे ही आपने श्रोता समझा है और जो बडे-बडे पडित आ गये थे श्रोता नही थे क्या ? वक्ता ने कहा–हा वह सच्चा श्रोता है। पडित गरा —इसमे क्या प्रमाण। वक्ता ने कहा, कथा आरंभ से आज तक की आप सब एक गत मे ही पद्य बद्ध कर के लावें उस के द्वारा निर्णय हो जायगा कि कौन श्रेष्ठ श्रोता है। पडितो ने कहा—ठीक है फिर सुन्दरदासजी को वक्ता ने कहा। इस विवाद को आप ही मिटायेंगे। कथा आरभ से आज तक की कथा को सक्षिप्त रूप पद्यबद्ध करके लाओ। सुन्दरदासजी ने कहा जो आज्ञा आपकी कृपा से प्रयत्न करू गा।

दूसरे दिन सब पडित भाषा पद्यो मे सुनी कथा को बनाकर लाये। सबकी मिलाकर वक्ता ने कहा निष्पक्ष हो कहो किस की ठीक है तब सबने कहा ठीक तो विद्यार्थी की ही ज्ञात होती है। वही रचना सुन्दरदास जी ने रखी थी और फिर ज्ञान समुद्र की रचना के समय वह रचना तथा अन्य भी प्रसग के पद्य मिला कर ज्ञान समुद्र ग्र थ रचा था और ज्ञान समुद्र ही ग्रन्थो के आरम्भ मे रखा गया है इसमे सूचित है कि उक्त काशी की रचना ज्ञान समुद्र मे मिलाकर और भी प्रसग की रचना मिला कर पहले ज्ञान समुद्र रचा था। सर्वप्रथम ज्ञान समुद्र ही सुन्दरदासजी के ग्र थो की गणना मे हैं इससे प्रथम नम्बर प्राप्त है।

कहा भी है—सच्चे श्रोता को रहै, सब प्रसग भल याद।
ज्ञान समुद्र बनाय के, 'सुन्दर' हरा विवाद ॥

फतेहपुर की घटनायें

सुन्दरदासजी लगभग २० वर्ष अध्ययन कर के काशी से लौटे और भ्रमण करते हुए शेखावाटी प्रदेश के फतेहपुर नगर मे वि स १६८२ कार्तिक शुक्ला १४ को नवाब अलफ खा के समय आये थे और नगर के बाहर किसी शून्य स्थान मे रहने लगे थे। ग्रीष्म ऋतु थी, आप ग्राम मे भिक्षा करने जाते थे और अपनी क्षुधा निवारण हो सके उतना अन्न लेकर उसी स्थान मे लौट आते थे। भिक्षा करके निरतर ब्रह्म भजन ही करते थे। गुरुदेव दादूजी महाराज की वाणी के अनुसार अपना साधन तथा व्यवहार करते थे।

एक दिन नगर से भिक्षा लेकर सुन्दरदासजी लौट रहे थे। मार्ग मे दोनो ओर खेती की रक्षा के लिये मिट्टी की दीवालें थी। सामने से वहा का नवाब शिकार करके अपनी सैनिक टुकडी के साथ लौट रहा था। सुन्दरदासजी उनमे

वचने के लिये खेत मे जाने के लिये दीवाल मे पगते थे, उन पर चढ कर खडे हो गये ।

लघु तुम्बी से सब सैनिकों को छाछपिलाना

सैनिक टुकडी के सबसे आगे सैनिक था । उसने कहा महाराज प्यास मे व्याकुल हू आपकी तुम्वी से जल पिलाने की कृपा करें । सुन्दरदासजी ने कहा पानी नही है, छाछ है पीना चाहो तो पीलो । उसने कहा छाछ ही पिला दें । सुन्दरदासजी ने उसे पिलादी । वह तृप्त होकर अति प्रसन्न हुआ । फिर प्रत्येक सैनिक माग-मागकर पीता गया । कहा भी है ।

अल्प वस्तु भी सन्त के, हो अपार प्रख्यात ।
सुन्दर एक हि तुम्बी की, छाछ सेन को पात ॥१४७॥ दत ११

शिवर मे आकर सबने कहा—आज तो प्यास से व्याकुल हो रहे थे, साधु ने छाछ पिलाई तब शान्ति मिली । तब सब को अति आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा साधु की तुम्बी मे तीन पाव से अधिक छाछ हो ही नही सकती थी । फिर उससे सब की प्यास कैसे मिटी । यह तो कोई विशेष चमत्कार से ही हो सकता है । नवाब ने सुना तो अपने मन्त्री सामन्त आदि के साथ सुन्दरदासजी जहा ठहरे थे वहां गया । वहा उसने कोई गाय, भैंस तो नही देखी किन्तु चूहे तथा कोले (चूहा जैसा ही एक जीव) देखी । फिर सुन्दरदासजी को प्रणाम करके नवाब ने पूछा—आप के घीणा (दूध, दही, छाछ) काहे का है ? तब सुन्दरदासजी ने कहा—

"सुन्दर के दो उदर दूझे, तीजी दूझे कोल ।
चौथा सुन्दर आप ही दूझे, घीणा का धमरोल ॥

भावार्थ-सुन्दरदासजी कहते हैं—मेरे ज्ञान, वैराग्य दो चूहे, तीसरी निरजन राम की भक्ति रूप कोल और चौथा साक्षी स्वरूप मैं दूध देता हूं । अर्थात् मेरा ज्ञान और वैराग्य अपनी ऊची स्थिति के है । भक्ति भी मेरी परा भक्ति रूप मे परिणत है तथा मैं निरतर साक्षी ब्रह्म रूप मे वृत्तिरखता हूं । उक्त चारो वास्तविक स्थिति मे जिसके होते हैं, उसके यहाँ कुछ भी कमी नही रहती है, सभी पुष्कल रूप मे रहते हैं । फिर नवाब ने कहा—आप ने ईश्वर को प्रसन्न किया है, कोई चमत्कार दिखावें । सुन्दरदासजी ने कहा—

नवाब अलफखां को उपदेश

"आसन का पल्ला उठाकर देख लो" नवाब ने एक पल्ला उठाकर देखा तो प्रथम के नीचे नवाब को वहां का तलाव दीखा । दूसरा पल्ला उठाकर देखा तो उसके नीचे उसकी सेना दिखाई दी । तीसरे पल्ले के नीचे फतहपुर नगर दीखा । चौथा आसन का पल्ला उठा कर देखा तो जिस वन मे वह शिकार करने जाता था

यह वन दीख पडा। इन सबको देख कर नवाव डर गया। फिर उसने कहा—भगवन् ! हमे भी ईश्वर प्राप्ति का साधन बतावें।

सुन्दरदासजी ने कहा—"एक कासी का कटोरा, जल और राख मगवालो, उसी समय तीनो वस्तुऐं मगवाली गई। सुन्दरदासजी ने अपने और नवाब के बीच मे जल का कटोरा रखवा कर उस जल मे राख घोलदी। फिर नवाव का कहा—इसमे देखो क्या दीखता है ? नवाव, कुछ नही दिखा। सुन्दरदासजी ने कहा—इसको फैंक कर शुद्ध जल भरा लो फिर देखो। जब नवाव शुद्ध जल के कटोरे मे देखने लगा, तब सुन्दरदासजी ने कटोरा को एक थप्पड मार दी, उससे जल हिलने लगा। नवाब ने कटोरे मे देखा तो कहा मेरा मुख साफ नही दिखता। सुन्दरदासजी ने कहा—जल का हिलना वद हो जाय तब देखना। जल का हिलना बद होने पर देख कर नवाव ने कहा—अब मेरा मुख साफ दीखना है। सुन्दरदास जी ने कहा—अब इसे हटा दो। थोडी देर के पश्चात् नवाब ने कहा ईश्वर प्राप्ति का साधन बताइये, सुन्दरदास जी ने कहा—बता तो दिया। नवाव, मैं नही समझा, सुन्दरदासजी ने कहा जैसे जल मे राख मिली थी तब कुछ नही दीखता था, वैसे मलीन अन्त करण मे ईश्वर नही दीखता और हिलते जल मे मुख साफ नही दीखता था वैसे ही चचल अत करण मे साफ नहीं दीखता, शुद्ध और स्थिर जल मे मुख साफ दीखता है वैसे ही शुद्ध और स्थिर अन्ति करण मे ईश्वर साफ-साफ दीखता है। तुम अन्त' करण को शुद्ध और स्थिर करो तब ईश्वर दीखेगा और उसकी प्राप्ति हो जायगी। कहा भी है—

शुचि एकाग्रचित बिना, होन ईश साक्षात।
समझाई जल भस्म से, सुन्दर ने यह बात ॥२५॥ ह त ४॥

नवाब की श्रद्धा सुन्दरदासजी पर वहुत हो गई थी। अत. सुन्दरदासजी वहा ही रहने लग गये। एक समय नवाब की अश्व शाला गिरने वाली थी, उसके गिरने का पता सुन्दरदासजी को लग गया था। उन्होने गिरने वाले दिन नवाब को कहा—अश्व शाला से घोडे तथा मानवो को इस समय शीघ्र निकलावो। नवाब की सुन्दर-दासजी मे पूर्ण श्रद्धा थी अत शीघ्र ही अश्व शाला से घोडे और मनुष्यो को निकलवा लिये। उन सव के निकलते ही अश्व शाला गिर पडी थी। इससे नवाव तथा प्रजा की सु दरदासजी पर अत्यधिक श्रद्धा हो गई थी।

कहा भी है—सत दया की मूर्ति है, सवकी करे सहाय।
सुन्दर ने सु नवाव के, घोडे दिये बचाय ॥१५५॥ ह त ११॥

सुन्दरदास के विद्यार्थी (वालकरामजी ने भी) शिष्य तो सतदासजी मारू के थे) सुन्दरदास की महिमा कही है—उनके एक पद्य का अश देखिये—

"बालकराम विवेक निधि, देखो जीवन मुक्त है। "सुन्दरदासजी के गुणो का कथन करे तो कभी भी पार नही आयेगा। राघवदास भक्त माल के ५८९ के पद्य मे उक्त पद्य है।

शकुन चिडी कहने वाले को काक कहना—एक दिन फतेहपुर मे स्वामी सुन्दरदासजी श्वेत चादर धारण किये हुये मार्ग से जा रहे थे और उसी मार्ग से कुछ वैष्णव खाखी साधु जा रहे थे उनके शरीर पर भस्म लगी थी, उनमे से एक साधु सुन्दरदासजी की धुली हुई सफेद चादर देखकर उनकी ओर अंगुली करके अपने साथी खाखियो से कहा—देखो कैसे शकुन चिडी के समान जा रहा है। उक्त वचन सुन्दरदासजी ने सुन लिया। तब उक्त वचन कहने वाले साधु को लक्ष कर के मार्ग में चलते ही कहा—

शकुन चिडी सब से भली, सब ही लेते शौण।
काला मुख का काग तू, तब मुख देखे कोण ॥११॥

सुन्दरदासजी का उक्त वचन सुनकर सुन्दरदासजी को शकुन चिडी बताने वाले साधु के गुरु ने कहा—

"ऐ दादू का बालका, अवसर चूका नाहि।
अच्छी मारी शब्द की, सामी छाती माहि॥

फिर साथ के सभी खाखी सतो ने कहा—मार्ग मे जाते हुए किसी सत को फिर मत छेडना। ये तो सत ये सभी भेषधारी इन के समान नही होते हैं इन्होने तो केवल तेरे शब्द का प्रत्युत्तर अच्छे ढग से दिया है और कोई दूसरा होता तो न जाने क्या-क्या कहता। फिर सुन्दरदासजी को शकुन चिडी कहने वाला साधु बहुत पछताया। कहा भी है—

कहे व्यग वच सन्त को, होता पश्चात्ताप।
कह सुन्दर को शकुन चिडि, पछताया फिर आप॥४०५॥हृ त ११॥

2– एक समय फतेहपुर मे एक खाखी आये और एक चौक मे उन्होने अपना धूणा लगाया। नगर के नर नारी दर्शनार्थ आने लगे। अधिक लोग सकामी ही होते हैं। सकामी नर नारी उनसे अपनी कामनाये पूर्ति की प्रार्थना करने लगे, कोई कहता मुझे धन दिलाने की कृपा करो। कोई कहता था मेरी स्त्री मेरे बश रहनी चाहिये। इसी प्रकार नारिया भी कहती थी कि हमारे पति हमारे वश रहने चाहिये। इत्यादिक नाना कामना उनके आगे रखते थे। साधुजी कहते थे तुम्हारे पास जो सोना है या सोने के भूषण हो वे सब मेरे पास ले आवें। मैं उनको मत्र दूगा फिर उनसे तुम्हारी सब इच्छायें पूर्ण हो जायेंगी, किन्तु मत्र अमावस्या की रात्रि को चलता है अत अमावस्या के पहले दिन सबको सोना ले आना चाहिये। अमावस्या

के दिन हमारा कार्य जो मंत्र से पहले करने का है वह पूरा कर लेंगे और अमावस्या की रात्रि को सबको मंत्र देंगे, फिर एकम को सब अपना ले जाना। उससे तुम्हारी इच्छानुसार ही कार्य होते रहेंगे। इससे उनके पास बहुत नर-नारी आने लगे और सभी प्रकार की सेवा भी करने लगे। मेला सा लगा रहता था। उस ढंग को देखकर सुन्दरदासजी के मुखसे अनायास ही नीचे लिखे सवैया के तीन पाद बन गये किन्तु चौथा पाद नहीं बनाया। अमावस्या को उसने कहा—आज रात को आस पास कोई नहीं रहना यदि रहेगा तो मंत्र नहीं चलेगा। फिर अमावस्या की आधी रात को सब सोना लेकर चला गया फिर सब रोने लगे। वह सवैया यह है—

आसन मारि सवारी जटा नख, उज्जल अंग विभूति चढाई।
या हमको कछु देय दया कर, घेरि रहे बहु लोग लुगाई।
को उक उत्तम भोजन लावत को उकल्यावत पान मिठाई।
'सुन्दर' लेकर जात भया सब, मूरख लोगन या सिधि पाई ॥८॥अ १२॥

उक्त कथा से ज्ञात होता है, सुन्दरदासजी भविष्य को जानते थे किन्तु प्रकट नहीं करते थे। कारण, पहले कहने से दुनिया बहुत पीछे लग जाती है, उससे भजन विचार में विघ्न खड़ा हो जाता है।

3- एक दिन सुन्दरदासजी भजन में बैठे थे। उन्हें भजन से उठने की इच्छा नहीं थी किन्तु भूख ने बहुत सताया, तब उठना ही पड़ा। फिर उन्होंने विचार किया कि मुझे पेट भरने की अभिलाषा न होने पर भी पेट ने भजन में विघ्न डाला है और जिन्होंने खाने को ही मुख्य समझ रखा है, वे भजन कैसे कर सकते हैं ? अतः पेट की चिन्ता भी भजन में विघ्न है। फिर यह सवैया रचा—

पाँव दिये चलने फिरने कहु, हाथ दिये हरि कृत्य करायो।
कान दिये सुनिये हरि का यश नैन दिये तिन मार्ग दिखायो ॥
नाक दियो मुख शोभित ताकर, जीभ दिई हरि को गुन गायो।
और तो साज दिये सब 'सुन्दर', पेट दियो प्रभु पाप लगायो ॥१॥ अग[3]

कहा भी है—उदर भरम की आश भी, विघ्न भजन में होय।
सम्यक् सुन्दरदास ने, अनुभव कीन्हा सोय ।१३७।ह त १३।

4- फतेपुर के बसल गोती अग्रवाल वैश्य रायचन्द्र अपने पिता के एक ही पुत्र थे। विवाह होने के पश्चात् बीस वर्ष की अवस्था में ही लकवा हो गया था, उससे रायचन्द्र का पैर चलने फिरने योग्य नहीं रहा, रायचन्द की पत्नी अति सुन्दर थी। एक दिन जल भरने जाते समय वहाँ के नवाब ने उसे देख लिया और प्राप्त करना चाहा। गुप्तचरों से परिचय प्राप्त होने पर उसकी सहेलियों से उसे फुसलाने का यत्न प्रारंभ किया। सहेलियों ने लोभवश उसे समझाना आरंभ किया—तेरा पति लकवे से बेकार हो गया है, नबाब के चले जाने से तुझे धन और संतान भी

प्राप्त होगी और तुम नही जाओगी तो वह बलात् पकड़वा कर मंगवा लेगा। इत्यादि बातें सुनकर तथा लोभ मे फँसाने के लिये नवाब का भेजा हुआ बहुमूल्य हार देखकर वह काप गई, उस पर बज्रपात सा हो गया। उसने अपनी सासु को कहा। सासू ने आसू बहाते हुये कहा—तुम अपने पति से कहो फिर उसने बडे दुःख के साथ पति से कहा। रायचन्द विचार शील था। उसने कहा—तुम व्याकुल मत हो तुम्हारी रक्षा भगवान् करेंगे। मेरी आज्ञा से तुम सन्त प्रवर सुन्दरदासजी की शरण जाओ और सब बात उन्हे निस्संकोच सुना दो। वे पिता तुल्य है सर्व हितैषी हैं। उनसे ही हमारी रक्षा होगी। मुझे ऐसा दृढ विश्वास है,

रायचन्द्र की पत्नी की रक्षा

पति की आज्ञा से वह अपनी सासु के साथ सुन्दरदासजी की शरण गई और अवसर पाकर रोते हुये उनके आगे अपने पर आये संकट को प्रकाशित किया तथा रक्षा करने की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुनकर सन्त सुन्दरदासजी ने उन्हे रक्षा का आश्वासन देते हुये अपने रचित राग जकड़ी का चौथा पद सुनाया। यह सुन्दर ग्रन्थावली मे पहली राग है। वह दिया जाता है देखिये—पूर्वी बोली मिश्रित पद

हरि भज बौरी हरि भज, तज नेहर[1] कर मोह।

पिव लिनहारा[2] पठइहि, इक दिन होइहि बिछोह ॥टेक॥
आप हि आप जतन करु, जो लग वारि[3] वयेस।
आन पुरुष जनि भेटहु, के हू के उपदेश ॥१॥
जब लग होहु सयानिय, तब लग रहब सभार।
के हू तन जनि चितबहु, ऊचिय दृष्टि पसार ॥२॥
यह जौवन पिय कारने, नीके राखि जुगाइ।
अपना पर जनि छोड हु, पर घर आगि लगाइ ॥३॥
यहि विधि तन मन मारे ही, दुइ कुल तारे हि सोइ।
सुन्दर अति सुख विलसई, कत पियारी होइ ॥४॥

इस पद मे अध्यात्म विषय तो मुख्य है ही किन्तु पतिव्रत को दृढता से पालन करने की शिक्षा भी है। अत रायचन्द की पत्नी का मनोबल उक्त पद को सुनने से बहुत बढ गया और उसने मन मे निश्चय कर लिया कि मेरी रक्षा इन महान् सन्त सुन्दरदासजी महाराज की कृपा के निमित्त से भगवान् अवश्य करेंगे। इसमे अब मुझे संशय लेश भी नही करना चाहिये। फिर वे सुन्दरदासजी महाराज को सत्यराम प्रणाम करके अपने घर को चली गई। सन्त सुन्दरदासजी उसकी मन की दृढता को अपनी योग शक्ति से जान गये थे। फिर जब नवाब उनके दर्शन करने आया, तब सुन्दरदासजी ने सुन्दर शिक्षा के बहाने यह बात भी सुनाकर उससे उसका मन हटा दिया और रायचन्द की पत्नी का संकट टल गया। कहा भी है—

सन्त वचन सुन पाप से, जीव सहज बच जाय ।
रायचन्द नारी बची, नृप का भय छिट काय ।।८६।।ह त.१३।।

५—अपनी पत्नी के हृदय बल आया देखकर रायचन्द गद्गद होकर और अपनी पत्नी और माता से कहा—"तुम मुझे किसी तरह सुन्दरदासजी के पास ले चलो" फिर वे रायचन्द को सुन्दरदासजी के पास ले गईं। उनको किसी भी प्रकार सुन्दरदासजी के पास ले जाते देखकर दुर्जन लोग उपहास करने लगे और कहने लगे इस प्रकार कष्ट से यहा लाई हो क्या बाबा पैर और बेटा दे देगा ? सुन्दरदासजी

रायचन्द कालकवा मिटना

के कानो में यह बात पड गई। और उनको रायचन्द पर दया भी आ गई। रायचन्द सुन्दरदासजी को श्रद्धा से प्रणाम करके उनके चरणो के पास बैठा था उसी समय सुन्दरदासजी ने रायचन्द का हाथ पकड़ा और कहा—रायचन्द खडा हो। रायचन्द बोला—भगवन् खडा नही हो सकता हूँ। सुन्दरदासजी ने कहा—हो जायगा उठ यह कह कर ज्यो ही सुन्दरदासजी ने उसका हाथ उचा खैंचा कि वह अनायास ही खडा हो गया और उसका लकवा सदा के लिये चला गया। यह देखकर रायचन्द ने अपने मन मे सोचा—अब घर न जाकर महाराज के ही चरणो मे ही रह कर भजन करूगा। किन्तु सुन्दरदासजी ने कहा—घर जा तेरे तेरह पुत्र होंगे। रायचन्द ने कहा—अब तो घर न भेज कर चरणो मे ही रहने दे। सुन्दरदासजी ने कहा—घर जा तेरे तेरह पुत्र होंगे और उनका महान वश चलेगा। वैश्यों मे पोद्दार जाति मे अधिक उसका वश है। यह दोहा भी बहुत प्रचलित है प्राय सतों से सुनते आ रहे हैं।

पगा पागलो रायचन्द, बशल गोत मझार।
सुन्दरगुरु की कृपा से, पुत्र भये नव चार ।।१।।

कहा भी है—सत दया जब करत है, कमी रहै तब नाहिं।
रायचन्द ने पैर अरु, वर पाया क्षण माहिं ।।५१।।द त १३।

६—सुन्दरदासजी का भक्त रायचन्द मदिर में न जाकर सुन्दरदासजी के पास ही साधन किया करता था। एक दिन जाति वालो ने मदिर मे जाने के लिये बाध्य किया, तब रायचन्द नट गया। इससे लोगो ने सुन्दरदासजी को कहा। सुन्दरदासजी ने कहा—मदिर मे जाओ, मदिर मे जाने से क्या हानि है ? रायचन्द ने कहा-मेरा मदिर तो आप ही है। सुन्दरदासजी ने कहा-यह तो तुम्हारा भाव है सो तो ठीक है। फिर भी मदिर मे जाना अच्छा ही है। रायचन्द ने कहा—आपके चरणो से दूर अधिक नही रह सकता। यदि आप जाने की आज्ञा देते हैं तो अपने चरण चिह्न प्रदान करने की कृपा करें। सत सुन्दरदासजी ने

रायचन्द का श्रद्धा भाव जानकर स्वीकार कर लिया । फिर रायचन्द ने सुन्दरदासजी के चरणो के तलवो के गहरी केशर लगा कर एक सुन्दर वस्त्र पर रखवा लिये । वही चरण चिह्न साथ रख कर रायचन्द मन्दिर मे जाने लगा, फिर जाति वालो ने आक्षेप करना छोड दिया । कहा भी है—

सत सु साधक वृत्ति से, हठ को दूर हटाय ।
रायचन्द का हर लिया, सुन्दर ने समझाय ।।९३।। दृ. त. १३।

७—सुन्दरदासजी के ग्रन्थो की प्रतिलिपि करने वाला सुन्दरदासजी का भक्त रूपदास अर्थ सकट मे था । अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण सुगमता से नही कर सकता था । इस कारण व्यथित होकर सुन्दरदासजी के साथ भ्रमण करने जाना चाहता था । सुन्दरदासजी को ज्ञात हुआ तब सुन्दरदासजी ने उसे विश्वास का अग सुनाया और लिखकर दिया, उससे उसके मन का दु ख मिट गया और उसने ईश्वर विश्वास हो जाने से अपना घर छोड कर जाने का विचार छोड दिया । सन्तो के वचन श्रवण करने पर तथा मनन करने पर प्राणी के हृदय मे ईश्वर का विश्वास हो ही जाता है । फिर रूपदास को भगवत् कृपा से व्यापार द्वारा यथेष्ट धन भी प्राप्त हो गया । ईश्वर विश्वास व्यर्थ तो जाता ही नही है । कहा भी है—

सत वचन से होत है, ईश्वर पर विश्वास ।
रूपदास की मिट गई, सुन्दर वच से त्रास ।।" ९५।। दृ त १३ ।

८—फतेपुर की गुफा मे सात सत (प्रयागदास विहाणी, सतदासजी मारू, सुन्दरदासजी बूसर, घडसीदासजी, नारायणदासजी चापासर, भीखजनजी, बालक रामजी) १२ वर्ष तक भजन करते रहे थे, ऐसी जन श्रुति प्रसिद्ध है । सातो सत एक चादर व तुम्बी ही रखते थे और बारी-बारी शारीरिक क्रिया कर आते थे । भिक्षा वहा ही आ जाती थी। इससे सूचित होता है कि सुन्दरदासजी साधक सतो के किले रूप मे रहते थे । सुन्दरदासजी की उक्त सभी सतो से अधिक प्रतिष्ठा फतेहपुर मे हो गई थी । वहा का शासक नवाब तथा प्रजा सभी सुन्दरदासजी पर बहुत श्रद्धा रखते थे । फतेहपुर के तीन नवाब सुन्दरदासजी के समय मे हो गये थे । १—अलफ खा २—दौलत खा और तार खा । तवेला गिरने की घटना दौलत खा व तार खा के समय मे हुई थी ।

९—एक समय सुन्दरदासजी के स्थान मे चोर घुसे और कुछ सामन चुरा कर चल दिये । फिर जब पता लगा तो लोगो ने चोरो का पीछा किया । वे चूरू के पास पकडे गये । सुन्दरदासजी के पास लाये किंतु सत सुन्दरदासजी ने उनको कुछ भी नही कहा और छुडा दिया । उस समय चोरी मे गया हुआ सुन्दरदासजी का एक पिलग और जाजम सुन्दरदासजी के चूरू के भक्तो ने सेवा पूजा के लिये रख

लिया था। इस से वे दोनो वस्तु चूरू मे ही रही और भक्त लोग श्रद्धा से सेवा-पूजा करते रहे (मैंने भी उक्त दोनो वस्तुओ के दर्शन चूरू मे किये थे) उन चोरो ने उक्त घटना के बाद चोरी करना छोड दिया था। फिर उनके वश जो ने भी चोरी करना नही अपनाया था। फतेहपुर मे १६८२ स. से १७०० वि तक स्थिर रहे थे।

भ्रमण

सुन्दरदासजी दो बार लाहौर गये थे—प्रथम बार गये तब उनको सतसगी भी नही मिले और न अन्य व्यवस्था ही ठीक रही, इससे अधिक न ठहर कर शीघ्र ही लौट आये थे। उस समय की यह कहावत फतेहपुरियें सुन्दरदासोतो मे प्रसिद्ध है—

आये थे कुछ और को, होय गई कुछ और।
कपडे फाडे गाठ के, देख चले लाहोर॥

प्रथम बार लाहोर गये तब कुछ लोगो ने आपका वचनामृत पान किया था, उनमे एक फकीर तो आप के वचनामृत पान से इतना मस्त हो गया था कि—आपके फतेहपुर आने पर वह भी आपके वचनामृत पान करने के लिये फतेहपुर आया। नगर मे पूछकर सुन्दरदासजी के स्थान पर गया। तब सुन्दरदासजी प्रवचन कर रहे थे और नर-नारी चारो ओर बैठे-बैठे श्रवण कर रहे थे। यह देख कर फकीर का भाव बदल गया इससे वह दो आजले धूल की फेंक कर चल दिया। उसकी उक्त चेष्टा को देखकर सुन्दरदासजी समझ गये कि यह कोई ज्ञान विद्ध विरही जन है। फिर सुन्दरदासजी फकीर को समझाने के लिये प्रवचन छोडकर उसके पीछे चल पडे और कुछ दूर जा कर उसके चरणो मे साष्टाग दण्डवत की। तब उस फकीर का भ्रम दूर हो गया। फिर वह सुन्दरदासजी के आर्जव और निष्कपट भाव को देखकर पहले से भी अधिक मोहित हो गया। फिर तो वह श्रद्धापूर्वक ज्ञानोपदेश प्राप्त करके पजाब को चला गया।

दूसरी बार लाहोर गये तब "छज्जू भक्त के चौबारे मे ठहरे। छज्जूजी दादूजी के शिष्य बनवारीदासजी की शिष्य परमपरा के स.त थे। उन्होने सुन्दरदास जी महाराज का अति आदर किया। इससे लाहोर के भक्तो को छज्जूजी द्वारा सुन्दरदास जी की योग्यता का पता चला। फिर तो सुन्दरदासजी को हर समय भक्त लोग घेरे रहते थे। उक्त स्थान पर अन्य सत भी ठहरा करते थे। पजाब देश का आखो देखा हाल आपने अपने रचित देशाटन के सवैयो मे तीन और चौथे सवैये मे लिखा। पजाब की स्थिति बताई है यह भी देख सकते हैं।

एक समय लाहौर मे कथा करते समय स्वामी सुन्दरदासजी पर एक दूसरे पडित ने कुछ आक्षेप किये, तब सुन्दरदासजी ने कहा—आपके इन आक्षेपो का

उत्तर सतसग के पश्चात् दिया जायगा। इस समय तो सतसग मे आप थोडा धैर्य रख कर बैठिये। पडित जी ने मान लिया। सतसग के पश्चात् उक्त पडित से सुन्दरदासजी ने शास्त्रार्थ किया और उसे शास्त्र चर्चा में सुन्दरदासजी ने हरा दिया। उसने भी हार मान ली फिर सुन्दरदासजी ने कहा—

बूसर कहै तूँ सुन हो ढूमर, वाद विवाद न करना।
यह दुनिया तेरी नहि मेरी, नाहक क्यो अड मरना ॥

फिर उस पडित ने नतमस्तक हो सुन्दरदासजी की बात मान ली। विवाद को छोड भजन मे ही मन लगाया और भजन से हृदय के विकार निकाल कर भक्त हो गया।

समकालीन सत

वैसे तो आपका प्रेम अपने सभी गुरु भाइयो से तथा अन्य सतों से भी था किंतु विशेष करके—रज्जवजी, जगजीवनजी, सतदासजी मारू, घडसीदासजी, घडसीदासजी के शिष्य नारायणदासजी दूधाधारी भी आपके साथ रहे थे और आपसे अध्ययन भी किया होगा। रज्जवजी के शिष्य मोहनदासजी आप से बहुत प्रभावित थे। अब यहा जिनका विशेष प्रेम और व्यवहार ज्ञात हुआ है उनका परिचय देते हैं।

मोहनदासजी व सुन्दरदासजी

मोहनदासजी रज्जवजी के शिष्य थे। सुन्दरदासजी जब सागानेर मे रहते थे तब मोहनदासजी और सुन्दरदासजी का पत्र व्यवहार पद्यो मे होता रहता था। कारण - दोनो सत कवि थे। अत अपने पत्र पद्यो मे ही देते थे।

वे भी सुन्दरदासजी के जीवन से सबध रखते हैं—यहा कुछ देते हैं जिससे दोनो सतो की रचना का परिचय मिलता है।

श्री परमात्म ने नम

चौपाई— सिद्ध श्री सर्वोपमा लायक, गो ब्राह्मण सतन सुख दायक।
सभा सिगार सकल कुल मडरण, धर्म सहायक पाप वि हडरण ॥१॥
परम पूज्य श्री सुन्दरदास, माया काया जगत उदास।
दृढ वैराग्यादि अष्ठाग योग, हेयोपादेय जित भोग ॥२॥
तिनहि जोग्य यह कागर सोहन, प्रीति महित लिखत भृति मोहन ॥

छप्पय— ज्ञान चातुरी अति विवेक, गुरुगम गरवाई।
क्षमा शील सत्यता, सुहृद सन्तन सुख दाई ॥
गाहा गीत कवित्त छन्द पिंगल पर वानै।
सुन्दर से सब सुगम, काव्य कोइ कला ने छाने ॥

विद्याहि चतुरदस नाद निधि, भक्तिवत भगवन्त रत ।
सयम जु सुमर गुण गण अमर, राज रिद्धि नवनिद्धि युत ।।३।।

मनहर—तव कृत गीत छद कवित सवैया बन्ध,
दोहा चौपाई सोरठा श्लोक बन्ध गाया है ।
ऐसी तव वाणी सब सतन मे जानी मन,
अतर प्रवानी बाचि बाचि सुख पाया है ।।
ताते वह पोथी सब ग्रन्थ की जोथी अत्र,
लिखवे के काजै मेरा मन हुलसाया है ।
विश्वपति ये है देव ! भृत्य मथा भाषे भेव,
सुन्दर सुधा-समुद्र ग्रन्थ मोहि भाया है ।।४।।

(१) प्रत्युत्तर (सुन्दरदासजी का)

दोहा—सिद्ध श्री सर्वोपमा, योग्य सु मोहनदास ।
पत्री सागानेर से, लिखत सुन्दरदास ।।१।।
केति राम ही राम हैं, इहा वहा आनन्द ।
कुशल क्षेम तुम्हरे सदा, चहिये परमानन्द ।।२।।
अपर विगति ऐसी जु यह, पत्री पाही हाथ ।
समाचार जामे सबै, सुनो यही की गाथ ।।३।।
प्रीति सन्देसन क्यो बने, दूर नही वहा ठौर ।
ऊपर राखत और सी, मन मे राखत और ।।४।।
हम से कबहू ना मिलो, दिन के आवहु जाहु ।
छिपे छिपे ही नीकसो, के तुम चोर कि साहु ।।५।।

इन्दव—मोहन जू मन मोहन हो तुम, पौंहन बैसि पधार तु गामे ।
भौंहन सौंन मिलैं कब हौ, पुनि सौहन सौं कहिये कुछ म्हामे ।
टौहन की पतिया लिखि भेजतु, थौहन को सभीधन धामे ।
गोहन छाडि दयो कब को अब, दौहन की सुरही कत पामे ।।६।।
जो हम को लिख के पठया, समझा सब ही जु बृतात तुम्हारो ।
प्रीति की रीति सन्देशन होत, अदेश रहै हिय माहि विचारो ।
मोहन जू मन मोहन हो तुम, वोहना नेह रह्यो इक सारो ।
सुन्दर सौ मिल हो जव ही करि हैं तब ही सबको निरवारो ।।७।।

(१) मोहनदासजी का प्रत्युत्तर

चौपाई—इन्दव छद रु दोहा पाच, तामे शिक्षा अेचा खाच ।
कृपा करी भाषे तुम देव, ताको यह उत्तर मुनि लेव ।।१।।

इन्दव—साच कही तुम सुन्दरदास, उदास वचन्न यथारथ जानी ।
प्रीति की रीति सदेशन होत यों, पाइ गये पतिया पहचानी ।।
मोहन को नहिं दोहन को, सब ही उर हीतें गई जुग वानी ।
मोर मरोर ये जोर निचोर सु, लेवौ बको समझे सुन वानी ।।२।।

मनहर—शुद्धि मे अशुद्धि दरसाई मेरे मद भाग,
बोलवे को ठौर न तो जाइवे सो जाइगे ।
पौंहन बखाने धनवान मुख आने सु तो,
साहिब के साहिबो के पगारो न पाइये ।।
कहत कहा न जाय, रहत रहा न जाय,
तुम गुरु पाय शिक्षा याते अधिकाइये ।
घर का गुलाम मुख लाया भाषै आम जाम,
सुन्दर के दुदर न यातें कहनाइये ।।३।।

(२) (सुन्दरदासजी का) प्रत्युत्तर

दोहा—तर्क वचन तुम से कहे, प्रीति बढावन काज ।
नातरु यो कैसे कहैं, कहते आवे लाज ।।१।।
प्रीति घटे नहिं सत की, नीति यही निरधार ।
रीति सकल जानत तुम्हे, भीति कहा ससार ।।२।।

(३) (मोहनदास का) प्रत्युत्तर

दोहा—भय मेटण मेटण जु भव, सुन्दर शिक्षा वैन ।
स्वामी रज्जबजी अजे, ज्ञान सलाके नैन ।।१।।
काया काठ ऊसे उठे, गोष्ठि, मथत ते आगी ।
× × × × × × ।।२।।
× × × × × दू शिष्य ।
तीनों ग्रन्यथा पातु हो, भाष गये है ऋषि ।।३।।

२ व ३ दोहा की जो पक्तिया खाली है उनके विषय मे सुन्दर ग्र थावली मे लिखा है । ये मूल पत्र मे खाली ही हैं । अत यहा भी वैसे ही दी हैं ।

(३) (सुन्दरदास का) प्रत्युत्तर—

दोहा—पिंगल तुम कैसा पढा, शुद्धन किये कवित्त ।
कै ऐसे ही लिख गये, कैथिर भया न चित्त ।।१।।

(४) (मोहनदासजी का) प्रत्युत्तर—

दोहा—पिंगल तो हम हैं पढे, ता मे फेर न सार ।
(पै) सुन्दर सुधा समुद्र मे, पुस्तक गला हमार ।।१।।

मनहर—एक नाम लेत ही अनेक अघ जारै जाके,
ताके गुण माहि खोट सुना न सुनायतै।
अगनि न कीरी लागे हेम[1] शुद्ध काट नाहि, सोना[1]
वाटा[2] न सुलाक सहै पारस के पायेतै॥ लोह वाट[2]
कीरति करतार हूकी कहै ताका दिव्य देह,
तीरथ आनन होत संत क्रिति लाये तै।
रगण सगण आदि दुराहे का दोष नाही,
दग्ध न अक्षर पडे दिव्य देव गाये तै॥२॥

ग्रन्थ कर्ता स्वयं व्यासो, लेखकस्तु विनायकः।
तयोरपि चले चित्ते मनुष्याणा च का कथा॥३॥

(४) (सुन्दरदासजी का) प्रत्युत्तर—

दोहा—नई पुरानी एक है, कृत सब वाही माहि।
पोथी होती दूसरी, तो हम राखत नाहि॥१॥

ग्रन्थ एक अद्भुत भया, जा मे वचन विलास।
कबहूं कै तुम आय कर, सुनयो मोहनदास॥२॥

मोहनदास विज्ञप्ति मनरह—

जो पै जल-प्यासेन की प्यास जल मेटे नांहि,
जो पै अन्न भूखेन की भूख न मिटाहिगे।
जो पै दाता दीनन को दुखी देखि द्रवे नाहि,
जो पै राजा रैतिनि की रक्षा न कराहिगे॥
जो पै साई साध अपराध अपराधिन के,
मोहन न माफ करै मन मे घबराहिगे।
तोपै प्यासे भूखे दीन दुखी पापी पिंड प्रभु,
कहो कौन उद्यम के बल ठहराहिगे॥१॥

जो पै घर ऐसे कहै मोपै नहि धरो पाव,
तो वे पावधारी और ठौर कहा जायेंगे।
जो पै कहे निहग[1] विहग मत उडो मो मे, आकाश[1]
तो वे खग ख[2] विना धौ कहा को उडाहिगे॥ नभ[2]
तरु छाह वपु वाह मोहन क्यो हूहि जूये[3], जूदे[3]
हाल हूल ऊचे नीचे ठौर ठहराहिगे।
आलब न और जग दीसे कहो जाजे कहा,
आगि के तो दाधे अन्त आगि ही सिराहिगे॥२॥

दोहा— जब लग जीवन जगत मे, मरि हौं मौसर पाइ।
तब कृत सुनिवे सीखवे, फिर उपजू गा आइ ॥२॥
प्रीति प्राण को ले गई, काल काया ले जाय।
जन रज्जब गति आगली, अब ही देखी जाय ॥४॥
जहा सुरति तहँ जाय जिव, भग भये अस्थूल।
जन रज्जब दृष्टात को, कली कटै ज्यो फूल ॥५॥

चौपाई – परम पूज तुम ! अरज जु मान, विप्र वैश्य को जहा कहान।
तातै पोथी रहने दीजे, लहौं सवैया इतनी कीजै ॥६॥
मगित जबै मागने आवै, ज्यो त्यो दाता को सुकचावे।
सो तुम ते मब विधि नहि छाने, मैं सकुचाये सब कोइ जाने ॥७॥
सस्कृत हम पढे पढाये, तुम्हारी थिरा गिरा मन भाये।
परम पूज्य श्री स्वामी दादू, जिन वाणी कवूल की आदू ॥८॥
सो अवगाहि परम सुख पाया, पुन पियूष रज्जवजी पाया।
दे द्रस्टात पुष्ट करी भाषा, तिनि हू चढा डार अरु शाया ॥९॥
फल पाये बहु विधि मन भाये, अब तुम भूरि भाग्य तै पाये।
मैं मरजीवा तुम सुख सागर, लिखत पढत हूहिंहैं ढिग नागर ॥१०॥
सो सब अरज हमारी सुनियो, दुरवल देखि साख सब भगियो।
श्री सुन्दरदास जोग्य यह कागर, रीझ कहा आहि गुन आगर ॥११॥
सर्वज्ञ रीझ अज्ञ की मानी, कै आपणतै अधिकी जानी।
तुमतै अधिक नाहि है कोई, अज्ञ पर रीझण जुक्तहि होई ॥१२॥
तुम्हारो भृजन तुम तै दुवो, दैव योग्य यह यू ही हुवो।
थोरी भूल भये दुखदाई, कहित मे लगे और सी काई ॥१३॥
तज सहाय कहु हाय न कीया, किया नियारा लैके जीया ॥१४॥

दोहा— (श्री) रामदास रस मिलन मे, अमिलन मे रस नाय।
मिला न मारे सिह हूँ, अमिली मारे गाय ॥१५॥
यह मन बहु बकवाद से, वाय भूत हो जाय।
दादू बहुत न बोलिये, सहजै रहैं समाय ॥१६॥
करी आप किरपा सदा, रामदासजी मूल।
सो अब अधिकी अधिक है, कदे न जाही भूल ॥१७॥
मत जिते हैं पथ मे, लघु दीरघ सब कोय।
मेरी सब को धोक है, सदा सर्वदा सोय ॥१८॥

इति मोहनदास सुन्दरदासजी का पद्यमय पत्र व्यवहार सपूर्ण ६

कुरसाने निवास

सुन्दरदासजी ने देशाटन के अष्टम सवैये मे कहा। कुछ दिन गुजरात मे रहकर फिर "सोच विचार के सुन्दरदास जु, याहिते आनि रहे कुरसाने" ८ सवैया परम्परा से यह सुनते आ रहे है कि कुरसाने के ठाकुर आपके भक्त थे। अत उनके आग्रह से ही आये थे और जलवायु अनुकूल होने से वहा अधिक ठहर गये थे।आजकल सुना है कुरसाने को (कौसाना) कहते है,यह पाली जिला मे है। कुरसाने मे सुन्दरदासजी एकछत्री मे रहते थे। प्रतिदिन सत्सग चलता था। एक दिन प्रात दश बजेके लगभग सत्सग समाप्त होते ही ठाकुर साहब के यहा से सुन्दरदासजी के लिए भोजन आ गया। ठाकुर साहिब ने कहा—भगवन् भोजन आ गया है, सत्सग समाप्त कर प्रथम भोजन कर ले। सुन्दरदासजी रहते थे उसी के सामने ही एक गरीब वृद्धा रामी नामक माता का घर था। वह प्रतिदिन सत्सग मे ठीक समय पर आकर सुनती थी। भोजन आया तब रामी वहा ही थी। भोजन आने का शब्द सुनते ही वह रो पडी, उसकी आखो से अखड अश्रुधारा चलने लगी। तब सत्सगियो ने सोचा यह क्यो रोने लगी है, अभी तक बडी शाति से प्रवचन सुनती थी फिर सहसा क्यो रोने लगी है। लोगो ने उससे पूछा, किन्तु न उसका रोना बन्द हुआ और न उन लोगो ने उससे कुछ कहा ही। फिर सुन्दरदासजी ने उसके पास जाकर पूछा—माताजी क्या बात है ? आप सहसा क्यो रोने लगी। सत्य बात बताओ, यदि हमसे आप का दु ख दूर हो सकेगा तो हम अवश्य प्रयत्न करेंगे। सत सुन्दरदासजी के प्रेमपूर्ण मधुर शब्द सुनकर के तो रामी का गला और भी अधिक भर आया किन्तु किसी प्रकार उसने अपना रोना बद करके तथा आसू पोछकर के हाथ जोड कर गद्गद वाणी मे कहा—भगवन् ! ठाकुर साहिब के यहा से भोजन आया हुआ सुनकर मेरे मन मे स्फुरणा हुई कि यदि मैं भी भोजन कराने योग्य होती तो स्वामीजी को अपने हाथो से बनाया हुआ भोजन कराती। किन्तु मैं तो अति दीन-हीन हूं गरीब हूं स्वामीजी मेरे हाथ का भोजन कैसे कर सकते है ? यह सोचकर मैं मेरे दुर्भाग्य को देखकर ही रोपडी थी और मेरे रोने का कोई भी कारण नहीं है। रामी की बात सुनकर परम दयालु सुन्दरदासजी ने कहा—माताजी ! इसलिये आप न रोवें। अभी जाकर जो भी आपके हाथ का बना पदार्थ है वह घर से ले आवें मैं सर्व प्रथम उसी को पाकर अन्य वस्तु पाऊगा। अब रामी के हर्ष का पार न रहा। उसका घर तो पास ही था। वह शीघ्रता से घर पर गई और उसके हाथ की बनाई हुई बाजरे के आटा की राब एक लोटा भरकर ले आयी। सत सुन्दरदासजी सप्रेम उसको भगवान् के भोग लगाकर पा गये। बस रामी माई तो कृतकृत्य हो गई। कहा भी है—

ईश सत लें भक्त की, वस्तु न देत जवाव।
वेर भखे श्रीराम ने, सुन्दरखाई राव ।।

सुन्दरदासजी इधर उधर भ्रमण करके फतेहपुर मे ही पधार जाते थे।

रबाबची पर दया

फतेहपुर में एक दिन सुन्दरदासजी नगे शिर जा रहे थे, उनके सामने एक रवाव बजाने वाला अपना रवाव लिये फतेहपुर के नवाव के पास जा रहा था। उसने सुन्दरदासजी को नगे शिर सामने आते देखकर अशकुन माना और क्रोधित होकर रवाव की शिर मे मारी। सुन्दरदासजी की भगवान् ने रक्षा की, विशेष चोट नही आई किन्तु उसका रवाव टूट गया। इससे वह नवाव के पास उस समय न जा सका। रवाव ठीक करा कर गया तो आगे जिनके रवाव की मारी थी वे नवाव के पास बैठे थे। इससे उसे वहुत दुःख हुआ। उसने सोचा यह तो नवाव के पूज्य पुरुष हैं। कदाचित् मेरे रवाव मारने की वात ये नवाव को कह देंगे तो मेरे को नवाव अवश्य दन्ड देगा किंतु सुन्दरदासजी तो सत थे। उन्होने सोचा विचारे का रवाव टूट गया था अत इसे नवाव से अधिक ही दिलवाना चाहिये। फिर सुन्दरदासजी ने नवाव को कहा—यह गरीब है, इसे अच्छा इनाम देना चाहिये। सुन्दरदासजी के मुख से उक्त शब्द सुनते ही रवाबची का भय दूर हो गया और जितनी वह आशा करके गया था। उससे भी अधिक ही दिलवा दिया। इसी कथा को राघवदासजी ने अपनी दृष्टातो की साखिया मे लिखा है। वह साखी यहा देते हैं देखिये—

शिर मे दिई रवाव की, क्रोध नही लवलेश।
फिर उलटी पूजा करी, राघो वह दरवेश ।।

उक्त साखी मे सुन्दरदासजी का नाम नही है किंतु रामदासजी दूवल धनिया, जिनसे मैंने सत साहित्य का अध्ययन किया था, उन्होंने मुझे सुन्दरदासजी की ही यह घटना सुनाई थी और उन्होने गुरु परम्परा से सुनी थी।

सुन्दरदासजी व नारायणदासजी

दादूजी के शिष्य घडसीदासजी के शिष्य नारायणदाजी दूधाधारी भी सुन्दरदासजी के साथ रहे थे तथा सुन्दरदासजी की उन पर कृपा भी थी। उनका भी एक पत्र प्रसग दिया जाता है। नारायणदासजी जव मारवाड मे चले गये थे वहुत समय तक नही लोटे। तव सुन्दरदासजी ने उनको पत्र दिया था और बुलाया था। उस पत्र मे एक दोहा भी लिखा था सो यह है—

पढे थे वाराणसी, कियो विराहे वास।
भू च देश मे रम रहे, भले नारायणदास ।।१।।

उक्त दोहे का उत्तर अन्य समाचारो के साथ नारायणदासजी नेभी यह दोहा लिखा था—

दूध दही घृत सालणा,[1] थली भला है थोक। शाक[1]
ओढण ऊना कप्पडा, लक्खण लावा लोक[2] ।। लोग

राघवदासजी ने अपनी रचित भक्तमाल मे सुन्दरदासजी छोटो का परिचय दिया सो भी देते हैं—

छप्पय—शकराचार्य दूसरा, दादू के सुन्दर भया।
द्वैत भाव कर दूर, एक अद्वैत हि गाया।।
जगत भक्त षट-दर्श, सबन के चाणक[1] लाया। चाबुक[1]
अपना मत मजबूत, थपा गुरु पक्ष सु भारी।
आन धर्म कर खड, अजा[2] घट से निरवारी[3] ।। माया[2] हटाई[3]
भक्ति ज्ञान हठ साख्य लौ, सर्व शास्त्र पारहि गया।
शकराचार्य दूसरा, दादू के सुन्दर भया ।।५८४।।

मनहर—दादूजी के पंथ मे, सुन्दर सुखदाई संत,
खोजत न आवे अन्त, ज्ञानी गलतान है।
चतुर निगम[1] षट्[2] षोडश[3] अठार नव। वेद[1] शास्त्र[2] भाषा[3]
सर्व का विचार सार, धारा सुन कान है।।
साख्य योग कर्म योग, भगति भजन पवन।
प्रख[4] जाने सकल, अकल का निधान है। परीक्षा[4]
वैश्य कुल जनम विचित्र, विज्ञ वाणी जाकी।
राघो कहै ग्रन्थन के, अर्थन का भान[6] है ।।५८५।। सूर्य[6]
दौसा है नगर चोखा, बूसर है साहूकार।
सुन्दर जनम लिया, ताहि घर आयके।
पुत्र की है चाह पति, दिई है जनाय त्रिया।
कहा समझय स्वामी, कहो सुखदाय के।
स्वामी मुख कही, सुत जनमेगा सहि पै।
वैराग्य लेगा वही घर, रहे नाही माय के।
एकदश वरप मे, त्यागा घर माल सब।
वेदान्त पुराण सुने, वानारसी जाय के ।।५८६।।
आया है नवाव, फतेहपुर मे लगा है पाय।
अजमत[1] देहु तुम, गुसाई रिझाया है। करामात[1]
पला जु गलीचा का, उठाय कर देखा तब।
फतेहपुर वसे नीचे, प्रकट दिखाया है।।
एक नीचे सर एक, नीचे लशकर वड।
एक के गहर वन, देख भय खाया है।

राघो घोडे राखलिये, दबते नवाब हुके ।
सुन्दर ज्ञानी का कोउ, पार नही पाया है ।।५८७।।

एक समय सुन्दरदासजी ने नवाब को कहा कि तुम अपनी अश्वशाला से घोडे और मनुष्यो को शीघ्र निकालो । नवाब सुन्दरदासजी पर अति श्रद्धा रखता था, उसने शीघ्र अश्वशाला खाली करा ली । तब उसकी अश्वशाला धाराशायी हो गई थी । सोई कहा— (राघो घोडे राख लिये, दबते नवाब हुके) कहा भी है—

सत दया की मूर्ति है, सबकी करें सहाय ।
सुन्दर ने सु नवाब के, घोडे दिये बचाय ।।१५५ द ता ११।।

छप्पय— सद्गुरु सुन्दरदास, जगत मे पर उपकारी ।
धन्य धन्य अवतार, धन्य सब कला तुम्हारी ।।
सदा एक रस रहे, दुख द्वन्द्व रु को नाही ।
उत्तम गुण जो आहि, सकल दीमें तन माही ।।
साख्य योग अरु भक्ति पुनि, शब्द ब्रह्म सयुक्त हैं ।
बालक राम विवेक निधि, देखो जीवन मुक्त हैं ।।५८८।।

वालकरामजी शिष्य तो दादूजी के शिष्य सतदासजी मारू के थे किन्तु सुन्दरदासजी से पढे थे अत सुन्दरदासजी को भी गुरु ही मानते थे ।

जल सुत[1] प्रीतम[2] जान, तासु सम परम प्रकाशा ।। कमल[1] सूर्य[2]
अहि[3] रिपु[4] स्वामी मध्य, किया जिन निश्चल बासा ।। सर्प[3] गरूड[4]
गिरजापति ता तिलक[5], तासु सम शीतल जानो । चन्द्रमा[5]
हस भखन[6] तिस पिता,[7] तेम गंभीर सु मानो ।। मोती[6] समुद्र[7]
उदधि-तनय[8] वाहन[9] सुनो. ता सम तुल्य बखानिये ।। चन्द्र[8] मृग[9]
सुन्दर सद्गुरु गुण कथन, कथत पार नहिं जानिये ।।५७९।।

वाहन = मृग के समान ब्रह्म शब्द मे तनमय रहने वाला थे ।

मति रिवेक चातुरी, ज्ञान गुरु गम[1] गरवाई[2] । विचार[1]शक्ति[2]
क्षमा शील सम सत्य, सुहृद सतत सुखदाई ।।
गाहा[3] गीत[4] कवित्त, छद पिंगल सु प्रवाने । आर्या[3] हरि गीत[4]
सुन्दर को सब सुगम, काव्य की कला न छाने ।।
चौदह विद्या नाद निधि, भक्तिवत भगवत रत ।
सयम समर[5] गुण गण अमर, राज ऋद्धि नव-निद्धियुत ।।५९।। युद्ध[5]

देवन मे ज्यो विष्णु, कृष्ण अवतारन कहिये ।
रण[1] मे गगापुत्र[2], गग तीरथ मे लहिये ।। आसुर गुणों[1] भीष्म[2]
नारद ऋषि न माहि, यक्षन कुबेर भडारी ।
जती कपी हनुमान, सती हरिचन्द विचारी ।।५८९।।

नागन मे श्री शेषजी, वागन[1] शारदा मानिये ।। बोलने वालो मे[1]
दादूजी के शिषन मे; सुन्दर बूसर जानिये ।।५९१।।
तारन मे ज्यो चन्द, इन्द्र देवन मे शोहै ।
नरन माहिं नरपति, सती हरिचन्द सु जोहै ।।
भक्तन मे ध्रुव जान, तासु सम जग मे थोरे ।
दानिन मे बलि कर्ण, शण्य शिवि सम नहि और ।।
जगत भक्त विख्यात है, चातुर जन ऐसे कही ।
सब कवियन शिरताज है, दादू शिष सुन्दर सही ।।५९२।।

राघवदासजी की भक्तमाल के पद्य टीकाकार चतुरदासजी ने सुन्दरदासजी के ग्रन्थो की गणना चार मनहरो मे की है और ४२ ग्रन्थ बताये है । वे इस ग्रन्थ मे ग्रन्थ के साथ ही न १ से ४२ दे दिये हैं अत उनको यहा देने की आवश्यकता नही समझ कर नही दिये हैं और जिन को देखना है वे प्रकाशित भक्तमाल देख सकते है ।

रज्जव जी से मिलने जाना

सुन्दरदासजी महाराज ने अपने सभी ग्रन्थो को अपने भक्त वैश्य रूपदास से अपनी देख रेख मे स १७४२ मे लिखवा लिया था । फिर कुछ समय के पश्चात् जहां तहा भ्रमण करते हुये अपने प्रिय बडे गुरु भाई रज्जबजी से मिलने सागानेर पधारे थे और अपने स्थान मे विराजे थे । इन का स्थान रज्जबजी के स्थान से अलग सागानेर मे बना हुआ था । ये जब सांगानेर आते थे तब उसी मे ठहरते थे । ऐसा ही इनके जीवन चरित्र से ज्ञात होता है । फिर कुछ दिन पश्चात् रज्जवजी सम्बन्धी चर्चा चलाई कि रज्जवजी आजकल यहा नही हैं तो कहा गये है ? फिर ज्ञात हुआ रामदासजी के साथ यहा से गये थे, फिर रामदासजी तो आ गये है किन्तु रज्जबजी नही आये । तब सुन्दरदासजी ने रामदासजी को बुलाकर पूछा तो रामदासजी ने कहा—गुरुदेव जी मुझे साथ लेकर यहा से पैदल ही टौंक की ओर एक गहरे वन मे पधारे थे फिर उस वन मे पहुंचने पर मेरे को कहा—रामदास अब तुम जाओ निरतर ब्रह्म भजन करते रहना । मेरे शरीरांत का समय बहुत समीप आ गया है । यह शरीर शीघ्र ही अब जाने वाला है । दादूजी महाराज के उपदेशानुसार शरीर त्यान के लिये ही मैं तुम को यहा तक साथ लाया था । दादूजी ने कहा है, वैसे ही यहा शरीर त्यागकर स्वस्वरूप को प्राप्त करना है । दादूजी महाराज का वचन है—

"हरि भज साफिल जीवना, परोपकार समाय ।
दादू मरणा तहा भला, जहँ पशु पक्षी खाय" ।।१।।

यह स्थान ऐसा ही है । यहा शरीर छोडने से पशु पक्षी शीघ्र ही खा जायेंगे । तब मैंने कहा गुरुदेव ! ऐसे समय मे तो मुझे अवश्य पास ही रहना चाहिये ।

किन्तु गुरुजी ने कहा—तुम्हारी आवश्यकता पूरी हो गई, यहा तक पहुचाना ही तुम्हारा काम था अब तुम शीघ्र यहा से चले जाओ। तब गुरुजी की आज्ञा मान कर मैं वहा से चला गया। किन्तु पास के ग्राम मे ठहर गया और दो दिन बाद जहा गुरुजी को छोडा था वहां गया और उस स्थान के आस पास बहुत दूर-दूर तक खोजा किन्तु गुरुजी के शरीर का भी पता नही लग सका कि उनके शरीर का शरीर छोडने के पश्चात् क्या हुआ। फिर मैं लौट आया, यह तो गुरुजी ने कह ही दिया था कि शरीरान्त का समय बहुत समीप आ गया है, अत उन्होंने उसी दिन शरीर त्याग करके ब्रह्म पद को प्राप्त कर लिया था। रामदासजी से रज्जबजी के ब्रह्म प्राप्ति का समाचार सुनकर सुन्दरदासजी ने भी ध्यान द्वारा देखा तो ज्ञात हुआ अब मेरा भी यह शरीर अधिक नही रहने का है। फिर वे प्राय. समाधि मे ही रहने लगे। भोजनादि व्यवहार भी बहुत कम ही रह गया, कारण ? वे अधिक अन्तर्लीन रहते थे। इससे शरीर भी कमजोर हो गया था। कुछ शिष्य और भक्तो ने प्रार्थना की—भगवन् ! शरीर बहुत कमजोर हो गया है, इस कमजोरी रूप रोग की औषधि करने के लिये वैद्य को बुलाया। तब सुन्दरदासजी महाराज ने श्रीमुख से यह कहा

वैद्य हमारे रामजी, औषधि हु हरि नाम।
'सुन्दर' यहै उपाय अब, सुमिरण आठो जाम ॥१॥

उक्त प्रकार आठो पहर ब्रह्म भजन करते हुये रज्जब जी के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् ही आपका भी ब्रह्मलीन होने का समय आ गया। तब उन दिनो मे जो सुन्दरदासजी के मुख से निकली साखियो को, सतो ने अत समय की साखी सज्ञा दी हैं वे ये साखिया हैं—

निरालम्ब निर्वासना, इच्छा चारी येह।
सस्कार पवन हि फिरे, शुस्क पर्ण ज्यौं देह ॥१॥
जीवनमुक्त सदेह तूं, लिप्तन कबहू होय।
ताको सोई जान है, तव समान जे कोय ॥२॥
मान लिये अन्त करण, जे इन्द्रियन के भोग।
सुन्दर न्यारा आतमा, लगा देह को रोग ॥३॥
वैद्य हमारे रामजी, औषधि हू हरि नाम।
'सुन्दर' यह उपाय अब, सुमिरण आठो जाम ॥४॥
'सुन्दर' सशय करे नही, बडा महुच्छव येह।
आतम परमातम मिल्या, रहो कि विनशो देह ॥५॥

सात वर्ष सौ मे घटे, इतने दिन का देह।
'सुन्दर' आतम अमर है, देह खेह का खेह। ६॥

उक्त साखियो मे न० ६ की साखी तो ठीक शरीर त्याग के समय की ही कही हुई ज्ञात होती है। उक्त प्रकार वि०स० १७४६ कार्तिक शुक्ला अष्टमी बृहस्पतिवार के दिन तीसरे पहर मे नश्वर शरीर को त्याग कर सुन्दरदासजी ब्रह्म मे लीन हो गये। फिर आपके शरीर को सतो की मर्यादा के अनुसार स्नानादि सस्कार करा के सुन्दर सजाई हुई पालकी मे सद्भाव पूर्वक विराजमान करके साधु सत नगर के नर-नारी, सेवक, भक्त, सेठ साहूकार, हिन्दू, मुसलमान सभी जातियो के लोग अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार सकीर्तन करते हुये सागानेर से उत्तर की ओर नदी के किनारे श्मशान भूमि मे ले जाकर अग्नि रूप ब्रह्म मे विलीन कर दिया। वहा ही आपके शिष्य नारायणदासजी के शरीर को अग्नि रूप ब्रह्म मे विलीन स० १७३८ मे किया था। नारायणदास का देहान्त भी सागानेर में ही हुआ था। फिर वहा ही सुन्दरदासजी के शिष्यो ने व भक्तो ने समाधि की छत्री वनवा कर उसमे सुन्दरदासजी और उनके शिष्य नारायणदासजी के चरण चिह्न पधरा दिये थे। उसमें यह चौपाई अकित की गई थी—

सवत सत्रासै छीयाला, कतिक सुदि अष्टमी उजाला।
तीजे पहर, वृस्पितिवार, सुन्दर मिलिया सुन्दर सार॥१॥

यह छत्री सागानेर मे घाभाईजी के वाग के पीछे उत्तर की तरफ थी। सुन्दरदासजी के समय वहा यह वाग नही था, पीछे वना था। किंतु अव वह छत्री वहा नही है। दुर्जनो ने स्वार्थवश भूमि को बेचने के लिये उसे नष्ट कर दिया, ऐसा ही सुनने मे आया है। उस स्थान के पास ही बड वृक्ष के नीचे अन्य भी दादू पथी सतो की कई समाधियाँ वनी हुई हैं। यह सुन्दर ग्र थावली के आधार से लिखा गया है। स्वार्थ इतनी बुरी वलाय है कि महापुरुपो की समाधि को भी नष्ट करने मे स्वार्थी सकोच नही करते।

श्री सुन्दरदासजी की वाणी मे वृहत् व लघु भरे ग्र थ हैं इस सस्करण मे उनको क्रम से लिखा गया है तथा प्रत्येक ग्र थ मे सख्या न० है तथा जिस ग्र थ व पद्य के विषय मे जो कुछ परपरा से सुना जाता रहा है वह प्रसग की कथा भी वहा दी गई है। अत पुन लिखना ग्र थ वृद्धि करना ही होगा।

श्री सुन्दरदासजी और उनकी वाणी पर मेरे विचार वि स २००५ कार्तिक शुक्ला ८-९ को नारायणा दादू धाम मे श्री सुन्दर जयन्ती उत्सव मनाया गया था, उस अवसर पर दादू पथ के मुख्य-मुख्य व्यक्तियो ने मुझे कहा था—तुम सुन्दर-दासजी व उनकी वाणी के विषय मे पद्य सुनाना, इससे मैंने उत्सव के प्रथम दिन

सत विनोबा भावे के सभापतित्व के समय मैंने २५ पद्य सुनाये थे। वे सत वाणी जो जयपुर से उस समय निकलता था, उसमे छप गये थे किन्तु यहा भी देना उचित समझ कर दिये जाते हैं—

प्रणति, मनहर छंद

जाग जग असत से, तन मन धन अर्प,
आदि मध्य अत गुण, गायो विश्वपति को।
साधक समूह सु विचार, निज मानस मे,
कहत सदेह हीन, धन्य जाकी नति[1]को ॥ — नम्रता[1]
निज निज मति सम, भावना को व्यक्त करे,
पैन पायो पार मति मान, जा सुमति को।
'नारायण' निरत निरतर स्वरूप मे जो,
नित्य नति[2] सुन्दर सुजान, बाल यति को ॥१॥ — प्रणाम[2]

बालकवि दोहा—सुन्दर बाल कवीश की, कविता छिपी न लेश।
'नारायण' उपदेश से, लाभ उठाता देश ॥२॥

हस कवि, मनहर

जाकी वाणी हिय मे उजास[1] कर तम हरे, — ज्ञान प्रकाश[1]
बाहर प्रकाश करे यथा रश्मि[2]रवि की। — किरण[2]
सजन जनो की मति वृद्धि हित गिरा चाहै,
देव गण इच्छा करें जैसे सदा हवि की ॥
पाखड प्रपच को विखड किया 'नारायण',
पर्वतो को तोडती है जैसे चोट पवि[3]की। — वज्र[3]
कीर्ति कमनीय कलि काल सु कराल मे भी,
छाय रही सुन्दर सुजान हस कवि की ॥३॥
सार रु असार हिय सम्यक विचार किया।
सार गहा सतत असार को निवारा है।
सत-मानसागर का सु विराग पय पिया,
भक्ति शुक्ति जात बोध मौक्तिक[1] अहारा है ॥ — मोती[1]
दयामय व्यवहार लोक हित का विचार,
ईश उपकार को न लेश भी विसारा है।
'नारायण' भली भाति शोध निज मानस मे,
सुन्दर सुजान हस कवि मैं उचारा है ॥४॥

कलाकार, मनहर

विज्ञ जन संमत सु काव्य के मर्मज्ञ विज्ञ,
जाकी कविता के अति उन्नत विचार है।
उन्नति के बाधक शृंगार के विरोधी सच्चे,
केशव शृंगारी के सु मारी फटकार है॥
विपर्यय चौबोला गूढार्थ आदि नारायण,
जाकी कूट[1] रचना का प्रकट प्रकार है। गूढ[1]
और चित्र काव्य की विचित्रता विचार किये,
सिद्ध होत 'सुन्दर' प्रसिद्ध कलाकार है॥५॥

काव्य किला, मनहर

काम करि हेतु जामे मनहर अकुश है,
कोपसिंह शासक सवैया सु कमान है।
ताप तृष्णा त्रासक सु दोहरे दुनाली धरी,
नाशक अज्ञान के छप्पय साग मान है॥
नास्तिक स्वभाव के अभाव हेतु पुष्ट पद,
क्रूर कुटिलाई पै चौपाई चाकू जान है।
'नारायण' मोहबल घातक घनेरे छद,
सुन्दर कवि के काव्य किले विद्यमान है॥६॥

सिद्ध शिरताज, मनहर

दैशिक दयालु दादू शिष्य गण मे प्रख्यात,
साझ प्रात जाके स्त्रोत्र गावत समाज है।
एकता के साधक सु बाधक विषमता के,
सम्यक सुधार रचे साधना के साज है॥
भक्त गण सत्य के जिज्ञासु गण 'नारायण'
सुन्दर से आज भी सँवारें निज काज है।
फतेहपुर नगर नबाब को दिखाई सिद्धि,
मृत्यु से बचाये बाजी[1] सिद्ध शिरताज है॥७॥ घोड़े[1]

सवैया सरित, मनहर

सुन्दर सुमेरु पै से सवैया सरित[1] सरी[2], नदी[1] चली[2]
द्वन्द्व दोष वृक्षन बहाती बोध वारि से।
विश्व वन वासना वायु से विषै वेणु जात,
मानस वारण[1] को बचावती दवारि[2] से। हाथी[1] वनाग्नि[2]

शीतल शरीर सत्त्व साम्य भर तारती है,
प्रपन्न जनो को तृष्णा दुस्सह ससारी से ।
श्रेय प्रेय इच्छक सुजन स्नान करें यामे,
प्रति दिन 'नारायण' प्रेरणा हमारी से ॥८॥

सुन्दर सरोज, मनहर

दादू रवि देखकर सुन्दर सरोज[1] खिला,
ताकी गिरा गन्ध सब ही को लाभकार है ।
तदपि विशेष षट पद[2] हरिदासन को,
प्राण तर प्यारी रु परम सुखकार है ॥
हेर हेर दोष को हिरानी[3] मति कविन की,
गिरा गुण खानि तब ते कहा पुकार है ।
'नारायण' नर की आधार सार सुख देत,
ताकी सरबरि[4] न सुधा की होत धार है ॥९॥

कमल[1] भ्रमर[2] थकगई व चकित[3] बराबर[4]

गुरु भक्ति, रोला छन्द

श्रीगुरु भक्ति प्रधान, जासु रचना मे पावे ।
ब्रह्मवेता प्रख्यात, तदपि दादू गुण गावे ॥
गुरु वचनो मे अडिग, डिगे नहिं तिल भर सुन्दर ।
'नारायण' इस हेतु, भये वे भव मे सुन्दर ॥१०॥

ईश्वर भक्ति, चौपाई

ईश्वर भक्ति भेद भल गाया, नवधा प्रेमा परा बताया ।
होय वियोगी अश्रुन धारा, वहा लहा पद परम अपारा ॥११॥

योग साधन, चौपाई

गाया योग हठ रु अष्टागा, साधा भलि विधि सागो पागा ।
सो सब सुख समाधि मे गाया, जान ब्रह्म जब ही तृप्ताया ॥१२॥

विद्वत्ता, मनहर

'निगम विचार' ग्रन्थ वेद वित सिद्ध करे,
सिद्ध 'ज्ञानसमुद्र' से दर्शन विज्ञान है ।
पिंगल रु कोश नीति साहित्य सगीत और,
शब्द शास्त्र वेता रचना से अनुमान है ॥
विशद विचार पूर्ण जाके ग्रन्थ वियालीस,
'नारायण' प्रतिभा का प्रकट प्रमान है ।
मतिमान समत रु श्लाघ्य सत भक्तन के,
दादू शिष्य सुन्दर जु प्रवर विद्वान है ॥१३॥

संत शिरोमणि, दोहा

सुन्दर मत शिरोमणी, मानत कस सन्देह ।
कारण अपरंपार है, सुन्दर का हरि नेह ।।१४।।

सुन्दर शिक्षा, किरीट सवैया

सुन्दर सत्य सनातन साधन, साध सु सिद्ध भये सत सुन्दर ।
सुन्दर शाश्वत सत्य बिना, भव लेश न भासत है यह सुन्दर ।।
सुन्दर साध्य वही सत सुन्दर, सुन्दर सीख दिई अति सुन्दर ।
सुन्दर की लख सुन्दरता अब, सुन्दर दृष्टि लखें सब सुन्दर ।।१५।।

संबन्ध से इतने धन्य, रोला छन्द

धन्य सु दौसा ग्राम, धन्य परमानन्द चोखा ।
धन्य मातु श्रीमती, सती जिन सुन्दर पोखा ।।
धन्य धन्य वह दिवस, घडी जब सुन्दर जाया[1] ।
धन्य भूरि वह मनुज, वचन उनका अपनाया ।।१६।।

[1] जन्मा

सुन्दर वाणी, मनहर

सुन्दर सुमिष्ट पद अरथ गम्भीर या मे,
हरि यश युक्त यातें अति ही सुहावनी ।
मनन करत नीके, कुमन सुमन बने,
जिमि चन्दन के सग चन्दन बने वनी ।।
श्रम विन शात शुचि सुन्दर सवन करे,
सुन्दर कवि के मन-मानस की नन्दनी ।
'नारायण' जिज्ञासु को शुभ सुख कर यह,
जिमि सु चकोरन को राका[1] चन्द चन्दनी ।।१७।।

[1] पूर्णिमा

जामे ब्रह्म का विचार जगत असार कहा,
पढत आनन्द हरि प्रेम को वढावनी ।
नर नारी बाल-वृद्ध यति ब्रह्मचारी विज्ञ,
सब ही के मन अति हरष उपावनी ।।
बार बार करत विचार व्यवधान विना,
ताकी चिरकाल दृढ अविद्या नशावनी ।
'नारायण' यह तो प्रसिद्ध है जगत माही,
सुन्दर कवि की कविताई मन भावनी ।।१८।।
सुन्दर की सुन्दर गिरा का ज्ञान मानहत,
रतमत करत तुरत भगवान मे ।

शीतल शरीर सत्त्व साम्य भर तारती है,
प्रपन्न जनो को तृष्णा दुस्सह ससारी से ।
श्रेय प्रेय इच्छक सुजन स्नान करे यामे,
प्रति दिन 'नारायण' प्रेरणा हमारी से ॥८॥

सुन्दर सरोज, मनहर

दादू रवि देखकर सुन्दर सरोज[1] खिला,
ताकी गिरा गन्ध सब ही को लाभकार है ।
तदपि विशेष षट पद[2] हरिदासन को,
प्राण तर प्यारी रु परम सुखकार है ॥
हेर हेर दोष को हिरानी[3] मति कविन की,
गिरा गुण खानि तब ते कहा पुकार है ।
'नारायण' नर की आधार सार सुख देत,
ताकी सरबरि[4] न सुधा की होत धार है ॥९॥

कमल[1] भ्रमर[2] थकगई व चकित[3] बराबर[4]

गुरु भक्ति, रोला छन्द

श्रीगुरु भक्ति प्रधान, जासु रचना मे पावे ।
ब्रह्मवेता प्रख्यात, तदपि दादू गुण गावे ॥
गुरु वचनो मे अडिग, डिगे नहिं तिल भर सुन्दर ।
'नारायण' इस हेतु, भये वे भव मे सुन्दर ॥१०॥

ईश्वर भक्ति, चौपाई

ईश्वर भक्ति भेद भल गाया, नवधा प्रेमा परा बताया ।
होय वियोगी अश्रुन धारा, वहा लहा पद परम अपारा ॥११॥

योग साधन, चौपाई

गाया योग हठ रु अष्टागा, साधा भलि विधि सागो पागा ।
सो सब सुख समाधि मे गाया, जान ब्रह्म जब ही तृप्ताया ॥१२॥

विद्वत्ता, मनहर

'निगम विचार' ग्रन्थ वेद वित सिद्ध करे,
सिद्ध 'ज्ञानसमुद्र' से दर्शन विज्ञान है ।
पिंगल रु कोश नीति साहित्य सगीत और,
शब्द शास्त्र वेता रचना से अनुमान है ॥
विशद विचार पूर्ण जाके ग्रन्थ बियालीस,
'नारायण' प्रतिभा का प्रकट प्रमान है ।
मतिमान समत रु श्लाघ्य सत भक्तन के,
दादू शिष्य सुन्दर जु प्रवर विद्वान है ॥१३॥

संत शिरोमणि, दोहा

सुन्दर सत शिरोमणी, मानत कस सन्देह ।
कारण अपरपार है, सुन्दर का हरि नेह ॥१४॥

सुन्दर शिक्षा, किरीट सवैया

सुन्दर सत्य सनातन साधन, साध सु सिद्ध भये सत सुन्दर ।
सुन्दर शाश्वत सत्य बिना, भव लेश न भासत है यह सुन्दर ॥
सुन्दर साध्य वही सत सुन्दर, सुन्दर सीख दिई अति सुन्दर ।
सुन्दर की लख सुन्दरता अब, सुन्दर दृष्टि लखे सब सुन्दर ॥१५॥

सबन्ध से इतने धन्य, रोला छन्द

धन्य सु दौसा ग्राम, धन्य परमानन्द चोखा ।
धन्य मातु श्रीमती, सती जिन सुन्दर पोखा ॥
धन्य धन्य वह दिवस, घडी जब सुन्दर जाया[1] । जन्मा[1]
धन्य भूरि वह मनुज, वचन उनका अपनाया ॥१६॥

सुन्दर वाणी, मनहर

सुन्दर सुमिष्ट पद अरथ गम्भीर या मे,
हरि यश युक्त यातें अति ही सुहावनी ।
मनन करत नीके, कुमन सुमन बने,
जिमि चन्दन के सग चन्दन वने वनी ॥
श्रम विन शात शुचि सुन्दर सवन करे,
सुन्दर कवि के मन-मानस की नन्दनी ।
'नारायण' जिज्ञासु को शुभ सुख कर यह,
जिमि सु चकोरन को राका[1] चन्द चन्दनी ॥१७॥ पूर्णिमा[1]
जामे ब्रह्म का विचार जगत असार कहा,
पढत आनन्द हरि प्रेम को बढावनी ।
नर नारी बाल-वृद्ध यति ब्रह्मचारी विज्ञ,
सब ही के मन अति हरष उपावनी ॥
बार वार करत विचार व्यवधान बिना,
ताकी चिरकाल दृढ अविद्या नशावनी ।
'नारायण' यह तो प्रसिद्ध है जगत माही,
सुन्दर कवि की कविताई मन भावनी ॥१८॥
सुन्दर की सुन्दर गिरा का ज्ञान मानहत,
रतमत करत तुरत भगवान मे ।

कपट कठोरता का भापण समेट सट[1], शीघ्र[1]
धरत मिठास नीके नर की जवान मे ।।
करत कुशल परमारथ परम पथ,
भरत सुवान झट जीव की कुवान मे ।
'नारायण' नर को निरुज[2] करे सेवन से, निरोग[2] काम दिग
मेवन से प्यारी न्यारी विश्व की दवान मे ।।१९।।

भासक परमारथ की नाशक सु स्वारथ की,
वकता यथारथ की मुनि मन भावनी ।
प्रतिज्ञा सी पारथ की निधि सत्य भारत की,
पोषक समारथ की सार दरशावनी ।।
आगर[1] मिथ्यारथ की नागर वेदारथ की, आगन[1]
सागर सिद्धारथ की 'नारायण' नावनी[2] । हरि नामों की[2]
खानि शब्द सारथ की धरा धरमारथ की,
सुन्दर कृतारथ की गिरा गग पावनी ।।२०।।

लेखक का वाणी प्रेम, जल हरण छन्द

जैसे भूखे प्यासन को अन्न पानी प्यारे लागे,
तिन हू को त्याग उन्हे और कुछ ना सुहात ।
जैसे लोभी कामियो के जर जोरु मन बसे,
धर्म कर्म ज्ञान औ विज्ञान तिन्हैं नाहिं भात ।।
जगत असार जान सब ही जजाल त्याग,
जैसे हरि भक्त रैन दिन हि जु हरिगात ।
'नारायण' तैसे मम सब ही को त्याग कर,
सुन्दर कवि को कविताई पर मन जात ।।२१।।

उपसहार दोहा

सुन्दर ने सुन्दर रचे, सुन्दरता के हेत[1] । हेतु[1] कारण
सुन्दर रीत्या शोध कर, सुन्दर होय सचेत ।।२२।।

सुन्दर का उपकार है, मानव गण पर भूरि[1] । बहुत[1]
वह बतलावें सर्व को, कमर कसै अब सूरि[2] ।२३।। विद्वान[2]

सुन्दर कीर्ति यथार्थ मे, कहै कौन मतिमान ।
मन अनुभव नहिं बोलता, वाणी को नहिं ज्ञान ।।२४।।

सुन्दर सत्य स्वरूप को, वन्दन बारम्बार ।
दया करे हिय से हरें, मृषा मोर[1] अहकार ।।२५।। मेरा[1]

सुन्दरदासजी बूसर के शिष्य

राघवदास जी ने अपनी भक्त माल के मूल छप्पय ६५१ मे दिया है सो देखें –

छप्पय— बूसर सुन्दरदास के, शिष्य सु पांच प्रसिद्ध हैं ।।
टीके[1] दयालदास, बडा पडित सु प्रतापी । सुन्दरदास की गद्दी पर[1]
काव्य कोश व्याकरण, शास्त्र मे बुद्धि अमापी ।।
श्याम दमोदर दास, शील सुमरन के साचे ।
निर्मल नरायणदास, प्रेम से प्रभु पद नाचे ।।
'राघव, राम[1] सु नाम रत, थपी थावरे निद्धि हैं । राम दश[1]
बूसर सुन्दरदास के, शिष्य सु पाच प्रसिद्ध है ।।६५१।।

निर्मल नारायणदास का परिचय भक्तमाल मे ६५२ के मनहर मे दिया है वह भी यहा देते हैं ।

नारायणदास

मनहर—सुन्दर के नारायण काहू केन सग पास ।
रहत हुलास[1] नित्य ऊचे चढ गाव ही । आनन्द[1]
दिल्ली के बाजार माहि डोले मे हुरम जाहि ।
परे कूद ताहि नीकी गोष्ठी कर आव ही ।।
साथ कोने शोर किया आप हुने चेत लिया ।
कूद गे जहा के तहा अचरज पाव ही ।
गगन मगन जन दु:ख सुख नाही मन ।
गावत है राम गुण रत रहै नाम नाव ही ।।६५२।।

आप दिल्ली मे किसी भक्त के भवन के ऊपर भजन गा रहे थे, उस समय वहा के वादशाह की हुरम पालकी से जा रही थी, उसे इन का भजन वहुत प्रिय लगा उस ने अभिलाषा की । इस गाने वाले पुरुष के मुझे दर्शन कैसे हो, उसकी मन की वात जान गये और आकाश मार्ग से उसकी पालकी मे योग शक्ति से प्रवेश करके उसे दर्शन दिया, जव सत्सग चर्चा चली तो साथ वालो ने भीतर कौन मनुष्य बोल रहा है ? उन्होने हल्ला किया तो अपनी योग शक्ति द्वारा आकाश मार्ग से जहां से आये वहा ही चले गये । इनका शरीर सुन्दरदासजी के शरीर से पहले सागानेर मे छूट गया था कहा भी है—

योगी शुभ अभिलाष को, पूर्ण करत तत्काल ।
करी नारायणदास ने, दिल्ली हुरम निहाल ।।६०।। द त १० ।

यदि आगे की सुन्दरदासजी की शिष्य परपरा देखना चाहे तो दादू पथ परिचय द्वितीय भाग मे पर्व ९ अध्याय ७ पृष्ट ५९६ से देखिये ।

दादूजी के शिष्य जग्गाजी ही सुन्दरदासजी के रूप मे प्रकट हुये थे। सुन्दरदासजी का सक्षिप्त चरित्र दिया गया। अन्य दादूजी के शिष्य तथा दादू पथ मे जो महान सत हुये उनका परिचय यथा प्राप्त 'दादू पथ परिचय', दादू पथ के इतिहास मे देखो। वह लगभग तीन हजार पृष्ठो का ग्रन्थ है तीन भागो मे छपा है और दादू महाविद्यालय, मोती डूगरी जयपुर मे मिलता है।

दोहा—सुन्दर लघु शिष दादु के, उन सक्षिप्त चरित्र।
'नारायण' पूरण हुआ, सुख प्रद परम पवित्र ॥

इति श्री पूज्य चरण स्वामी धनराम शिष्य स्वामी नारायणदास रचित श्री स्वामी छोटे सुन्दरदासजी का सक्षित जीवन चरित्र समाप्त।

समाप्ति समय वि स २०४५ फालगुन कृष्णा ६ सोमवार।

अथ सुन्दरवाणी माहात्म्य शतक

सुन्दर वाणी आप ही, महिमा स्वय वताय।
मनन करे जो मनुज है, परमानन्द हि पाय ॥१॥
सुन्दर गिरा सु माहात्म्य, फिर भी देउ वताय।
परपरा से जो सुना, सत्सगति मे जाय ॥२॥
सुन्दर की सुन्दर गिरा, सुन्दर उसका भास[1]। ज्ञान प्रकाश[1]
मनन करे मन लगा कर, तासु मिटे भव त्रास ॥३॥
सुन्दर वाणी मनन से, ज्ञान लहरि हिय आय।
उसके सेवन से मनुज, परम शाति को पाय ॥४॥
सुन्दर वाणी मे मिलें, दार्शनिक शुद्ध विचार।
उनको धारण करे से, पावे नर सुख सार ॥५॥
श्रेष्ठ शान्त रस पूर्ण यह, तदपि काव्य गुण भूरि[1]। वहुत[1]
इस मे मृषा न लेश है, पढ कर देखे सूरि[2] ॥६॥ पण्डित[2]
जन्म मरण के नाश हित, पढते साधक सन्त।
मति अबोध का करत है, सुन्दर वाणी अन्त ॥७॥
शाश्वत सुन्दर सर्व पर, सर्वेश्वर सर्वादि।
परिचय दे सुन्दर गिरा, जो है आदि अनादि ॥८॥
आदि अन्त अरु मध्य मे, सुन्दर वाणी माँहि।
ब्रह्म प्राप्ति की साधना, पूर्ण अन्य कुछ नाहि ॥९॥
सुन्दर का सर्वस्व है, गुरु दादू का ज्ञान।
सुन्दर ने निज गिरा मे, धरा वही विज्ञान ॥१०॥
सुन्दर गिरा वतात है, गुरु का शुद्ध स्वरूप।
जिसे जान जिज्ञासु जन, पहचाने गुरु रूप ॥११॥

मैं मेरा मय जाल मे, फंसा जीव दुख पाय ।
मनन करे सुन्दर गिरा, उसे काट सुख लाय ॥१२॥
काम क्रोध लोभादि ठग, ठगते ज्ञान सुरत्न ।
उसे बचाने का कहै, सुन्दर गिरा सुयत्न ॥१३॥
आशा सरिता में बहैं, प्राणी बारम्बार ।
सुन्दर वाणी हिय धरे, उससे होत उधार ॥१४॥
तृष्णा तरल तरगनी, बहाय बारम्बार ।
सुन्दर वाणी मनन से, उस से हो उद्धार ॥१५॥

अहकार से मुक्त हो, यह न सहज है बात ।
सुन्दर वाणी हिय धरे, वह भी सहज पलात[1] ॥१६॥
ममतामय बड महल मे, मानत प्राणी सुख ।
सुन्दर वाणी मनन से, उसमे भासे[1] दुःख ॥१७॥
सुन्दर वाणी स्तोत्र भी, सन्तो को अति भाय ।
तब ही अष्टक प्रति दिवस, गाते चित्त लगाय ॥१८॥

सुन्दर सुन्दर सवैये, पढत सुनत सुख होय ।
'नारायण' यह तो प्रकट, मृषा न जाने कोय ॥१९॥
सुन्दर वाणी मनन से, स्वभाव सुन्दर होय ।
यह तो साधक कहत हैं, मनन करत है सोय ॥२०॥

सुन्दर गिरा विचार से, विराग मन मे आय ।
दीर्घ काल का राग हिय, उसको शीघ्र भगाय ॥२१॥
भेद दृष्टि भय प्रद सदा, मति मे बैठी जोय ।
सुन्दर वाणी मनन से, शीघ्र भागती सोय ॥२२॥
शत्रु मित्रादि भावना, मन के भीतर जोय ।
उसे हते सुन्दर गिरा, सर्व ब्रह्ममय होय ॥२३॥
शांति दांति सुख प्रद सदा, सुन्दर गिरा विचार ।
मन इन्द्रिय की चपलता, हर दे बोध अपार ॥२४॥

आत्म ब्रह्म के विषय मे, सशय होते जोय ।
सुन्दर गिरा विचार से, सहज नष्ट सब होय ॥२५॥
जो भव दुख से विथित है, विषय न तिहि सुख देय ।
सुन्दर गिरा विचार सो, अप्रमेय सुख लेय ॥२६॥
अधिक लोभ से विथित जो, तिहि सन्तोष सिखाय ।
तृप्त करत सुन्दर गिरा, फिर वह सुख ही पाय ॥२७॥

जाय[1]

देखे[1]

विरति विवेक शमदम दया, गहन शक्ति विश्राम ।
चाहे तो सुन्दर गिरा, पढनित हो निष्काम ।।२८।।
श्रेष्ठ नीति मन मे रहै, लेश न आय अनीति ।
इच्छा तो सुन्दर गिरा, पढिये नित युत प्रीति ।।२९।।
मति तज हर्ष रु शोक को, समता मे रह लीन ।
तो विचार सुन्दर गिरा, पावे ज्ञान प्रवीन ।।३०।।
चो वोला चातुर्य युत, पढत विज्ञ सुख पाय ।
'नारायण' पढ प्रीति से, अपना वोध वढाय ।।३१।।
गूढारथ मन को लगा, पढे गहनमति होय ।
सम्यक किये विचार के, हर्ष लहेगा सोय ।।३२।।
निगड वन्ध साचे भले, गहराई से सोय ।
उसको सुख ही होयगा, सशय करें न कोय ।।३३।।
चित्र काव्य की चतुरता, देख विज्ञ हर्षाय ।
मुख से कही न जात है, पढेहि अनुभव आय ।।३४।।
पच इन्द्रिय चरित्र को, पढ पाठक सुख पाय ।
निज इन्द्रिय जय करन का, भाव हृदय मे आय ।।३५।।
मत्र लय रु अष्टाग हठ, साख्य लक्ष अद्वैत ।
सुन्दर वाणी मे मिले, सहज योग हट द्वैत ।।३६।।
नवधा प्रेमा अरु परा भक्ति समझ मे आय ।
सुन्दर वाणी से सहज, इच्छा सम अपनाय ।।३७।।
सुन्दर सुन्दर गिरा मे, भाषा सुन्दर पाय ।
साधक समझे सहज मे, इससे मन लग जाय ।।३८।।
सबही का अधिकार है, सुन्दर वाणी माहिं ।
आदि अत पढ देख लो, पक्ष पात कुछ नाहिं ।।३९।।
निज निज के अधिकार सम, साधन को अपनाय ।
सुन्दर वाणी मनन कर, परमात्मा को पाय ।।४०।।
सुन्दर सुन्दर गिरा का, सुन्दर ज्ञान प्रकाश ।
सुन्दर रीति सु मनन कर, मुक्त होत तज त्रास ।।४१।।
सतो को सुन्दर गिरा, सतत प्यारी होय ।
जिमि अम्बुज प्रिय अलि[1]न को, परम विदित है सोय ।।४२।।   भौंरा[1]
जो हिय मे यह आश है, मम मन हो निर्दोष ।
तो पढ सुन्दर गिरानित, होगा चित्त अदोष ।।४३।।

ईश्वर पद के प्राप्ति का, हेतु मनुज तन पाय।
सद् शिक्षा गह भजन कर, श्वास न व्यर्थ गमाय ।।

अनेक ग्रन्थो के निर्माता
सतकवि कविरत्न श्री स्वामी नारायणदास जी महाराज श्री कृष्णकृपाकुटीर, पुष्कर
जन्म वि० स० १९६० चैत्र शुक्ला राम नवमी सायकाल

जो अज निर्गुण निरामय, निराकार सब रूप ।
समझाती सुन्दर गिरा, ब्रह्म स्वरूप अनूप ॥४४॥
विविध साधना किये भी, हुआ नही संतोष ।
सुन्दर गिरा विचार नित, पावे पूरण पोष ॥४५॥
अपने अपने पक्षका, करते सब निर्देश ।
सत्य कथे सुन्दर गिरा, पक्ष न भासत लेश ॥४६॥
सत सदा निर्पेक्ष हो, तिन मत भी निष्पक्ष ।
यह समझाने के लिये, सुन्दर वाणी दक्ष ॥४७॥
सर्व रूप परमातमा, यह न समझ मे आय ।
तो सतत सुन्दर गिरा, पढ नित सो समझाय ॥४८॥
आशा पूरण हो नही, भोगो मे सत बात ।
सुन्दर गिरा विचार से, शीघ्र पूर्ण हो जात ॥४९॥
स्वप्न बोध से स्वप्न सम, जग यह निश्चय होय ।
वेद विचार हि वेद का, सार सत्य कह सोय ॥५०॥
उक्त अनूप सु नाम सम, अरु अद्भुत उपदेश ।
सुनत परम सुख होत हैं, रहे नही दुख लेश ॥५१॥
लघु ग्रन्थो का महत्त्व तो, पढत भासता[1] आप ।
पढत सुनत सुन्दर गिरा, हरे हृदय की ताप[2] ॥५२॥
सर्व कामना पूर्ण का, साधन सत विचार ।
सुन्दरवाणी मे भरा, पढ हत हृदय विकार ॥५३॥
जब तक विकार कामना, मन से दूर न होय ।
तब तक सुख कहँ पढ गिरा, सुन्दर की सब खोय ॥५४॥
कल्प वृक्ष जिज्ञासु हित संतन सत्य विचार ।
धार हृदय सुन्दर गिरा, पावेगा सुख सार ॥५५॥
हरि हि बोल हरि बोलनित, करते सत उचार ।
इसकी दृढता के लिये, सुन्दर गिरा विचार ॥५६॥
मति विचार सार्थक तभी, जब ले हरि आधार ।
हरि आश्रय दृढता लिये, सुन्दर गिरा विचार ॥५७॥
मरणा निश्चय होयगा, इसमे सशय नाहि ।
अत प्रथम ही मन लगा, सुन्दर वाणी माहि ॥५८॥
विरह व्यथा से व्यथित मन, शाति न पावे लेश ।
पढत सुनत सुन्दर गिरा, मिलत राम हत कलेश ॥५९॥

[1] दीखता
[2] दुःख

सद्गुरु सिरजनहार सम, साधु शाति पहचान ।
चाहे तो सुन्दर गिरा, पढ होकर निर्मान ।।६०।।
सत वाणिया विपर्यय, समझन चहे सुजान ।
तो भी पढ सुन्दर गिरा, होगा उनका ज्ञान ।।६१।।
समझ सकू मैं विपर्यय, सत गिरा भल रीति ।
इच्छा तो सुन्दर गिरा, पढ सम्यक युत प्रीति ।।६२।।
द्वन्द्व त्याग मति सहज ही, समझे ब्रह्म स्वरूप ।
यह इच्छा तो मनन कर, सुन्दर गिरा अनूप ।।६३।।
आत्मज्ञान विन जगत मे, खोये जन्म अपार ।
सुन्दर गिरा विचार अब, सहज होय भव पार ।।६४।।
मम चरित्र उत्तम वने, तज कर खोटे काम ।
तो पढ सुन्दर गिरा नित, अरु भज व्यापक राम ।।६५।।
सुन्दर वाणी प्रेम से, पढना बुद्धि लगाय ।
भाग्यशालि वह मनुज है, अन्त ब्रह्म को पाय ।।६६।।
भाग्योदय की आश है, तो क्यो करता देर ।
सुन्दर वाणी मनन कर, सन्त कहत हैं टेर ।।६७।।
जिन सुन्दर वाणी पढी, उन्हे मिला आनन्द ।
अब भी पढ कर देख लो, पावो परमानन्द ।।६८।।
परमानन्द प्रदायिनी, सुन्दर वाणी ख्यात[1] ।
यह तो सन्त समाज में, वात परम प्रख्यात ।।६९।।
शात सिद्ध सन्तन गिरा, अवश्य महान होय ।
पढे उसे भी करत है, वह महान सत सोय ।।७०।।
श्रेष्ठ सन्त की गिरा मे, मिलता ब्रह्म विचार ।
पढ सुन मानव होत है, भव सागर से पार ।।७१।।
ससारी ससार मे, मग्न रहै सब काल ।
यदि सुन्दर वाणी पढे, उनको देय निकाल ।।७२।।
दुर्व्यसनो का केन्द्र हिय, व्यसनतजे नहिं एक ।
सुन्दर गिरा विचार से, सब तज पाय विवेक ।।७३।।
नित्य खान-पानादि मे, सदा रहा तल्लीन ।
वह भी सुन्दर गिरा पढ, होता ज्ञान प्रवीन ।।७४।।
भोग वासना भोग से, कभी न होती पूर्ण ।
सुन्दर गिरा शिखाय तज, तजे तृप्त हो तूर्ण ।।७५।।

[1] प्रकट

बुद्धि ईश को भूल कर, फसी पडी जग जाल।
सुन्दर गिरा विचार तिहिं, देता सहज निकाल।।७६।।
मुक्ति साध[1] भी पूर्ण हो, सोचे सुन्दर वाणि। इच्छा[1]
सत साधन कर ज्ञान हो, मिटती खैंचाताणि।।७७।।
चिन्तन चित्त करे सदा, माया का हरि भूल।
सुन्दर गिरा हटाय तिहिं, दिखा ब्रह्म निज मूल।।७८।।
अहंकार अनातम मे, फस देता है क्लेश।
सुन्दर गिरा सुधारती, उसको दे उपदेश।।७९।।
अन्त.करण अज्ञान हत, सुन्दर गिरा विचार।
उसमे भरता ज्ञान है, सहज होय उद्धार।।८०।।
इन्द्रिय तज कर चपलता, मर्यादा मे आय।
सुन्दर गिरा विचार से, भोग आश छिटकाय।।८१।।
सुन्दर जीवन्मुक्त की, वाणी कासु प्रभाव।
प्रत्यक्ष देखा जात है, करती दूर कुभाव।।८२।।
सुन्दर गिरा विचार कर, समझ आपना रूप।
फिर निश्चय लख पाय है, अद्भुत निजी स्वरूप।।८३।।
सत्य तभी ही पायगा, मिथ्या से मन दूर।
कर फिर सुन्दर गिरा सुन, ब्रह्म सकल भरपूर।।८४।।
आत्मा अपना रूप है, तिहिं खोजन के काम।
सुन्दर गिरा विचार कर, भज अविनाशी राम।।८५।।
ज्ञानादिक शुभ कामना, पूर्ण होय अनयास।
कुकामना दुर्भावना, हते गिरा का भास[1]।।८६।। ज्ञान[1]
जीवो की अभिलाप है, सुख होवे सब काल।
पूर्ण करे सुन्दर गिरा, विचार होय निहाल।।८७।।
सुन्दर गिरा विचार से, कृतकृत्य सु हो जाय।
फिर मानव मन भोग हित, कभी नही ललचाय।।८८।।
सफल होय नर जन्म है, सुन्दर गिरा विचार।
केन्द्र होय हिय ज्ञान का, पाय ब्रह्म भवसार।।८९।।
सुन्दर गिरा विचार से, वृत्ति ब्रह्ममय होय।
अत ब्रह्म ही पायगा, सशय रहे न कोय।।९०।।
ब्रह्म रूप हो ब्रह्म विद, श्रुति ऐसे हि सुनाय।
सोई सुन्दर गिरा मे, बारम्बार हि आय।।९१।।

अनुभव सोई जानिये, जो श्रुति सम्मत होय ।
सुन्दर वाणी मे भरा, जहँ तहँ देखो सोय ॥९२॥

सर्व श्रेष्ठ गीता समृति, वाल्मीकि ऋषि राय ।
दादू कबीर बोध को, सुन्दर भल समझाय ॥९३॥

सुन्दर वाणी से छिपा, परमारथ कुछ नाहिं ।
मनन करे मन लगा कर, पावेगा उस माहिं ॥९४॥

अनायास सुख शाति का, केन्द्र हृदय हो जाय ।
तो विचार सुन्दर गिरा, सब सशय छिटकाय ॥९५॥

विविध भाति आशाओ का, अन्त न देखा जाय ।
तदपि सोच सुन्दर गिरा, कोऊ नही रह पाय ॥९६॥

देवादिक भी आश को, पूर्ण नही कर पाय ।
सुन्दर गिरा विचार से, विरत होय छिटकाय ॥९७॥

सशय हीन स्वरूप का, करन चहैं साक्षात ।
तो विचार सुन्दर गिरा, अवश्य ही हो जात ॥९८॥

अमित काल से जगत मे, भटका बारम्बार ।
अब न भटकना चहै तो, सुन्दर गिरा विचार ॥९९॥

सुन्दर वाणी माहात्म्य, पूर्ण कहा नहिं जाय ।
'नारायण' यह शतक कथ, सुतृप्त मौन लगाय ॥१००॥

इति श्री पूज्य चरण स्वामी धनराम शिष्य स्वामी नारायणदास कृत
श्री सुन्दर वाणी माहात्म्य दोहा शतक समाप्त ।
समाप्ति समय वि स २०४५ फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी सोमवार ।

सुधारक सप्त सूत्री

भारत वासियो चेत करो, भ्रष्टाचार से देश दवा उत्थान करो ॥१॥
घूस नही दो कष्ट सहो, घूस नही लो न्याय करो ॥२॥
नही कपट के काम करो, दुर्व्यसनो का त्याग करो ॥३॥
व्यर्थ खर्च तुम नही करो, सयम से निर्वाह करो ॥४॥
कुगुण कुप्रथा त्याग करो, सभी परस्पर प्रेम करो ॥५॥
मानवता मे नही गिरो, ईश भक्ति कर क्लेश हरो ॥६॥
मत गिरा मु विचार करो, ईश्वर भक्ति प्रचार करो ॥७॥

श्री परमात्मने नमः

अथ ज्ञान समुद्र ग्रन्थ १

प्रथम उल्लास

छप्पय—प्रथम वन्द परब्रह्म, परम आनन्द स्वरूप ।
दुतिय वन्द गुरुदेव, दिया जिन ज्ञान अनूप ।।
त्रितिय वन्द सब सत, जोरि कर तिन के आगे ।
मन वच काय प्रणाम, करत भय भ्रम सब भागे ।।
इहि भाति मगलाचरण कर, 'सुन्दर' ग्रथ बखानिये ।
तहँ विघ्न न कोऊ ऊपजे, यह निश्चय कर मानिये ।।१।।

दोहा—ब्रह्म प्रणम्य प्रणम्य गुरु, पुनि प्रणम्य सब सत ।
करत मगलाचार इम, नाशत विघ्न अनन्त ।।२।।
वही ब्रह्म गुरु सत वह, वस्तु विराजत एक ।
वचन विलास विभाग त्रय, वन्दन भाव विवेक ।।३।।
वरन्यो चाहत ग्रथ को, कहा बुद्धि मम क्षुद्र ।
अति अगाध मुनि कहत है, 'सुन्दर' 'ज्ञान समुद्र' ।।४।।

चौपाई—ज्ञान समुद्र ग्रथ अब भाखू, बहुत भाति मन मे अभि लाखू ।
यथाशक्ति हूँ वरण सुनाऊ, जो सदगुरु पहि आज्ञा पाऊ ।।५।।

सोरठा—है यह अति गम्भीर, उठत लहरि आनन्द की ।
मिष्ट सु याका नीर, सकल पदारथ मध्य है ।।६।।

इन्दव—जाति जिती सब छदन की, वहु सोप भई इहि सागर माही ।
है तिन मे मुक्ताफल[1] अर्थ, लहैं उनको हित[2] से अवगाही[3] ।।
'सुन्दर' पैठ सके नहिं जीवत, दे डुबकी मरिजीवहि[4] जाही ।
जेनर जानै[5] कहावत है अति गर्व भरे तिनकी गम[6] नाही ।।७।।

अथ जिज्ञासु लक्षण

सवइया—जे गुरु भक्त विरक्त जगत से, है जिन के सतन का भाव ।
वे जिज्ञासु उदास रहत हैं, गनत न कोऊ रक न राव ।।

---

(७) 1 मोती, 2 प्रेम, 3 विचार करें, 4 जीवत मृतक, 5 जानकार, 6 गति
जो गर्व से भरे हुये हैं उनका इस ज्ञानमुद्रा मे प्रवेश नही होग

वाद विवाद करत नहिं कबहूँ, वस्तु जानवे का अति चाव ।
'सुन्दर' जिनकी मति है ऐसी, ते पैठहिगे यादरियाव ।।८।।

छप्पय—सुत कलत्र निज देह, आपु को वन्धन जानत ।
छूटू कौन उपाय, यही उर अन्तर आनत ।।
जन्म मरन की शक, रहै निश दिन मन माही ।
चतुराशी के दुख, नही कुछ वरने जाही ।।
इहि भाति रहै सोचत सदा, सतन की पूछत फिरे ।
को है ऐसा सद्गुरु कही, जो मेरा कारज करे ।।९।।

अथ गुरुदेव की दुर्लभता

चौपइया—गुरुदेव बिना नहिं मारग सूझै, गुरु बिन भक्ति न जाने ।
गुरुदेव बिना नहिं सशय भागे, गुरु बिन लहै न ज्ञाने ।।
गुरुदेव बिना नहिं कारज होई, लोक वेद यू गावे ।
गुरुदेव बिना नहिं सदगति कोई, गुरु गोविन्द बतावे ।।१०।।

त्रोटक—गुरुदेव बिना नहिं भाग्य जगे, गुरुदेव बिना नहि प्रीति लगे ।।
गुरुदेव बिना नहिं शुद्ध हृद, गुरुदेव बिना नहिं मोक्षपद ।।११।।

मनहर—गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा को गहै,
गुरु के प्रसाद भव दुख बिसराइये ।
गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीति हू अधिक बढ़े ।।
गुरु के प्रसाद राम नाम गुन गाइये ।
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति जाने ।।
गुरु के प्रसाद शून्य मे समाधि लाइये ।
'सुन्दर' कहत गुरुदेव जो कृपाल होहिं ।।
तिन के प्रसाद तत्त्व ज्ञान पुनि पाइये ।।१२।।

दोहा—गुरु के शरने आय है, तब ही उपजे ज्ञान ।
तिमिर कहो कैसे रहै, प्रकट होय जब भान ।।१३।।

गुरु लक्षण

रोला—चित्त ब्रह्म लयलीन, नित्य शीतल हो हृद्दय ।
क्रोध रहित सब साधु, साधु पद नाही निर्दय ।।
अहकार नहिं लेश, महा सब को सुख दीजे ।
शिष्य परख्य विचार, जगत मे सो गुरु कीजे ।।१४।।

छप्पय—सदा प्रसन्न सुभाव, प्रकट सर्वोपरि राजे ।
तृप्त ज्ञान विज्ञान, अचल कूटस्थ विराजे ।।

सुख निधान सर्वज्ञ, मान अपमान न जाने ।
सारासार विवेक, सकल मिथ्या भ्रम भाने ।।
पुनि भिद्यन्ते हृदि ग्रन्थि को, छिद्यन्ते सब सशय ।
कह 'सुन्दर' सो सद्गुरु सही, चिदानन्द घन चिन्मय ।।१५।।

पवगम—शब्द ब्रह्म परब्रह्म, भली विधि जानही ।
पच तत्त्व गुण तीन, मृषा कर मानही ।।
बुद्धिमन्त सब सन्त, कहैं गुरु सोइरे ।
और ठौर शिप जाय, भ्रमे जिन कोइरे ।।१६।।

नन्दा—ब्राह्मीभूत अवस्था जा मे होई ।
'सुन्दर' सोई सद्गुरु जाने कोई ।।१७।।

सोरठा—ऐसे गुरु पहिं आय, प्रश्न करे कर जोरिके ।
शिष्य मुक्त हो जाय, सशय कोऊ ना रहै ।।१८।।

गुरुदेव की प्राप्ति

चौपाई—खोजत खोजत सद्गुरु पाया, भूरि भाग्य जागा शिप आया ।
देखत दृष्टि भया आनन्दा, यह तो कृपा करी गोविन्दा ।।१९।।

दोहा—गुरु का दरशन देखतै, शिष पाया सन्तोष ।
कारज मेरा अब भया, मन मे माना मोक्ष ।।२०।।

शिष्य की प्रार्थना

सोरठा—शीश नाय कर जोरि, शिष्य सु प्रारथना करो ।
हे प्रभु लीजे छोरि,[1] अभय दान गुरु दीजिये ।।२१।।छुडाके[1]

प्रार्थनाष्टक

अर्ध भुजंगी—अहो देव स्वामी, अहं अज्ञ कामी ।
कृपा मोहि कीजे, अभय दान दीजे ।।१।।२२।।
बडे भाग्य मेरे, लहे अंघ्रि[1] तेरे ।चरण[1]
तुम्हैं देखि जीजे, अभय दान दीजे ।।२।।२३।।
प्रभो हौं अनाथा, गहो मोर हाथा ।
दया क्यो न कीजे, अभय दान दीजे ।।३।।२४।।
दुखी दीन प्राणी, कहो ब्रह्म वाणी ।
हृदय प्रेम भीजे, अभय दान दीजे ।।४।।२५।।
जती जैन देखे, सबै भेख पेखे ।
तुम्हैं चित्त धीजे, अभय दान दीजे ।।५।।२६।।
फिरा देश देशा, किये दूर केशा ।
नही यू पतीजे, अभय दान दीजे ।।६।।२७।।

गयी आयु सारी, भया सोच भारी ।
वृथा देह छीजे, अभय दान दीजे ।।७।।२८।।
करो भोज ऐसी, रहै बुद्धि वैसी ।
सुधा नित्य पीजे, अभय दान दीजे ।।८।।२९।।
सोरठा—मुदित भये गुरुदेव, देख दीनता शिष्य की ।
सबै बताऊ भेव[1], जोई जो तू पूछहै ।।३०।। रहस्य[1] ।
पद्धरी—कर जोरि उभय शिप कर प्रणाम ।
तब प्रश्न करा मन धरि विराम[1] ।। धैर्य ।।
प्रश्न—हौ कौन, कौन यह जगत आहि ।
पुनि जन्म मरण प्रभु कहहु काहि ।।३१।।

श्री गुरुरुवाच

उत्तर—है चिदानन्दघन ब्रह्म तू सोई ।
देह सयोग जीवत्व भ्रम होई ।।
जगत हू सकल यह अनछता जानो ।
जन्म अरु मरण सब स्वप्न कर मानो ।।३२।।

शिष्य उवाच

गीतक—जो चिदानन्द स्वरूप स्वामी, ताहि भ्रम कहि क्यो भया ।
तिहि देह के सयोग हो, जीवत्व मान रु क्यो लया ।।
यह अनछता ससार कैसे, जो प्रत्यक्ष प्रमानिये ।
पुनि जन्म मरण प्रवाह कबका, स्वप्न कर क्यो जानिये ।।३३।।

श्री गुरुरुवाच

दोहा— भ्रम ही को भ्रम ऊपजा, चिदानन्द रस एक ।
मृग जल प्रत्यक्ष देखिये, तैसे जगत विवेक ।।३४।।
चौपाई —निद्रा मे सूता है जोलो, जन्म मरण का अन्त न तोलो ।
जागि परे तै स्वप्न समाना, तब मिट जाय सकल अज्ञाना ।।३५।।

शिष्य उवाच

सोरठा— स्वामिन् यह सन्देह, जागे सोवे कौन सो ।
ये तो जड मन देह, भ्रम को भ्रम कैसे भया ।।३६।।

श्री गुरुरुवाच

कुण्डलिया—शिष्य कहा लो पूछ है, मैं तो उत्तर दीन ।
तब लग चित्त न आय है, जब लग हृदय मलीन ।।
जब लग हृदय मलीन, यथारथ कैसे जाने ।
भ्रमे त्रिगुणमय बुद्धि, आप नाही पहचाने ।।

कहिबो सुनबो करो, ज्ञान उपजे न जहा लो ।
मैं तो उत्तर दिया, शिष्य पूछ है कहा लो ।।३७।।
इति श्री सुन्दरदासेन विरचते ज्ञान समुद्रे गुरु शिष्य लक्षण निरूपण नाम ।

प्रथमोल्लास

अथ द्वितीय उल्लास

शिष्य उवाच

दोहा — स्वामी हृदय मलीन मम, शुद्ध कौन विधि होय ।
सोई कहो उपाय अब, सशय रहे न कोय ।।१।।

श्री गुरुरुवाच

चौपाई — सुनो शिष्य ये तीन उपाई, भक्ति योग हठ योग कराई ।
पुनि साख्य सु योग हि मन लावे, तब तू शुद्ध स्वरूपहि पावे ।।२।।

शिष्य उवाच

पद्धरी —अब भक्ति कहो गुरु के प्रकार, हठयोग अग पाऊ विचार ।
पुनि साख्य योग बतावे नाथ, भवसागर बूडत गहो हाथ । ३।।

श्री गुरुरुवाच

सवइया — प्रथम हि नवधा भक्ति कहत हू, नव प्रकार हैं ताके भेद ।
दशमी प्रेम लक्षणा कहिये सो पावे जो हो निर्वेद[1] । विरक्त[1] ।
पराभक्ति है ताके आगे, सेवक सेव्य न होय विछेद ।
उत्तम मध्य कनिष्ट तीन विधि, सुन्दर इन से मिट हैं खेद ।।४।।

शिष्य उवाच

छप्पय— नवाधा भक्ति बखान कहो, गुरु भिन्न-भिन्न कर ।
प्रेम लक्षणा कौन, सुनावो शीश हाथ धर ।।
पराभक्ति का भेव, कहो प्रभु कौन प्रकारा ।
को उत्तम को मध्य, कनिष्टा को निर्धारा ।।
यह दयासिन्धु मोसे कहो, तुम समान नहिं कोय है ।
जब कृपा कटाक्षहि देख हो, तब मम कारज होय है ।।५।।

श्री गुरुरुवाच-नवधाभक्ति

चौपाई—सुन शिष्य नवधा भक्ति विधान श्रवण कीर्तन समरण जानं ।
पादसेवन अर्चन वदन, दासभाव सख्यत्वसमर्पन ।।६।।
सोरठा —इमि नव अगन जान, सहित अनुक्रम कीजिये ।
सब ही को सुख दान, भक्ति कनिष्टा यह कही ।।७।।

शिष्य उवाच

मालती— श्रवण प्रभु कौन सो कहिये, कीरतन कौन विधि लहिये ।
अरु स्मरण कौन कह दीजे, चरण सेवा सु क्यों कीजे ।।८।।
अर्चना कौन विधि होई, वदना कहो गुरु सोई ।
दास्य सख्यत्व पहचानू , निवेदन आतमा जानू ।।९।।

सोरठा—एक एक का भेव, मोहि अनुक्रम से कहो ।
तुम कृपालु गुरुदेव, पूछत विलग[1] न मानियो ।।१०।। बुरा[1]

श्री गुरुरुवाच-१ श्रवण

चपक—शिष तोहि कहूँ श्रुति वानी, सब सतन साखि बखानी ।
दो रूप ब्रह्म के जाने, निर्गुण अरु सगुण पिछाने ।।११।।
निर्गुण निज रूप नियारा, पुनि सगुण सत अवतारा ।
निर्गुण की भक्ति सुमन से, सतन की मन अरु तन से ।।१२।।
एकाग्रह चित्त जु राखे, हरि गुण सुन सुन रस चाखे ।
पुनि सुने सत के वैना, यह श्रवण भक्ति मन चैना ।।१३।।

२ कीर्तन—हरिगुण रसना मुख गावे, अतिसै कर प्रेम बढावे ।
यह भक्ति कीरतन कहिये, पुनि गुरु प्रसाद से लहियो ।।१४।।

३ स्मरण—अब समरण दोइ प्रकारा, इक रसना नाम उचारा ।
इक हृदय नाम ठहरावे, यह समरण भक्ति कहावे ।।१५।।

४ पाद सेवन–नित चरण कमल मे लौटे, मनसा कर पाव पलोटे[1] । दवावे ।[1]
यह भक्ति चरण की सेवा, समझावत है गुरु देवा ।।१६।।

५ अर्चना

चामर-- अब अर्चना का भेद सुन शिष, देउ तोहि बताय ।
आरोप के तहँ भाव अपना, सेइये मन लाय ।।
रचि भाव का मदिर अनूपम, अकल मूरति माहि ।
पुनि भाव सिंहासन विराजे, भाव विन कुछ नाहि ।।१७।।
निज भाव की तहँ करे पूजा, बैठ सन्मुखदास ।
निज भाव की सब सौज[1] आने, नित्य स्वामी पास ।। सामग्री[1]।
पुनि भाव ही का कलश भर धर, भाव नीर न्हावाइ ।
कर भाव ही के वसन बहु विधि, अग अग बनाइ ।। १८।।
तहँ भाव चन्दन भाव केशर, भाव कर घसि लेहु ।
पुनि भाव ही कर चरचि स्वामी, तिलक मस्तक देहु ।।

ले भाव ही के पुष्प उत्तम, गुहै[1] माल अनूप ।गूंथे[1]।
पहराइ प्रभु को निखर नख सिख, भाव खेवे धूप ।।१९।।
तहँ भाव ही ले धरे भोजन, भाव लावे भोग ।
पुनि भाव ही करके समर्पे, सकल प्रभु के योग ।।
तहँ भाव ही का जोइ दीपक, भाव घृत कर सींचि ।
तहँ भाव ही की करे थाली, धरे ताके बीचि ।।२०।।
तहँ भाव ही के घट झालर, शख ताल मृदग ।
तहँ भाव ही के शब्द नाना, रहै अतिशय रग ।
यह भाव ही की आरती कर, करे बहुत प्रनाम ।
तब स्तुती बहु विध उच्चरे, ध्वनि सहित ले ले नाम ।।२१।।

अथ स्तुति-मोती दाम छन्द

अहो हरि देव, न जानत सेव । अहो हरि राइ, परू तव पाइ ।
सुनो यह गाथ, गहो मम हाथ । अनाथ, अनाथ, अनाथ अनाथ ।।२२।।
अहो प्रभु नित्य, अहो प्रभु सत्य । अहो अविनाश अहो अविगत्य ।
अहो प्रभु भिन्न, द्रसै जु प्रकृत्य । निहत्य निहत्य निहत्य निहत्य ।२३।
अहो प्रभु पावन नाम तुम्हार । भजे तिन के सब जाहि विकार ।
करी तुम सन्तन की जु सहाइ । अहो हरि हो हरि हो हरि राइ ।२४।
अहो प्रभु हो सब जान सयान । दिया तुम गर्भ थके पय पान ।।
सुतो अब क्यो न करो प्रतिपाल । अहो हरि हो हरि हो हरि लाल ।२५।
भजे प्रभु ब्रह्म उपेन्द्र महेश । भजें सनकादिक नारद शेष ।
भजे पुनि और अनेकहि साध ।अगाध अगाध अगाध अगाध ।।२६।।
अहो सुख धाम कहैं मुनि नाम । अहो सुख दैन कहै मुनि वैन ।।
अहो सुख रूप कहै मुनि भूप । अरूप अरूप अरूप अरूप ।।२७।।
अहो जगदादि अहो जगदत । अहो जगमध्य कहै सब सन्त ।।
अहो जगजीव अहो जग तत[1] । तत्त्व[1] ।
अनन्त अनन्त अनन्त अनन्त ।।२८।।
अहो प्रभु बोल सके कहि कौन । रहे सिध साधक ह्व मुख मौन ।।
गिरा मन बुद्धि न होइ विचार । अपार अपार अपार अपार ।।२९।।

दोहा— बहुत प्रशसा कर कहू, हूँ प्रभु अति अज्ञान ।
पूजा विधि जानत नही, शरण राख भगवान ।।३०।।

६ वन्दन

लीला—वन्दन दोइ प्रकार, कहूँ शिप सभलिये ।
दड समान करे तन से, तन दड दिये ।।

त्यो मन से तन मध्य, प्रभु के पाव परे।
या विधि दोइ प्रकार सु, वन्दन भक्ति करे ।।३१।।

७ दास्य भाव

हसाल—नित्य भय से रहै, हस्त जोरे कहै।
कहा प्रभु मोहि, आज्ञा सु होई ।।
पलक पति व्रता, पति वचन खडे नही।
भक्ति दास्यत्व, शिप जान सोई ।।३२।।

८ सख्य भाव

द्रुमिल—सुन शिष्य सखापन तोहि कहूँ हरि आतम के नितसग रहै।
पल छाडत नाहि समीप सदा, जित ही जित को यह जीव बहै ।।
अब तू फिरके हरि से हित राखहि, होय सखा दृढ भाव गहै।
इमि 'सुन्दर' मित्र न मित्र तजे, यह भक्ति सखापन वेद कहै ।।३३।।

९ आत्म निवेदन

कुण्डलिया—प्रथम समर्पन मन करे, दुतिय समर्पन देह।
इसमे रासा है-तृतीय समर्पन धन करे, चतु सर्पन गेह ।।
रोला नही। गेह दारा धन, दास दासी जन।
वाजि हाथी गन, सर्व दे यू भन ।।
और जे मे मन, है प्रभु ते तन।
शिष्य वाणो सुन, आतमा अर्पन ।।३४।।

दोहा—नवधा भक्ति सु यह कही, भिन्न-भिन्न समझाय।
या का नाम कनिष्ट है, शिष्य सुनो चित लाय ।।३५।।

शिष्य उवाच

रासाछद—हे प्रभु मोहि कही तुम, नौ विधि भक्ति सह।
फेरि कहा समझाय, सुजान कनिष्ट यह ।।
मध्यहु भक्ति सुनाहु, कृपा कर कौन अब।
जानत हो गुरुदेव जु, अवसर होय कब ।।३६।।

प्रेमा भक्ति-श्री गुरुरुवाच

सोरठा—शिष्य सुनाऊ तोहि, प्रेम लक्षण भक्ति को।
सावधान अब होय, जो तेरे शिर भाग्य है ।।३७।।

इन्दव—प्रेम लगा परमेश्वर से, तब भूल गया सब ही घर बारा।
ज्यो उनमत्त फिरे जित ही तित, नैकु रही न शरीर सभारा ।।
श्वास उश्वास उठे सब रोम, चले दृग नीर अखडित धारा।
'सुन्दर' कौन करे नवधाविधि, छाक परारस पी मतवारा ।।३८।।

नराच—न लाज कानि लोक की, न वेद का कहा करे ।
न शक भूत प्रेत की, न देव यक्ष से डरे ।।
सुने न कान और की, दृशै न और अक्षिणा ।
कहै न मुख और बात, भक्ति प्रेमलक्षणा ।।३९।।

रगिक्का—निशदिन हरि से चित्तासक्ति, सदा ठगा सा रहिये ।
कोउ न जान सके यह भक्ती, प्रेम लक्षणा कहिये ।।४०।।

विद्युन्माला-प्रेमाधीना छाका डोले, क्यो की क्यो ही वाणी बोले ।
जैसे गोपी भूली देह, ताको चाहै जासै नेह ।।४१।।

छप्पय—कव हू कै हँसि उठे, नृत्य कर रोवन लागे ।
कव हू गदगद कंठ, शब्द निकसे नहिं आगे ।।
कव हूँ हृदय उमगि, वहुत उच्चै स्वर गावे ।
कव हूँ कै मुख मौन, मग्न ऐसे रह जावे ।।
तो चित्त वृत्ति हरिसे लगी, सावधान कैसे रहै ।
यह प्रेम लक्षणा भक्ति है, शिष्य सुनहिं सद्गुरु कहै ।।४२।।

उदाहरण मनहर-नीर विन मीन दुखी, क्षीर बिन शिशु जैसे,
पीर जाके दवा विन, कैसे रहा जाता है ।
चातक ज्यो स्वाति वूंद, चद को चकोर जैसे ।।
चन्दन की चाह कर, सर्प अकुलात है ।
निर्धन ज्यो धन चाहै, कामिनी को कन्त चाहै ।।
ऐसी जाके चाह, ताको कुछ न सुहात है ।
प्रेम का प्रभाव ऐसा, प्रेम तहा नेम कैसा ।।
'सुन्दर, कहत यह, प्रेम ही की वात है ।।४३।।

चौपइया—यह प्रेम भक्ति जाकै घट होई, ताको कछू न सुहावे ।
पुनि भूख तृषा नहिं लागे वाको, निश दिन नींद न आवे ।।
मुख ऊपर पीरी श्वासा सीरी, नैनहु नीझर लाया ।
ये प्रकट चिन्ह दीसत है ताकै, प्रेम न दुरे[1] दुराया ।।४४।।छिरे[1]।।

दोहा—प्रेम भक्ति यह मैं कही, जाने विरला कोय ।
हृदय कलुषता[1] क्यो रहै, जा घट ऐसी होय ।।४५।। पाप[1]

शिष्य उवाच

चौपाई—स्वमी प्रेम भक्ति यह गाई, सो तो तुम मध्यस्थ सुनाई ।
उत्तम भक्ति परा प्रभु कैसी, कर हु अनुग्रह कहिये तैसी ।।४६।।

३ पराभक्ति, श्री गुरुरुवाच

दोहा—शिष तेरे श्रद्धा वढी, सुनवे की अति प्यास ।
पराभक्ति, तोसे कहूँ, जातै होय प्रकाश ॥४७॥

गीतक—विक्षेप[1] कवहु न होय हरि से, निकटवर्त्ती नित्य ही । गलग[1] ।
तहँ सदा सन्मुख रहै आगे, हाथ जोडे भृत्य ही ।
पल एक कबहु न होय अन्तर, टगटगी लागी रहै ॥
यह पराभक्ति प्रकाश परिचय, शिष्य सुन सद्गुरु कहै ॥४८॥

इन्दव—सेवक सेव्य मिला रस पीवत, भिन्न नही अरु भिन्न सदा ही ।
ज्यो जल वीच धरा जल पिण्डसु, पिंड रु नीर जुदे कुछ नाही ॥
ज्यो दृग मे पुतरी दृग एक, नही कुछ भिन्न सु भिन्न दिखाही ।
'सुन्दर' सेवक भाव सदा यह, भक्तिपरा परमातम माही ॥४९॥

छप्पय—श्रवण बिना ध्वनि सुने, नैन बिन रूप निहारे ।
रसन बिना उच्चरे, प्रशसा बहु विस्तारे ॥
नृत्य चरण बिन करे, हस्त बिन ताल वजावे ।
अग बिना मिल सग, बहुत आनन्द बढावे ॥
बिन शीश नमे तहँ सेव्य को, सेवक भाव लिये रहे ।
मिल परमातम से आतमा, पराभक्ति 'सुन्दर' कहै ॥५०॥

चद्राणा (स्रग्विणी)

सेव्य को जाय के दास ऐसे मिले । एक सो होय पै एक हो ना भिले ॥
आपना भाव दासत्व छाडे नही ।
सा पराभक्ति है भाग्य पावे कही ॥५१॥

हरसरवाणा—मिले एक सगा नही भिन्न अगा ॥
करे यू विलासा धरे भाव दासा ॥५२॥

चौपाई—ज्यो मृगतृष्णा धूप मझारी । एक मेक अरु दीसत न्यारी ॥
त्यो ही स्वामी सेवक एका । सुख विलसे यह भिन्न विवेका ॥५३॥

त्रोटक—हरि मे हरिदास विलास करे । हरिसे कबहू न विछोह परे ।
हरि अक्षय त्यो हरिदास सदा । रस पीवन को यह भाव जुदा ॥५४॥

मनहर—तेजोमय स्वामी तहँ, सेवकहू तेजोमय,
तेजोमय चरण को, तेज शिर नाव ही ।
तेजोमय सब अग, तेजोमय मुखारविंद,
तेजोमय नैनन, निरख तेज भाव ही ॥
तेजोमय ब्रह्म की, प्रशसा करे तेजमुख,

तेज ही की रसना, गुणानुवाद गावही ।
तेजोमय 'सुन्दर' हू, भाव पुनि तेजोमय,
तेजोमय भगति को, तेजोमय पाव ही ।।५५।।
दोहा — त्रिविधि भक्ति लक्षण कहे, उत्तम मध्य कनिष्ठ ।
सुनहु शिष्य सिद्धात यहं, उत्तम भक्ति गरिष्ठ ।।५६।।
इति श्री सुन्दर दासेन विरचते ज्ञान समुद्रे उत्तमा माध्यमा कनिष्ठा भक्तियोग सिद्धात निरुपण नाम द्वितीयोल्लास. ।।२।।

अथ तृतीयोल्लास

शिष्य उवाच

चौपाई—हे प्रभु नवधा कही कनिष्टा । प्रेम लक्षणा मध्य सपष्टा ।।
पराभक्ति उत्तमा बखानी । ये तीनो मैं नीके जानी ।।१।।
अब प्रभु योग सिधात सुनावौ । ताके अग मोहि समझावौ ।।
तुम सर्वज्ञ जगत गुरु स्वामी । कहो कृपा कर अतर्यामी ।।२।।

श्रीगुरुरुवाच

दोहा—तै शिष्य पूछा चाहि कर, योग सिधात प्रसग ।
तो हि सुनाऊ हेत से, अष्ट योग के अग ।।३।।
तिन के अन्तर्भूत है, मुद्राबन्ध समस्त ।
नाडी चक्र प्रभाव सब, आवे तेरे हस्त ।।४।।
छप्पय—प्रथम अग यम कहू, दूसरा नियम बताऊ ।
त्रितिय सु आसन भेद, सुतो सब तोहि सुनाऊ ।।
चतुर्थ प्राणायाम, पचम प्रत्याहार ।
षष्ट सु सुन धारणा, ध्यान सप्तम विस्तार ।
पुनि अष्टम अग समाधि है, भिन्न भिन्न समझाय हू ।
अब सावधान हो शिष्य सुन, ते सब तोहि बताय हूँ ।।५।।

यम नियम

दोहा—दश प्रकार के यम कहू, दश प्रकार के नेम ।
उभय अग पहले सधहि, तब पीछे हो क्षेम ।।६।।
प्रथम नीव दृढ कीजिये, तब ऊपर विस्तार ।
महलायत जु डिगे नही, त्यो यम नियम विचार ।।७।।
छप्पय—प्रथम अहिसा सत्य, हि जान स्तेय[1] सु त्यागे । चौरी[1]
ब्रह्मचर्य दृढ गहै, क्षमा धृति से अनुरागे ।।

दया बडा गुण होय, आर्जव[1] हृदय मे आने । नम्रता[1]
मिताहार[2] पुनि करे, शौच नीकी विधि जाने । प्रमाणका[2]
ये दश प्रकार के यम कहे, हठप्रदीपिका ग्रन्थ मे ।
जो पहले ही इन को गहै, चले योग के पन्थ मे ।।८।।

१ अहिंसा लक्षण

दोहा—मन कर दोष न कीजिये, वचन न लावे कर्म ।
घात न करिये देह से, यही अहिंसा धर्म ।।९।।

२ सत्यलक्षण

सोरठा—सत्य सु दोय प्रकार, एक सत्य जो बोलिये ।
मिथ्या सब ससार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है ।।१०।।

३ अस्तेय लक्षण

चौपाई—सुनिये शिष्य अब हि अस्तेय, चोरी दो प्रकार की हेय ।
तन की चोरी सब हि बखाने, मन की चोरी मन ही जाने ।।११।।

४ ब्रह्मचर्य लक्षण

पवगम—ब्रह्मचर्य इहि भाति, भली विधि पालिये ।
काम सु अष्ट प्रकार, सही कर टालिये ।।
बाध काछ दृढ वीर, जती तब होय रे ।
और बात अब नाहिं, जितेन्द्रिय कोय रे ।।१२।।

अष्ट मैथुन लक्षण

दोहा—नारि श्रवण स्मरण पुनि, दृष्टि भाषण होय ।
गुह्यचारता हास्य रति, बहुर स्पर्श कोय ।।१३।।
सोरठा—शिष्य सुने ये भेद, मैथुन अष्ट प्रकार तज ।
कहैं मुनीश्वर वेद, ब्रह्मचर्य तब जानिये ।।१४।।

५ क्षमा लक्षण

मालती—क्षमा अब सुनो शिष्य मो से, सहनता कहूँ सब तो से ।
दुष्ट दुख देहि जो भारी, दुसह मुख वचन पुनि गारी ।।१५।।
कदे नहिं क्षोभ को पावे, उदधि मे अग्नि बुझ जावे ।
बहुर तन त्रास दे कोऊ, क्षमा कर सहै पुनि सोऊ ।।१६।।

६ धृत्ति लक्षण

इन्दव—धीरज धारि रहे अभिअन्तर, जो दुख देहहिं आइ परे जू ।
बैठत ऊठत बोलत चालत, धीरज से धर[1] पाव धरे जू ।।धरती[1]
जागत सोवत जीमत पीवत, धीरज ही धर योग करे जू ।
देवहिं दैत्य हिं भूतहिं प्रेतहिं, कालहु से कबहूँ न डरे जू ।।१७।।

दया लक्षण

तोटक—सब जीवन के हित की जु कहै।
मन वाचक काय दयालु रहै ।।
सुख दायक हू सम भाव लिये।
शिष जान दया निर्वैर हिये ।।१८।।

८ आर्जव लक्षण

चौपइया—यह कोमल हृदय रहे निश वासर, बोले कोमल वानी।
पुनि कोमल दृष्टि निहारे सबको, कोमलता सुख दानी ।।
ज्यो कोमल भूमि करे नीकी विधि, बीज वृद्धि हो आवे।
त्यो यहा आरजव लक्षण सुन शिष, योग सिद्धि को पावे ।।१९।।

९ मिताहार लक्षण

पद्धरि सात्विक अन्न सु करे भक्ष, अति मधुर सचिक्कण निरख लक्ष।
तजभाग चतुर्था गहै सार, सुन शिष्य कहा यह मिताहार ।।२०।।
पेट का चौथा भाग खाली रखकर खावे जिससे श्वासक्रिया ठीक होती रहै।

१० शौच लक्षण

चरट—बाह्याभ्यतर मज्जन करिये। मृत्तिका जल कर बपुमल हरिये।
रागादिक त्यागे हृद शुद्ध। शौच उभयविधि जान प्रवुद्ध ।।२१।।
दोहा—दश प्रकार के यम कहे, प्रथम योग का अग।
दश प्रकार अब नियम सुन, भिन्न हि भिन्न प्रसंग ।।२२।।

२ नियमा

छप्पय—तप सतोष हि गहै, बुद्धि आस्तयक्य सु आने।
दान समझ कर देय, मानसी पूजा ठाने ।।
वचन सिद्धात सु सुने, लाज मति दृढ कर राखे।
जाप करे मुख मौन, तहा लग वचन न भाखे ।।
पुनि होम करे इहि विधि तहा, जैसी विधि सद्‌गुरु कहै।
ये दश प्रकार के नियम हैं, भाग्य विना कैसा लहै ।।२३।।

तप लक्षण

पाइका—शब्द स्पर्श रूप त्यजण। त्यो रस गध नाही भजण।
इन्द्रिय स्वाद ऐसे हरण। सो तप जनो नित्य मरण ।।२४।।

२ सतोष लक्षण

झूलना—देह का प्रारब्ध आप आयें रहै, कल्पना छाड निश्चिन्त होई।
पुनि यथा लाभ को वेद, मुनि कहत हैं,
परम सतोष शिष जान सोही ।।२५।।

३ आस्तिक्य का लक्षण सवइया

शास्तर वेद पुराण कहत है, शब्द ब्रह्म का निश्चिय धार ।
पुनि गुरु सन्त सुनावत सोई, बारबार शिष ताहि विचार ।।
होय कि नही सोच मत आनहु, अप्रतीति हृदय से टार ।
कर विश्वास प्रतीति आन उर,
यह आस्तिक्य बुद्धि निरधार ।।२६।।

४ दान लक्षण

कुण्डलिया—दान कहत हैं उभय विधि, सुनें शिष करहिं प्रवेश ।
एक दान कर दीजिये, एक दान उपदेश ।।
एक दान उपदेश, सुतो परमारथ होई ।
दूसर जल अरु अन्न, वसन कर पोषे कोई ।।
पात्र कुपात्र विशेष, भली भू निपजे धान ।
'सुन्दर' देख विचार, उभय विधि कहिये दान ।।२७।।

५ पूजा लक्षण

त्रिभंगी—तो स्वामी संगा देव अभंगा, निर्मल अंगा सेवेजू ।
कर भाव अनूप पाती पुष्प, गन्ध धूप खेवे जू ।।
नहिं कोई आशा काटैपाशा, इहिं विधि दासा नि काम ।
शिष ऐसे जाने निश्चय आने, पूजा ठाने दिन जाम । २८।।

६ सिद्धांत श्रवण लक्षण

कुण्डलिया—वाणी बहुत प्रकार है, ताका नाही अन्त ।
जोई अपने काम की, सोई सुने सिद्धन्त ।।
सोई सुने सिद्धन्त, सन्त सब भाषत वोई ।
चित्त आन के ठौर, सुने नित प्रति जे कोई ।।
यथा हंस पय पिवे, रहै ज्यो को त्यो पानी ।
ऐसे लेहु विचार शिष्य, बहु विधि है वानी ।।२९।।

७ ह्री

चामर—लज्जा करे गुरु संत जन की, तो सरे सब काज ।
तन मन डुलावे नाहिं अपना, करे लोक हु लाज ।।
लज्जा करे कुल कुटंब की, लच्छण[1] लगावे नाहिं ।लाछन[1]।
इहिं लाज से सब काज होई, लाज गह मन माहि ।।३०।।

८ दृढमति लक्षण

सवइया नाना सुख ससार जनित जे, तिन हि देख लोलुप नहिं होइ।
स्वर्गादिक की करे न इच्छा, इहामुत्र त्यागे सुख दोइ ॥
पूजा मान बडाई आदर, निन्दा करे आइ के कोइ।
या प्रकार मति निश्चल जाकी, 'सुन्दर' दृढमति कहिये सोइ ।३१।

९ जाप लक्षण

पवगम –जाप नित्य व्रत धार, करे मुख मौन से।
एक दोय घटिका जु गहै, मन पौन से ॥
जो अधिका कुछ होय, बडा अति भाग है।
शिष्य तोहि कह दीन्ह, भला यह माग है ॥३२॥

१० होम लक्षण

चामर—अब होम उभय प्रकार सुन शिष, कहू तोहि बखान।
इक अग्नि मे साकल्य होमे, सो प्रवृत्ती जान ॥
जो निवृत्ती जज्ञासु होई, ताहि और न धोम।
सो ज्ञान अग्नि प्रज्वाल नीके, करे इन्द्रिय होम ॥३३॥

दोहा—दश प्रकार के यम कहे, दश प्रकार ये नेम।
योग ग्रन्थ मांही लिखे, मैं समझा ये तेम[1] ॥३४॥ वे[1]।

सोरठा—शिष्य सुनाये तोहि, उभय अग ये योग के।
सावधान अति होय, अबहि षडग बखान हू ॥३५॥

आसन

चौपाई—प्रथम कहूं शिष आसन भेदा। जाते रोग मिटहिं बहु खेदा ॥
ऋषि मुनि योगी अह्लारावे। तिन सब पहले आसन सावे ।३६

मोटक—शिव जानत है सब योग कला। नित सग शिवा पुनि है अचला ॥
दृढ आसन से नहिं बिन्दु खिसे। दृग देखत दम्पति लोक हँसे ॥३७।

कुण्डलिया-चतुराशी लख जीव की, जाति कहत है वेद।
उतने ही आसन सबै, जानत है शिव भेद ॥
जानत है शिव भेद, और जाने नहिं कोई।
आप दया तिन करी, सुगम कर दीन्हे सोई ॥
लक्ष लक्ष मे एक, एक काढे दुख नाशी।
सुलभ सबन को किये, प्रकट आसन चतुराशी ॥३८॥

दोहा— चतुराशी आसनन मे सारभूत दो जान।
सिद्धासन पद्मासन हि, नीके कहूं बखान ॥३९॥

१ सिद्धासन

मनहर— येडी बाम पाव की, लगावे सीवनि के वीच,
　　वाही योनि ठौर ताहि, नीके कर जानिये।
　　तैसे ही युगति कर, विधि से भले प्रकार,
　　मेढ़ू हू के ऊपर, दक्षण पाव आनिये।
　　सरल शरीर दृढ, इन्द्रिय सयम कर,
　　अचल ऊरध दृष्टि, भ्रू के मध्य ठानिये।
　　मोक्ष के कपाट को, उघारत अवश्यमेव,
　　'सुन्दर' कहत सिद्ध, आसन बखानिये ।।४०।।

२ पद्मासन

छप्पय - दक्षिण उरु ऊपर सु, प्रथम वामा पग आने।
　　वामे उरु ऊपर सु, तबहिं दक्षिण पग ठाने ।।
　　दोऊ कर पुनि फेरि, पृष्ट पीछे कर आवे।
　　दृढ कर गहै अगुष्ठ, चिवुक[1] वक्षस्थल लावे ।।ठोडी[1]।।
　　इहि भांति दृष्टि उन्मेष कर, अग्रनासिका राखिये।
　　सब व्याधि हरण योगीन की, पद्मासन यह भाखिये ।।४१।।

पद्धरी— शिष और जु आसन हरहिं रोग। पर इन दुउ आसन सधे योग।
　　तातै तू अब उभय साधि। जब लग पहुचे निर्भय समाधि ।।४२।।

३ प्राणायाम

विज्जुमाला-आगे कीजे प्राणायाम नाडी चक्र पावे ठाम।
　　पूरे राखे रेचे कोई। हो निष्पाप योगी सोई ।।४३।।

दोहा— नाडी कही अनेक विधि, है दश मुख्य विचार।
　　इडा पिंगला सुसुमना, सव मे ये त्रय सार ।।४४।।

छप्पय - वाम इडा स्वर जान, चन्द्र पुनि कहियत वाको।
　　दक्षिण स्वर पिंगला, सूरमय जानहु ताको ।।
　　मध्य सुसुमना वहै, ताहि जानत नहिं कोई।
　　है यह अग्नि स्वरूप, काज याही से होई ।।
　　जव इडा पिंगला गति थके, प्राणायाम प्रभावते।
　　तव चले सुसुमना उलट के, सुख उपजै घर आवते ।।४५।।

७ पवन वर्णन

दोहा— दश प्रकार के पवन हैं भाखू तिन के नाम।
　　कहे विना नहिं जान है, कौन ठौर विश्राम ।।४६।।

चौपाई — प्राणापान समानहिं जाने । व्यानोदान पंचमन माने ।
नागहु कूर्म कृकल सु कहिये । देवदत्त धनजय लहिये ।।४७।।

कुण्डलिया—प्राण हृदय मे बसत है, गुद मण्डले अपान ।
नाभि समान हि जानिये, कठहिं बसे उदान ।।
कठहि बसे उदान, व्यान व्यापक घट सारे ।
नाग करे उद्गार, कूर्म सो पलक उघारे ।।
कृकल सु उपजे छीक, देवदत्त हि जृम्भानं ।
मृये धनजय रहै, पच पूरव सो प्राण ।।४८।।

दोहा— चक्र अनुक्रम कहत हूँ, सुन शिष तिन के नाम ।
पीछे तोहि सुनाय हूँ, विधि से प्राणाय ।।४९।।

चक्र अनुक्रम

पद्धरी—शिप प्रथम चक्र आधार जानि । तहा अक्षर चार चतुर्दलानि ।
पुनि वसपश वरण विचारि लेहु । है सव शरीर आधार येहु ।।५०।।
पुनि स्वाधिष्ठान सु द्वितीय चक्र । तहँ षट् दल षट् अक्षर अवक्र ।
गनि वभमयरल ये वरणमध्य । सो ब्रह्म चक्र कहिये प्रसिद्ध ।।५१।।
मणिपूर चक्र दश दल प्रभाव । पुनि अक्षर दश तेऊ सुनाव ।
तहँ डढणतथदधनपफप्रमान । इन वर्ण सहित त्रितिये बखान ।।५२।।
अनाहत चक्र है हृदय माहि । दल अक्षर द्वादश अधिक नाहिं ।।
कखगघङचछजझञटठ समेत । शिप चक्र चतुर्थी समझ हेत ।।५३।।
पुनि पचम चक्र विशुद्ध आहि । दल अक्षर षोडश लगे ताहि ।।
तहँ आदि अकार अ कार अन्त । शुभ षोडश स्वर ताके गनत ।।५४।।
(अ,आ,इ ई,उ,ऊ,ऋ ॠ,ऌ ॡ,ए,ऐ,ओ,औ,अं,अः) ये १६ है ।
अब आज्ञा चक्र सु भ्रुव मझार । लख दो दल दो वक्षर विचार ।।
तह ह क्ष वर्ण सु अति अनूप । यह षष्ठ सु चक्र कहा स्वरूप ।।५५।।
जब इन षट् चक्र हि भेद जाय । तव वहै सुषुमना सुख समाय ।
ताही तै प्राणायाम सार । सुन शिष्य कहूँ ताका विचार ।।५६।।

प्राणायाम क्रिया

दोहा— इडा नाडि पूरक करे, कुंभक राखे माहिं ।
रेचक करिये पिगला, सब पातक कट जाहिं ।।५७।।

सोरठा— बीज मत्र (ॐ) सयुक्त, षोडश पूरक पूरिये ।
चौंसठ कुंभक उक्त, द्वात्रिशत (३२) कर रेचना ।।५८।।

चौपाई—बहुर विपर्यय ऐसे धारे । पूर पिंगला इडा निकारे ।।
कुंभक राखि प्राण को जीते । चतुर्बार अभ्यास व्यतीते[1] ।।५९।। करे[1] ।

चामर—यह ऋषिन उक्त सुनाइया, इहि भाति प्राणायाम ।
सद्गुरु कृपा से पाइये, मन होय अति विश्राम ।।
अब मतमतातर कहत हूँ, सुन शिष्य अन्य प्रभाव ।
गोरक्ष उक्त बखान हूँ, तिहि सुनत उपजे चाव[1] ।।६०।।उत्साह[1]।।

चर्पट— सोह सोह सोह हसो । सोह सोह सोह असो ।।
श्वासोश्वास सोह जाप । मोह सोह आपे आप ।।६१।।
('सोहहसो' यह हस मत्र अजपा गायत्री है,
इसके जाप से मोक्ष होती है ।)
द्वादश मात्रा[1] पूरक करण । द्वादश मात्रा कु भक धरण ।
द्वादश मात्रा रेचक जाण । पूरववत सु विपर्यय ठाण ।।६२।।
अधमे द्वादश मात्रा ऊक्त, मध्यम मात्रा द्विगुण युक्त ।
उत्तम मात्रा त्रिगुण कहिये । प्राणायाम सु निर्णय लहिये ।।६३।।
१ ॐ उच्चारण जितने समय को एक मात्रा बोलते हैं ।

सोरठा—कुभक अष्ट सु विद्धि, मुद्रा दश हि प्रकार की ।।
बध तीन तिन मद्धि, उत्तम साधन योग के ।।६४।।

कुभक नाम

छप्पय— सूरयभेदन प्रथम, द्वितिय उज्जाई कहिये ।
शीतकार पुनि त्रितिय शीतली चतुरथ गहिये ।।
पचम है भस्त्रिका, भ्रामरी पष्ट सुजान हुँ ।।
मूरछना सप्तम, अष्टम केवल मान हुँ ।
ये कुभक अष्ट प्राकर के, होय पवन इम रोधन ।।
तव मुद्रा बध लगाया यहि, प्रथम करे घट शोधन ।।६५।।

नाद वर्णन

दोहा— जबहिं अष्ट कुभक सधे, बजे अनाहत नाद ।
दश प्रकार की ध्वनि सुने, छुटे सकल विषाद[1] ।।६६।।दुख[1]।।

छप्पय— प्रथम भ्रमर गुजार, शख ध्वनि दुतिये कहीजे ।
त्रितिये बजे मृदग, चतुर्थे ताल सुनीजे ।।
पचम घटा नाद, षष्ट वीणा ध्वनि होई ।
सप्तम बाजे भेरि, अष्टम द्वन्द्वभि[1] दोई ।।नगाडा[1]।।
अब नवमे गर्ज समुद्र की, दशम मेघ घोषहि गुने ।
कह 'सुन्दर' अनहत नाद को, दश प्रकार योगी सुने ।।६७।।

मुद्रा नाम

गीतक— सुन महामुद्रा महाबध, महाबेध रु खेचरी ।
उडयानबध सु मूलबधहि बन्ध जालधर करी ।।

विपरीत करणी पुनि वज्रोली, शक्ति चालन कीजिये ।
इम होय योगी अमर काया, शशिकला नित पीजिये ।।६८।।

५ प्रत्याहार

कुण्डलिया— श्रवण शब्द को गहत है, नयन गहत है रूप ।
गध गहत है नासिक, रसना रस की चूप[1] ।। चाह[1]
रसना रस की चूप, तुचा सु स्पर्श हि चाहै ।
इन पचो को फेरि, आतमा नित्याराहै[2] ।।आराधे[2]
कूर्म अगहि गहै, प्रभा रवि कर्षै द्रवण[1] ।।जलादि[1]
इमि कर प्रत्याहार, विपय शब्दादिक श्रवण ।।६९।।

पचतत्त्व की धाराण—[1]पृथ्वी की

चौपइया—यह चारो कोण लकारहि युक्त, जानहुँ पृथ्वी रूप ।
पुनि पीत वर्ण हृद मडल कहिये, विधि अकित सु अनूप ।।
तह घटिका पच प्राण करलीन, चित्त स्थम्भन होई ।
सुन शिष्य अवनि जय करे नित्य ही, भूमि धारणा सोई ।।७०।।

२ जल — अक्षर वकार स[illegible]क्त जान, जल चद्र खण्ड[1] निधार । अर्ध[1]
पुनि ऋपीकेश अकित अतिशोभित, कठ पारदाकार ।।
तह घटिका पच प्राण कर लीन, चिन्त धारिके रहिये ।
विप कालकूट व्यापे नहिं कबहू, वारि धारणा कहिये ।।७१।।

३ तेज-- यह अग्नि त्रिकोण रेफ सयुक्त, पद्मराग आभास ।
पुनि इन्द्रगोप दुति मध्य तालुका, कहिये रुद्र निवास ।।
तह घटिका पच प्राण कर लीन, ग्रन्थहि उक्त बखान ।
सुन शिष्य अग्नि भयहन्ता कहिये, तेज धारण जान ।।७२।।

४ वायु—भ्रुव मध्य यकार सहित षट् कोण, ऐसा लक्ष विचार ।
पुनि मेध वर्ण ईश्वर कर अकित, बारम्बार निहार ।।
तह घटिका पच प्राण कर लीन, खेचर सिद्धि हि पावे ।
सुन शिष्य धारणा वायु तत्त्व की, जो नीके कर आवे ।।७३।।

५ आकाश-अब ब्रह्मरध्र आकाश तत्त्व है, सुभ्र वर्तुला कार ।
जहँ निश्चय जान सदा शिव तिष्ठति, अक्षर सहित हकार ।।
तहँ घटिका पच प्राण कर लीन, परम मुक्ति की दाता ।
सुन शिष्य धारण व्योम तत्त्व की, योग ग्रन्थ विख्याता ।।७४।।
यह एक थभिनी एक द्राविणी, एक सु दहनी कहिये ।
पुनि एक भ्रामिणी एक शोषणी, सद्गुरु बिना न लहिये ।।

ये पच तत्त्व की पच धारणा, तिनके भेद सुनाये ।
अब आगे ध्यान कहूँ बहु विधि कर, जो ग्रन्थन मे गाये ।।७५।।

७ ध्यान वर्णन

दोहा—प्रथम हि ध्यान पदस्थ है, दुतियै पिड अधीत[1] । पढा हुआ[1]
त्रितिय ध्यान रूपस्थ पुनि, चतुर्थ रूपातीन ।।७६।।

१ पदस्थ ध्यान

इन्दव— जे पद चित्र विचित्र रचे अति, गूढ महा परमारथ जामे ।
ते अवलोक विचार करे पुनि, चित्त धरे निहचै कर तामे ।।
कै[1] कर कुम्भक मत्र जपे उर, अक्षर ते पुनि जान अनामे ।
'सुन्दर' ध्यान पदस्थ इहै मन, निश्चल होय लहै जु विरामे ।।७७।।[1]

[1]अथवा दूसरी पद्धति कु भक करके ॐ कार मत्र से अनामी ब्रह्मका हृदय मे जप करना ही पदस्थ ध्यान जानना चाहिये ।

२ पिड स्थध्यान

चोपाई—सुन शिष्य कहूँ ध्यान पिंडस्थ । पिंड शोधन करिये स्वस्थ ।
षट् चक्रन का धरिये ध्यान । पुनि सद्गुरु का ध्यान प्रमान ।।७८।।

३ रूपस्थ ध्यान

नराय— निहारि के त्रिकूट माहि, विस्फुलिंग[1] देखि है ।।पतगे[1]।।
पुन प्रकाश दीप ज्योति, दीप माल पेखि है ।।
नक्षत्र माल विज्जुली, प्रभा प्रत्यक्ष होय है ।
अनन्त कोटि सूर चन्द्र, ध्यानमध्य जोय है ।।७९।।
मरिचिका[1] समान शुभ्र, और लक्ष जानिये ।।मृग-तृष्णा[1]।।
झलामल समस्त विश्व, तेजमय बखानिये ।।
समुद्र मध्य डूब के, उधारि नैन दीजिये ।
दशो दिशा जलमयी, प्रत्यक्ष ध्यान कीजिये ।।८०।।

रूपातीत ध्यान

पद्धरी— यह रूपातीत जु शून्य ध्यान । कुछ रूपन रेख न है निदान[1] ।।कारण[1]।।
तहा अष्ट प्रहर लो चित्त लीन। पुनि सावधान हो अति प्रवीन ।।८१।।
जिम पक्षी की गति गगन माहिं । कहु जात-जात दिठि परे नाहिं ।।
पुनि आय दिखाई देत सोइ । वा योगी की गति इहै होइ ।।८२।।
इहिं शून्य ध्यान सम और नाहिं । उत्कृष्ट ध्यान सब ध्यान माहिं ।।
है शून्याकार जु ब्रह्म आप । दशहू दिशि पूरण अति अमाप ।।८३।।

यू करे ध्यान सायुज्य होइ। तब लगे समाधि अखंड सोइ।
पुनि वहो योग निद्रा कहाइ। सुन शिष्य देउ तोको वताइ ॥८४॥

८ समाधि वर्णन

गीतक सुन शिष्य अवहिं समाधि लक्षण, मुक्त योगी वर्तते।
तहँ साध्य साधक एक होई, क्रिया कर्म निवर्तते॥
निरुपाधि नित्य उपाधि रहित, यही निश्चय आनिये।
कुछ भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा सामाधि वखानिये ॥८५॥
नहिं शीत उष्ण क्षुधा तृषा, नहिं मूरछा आलस रहै।
नहिं जागर नहिं स्वप्न सुषुपति, तत्पद योगी लहै॥
इम नीर मे गल जाय लवन, एक मेक ही जानिये।
कुछ भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि वखानिये ॥८६॥
नहि हर्ष शोक न सुख दु ख, नही मान अमानयो।
पुनि मनो इन्द्रिय वृत्ति नष्ट, गत ज्ञान अज्ञानयो॥
नहि जाति कुल नहिं वर्ण आश्रम, जीव ब्रह्म न जानिये।
कुछ भिन्न भाव रहै न कोऊ, मा समाधि वखानिये ॥८७॥
नहिं शब्द स्पर्श रूप रस नहिं, गध जाने रच हू।
नहिं काल कर्म स्वभाव है नहिं, उदय अस्त प्रपच हू॥
इम क्षीर क्षीरे आज्य आज्ये, जले जल हिं मिलानिये।
कु भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि वखानिये ॥८८॥
नहिं देव दैत्य पिशाच राक्षस, भूत प्रेत न सचरे।
नहि पवन पानी अग्नि भय पुनि, सर्प सिह हि ना डरे॥
नहि यत्र मत्र न शस्त्र लागहिं, यह अवस्था गानिये॥
कुछ भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि वखानिये ॥८९॥

दोहा—योग सिद्धात सुनाइया, अष्ट अग सयुक्त।
या साधन ब्रह्म हि मिले, तेऊ कहिये मुक्त ॥९०॥

इति श्री सुन्दर दासेन विरचिते ज्ञान समुद्रे अष्टाग योग सिद्धान्त निरुपण नाम।

त्रितियोल्लास ॥३॥

नोट —यहा सुन्दरदासजी महाराज ने योग का सक्षिप्त परिचय दिया है और सकेत भी किया है, योग मे अनुभवी योगी विना गति नहीं होती। स्पष्ट लिखने से कोई अपने आप करने लगे तो हानि की सभावना रहती है और केवल पुस्तक देख करने से कितने ही रोगी होते देखे भी गये हैं। अत सक्षिप्त वर्णन ही उचित समझा गया होगा। जिनको

अधिक देखना हो तथा समझना हो तो वे मेरा रचित 'साधक सुधा' ग्रन्थ का २४ वा बिन्दु पढे उसमे योग का विशेष वर्णन है, तथा अन्य मुख्य-मुख्य सभी साधनाओ का उस ग्रन्थ के मध्य वर्णन हुआ है। वह श्रीदादू महाविद्यालय मोती डूगरी रोड जयपुर से तथा श्रीदादू मन्दिर नरैना, जिला जयपुर मे २॥) रु० मे मिलता है।

अथ चतुर्थ उल्लास

शिष्य उवाच

चौपाई—हे प्रभु बहुत कृपा तुम कीन्ही। ऐसी बुद्धि दया कर दीन्ही॥
मोको योग सिद्धान्त सुनाया। जो पूछा सो उत्तर पाया।१।
अब प्रभु साख्य सु मोहि सुनावहु। मेरे सब सदेह मिटावहु॥
यह गुरुदेव कृपा कर कहिये। तुम बिन और कहो कत लहिये।२।

श्री गुरुरुवाच

सोरठा—शिष्य कहू समझाय, जो तैं पूछा प्रीति से।
साख्य सु देउ बताय, तू सुन वे के योग्य है॥३॥

सांख्य वर्णन

द्रुमल—सुन शिष्य यहै मत साख्य हि का, जु अनातम आतम भिन्न करे।
अनआतम है जड रूप लिये, नित आतम चेतन भाव धरे॥
अनआतम सूक्ष्म थूल सदा, पुनि आतम सूक्षम थूल परे।
तिनका निरने अब तोहि कहूँ, जिन जानत सशय शोक हरे॥४॥

कुण्डलिया—पुरुष प्रकृतिमय जगत है, ब्रह्मा कीट पर्यंत।
चतुर खानि लौ सृष्टि सब, शिव शक्ती वर्तंत॥
शिव शक्ती वर्तत, अत दोऊ का नाही।
एक आहि चिद्रूप, एक जड दीसत छाही॥
चेतन सदा अलिप्त रहै, जड से नित कुरुष[1] ॥भिन्न[1]॥
शिष्य समझ यह भेद, भिन्न कर जानौ पुरुष॥५॥

शिष्य उवाच

हसाल—हे प्रभु कहा तुम पुरुष चेतन्यमय।
बहुर ऐसो कहा भिन्न जानो॥
समझ के प्रकृति जड रूप करके कही।
जगत कैसे भया सो बखानो॥६॥

श्री गुरुरुवाच

छप्पय— पुरुष प्रकृति सयोग, जगत उपजत है ऐसे ।
रवि दर्पण दृष्टात, अग्नि उपजत है तैसे ।।
सुई होहि चेतन्य, यथा चुम्बक के सगा ।
यथा पवन सयोग, उदधि मे उठे तरगा ।।
अरु यथा सूर सयोग पुनि, चक्षु रूप को गहत है ।
यू जड चेतन सयोग से, सृष्टि उपजती कहत है ।।७।।

शिष्य उवाच

सवइया—हे प्रभु पुरुष प्रकृति से प्रथम हि, कौन तत्त्व उपजा समझाय ।
विधि कर तत्त्व अनुक्रम से सब, ज्यो उपजे त्यो देहु बताय ।।
सूक्षम थूल भये कैसे कर, कारण कारज मोहि सुनाय ।
तुम गुरुदेव सकल विधि जानत, अनआतमा आतम दिखाय ।।८।।

श्री गुरुरुवाच

दोहा— पुरुष प्राकृति सयोग से, प्रथम भया महतत्त्व ।
अहकार ताते प्रकट, त्रिविधि सु तम रज सत्व ।।९।।

तामसाहकार सृष्टि

चामर— तिहि तामसाहकार से दश तत्त्व उपजे आय ।
ते पच विषय रु पच भूतनि कहूँ शिष्य सुनाय ।।
ये शब्द स्पर्श रूप रस अरु गध विषय सुजान ।
पुनि व्योम मारुत तेज जल क्षति महा भूत बखान ।।१०।।

चौपाई—ये दश तम गुण से तुम जानो । द्रव्य शक्ति याको पहचानो ।
अब इनके लक्षण समझाऊ । भिन्न भिन्न कर तोहि सुनाऊ ।।११।।

छप्पय— शब्दहि गुण आकाश, एक गुण कहियत जामे ।
शब्द स्पर्श हि वायु, उभय गुण लहिये तामे ।
शब्द स्पर्श रु रूप, तीन गुण पावक माही ।।
शब्द स्पर्श रु रूप, रस जल चहू गुण आही ।।
पुनि शब्द स्पर्श रु रूप रस, गध पच गुण अवनि है ।
शिष यही अनुक्रम जान तू , साख्य सु मत ऐसे कहै ।।१२।।

पच स्वभाव

चौपाइया—यह कठिन स्वभाव अवनि का कहिये, द्रावक दकमहि जानो ।
पुनि उष्ण स्वभाव अग्नि मे वर्ते, चलन पवन पहचानो ।।
आकाश स्वभाव सुथिर कहियत है, पुनि अवकाश लखावे ।
ये पच तत्त्व के पच स्वभाहि, सद्गुरु विना न पावे ।।

राजसाहंकार सृष्टि

चौपाइया— अथ राजसाहंकार से उपजी, दश इन्द्रिय सु बताऊं।
पुनि पंच वायु तिनके समीप ही, यह व्योरा[1] समझाऊं ॥रहस्य[1]॥
अरु भिन्न भिन्न है क्रिया सु तिनकी, भिन्न भिन्न है नाम।
सुन शिष्य कहूँ नीके कर तोसे, ज्यों पावे विश्राम ॥१४॥

छप्पय— श्रवण त्वचा दृग घ्राण, रसन पुनि तिन के संगा।
ज्ञान सु इन्द्रिय पंच, भई अप अपने रंगा॥
वाक्य पाणि अरु पाद, उपस्थ गुदा हू कहिये।
कर्म सु इन्द्रिय पंच, भली विधि जाने रहिये॥
सुन प्राणापान समान हू, व्यानोदान सु वायु हैं।
दश पंच रजो गुणसे भये, क्रिया शक्ति को पायु[1] हैं ॥१५॥पातीहैं[1]॥

सात्विकाहंकार सृष्टि

गीतक— अथ सात्विकाहंकार से मन बुद्धि चित्त अहं भये।
पुनि इन्द्रियन के अधिष्ठाता देवता बहु विधि ठये[1] ।हुये[1]।
दिग्पाल मारुत अर्क अश्वनि वरुण ज्ञान सु इन्द्रिय।
पुनि अग्नि इन्द्र उपेन्द्र मित्र जु प्रजापति कर्मेन्द्रिय ॥१६॥

दोहा— त्रिविधि शक्ति है त्रिगुणमय, तम रज सत्व सु येह।
इन कर पिंड स्थूल है, इन कर सुक्षम देह ॥१७॥
कारण देह सु तीसरी, सब का कारण मूल।
ताही से दोऊ भये, सूक्षम देह स्थूल ॥१८॥

स्थूल देह वर्णन

चौपाई— व्योम वायु पावक जल धरणी। स्थूल देह इनही की वरणी॥
एक तत्त्व मे पंच बताऊं। पंच पंच पच्चीस सुनाऊं ॥२०॥
अस्थि अवनि त्वक् उदक हि जानो। मांस अग्नि के सु पहचानो॥
नाडी वायु रोम आकाश। पंच अंश पृथ्वी जु प्रकाश ॥२१॥
मेद सु अवनि मूत्र जल कहिये। रक्त अग्नि यह जाने रहिये॥
शुक्र सु वायु श्लेषम व्योम। पंच अंशये उदक समोम ॥२२॥
क्षुत्पृथ्वी तृट् जल का अंशा। आलस अग्नि न आनो संशा॥
संगम वायु नींद नभ जान। पंच अंश ये अग्नि प्रमान ॥२३॥
रोध अवनि भ्रमण जल माही। ऊर्द्ध गमन अग्नि मे आही॥
अति निर्गमन वायु पहचानो। उच्च स्थिति आकाश हि जानो ॥२४॥

भय पृथ्वी माहोदिक नीरं । क्रोध अग्नि पुनि काम समीर ।
लोभाकाश कहू समझाये । पच अंश ये नभ के पाये ।।२५।।

अन्य भेद

दोहा—गुदा कर्म इन्द्रियन मे, नासा इन्द्रिय ज्ञान ।
ये दोऊ भू मे प्रकट शिष्य लेहु पहचान ।।२६।।
उपस्थ कर्मन्द्रियन मे, रसना इन्द्रिय ज्ञान ।
ये दोऊ जल से प्रकट, शिष्य लेहु पहचान ।।२७।।
चरण कर्म इन्द्रियन मे, लोचन इन्द्रिय ज्ञान ।
ये दोऊ वसु[1] से प्रकट, शिष्य लेहु पहचान ।।२८।। अग्नि[1] ।
पाणि कर्म इन्द्रियन मे, त्वक् इन्द्रिय पुनि ज्ञान ।
ये दोऊ पवन हि प्रकट, शिष्य लेहु पहचान ।।२९।।
वचन कर्मेन्द्रियन मे, श्रोत्र सु इन्द्रिय ज्ञान ।
ये दोऊ नभ से प्रकट, शिष्य लेहु पहचान ।।३०।।

त्रिपुटी भेद

श्रोत्र सु अध्यातम प्रकट, श्रोतव्य अधिभूत ।
दिशा तत्र है देवता, यह त्रिपुटी ईहिं[1] सूत ।।३१।। इस[1]
त्वक् अध्यातम जानिये, सपरस है अधिभूत ।
वायु तत्र है देवता, यह त्रिपुटी ईहि सूत[1] ।।३२।। सूत्र मे[1] ।
चक्षु अध्यातम जानिये, दृष्टव्य अधिभूत ।
सूर तत्र है देवता, यह त्रिपुटी ईहि सूत[1] ।।३३।। ।ठीक[1]।
रसना अध्यातम प्रकट, रस ग्रहण अधिभूत ।
वरुण तत्र है देवता, यह त्रिपुटी ईहि सूत ।।३४।।
घ्राण अध्यातम प्रकट, घ्रातव्य अधिभूत ।
अश्विनी है सु देवता, यह त्रिपुटी ईहि सूत ।।३५।।

कर्मेन्द्रिय त्रिपुटी

वचन सु अध्यातम प्रकट, वक्तव्य अधिभूत ।
अग्नि तत्र है देवता, यह त्रिपुटी ईहि सूत ।।३६।।
हस्त सु अध्यातम प्रकट, आदानं अधिभूत ।
इन्द्र तत्र है देवता, यह त्रिपुटी ईहि सूत ।।३७।।
चरण सु अध्यातम प्रकट, गन्तव्य अधिभूत ।
विष्णु तत्र है देवता, यह त्रिपुटी ईहि सूत ।।३८।।
उपस्थ अध्यातम प्रकट, आनंद अधिभूत ।
प्रजापति हि तहँ देवता, यह त्रिपुटी ईहि सूत ।।३९।।

गुदा सु अध्यातम प्रकट, मल त्याग अधिभूत ।
मित्र तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहि मूत ॥४०॥

अन्त.करण त्रिपुटी

मन अध्यातम जानिये, सकल्प अधिभूत ।
चन्द्र तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहि सूत ॥४१॥
बुद्धि सु अध्यातम प्रकट, बोधव्य अधिभूत ।
ब्रह्मा तत्र सु देवता, यह त्रिपुटी इहि सूत ॥४२॥
चित्त सु अध्यातम प्रकट, चिन्तन है अधिभूत ।
वासुदेव तहँ देवता, यह त्रिपुटी इहि मूत ॥४३॥
अहकार अध्यातम, अहकृत्य अधिभूत ।
रुद्र तत्र है देवता, यह त्रिपुटी इहि सूत ॥४४॥

लिंग शरीर

चौपाई—नव तत्त्वन का लिंग प्रवधा । शव्द स्पर्श रूप रस गधा ॥
मन अरु बुद्धि चित्त अहकारा । ये नव तत्त्व किये निर्धारा ॥४५॥
दोहा- पन्द्रह तत्त्व स्थूल वपु, नव तत्त्वन का लिंग ।
इन चौवीसो तत्त्व का, वह विधि कहा प्रसग ॥४६॥
चौपइया—शिष्य ये चौबीस तत्त्व जड जानो, तिन का क्षेत्र सु कहिये ।
पुन चेतन एक और पच्चीस हि, साख्य हि मत से लहिये ॥
सो है क्षेत्रज्ञ सर्व का प्रेरक, पुनि साक्षी वह जानो ।
यह प्रकृति पुरुप का कीया निर्णय, सद्गुरु कहै सु मानो ॥४७॥

जाग्रदवस्था वर्णन

चपक—यह देह स्थूल विराटा । है पच तत्त्व का ठाटा ।
नभ वायु तेज जल धरणी । पीछे बहु विधि कर वरणी ॥४८॥
जो शब्द स्पर्श हि रूपा । रस गध मिले तिन जूपा[1] । जोडा[1]।
इन तन्मात्रिका सहेता । ये पच विषय का हेता ॥४९॥
पुनि पचेन्द्रिये ज्ञाना । श्रवणादि मिली विधि नाना ॥
अरु कर्म सु इन्द्रिय पचा । वचनादि मिली जु प्रपचा ॥५०॥
मन बुद्धि चित्त अहकारा । यह अन्त करण विचारा ॥
पुनि देव चतुर्दश जानो । दश वायु मिली यह मानो ॥५१॥
है सत रज तम गुण माही । ये भिन्न भिन्न वर्ताही ॥
तहँ कालहु कर्म स्वभावा । पुनि जीव स्वरूप दिखावा ॥५२॥
अरु काल उपाय खपावे । यह कर्म सु आन मिलावे ॥
पुनि मूत्र[1] सु सुख दुख माने । सो पाप पुन्य को ठाने ॥५३॥जीव[1]

है जीव सु चेतन कर्ता। जड सर्व पदारथ धर्ता ।।
मिल सबहिन का संघाता। यह् जाग्रदवस्था ताता ।।५४।।
सा आहि विश्व अभिमानी। तहँ ब्रह्मदेव प्रमानी ।।
है राजस गुण अधिकारा। पुनि भोग स्थू पसारा ।।५५।।
सा कहिये नयन स्थान। वाणी वैखर्या जान।
यह् जाग्रदवस्था निर्णय। सुन शिष्य स्वप्न अब वर्णय ।।५६।।

स्वप्नावस्था वर्णन

चौपइया—दश वायु प्राण नागादिक कहिये, पच सु इन्द्रिय ज्ञान।
पुनि पच कर्म इन्द्रिय जे आही, तिनकी वृत्ति बखान ।।
अरु पच विषय शब्दादिक जानो, अन्त करण चतुष्टय।
पुनि देव चतुर्दश हैं तिन माही, सब इन्द्रिय सतुष्टय ।।५७।।
यह कालहु कर्म स्वभाव सकल मिल, लिंग शरीर कहावे।
शिष नाम हिरण्यगर्भ पुनि ताका, तेजोमय तन पावे ।।
अब स्वप्न वस्था या को कहिये, सा तेजस अभिमानी।
तहँ सतगुण विष्णु देवता जानो, भोगवासना ठानी ।।५८।।
पुनि कण्ठ स्थान मध्यमा वाचा, जीवातमा समेत।
शिष्य स्वप्नावस्था कीया निर्णय, समझ देख यह हेत ।।५९।।

सुषुप्त्यवस्था वर्णन

छप्पय—सुषुपति कारण देह, तत्त्व सब हि तहँ लीन।
लिंग शरीर न रहे, घोर निद्रा वश कोन ।।
प्राज्ञ अभिमानी हो, व्याकृत तमो गुण रूपा।
ईश्वर तहँ देवता, भोग आनन्द स्वरूपा ।।
पुनि पश्यती वाणी गुपत, हृदय-स्थानक जानिये।
यह कहत जु सुसुपुपति अवस्था, शिष्य सत्य कर मानिये ।।६०।।

तुर्यावस्था वर्णन

चर्पट—तुर्यावस्था चेतन तत्व। स्व स्वरूप अभिमानीयत्व ।।
परमानन्द भोग कहिय। सोह देव सदा तहँ लहिय ।।६१।।
सर्वोपाधि विवर्जित मुक्त। त्रिगुणातीत साक्षी उक्त ।।
मूर्द्धनि स्थिति परा पुनि वाणी। तुर्यावस्था निश्चय जाणी ।।६२।।
इन्दव—जाग्रत रूप लिये सब तत्त्वन, इन्द्रिय द्वार करे व्यवहारा।
स्वप्न शरीर भ्रमे नव तत्त्व का, मानत है सुख दु ख अपारा ।।
लीन सबै गुण होत सुषोपति, जाने नही कुछ घोर अधारा।
तीनो का साक्षि रहै तुरियातन, 'सुन्दर' सोइ स्वरूप हमारा ।।६३।।

सोरठा—शिष तूं ऐसे जान, हू असंग साक्षी सदा।
आप हि चेतन मान, और पदारथ जड सबै ॥६४॥
शिष मैंने तोसे कहा, साख्यहु का सिद्धान्त।
जो तेरे शका रही, सो अब पूछ वृतान्त ॥६५॥

इति श्री सुन्दरदासेन विरचिते ज्ञान समुद्रे साख्य सिद्धान्त निरूपण नाम चतुर्थोल्लास ॥४॥

अथ पचव उल्लास

शिष्य उवाच

चौपाई—हे स्वामिन् तुम ब्रह्म अनूप। मैं कर जाने देह स्वरूप।
यह मोतें जु भया अपराधा। क्षमा करो मम मेटो बाधा ॥१॥
हूँ तो भया कृतारथ तब ही। तुमसे सद्गुरु भेटे जब ही॥
वचन सुनाइ कपाट उघारे। मेरे सशय सकल निवारे ॥२॥
किंचित् मात्र रहो आशका। वह अब तुम से जैहैं बंका॥
जे तुम तीन सिद्धात बखाने। ते प्रभु मैं नीके कर जाने ॥३॥
अब तुम तुरिया तीन बतावो। ता पीछे अद्वैत सुनावो॥
तुम बिन और कहैं नहि कोई। तुम ही से तुम ही सा होई ॥४॥

श्री गुरुरुवाच

दोहा साधु साधु शिष धन्य तू, भला प्रश्न तै कीन।
या का उत्तर अब कहू, द्वैत मिटे भ्रम लीन ॥५॥
चौपाई—श्रवण मनन कीया तै नीके। निदध्यासन पुनि जाना टीकें[1]। ठीक[1]।
अब साक्षातकार जब होई। तब सदेह रहै नहिं कोई ॥६॥
दोहा—तुरिया साधन ब्रह्म का, अह ब्रह्म यूं होय।
तुरिया तीतहि अनुभवै, हूँ तू रहै न कोय ॥७॥
इन्दव—जाग्रत तो नहि मेरे विषै कुछ स्वप्न सुतो नहि मेरे विषै है।
नाहि सुषोपति मेरे विषै पुनि, विश्वहु तैजस प्राज्ञ पषै[1]। दीखे[1]।
मेरे विषैतुरिया नहि दीसत, याहि से मेरा स्वरूप अखै है।
दूर से दूर परे से परे अति, 'सुन्दर' कोउ न मोहि लखै है ॥८॥

शिष्य उवाच

दोहा—हे प्रभु दूर परे कहा, उरे कहा अब और।
यह तो भ्रम भारी भया, गुरु सु बतावो ठौर ॥९॥

श्री गुरुरुवाच

उरे परे कुछ वह नही, वस्तु[1] रही भरपूर। ब्रह्म[1]।
चतुरभाव तोसे कहू, तब भ्रम हो है दूर ॥१०॥

शिष्य उवाच

चौपाई—हे प्रभु चतुर भाव समझावो । भिन्न भिन्न कर अर्थ बतावो ।।
द्वैत मिटे सब ही भ्रम छीजे । नि सदेह मोहि अब कीजे ।।११।।

श्री गुरुरुवाच

चौपइया—शिष्य प्रागभाव सो प्रथमहि कहिये, नीकी विधि समझाऊं ।
पुनि अन्योअन्याभाव दूसरा, सोऊ तोहि सुनाऊ ।।
अरु पुनि प्रध्वसाभाव तीसरा, ताका कहूं विचारा ।
जव चतुरभाव अत्यन्तहि जाने, तव छूटे भ्रम सारा ।।१२।।

चतुरभाव की सूचनिका

सवइया—मृतिका माहि अभाव घटन का, प्रागभाव यह जान रहाय ।
ता मृतिका के भाजन वहु विधि, अन्यो अन्याभाव गहाय ।।
मृतिका मध्य लीनता सव की, यह प्रध्वसाभाव लहाय ।
न कुछ भया न अव नहि होहै, यह अत्यताभाव कहाय ।।१३।।

प्रागभाव वर्णन

मनहर—पहले जव कुछ भी न होता प्रपच यह,
एक ही अखड ब्रह्म विश्व का अभाव है ।
जैसे काठ पाहन सुलप[1] अति देखियत, साफ[1]
तिन मे तो नही कुछ पूतरी बनाव है ।।
जैसे कचन की राशि, कचन विशेषियत,
ताहू मध्य नही कुछ, भूपण प्रभाव है ।
जैसे नभ माहि पुनि वादर न जानियत,
'सुन्दर' कहत शिष इहै[1] प्राग भाव है ।।१४।। यहा[1]

अन्योन्याभाव वर्णन

सवइया—एक भूमि से भाजन वहु विधि, कूण्डा करवा हण्डिया माट ।
चपनी[1] ढकन सराव गगरिया, कलश कहाली नाना घाट ।कटोरी[1] ।
नाम रूप गुण जुवा जुवा, पुनि व्यवहार भिन्न ही ठाट ।
'सुन्दर' कहत शिष्य सुन ऐसे, अन्योन्याभाव विराट ।।१५।।

मनहर—एक भूमि का विकार कचन कहावत है,
ताहू के विविध भाति भूषण अनन्त है ।
मुद्रिका कचन कठमाला शीश फूल पुनि,
कुण्डल वलय क्षुद्र घण्टिका गनन्त है ।।
नाम रूप गुण व्यवहार सव भिन्न भिन्न,
अग अग आपनी ही ठौर ले ठनन्त[1] है । जमता है[1] ।

ऐसी भाति शिष्य सुन 'सुन्दर' कहत तोहि,
विदुपहु अन्योअन्याभाव यू भनन्त है ।।१६।।

चौपइया—शिष एक भूमि का ताम्र विकारा, पात्र कहाव हि ।
पुनि चरवा चरई तष्टी तवला झारी लोटा गावहिं ।।
है नाम रूप गुण भिन्न भिन्न ही, दीसहिं विविध प्रकारा ।
यह अन्योन्याभाव सु कहिये, बहुत भाति विस्तारा ।।१७।।

कुण्डलिया—लोहा प्रकट सु देखिये, सोऊ भूमि विकार ।
विविध भाति ताके भये, जगत माहि हथियार ।।
जगत माहिं हथियार, गुरज समशेर कटारी ।।
बरछी गदा रु भाल, कतरनी छुरी मवारी ।।
नाम रूप गुण भिन्न, जहा जैसी तहँ सोहा ।
अन्योअन्याभाव, शिष्य सुन एक हि लोहा ।।१८।।

छप्पय—भूमि विकार कपास, भया नाना विधि दरसे ।
खासा मलमल सहन, सितारा निपजे सरसे ।।
सिरी साफ वाफता, अद्योतर भैरव कहिये ।
परकाला अरु गजी, गणत कहु ओरन लहिये ।।
सुन शिष्य कहा लौ वरनिये, अन्त नही निश दिन कहै ।
इहि अन्योन्या भाव से, कारण कारज सुधि लहै ।।१९।।

गीतक—पुनि एक भूमि विकार तरु, विस्तार बहु विधि देखिये ।
जड मूल शाखा पत्र पुष्प, फल अनेकन पेखिये ।।
तिहिं नाम रूप रु गुण सु भिन्न हिं, बहुत भाति वखानिये ।
सो भाव अन्योअन्य कहिये, शिष्य निश्चय मानिये ।।२०।।

छप्पय—जल विकार अव सुनो, फेन बुद्बुदा तरगा ।
ओला पाला जान, सु तो जल ही के अगा ।।
अग्नि विकार मशाल, चिराकहु दीपक जोये ।
वायु विकार हि जान, वघूरा आधी होये ।।
आकाश विकार सु अभ्र है, ते नाना विधि देखिये ।
यह अन्योन्याभाव शिष, पच तत्त्व मय पेखिये ।।२१।।

दोहा—एक ब्रह्म कारण जगत, कारज है बहु भाति ।
चारि खानि विस्तार यह, चौरासी लख जाति ।।२२।।

प्राध्वसाभाव वर्णन

चौपइया—यह भूमि विकार भूमि मे लीन, जल विकार जल माही ।
पुनि तेज विकार तेज मे मिल है, वायु वायु मिल जाही ।।

आकाश विकार मिले आकाश हिं, कारण रहै निदानं ।
शिष यह प्रध्वसाभाव सु कहिये, जो है सो ठहरान ।।२३।।
दोहा—जो जातै कारज भया, सो ता ही मे छीन ।
ऐसे ही यह जगत सव, होय ब्रह्म मे लीन ।।२४।।

अत्यन्ताभाव

मनहर— इच्छा ही न प्रकृति न महतत्व अहकार,
त्रिगुण न शब्दादि व्योम आदि कोइ है ।
श्रवणादि वचनादि देवता न मन आदि,
सूक्ष्म न थूल पुनि एक ही न दोइ है ।।
स्वेदज न अण्डज जरायुज न उदभिज,
पशु ही न पक्षी ही पुरुष ही न जोइ[1] है । स्त्री[1] ।
'सुन्दर' कहत ब्रह्म ज्यो का त्यो ही देखियत,
न तो कुछ भया अब है न कुछ होइ है ।।२५।।
छप्पय—कहत शशा के शृग, आख किन हू नहिं देखे ।
बहुरि कुसुम आकाश, सु तो काहू नहिं पेखे ।।
त्यो ही वध्या पुत्र, पिंघूरे[1] झूलत कहिये । पालने[1] ।
मृगजल माही नीर, कहू ढूढत नहिं लहिये ।।
रजु माहि सर्प नहि काल त्रय,शुक्ति रजत[2] सी लगत है । चादी[2] ।
शिष यह अत्यन्ताभाव सुन, ऐसे ही सब जगत है ।।२६।।
पद्धरी– शिख यह अत्यन्ताभाव होइ । नहिं उतपत्ति स्थिति प्रलय न कोइ ।।
नहि आदि नअत न मध्य भाव । नहिं स्रष्टा सृष्टि न को उपाव ।।२७।।
नहि कारण कारज दो उपाधि । नहि ईश्वर जीव परे समाधि ।।
नहि तत्त्व अतत्त्व विभाग भिन्न । नहिं ज्योति अजोति कछू न चिह्न ।।२८।।
नहि काल न कर्म स्वाभाव आहि । निहिं विद्याविद्या लगइ काहि ।
नहि राग विराग न वन्ध मुक्त । नहिं रूप अरूप अयुक्त युक्त ।।२९।।
नहि आहि प्रमाता को प्रमाण । नहि है प्रमेय नहिं प्रमा जाण ।।
नहि लय विक्षेप न निकट दूर । नहिं दिवस न रजनी चन्द सूर ।।३०।।
नहि शुक्ल न कृष्ण न रक्त पीत । नहिं ह्रस्व न दीरघ घाम शीत ।
नहि अर्थ न धर्म न काम मोक्ष । नहि पाप न पुन्य अप्रोक्ष प्रोक्ष ।।३१।।
नहि स्वर्गादिक नहि नरक वास । नहि त्रासक कोउ न होय त्रास ।।
नहि वेद न शास्त्र न शब्द जाल । नहि वर्णाश्रम नहिं स्मृति चाल ।।३२।।
नहि सध्या गुय न करन्यास । नहिं होम न यज्ञ न व्रत उपास ।।
नहि इष्ट उपासनहार कोइ । नहि निर्गुण सगुण न भेद होइ ।।३३।।

नहिं सेव्य न सेवक सेव कौन । नहिं हेत न प्रीति न प्रेम लीन ।।
नहिं नवधा दशधा पराभक्ति । नहिं सालोकादिक चार मुक्ति ।।३४।।
नहिं साधक साधन साध्य सार । नहिं सिद्धि न सिद्ध न निर्विकार ।।
नहिं कर्त्ता कर्म न क्रिया कोइ । नहिं द्रष्टा दर्शन दृश्य होइ ।।३५।।
नहिं व्यक्त अव्यक्त अशुद्ध शुद्ध । नहिं रक्त विरक्त अबुद्ध बुद्ध ।।
नहिं तर्क वितर्क अधीर धीर । नहिं शून्य अशून्य अथीर थीर ।।३६।।
नहिं चिन्त अचिन्त अडोल डोल । नहिं माप अमाप अतोल तोल ।।
नहिं कृश स्थूल नहिं युवा बाल । नहिं जरा मृत्यु न अकाल काल ।।३७।।
नहिं जाग्रत स्वप्न न सुषुपतिश्च । नहिं तुरिया त्रय साक्षी मतिश्च ।।
नहिं ज्ञे ज्ञाता नहिं ज्ञान गम्य । नहिं ध्ये ध्याता नहिं ध्यान रम्य ।।३८।।

दोहा—जो कुछ सुनिये दखिये, बुद्धि विचारे जाहि ।
सो सब वाग विलास है, भ्रम कर जानो ताहि ।।३९।।
यह अत्यन्ता भाव है, यह ही तुरियातीत ।
यह अनुभव साक्षत है, यह निश्चय अद्वीत[1] ।।४०।। ।अद्वैत[1]।
नाही नाही कर कहा, है है कहा बखान ।
नाही है के मध्य है, सो अनुभव कर जान ।।४१।।
यह ही है पर यह नही, नाही है है नाहि ।
यह ही यह ही जान तू, यह अनुभव या माहि ।।४२।।
अब कुछ कहिवे को नही, कहैं कहा लौं बैन ।
अनुभव हो कर जानिये, यह गूगे की सैन ।।४३।।
जो तेरे सदेह कुछ, रहा रच हूँ होहि ।
तो शिष्य अब हू प्रश्न कर, फिर समझाऊ तोहि ।।४४।।

शिष्य उवाच

चौपाई—हे स्वामिन् सशय सब भागा । वचन तुम्हारे सोवत जागा ।
अब तो सर्व स्वप्न कर जाना । निश्चय मम सदेह विलाना ।।४५।।

चर्पट—क्वाह क्व[1] त्व क्व च ससार । कहा[1] ।
क्व च परमारथ क्व च व्यवहार ।।
क्व च[2] मे जन्म क्व च मे मरण । और[2] ।
क्व च मे देह क्व मे करण ।।४६।।
क्व च मे[1] अद्वय क्व च मे द्वैत । ।मेरा[1] ।
क्व च मे निर्भय क्व च मे भीत
क्व च माया क्व च ब्रह्म विचार ।
क्व च प्रवृत्तिहि निवृति विकार ।।४७।।

क्व च मे ज्ञान क्व च विज्ञान । क्व च मे मन निर्विष विष जान ।।
क्व च मे तृष्णा क्व वितृष्णत्व । क्व च मे तत्त्व क्व च हि अतत्व ।।४८।।
क्व च मे शास्त्र क्व च मे दक्ष । क्व च मे अस्ति हि नास्ति हि पक्षः ।।
क्व च मे काल क्व च मे देश । क्व च गुरु शिष्य क्व च उपदेश ।।४९।।
क्व च मे ग्रहण क्व च मे त्याग । क्व च मे विरति. क्व च मे रागः ।।
क्व च मे चपल क्व च निस्पन्द । क्व च मे द्वन्द्व क्व च निर्द्वन्द्व ।।५०।।
क्व च मे बाह्याभ्यन्तर भास । क्व च अध ऊर्द्ध तिर्य प्रकाश ।।
क्व च मे नाडी साधन योग । क्व च मे लक्ष विलक्ष वियोग ।।५१।।
क्व च नानात्व क्व च एकत्व । क्व च मे शून्याशून्य समत्व ।।
यो अवशेष सो मम रूप । बहुना किं उक्त च अनूप ।।५२।।

दोहा—यह मैं श्री गुरुदेव को, अनुभव कहा सुनाय ।
जो प्रभु को परिश्रम दिया, सो फल प्रकटा आय ।।५३।।

श्री गुरुरुवाच

चौपाई है शिष जो इच्छा कर सोई । तोहि न कत हूँ बाधा होई ।।
तू निर्भ्रम भया निर्दोषा । तैं अब पाया जीवन मोषा[1] ।।५४।। मोक्ष[1]
जो मैं कहा सु हृदय आना । ताही क्रम से ब्रह्म हिं जाना ।।
आप ब्रह्म जग भेद मिटाया । ज्यों है त्यों ही निश्चय आया ।।५५।।
देखे सुने स्पर्शे बोले । सूंघे क्रिया करे कहूँ डोले ।।
खान पान वस्त्रादिक जोई । यह प्रारब्ध देह का होई ।।५६।।

दोहा—निरालम्ब निर्वासना, इच्छाचारी येह ।
संस्कार पवन हि फिरे, शुष्क पर्ण ज्यों देह ।।५७।।
जीवन मुक्त सदेह तू, लिप्त न कबहू होइ ।
तो को सोई जान है, तव समान जो कोइ ।।५८।।

ग्रन्थ महिमा

जो या ज्ञान समुद्र मे, डूबकी मारे आइ ।
सोई मुक्ता फल लहै, दु:ख दरिद्र सब जाइ ।।५९।।
'सुन्दर' ज्ञान समुद्र को, महिमा कहै सु कौन ।
अमृत रस से है भरा, तुम जनि जानो लौन ।।६०।।
'सुन्दर' ज्ञान समुद्र मे, बहुते रत्न अमोल ।
मृतक[1] होय सो पैठिहै, पैठ न सकई लोल ।।६१।। रागादि रहित[1]
'सुन्दर' ज्ञान समुद्र का, वारापार न अन्त ।
विषयी भागे दूरहि[1] के, पैठे कोई सन्त ।।६२।। दूरसे[1]

'सुन्दर' ज्ञान समुद्र की, जो चलि आवे तीर।
देखत ही सुख ऊपजे, निर्मल जल[1] गभीर ।।६३।। ज्ञान[1]
यह ही ज्ञान समुद्र है, यह गुरु शिष सवाद।
'सुन्दर' याहि कहै सुने, ताके मिटे विपाद ।।६४।।

ग्रन्थ समाप्ति काल

सवत सत्रह सै गये, वर्ष दशोतर और।
भाद्र सुदि एकादशी, गुरु वासर शिर मौर ।।६५।।
ता दिन सपूरण भया, ज्ञान समुद्र सु ग्रन्थ।
'सुन्दर' अवगाहन[1] करे, लहै मुक्ति का पन्थ ।।६६।। विचार[1]

इति श्री सुन्दर दासेन विरचिते ज्ञान समुद्रे अद्वैत
सिद्धात निरूपण नाम पचमोल्लास ।।५।।
समाप्तोऽय ज्ञान समुद्रो ग्रन्थ १। सर्व छन्द सख्या ३१४।

अथ सर्वांग योग प्रदीपिका ग्रन्थ २

पच प्रहार नाम प्रथमोपदेश

दोहा—वन्दत हू गुरुदेव के, नित चरणावुज दोइ।
आतम ज्ञान प्रकट भया, सशय रहा न कोइ ।।१।।
भक्ति योग हठ योग पुनि, साख्य सु योग विचार।
भिन्न भिन्न कर कहत हू, तीनो का विस्तार ।।२।।
सनकादिक नारद मुनी, शुक अरु ध्रुव प्रहलाद।
भक्ति योग सो इन किया, सद्गुरु के जु प्रसाद ।।३।।
आदिनाथ मत्सेद्र अरु, गोरख चर्पट मीन।
काणेरी चौरग पुनि, हठ सु योग इन कीन ।।४।।
ऋषभदेव अरु कपिल मुनि, दत्तात्रेय वशिष्ट।
अष्टावक्र रु जडभरत, इन के साख्य सु दृष्ट ।।५।।
महापुरुष जे इन मतै, तिनकी मैं बलि जाउ।
मारग आये दश दिशा, पहुचे एक हिं गाउ ।।६।।
भक्ति योग है चार विधि, चहु विधि हठ हू जान।
चतुर्भाति आचारयन, साख्य सु कहा वखान ।।७।।
प्रथम भक्ति अरु मत्र लय, चर्चा सहित सुनाय।
भिन्न भिन्न प्रकार कर, आगे कहि हू जाय ।।८।।
दुतिय हठहि अरु राज पुनि, लक्ष सहित अष्टग।
आगे कहि हू वहुत विधि, चारहु के जु प्रसग ।।९।।

त्रितिये साख्य मु ज्ञान सुन, ब्रह्मयोग अद्वीत[1] । अद्वैत[1]
ये चारो जो जान ही, मिटे सकल भयभीत ॥१०॥

छ दर्शन ९६ पाखड

इन विन और उपाय है, सो सव मिथ्या जान ।
छह दरशन अरु छ्यानवे, पाखड कहू वखान ॥११॥

चौपाई--तो केचित्[1] करहिं यज्ञ विधि वेदा । ।कोई[1]
वाजपेय गो अरु वहुभेदा ॥ कोचित् तीरथ तीरथ धावे ।
दहिनावर्त्त[1] पहुमि दे आवे ॥१२॥ परिक्रमा[1] ।
केचित् शौच अचार हि धर्मा । सध्या तर्पण अरु षट कर्मा ॥
केचित् वर्ण आश्रमा धारी । ब्रह्मचर्य पालहि ब्रह्मचारी ॥१३॥
केचित् गारहस्थ वहु भाती । पुत्र कलत्र बधे दिन राती ॥
केचित् वानप्रस्थ मत लीना । कामिनि सहित गमन वन कीना ॥१४॥
केचित् परमहस सन्यासी । साखा[1] सूत्र तजी वहु पासी ॥ शिखा[1]
केचित् नित्य जु कर हि सनाना[1] । सायकाल प्रात मध्याना ॥१५॥ स्नान[1]
केचित् नियम व्रत हि वहु धारे । चद्रायन उपवास विचारे ॥
केचित् करै देव की पूजा । पाती पुष्य तोरि हैं दूजा ॥१६॥
केचित् माला तिलक वनावे । विष्णु उपासी भक्त कहावें ॥
केचित् शिव शिव जपहि अपारा । गले लिंग अरु लाव हिं छारा ॥१७॥
केचित् कर्म सु थापे जैना । केश लु चाय करै अति फैना[1] ॥ पाखड[1]
केचित् मुद्रा पहरे कान । कापालिका[2] भ्रष्ट मत जान ॥१८॥ अघोरी[2]
केचित् नास्तिकवाद प्रचडा । ते तो करै वहुत पाखडा ॥
केचित् देवी शक्ति मनावे । जीव हतै अरु ताहि चढावे ॥१९॥
केचित् वह विधि होम कराही । तिल जव घृत हि अग्नि मुख माही ॥
केचित् यजन करै खलु[1] देवा । धूप दीप कर ताकी सेवा ॥२०॥ प्रार्थना[1]
केचित् मलिन मत्र[1] आराधै । वशीकरण उच्चाटन साधै ॥ अघोर[1]
केचित् मुये मसान जगावे । थभन[1] मोहन अधिक चलावे ॥२१॥ स्थभन[1]
केचित् वनिता कर्षण[1] कर ही ।भूपति मोहि धूर्त्त धन हर ही ॥ आकर्षण[1]
केचित् करैं कलक पसारा[1] । धातु रसायन मारै पारा ॥२२॥ फैलाना[1]
केचित् गुटिका सिद्ध कमावे । वनस्पती के पात चवावें[1] ॥ खावें[1]
केचित् खडग अग्नि जल वाधें । शिला उठाय धरें पुति काधे ॥२३॥
केचित् करे विविधि वैदगा । वू टी जडी टटोरे अगा ॥
केचित् ज्योतिष गण तिथि वारा । घडी महूर्त्त ग्रह त्यौहारा ॥२४॥

केचित् तुला रत्न भू दाना । अन्न वसन पुस्तक विधिनाना ।।
कोचित् कहैं ससक्रत वानी । कठिन श्लोक सुनावे जानी ।।२५।।
केचित् तर्कत शास्तर पाठी । कौशल विद्या पकरे काठो ।।
केचित् वाद विविधि मत जानें । पढ व्याकरण चातुरी ठाने ।२६।
केचित् कविता कवित सुनावें । कु डिलिया अरु अरिल वनावे ।।
केचित् छद सवैया जोरें । जहा तहा के अक्षर चोरें ।।२७।।
केचित् वीणा वेणु वदीता[1] । ताल मृदग सहित सगीता ।। वजावे[1]
केचित् नट की कला दिखावें । हस्त विनोद मधुर स्वर गावे ।।२८।।
केचित् करै कष्ट तन भारी । भोजन पच ग्रास आहारी ।।
केचित् अन्न गऊ मुख खाही । घुटरन परें अकन्न कुछ नाही ।।२९।।

गऊमुख = गाय को खिलाकर उसके गोवर मे जो दाने निकले उनको चुनकर सुखाकर उनकी रोटी वनाकर खाना। घुटरन परे = कनक दडवत करता हुआ चले ।

केचित् कर धर भिक्षा पावे । हाथ पू छ जगल को धावे ।।
केचित् घर घर मागे टूका । वासी कूसी रूखा सूका ।।३०।।
केचित् अपरस पाक वनावें । मुख मू दे हुन्नर दिखरावें ।।
केचित् जीमत कूटें थारी । कर कर ग्रास देय कर नारी ।।३१।।

अपरस = किसी अन्य से विना छुवा/हुन्नर = आचार की सूक्ष्मता । जीमत कूटे थाली = दक्षणी पडित जीमते समय थाली वजाते हुये जीमते थे कारण—किसी चाडल का शव्द कान मे न पड सके । कर नारी = कुछ अपने हाथ से नही खाते थे, स्त्रियो या भक्तों के हाथ से खाते थे, इसी मे मुक्ति मानते थे ।

केचित धोवन धावन पीवे[1] । रहै मलीन कहो क्यो जोवे ।। ढू ढिये[1]
केचित् मता अघोरी लीया । अगीकृत दोऊ का कीया ।।३२।।

दोऊका—हिसक वाममत और अहिसा ढू ढिया मत मान लिया ।

केचित् अभख भखत न सकाही । मदिरा पान मास पुनि खाही ।।
केचित् वपुरे दूधाधारी । खाड खोपरा दाख छुहारी ।।३३।।
केचित् कद मूल खनि[1] खाही । एकाएक रहैं वन माही ।। खोदकर[1]
केचित् कासायादिक पहरै । जपे जाप पठें जल गहरै ।।३४।।
केचित् रक्त पीत पट कीने । पुनि वस्तर ओढे अति झीने ।।
केचित् दीसै रगा चगा । पाट टम्वर ओढे अगा ।।३५।।
केचित् रगे काथ[1] मे कपरा । कर प्रपच वैठे अति लपरा[2] कथाई[1] वक्कू[2]
केचित् टाट पहर दिखरावें । वहुत भाति कर लोक रिझावे ।।३६।।

केचित् चित्रकुट[1] वीने पंथा । निर्गुण रूप दिखावे कथा ।। चियडा[1]
केचित् मृगछाला बाघम्बर । करते फिरै बहुत आडम्बर ।।३७।।
केचित् ओढे बलकल चीरा । शीत घाम कुछ वचे न नीरा ।।
केचित् नग्न उघारी देहा । होहि दिगम्बर लावें खेहा ।।३८।।
केचित् जटाजूट नख कीन्हे । नाना रूप जाय नहि चीन्हे ।।
केचित् करै अज्ञान कसौटी[1] । पञ्च अग्नि वारे मति छोटी ।।३९।। कष्ट[1]
केचित् मेघाडम्बर बैठे । शीत काल जलमाई[1] पैठे ।। शयन[1]
केचित् धूम पान कर भूले । औंधे होय वृक्ष से झूले ।।४०।।
केचित् मरै खड्ग की धारा । नृपति होन के काज गवारा ।।
केचित् मगर-भोज तन कर ही । झपापात[1] देह पर हर ही ।।४१।।
[1]पहाड के शिखर से गिर कर शरीर को नष्ट करने को झपापात कहते हैं ।
केचित् जाय हिमाले सीझ । मन की मूठि[1] तहाँ अति रीझे ।। मनभाव[1]
केचित् गला सारि[1] तन त्यागे । यातै कछू पाय है आगे ।।४२।। काट[1]
केचित् कर पर्वत हि निवासा । पुनि सो करे गुफा मे वासा ।।
केचित् एक ठौर न रहा ही । आज यहा कालिह वहा जाही ।।४३।।
केचित् तृण की सेज बनावे । केचित् ले ककरा बिछावे ।।
केचित् व्रत हि गहै अति गाडे । द्वादश वर्ष रहे पग ठाडे[1] ।।४४।। खडे[1]
केचित् रहैं जाय मसाना । हम अवधूत करै अभिमाना ।।
केचित् रूख वृक्ष तल वासा । हम काहू की करे न आसा ।।४५।।
केचित् मौन गहै नहि बोले । सैनहि से अन्तर्गति खोले ।।
केचित् चन्दन खौरि बनावे । पग पावरी नैन मटकावे ।।४६।।
केचित् मेले मूड ठगोरी[1] । सब ले जाहि देखते त्योरी ।। भुरकी[1]
केचित् सिहर[1] लगावें अगा । बालक चलै लाग कर सगा ।।४७।। सिंदूर[1]
केचित् मूठ चलावे काहू । नारसिह भैरव तुम जाहू[1] । मारने[1]
केचित् आक धतूरा खाही । पुनि अगार मेले मुख माही ।।४८।।
केचित् आफू[1] पोसत[2] भगी[3] । निपट[1] मूढमति आहि तरगी ।।
ऐसे भ्रम सु कहा लग कहिये । समझ समझ गुरु के पग गहिये ।।४९।।

१ आफू=अफीम । २ पोस्त=अफीम का डोडा । भगी=भग खाने वाला
सवैया ४

दोहा—बहुत भाति मत देख के, 'सुन्दर' किया विचार ।
सद्गुरु के सु प्रसाद[1] से, भ्रमे नाही लगार[2] ।।५०।। कृपा[1] किचित्[2]

नोट—११वे दोहे से आगे जो विचार व कर्म प्रगट किये हैं, उनके करने के कर्ता यदि भगवद् भाव से रहित केवल दिखावे मात्र ही करते है —

तो वे पाखड ही है। दिखाने को ही पाखड कहते है तथा ६ दर्शन—योगी, जगम, सेवडे, बौद्ध, सन्यासी, शेख, ये ६ प्रकार के भेषधारी भी यदि भेष मात्र से मुक्ति मानते हैं तो ठीक नही है, मुक्ति यथार्थ साधन से ही होती है, केवल दिखावे मात्र से ही नही होती। अत भगवत् भक्ति हो तो उक्त बातें नही हो तो भी ज्ञान होकर मुक्ति अवश्य होगी। उक्त प्रकरण का यही तात्पर्य है, दोष दृष्टि से नही है। सत तो चेतावनी देते हैं, उनमे दोष दृष्टि नही होती हैं।

इति श्री सुन्दरदास विरचितायां सर्वाङ्गयोग प्रदीपिकायां पच प्रहार नाम. प्रथमोपदेश : ॥१॥

अथ भक्ति योग नामक द्वितीय उपदेश

चौपाई—भक्ति योग अब सुनहु सयाना। बुद्धि प्रमाण जु करूं बखाना॥
भक्ति करन का यह आरभा। महल उठे जो थिर हो थभा॥१॥
प्रथम हि पकडे दृढ वैरागा। गह विश्वास करे सब त्यागा॥
जितेन्द्रिय अरु रहै उदासी। अथवा गृह अथवा बनवासी॥२॥
माया मोह करे नहि काहू। रहे सबन से बेपरवाहू।
कनक कामिनी छाडे सगा। आशा तृष्णा करे न अगा॥३॥
शील सन्तोष क्षमा उर धारे। धीरज सहित दया प्रतिपारे॥
दीन गरीबी राखे पासा। देखे निरपख भया तमासा॥४॥
मान महातम कछू न चाहे। एकै दशा[1] सदा निर्वाहै॥ एकरस[1]
राव रक की शक न आने। कीडी कुजर सम कर जाने॥५॥
आतम दृष्टि सकल ससारा। सतन का राखे अधिकारा॥
वैर भाव काहू नहि करही। सतगुरु शब्द हृदय मे धरही॥६॥
सार गहै कूकस[1] सब नाखे। रमता राम इष्ट शिर राखे॥ निस्सार[1]
आन देव की करे न सेवा। पूजे एक निरजन देवा॥७॥
मन माही सब सौंज[1] सु थापे। बाहर के बंधन सब कापे[2]। सामग्री[1] काटे[2]
शून्य सु मदिर अधिक अनूपा। ता मे मूरति जोति स्वरूपा॥८॥
सहज सुखासन बैठे स्वामी। आगे सेवक करे गुलामी[1]। सेवा[1]
सयम उदक सनान करावे। प्रेम प्रीति के पुष्प चढावे॥९॥
चित चन्दन ले चरचे अगा। ध्यान धूप खेवे ता सगा।
भोजन भाव धरे ले आगे। मनसा वाचा कछू न मागे॥१०॥
ज्ञान दीप आरती उतारे। घटा अनहद शब्द विचारे॥
तन मन सकल समर्पण करही। दीन होय पुनि पायन परही॥११॥

मगन होय नाचे अरु गावे । गद गद रोमाचित ह्वा आवे ।
सेवक भाव कदे नहि चौरे । दिन दिन प्रीति अधिक ही जोरे ॥१२॥
ज्यो प्रतिव्रता रहै पति पासा । ऐसे स्वामी के ढिग दासा ॥
काहू दिशा भूल जो जाई । तो पतिव्रत जु रहै नहि भाई ॥१३॥
नैकु न पाँव आन दिशा धारे । जो पति कहै सु आज्ञा पारै[1] ॥ पालै[1]
सदा अखंडित सेवा लावे । सोई भक्ति अनन्य कहावे ॥१४॥

दोहा—यह सौ भक्ति अलिगनि,[1] विरला जाने भेव ।
भाग्य होय तो पाइये, समझावे गुरु देव ॥१५॥

यह[1] जो भक्ति ऊपर बताई गई है सो अलिगनी अर्थात् बाह्य चिह्नो से रहित है। इसका भेद=रहस्य कोई विरला सत ही जानता है। इस रहस्य को सच्चे गुरुदेव ही समझा सकते है, असद्गुरु नही।

अथ मन्त्र योग

रकारा = राम मन्त्र का बीज 'रा' है इसके जपते जपते 'र' 'र' आकार की ध्वनि होने लगती है, इसी का रकार शब्द से कहा है।

जैसे पानी लौन मिलावै। ऐसे ध्वनि में सुरति[1] समावै। मनोवृत्ति[1]
राम मन्त्र का यही प्रकारा। करे आप से लगे न वारा ॥२६॥

दोहा--मन्त्र योग इहि विधि करे, जे कोई[1] चाहै राम ॥ कोई[1]।
सतगुरु के सु प्रसाद[1] से मन पावे विश्राम ॥२७॥ कृपा[1]

अथ लय योग

चौपाई—अब लय योग कहू बहु भाती। लय बिन भय व्यापे दिन राती ॥
लय बिन जन्म मरण नहि छूटे। लय बिन काल आय के कूटे ॥२८॥
लय समान नहि और उपाई। जो जन रहै राम लय लाई ॥
निश वासर ऐसे लय लागे। आवगमन सकल भ्रम भागे ॥२९॥
जैसे चातक करै पुकारा। पीव पीव कर बारम्बारा ॥
ऐसी विधि लय लावे कोई। परम स्थान समावे सोई ॥३०॥
जसे कुञ्जी अड सँभारै। पुनि सो कूर्म दृष्टि नहिं टारै ॥
जो कोऊ लय लावे ऐसी। ताको जरा मृत्यु कहु कैसी ॥३१॥
जैसे बालक सर्प कुरगा[1]। थकित सु होय नाद के सगा। मृग[1] ।वरवैराग।
ऐसी लय जो कोई लावे। योनी सकट बहुर न आवे ॥३२॥
जैसे वरत[1] वास चढनटनी[2]। बारबार करे तहा अटनी[2]। रस्सी[1] घूमना[2]
इत उत कहूँ नैक नहिं हेरे[3]। ऐसी लय जन हरितन फेरे ॥३३॥ देखे[3]
जैसे कुम्भ लेय पनिहारी। शिर धर हसे देय कर तारी ॥
सुरति रहै गगरि के मझा। यू जन लय लावे दिन सझा ॥३४॥
जसे गाय जगल को धावे। पानी पिवे घास चर आवे।
चित्त रहै बछरा के पासा। ऐसी लय लावे हरिदास ॥३५॥
ज्यो जननी गृह काज कराई। पुत्र पिघूरे[1] पौढत भाई। पालने[1]
उर अपने मे छिन न विसारे। ऐसी लय जन को निस्तारे ॥३६॥
जैसे कीट भृङ्ग की त्रासा। पलट जाय यह बडा तमासा ॥
ऐसी विधि लय लागे जा की। बार बार बलिहारी ताकी ॥३७॥
सब प्रकार हरि से लय लावे। होय विदेह परम पद पावे।
छिन छिन सदा करे रस पाना। लय से होवे ब्रह्म समाना ॥३८॥

दोहा—यह लय योग अनूप है, करे ब्रह्म सामान।
भाग्य बिना नहिं पाइये, सतगुरु कहै सुजान ॥३९॥

चर्चायोग

चौपाई— अब यह चर्चा योग बखानूं । मति अनुमान कछू जो जानूं ।।
निराकर है नित्य स्वरूपं । अचल अभेदा छाह नहिं धूप ।।४०।।
अव्यक्त पुरुष अगम अपारा । कैसे कै करिये निर्धारा ।।
आदि अन्त कुछ जाय न जानी । मध्य चरित्र सु अकथ कहानी ।४१।
प्रथम हि कीन्हा है ओकारा । तासे भया सकल विस्तारा ।।
जावत यह दीसे ब्रह्मण्डा । सातो सागर अरु नव खण्डा ।।४२।।
चद सूर तारा दिन राती । तीनो लोक सृजे बहु भाती ।।
चार खानि कर सृष्टि उपाई । चौरासी लख जाति बनाई ।।४३।।
ब्रह्मा विष्णु सु सृजे महेशा । गण गधर्वं असुर सुर शेषा ।।
भूत पिशाच मनुष्य अपारा । पशु पक्षी जल थल ससारा ।।४४।।
खान पान नाना विधि बानी । भिन्न स्वभाव किये कुछ जानी ।।
हलन चलन सब दिया चलाई । सहजें सब कुछ होता जाई ।।४५।।
आप निरंजन परम प्रकाशा । देखे न्यारा भया तमाशा ।।
ताही कुछ लीपै[1] नहिं छीपे[2] । घट घट माहिं आपही[3] दीपे ।४६। लिप्त[1]। छीपा[2]
चर्चा करू कहा लग स्वामी । तुम सब ही के अन्तरयामी ।।
सृष्टि कहत कुछ अन्त न आवे । तेरा पार कौन धौ[1] पावे ।।४७।। निश्चय[1]
तूं है अगाध अपार देवा । निगम नेति जाने नहि भेवा[1] ।। रहस्य[1]
तेरा को कर सके वखाना । थकित भये सव सत सु जाना ।।४८।।
तेरी गति तू ही पै[1] जाने । मेरी मति कैसे जु प्रवाने ।। तेरे सेही[1]
कीडी पर्वत कहा उचावे । उदधि थाह कैसे कर आवे ।।४९।।
भक्ति मत्र लय कीन्ही चरचा । समझे सन्त करे जो परचा ।।
एक किये तिहु लोक वडाई । चारो की कुछ कही न जाई ।।५०।।

भक्ति, मत्र, लय, और चर्चा योग इन चारो का सक्षिप्त परिचय यहा दिया है वास्तव मे तो जो सत इनका अभ्यास करके परिचय प्राप्त कर लेते हैं वे ही इनके रहस्य को यर्थात् मे समझते हैं ।

दोहा— ये चारो अग भक्ति के, नवधा इन ही माहिं ।
'सुन्दर' घट[1] मे कीजिये, वाहर कीजे नाहिं ।।५१।। हृदय[1] ।

इति श्री सुन्दरदास विरचिताया सर्वाङ्ग योग प्रदोपिकाया भक्ति योग नाम द्वितीय उपदेश ।।२।।

अथ हठ योग नाम तृतीयोपदेश

चौपाई—अबहि कहू हठ होग सुनाई । आदिनाथ[1] के वन्दो पाई ।। ईश्वर[1]
रवि शिशि दोऊ एक मिलावे । याही से हठ योग कहावे ।।१।।

प्रथम सु धर्म देश कहु ताके । भला राज्य कुछ दखल न जाके ।
तहा जाय के शुभ मठ करई । अल्प द्वार अरु छिद्र सु भरई ।।२।।
छिद्र सुरभई = छोटे मोटे आरपार ताक हो उनको भी रोक दे या छिद्र = बिल आदि हो तो उनको भी रोक दे और निकलने का द्वार भी छोटा ही हो ।
लिप्त[1] करे चहु[2] ओर सुगधा । कूप सहित मठ इहि विधि बधा ।।
तामे पैठ करे अभ्यासा । गुरु गम हठ कर जीते श्वासा ।।३।।
लगादो[1] चहु[2] दिवालो पर । मठ के पास ही कुआ बनावे । गुरु उपदेश के अनुसार ।
श्रम[1] न करे वकवादन माडे । होय असग चेष्टा छाडे ।।
अति उछाह मन माही कर ही । निश्चय राखि धैर्य पुनि धर ही ।।४।।
हठ कर आसन साधे भाई । हठ कर निन्द्रा तजता जाई ।।
हठ ही कर आहार घटावे । खाटा खारा कछू न खावे ।।५।।
हठ कर तीक्षण कटु भी त्यागे । सरसो तिल मद मास न मागे ।।
हरित शाक कबहू नहि खाई । हिंगु लसन सब देय बहाई[1] ।।६।। त्यागे[1]
देह कष्ट पुनि करे न सोई । प्रात सनान उपास न कोई ।।
गेहू शालि[1] सु करे अहारा । साठी चावल अधिक पियारा ।।७।। चावल[1]
खीर[1] खाड घृत मधु पुनि सानी । सूठ पटोल निर्मल अति पानी ।। दूध[1]
ये भोजन सु करे हठ योगी । दिन दिन काया होय निरोगी ।।८।।
षट कर्मन कर देह प्रक्षाले । नाडी शुद्ध होहि मल टाले ।।
विधि कर करे क्रिया हैं जेती । धोती वस्ती अरु पुनि नेती ।।९।।
त्राटक निरखे नौली फेरे । कपाल भाती नीके हेरे[1] । समझे[1]
ये षट कर्म सिद्धि के दाता । इनसे सूक्षम होय सुगाता ।।१०।।
आव पित्त कफ रहै न कोई । नख शिख लौ वपु निर्मल होई ।।
सदाभ्यास से होय स्वछदा । दिन दिन प्रकटे अति आनन्दा ।।११।।
दोहा—या हठ योग प्रभाव से, प्रकट होय आनन्द ।
विचरे तीनो लोक मे, जब लग सूरज चन्द ।।१२।।

राजयोग

चौपाई—राजयोग का कठिन विचारा । समझे बिना न लागे प्यारा ।।
राजयोग सब ऊपर छाजे । जो साधे सो अधिक विराजे ।।१३।।
राजयोग कीन्हा शिव राई । गौरा सग अनग[1] न जाई ।। बिन्दु[1]
घृत नहि ढरे अग्नि के पासा । राजयोग का बडा तमासा ।।१४।।
नाडी चक्र भेद जो पावे । तो चढ बिन्दु अपुठा आवे ।।
करनी कठिन आहि अति भारी । वश वर्त्तिनी होय जो नारी ।।१५।।

दीसै सँग रहै पुनि मुक्ता । अष्ट प्रकार भोग[1] का भुक्ता ।। मैथुन[1]
पाप पुन्य कुछ परसे नाही । जैसे कमल रहै जल माही ।।१६।।
सदा प्रसन्न परम आनन्दा । दिन-दिन कला बढे ज्यो चदा ।।
ऐसी भाति रहै पुनि न्यारा । राजयोग का यही विचारा ।।१७।।
राजयोगी के लक्षण ऐसे । महापुरुष बोले हैं तैसे ।।
जाको दुख अरु सुख नहिं होई । हर्ष शोक व्यापे नहिं कोई ।।१८।।
जाको क्षुधा तृषा न सतावे । निद्रा आलस कबहु न आवे ।।
शीत उष्ण जाको नहिं भाई । जरा न व्यापे काल न खाई ।१९।
अग्नि न जरे न बूडे पानी । राजयोग की यह गति[1] जानी ।। स्थिति[1]
अजर अमर अति वज्र शरीरा । खड्ग धार कुछ भिदेन तीरा ।२०।
जाको सब बैठे ही सूझे । अरु सबहिन की भाषा बूझे ।।२१।।
इच्छा करे तहा सो जाई । तीन लोक मे अटक न काई ।।
स्वर्ग जाय देवन मे बैठे । नाग लोक पाताल सु पैठे ।।२२।।
मृत्यु लोक मे आप छिपावे । कबहुक प्रकट सु होय दिखावे ।।
हृदय प्रकाश रहै दिन राती । देखे ज्योति तेल बिन बाती ।।२३।।

दोहा—राज योग के चिह्न ये, जाने बिरला कोय ।
त्रिया सग मत[1] कीजिये, जो ऐसा नहिं होय ।।२४।।

त्रियासग मत = जब तक उक्त लक्षण बताये हैं, वे नही आ जाय तब तक नारी सग नही[1] करना चाहिये । करेगा तो योग भ्रष्ट हो जायगा ।

लक्षयोग

लक्ष[1] योग है सुगम उपाई । सतगुरु बिन न जाना जाई ।। प्रतीक[1]
रोग न होय आयु बहु बाधे[1] । लक्षयोग जो कोई साधे ।।२५।। बढे[1]
प्रथम हि अधो लक्ष को जाने । नासा अग्र दृष्टि थिर आने ।।
यासे मन पवना थिर होई । अधोलक्ष जो साधे कोई ।।२६।।
ऊर्ध्व लक्ष करे इहि भाँती । दृष्टयाकाश रहै दिन राती ।।
विविधि प्रकट होय उजियारा । गुप्त पदारथ दीसे सारा ।।२७।।
मध्य लक्ष मन मध्य विचारे । वपु प्रमान को[1] रूप निहारे । कोई[1]
या से सात्विक[1] उपजे आई । मध्य लक्ष जो साधे भाई ।२८।। भाव[1]
बाह्य लक्ष और पुनि जानो । पच तत्त्व को लक्ष सु ठानो ।।
अग्र नासिका अगुल चारी । नील वर्ण नभ देखि विचारी ।।२९।।
नासा अग्र अगुल छह देखे । धूम वर्ण वायु तत्त्व पेखे ।।
अंगुल अष्ट नासिका आगे । रक्त वर्ण वह्नि तत्त्व जागे ।।३०।।

नासा अग्र अगुल दश ताई । श्वेत वर्ण जल देखि तहाई ॥
नासा अग्र सु अगुल बारा[1] । पीत वर्ण भू देखि अपारा ॥३१॥ बारह[1]
बाह्य लक्ष और बहूतेरी । सो जाने जो पावे सेरी[1] । मार्ग[1] ।
सतगुरु कृपा करे जो कबही । देय बताय छिनक मे सबही ॥३२॥
अंतर लक्ष जु सुनो प्रकाशा । ब्रह्म नाडि का करो अभ्यासा ॥
अष्ट सिद्धि नव निद्धि जहा लौं । टरे[1] न कबहूँ जिवे तहा लौं ॥३३॥हटे[1]
बहुर लक्ष कर मध्य लिलारा । जैसा एक बडा हो तारा ॥
याके किये बहुत गुण होई । घट मे रोग रहै नहि कोई ॥३४॥
रक्त वर्ण भ्रमरा उनमाना । लक्ष करे त्रिकुटी सुस्थाना ॥
यासे सबको लगे पियारा । वा[1]तन देखें बारबारा ॥३५॥ उसके[1]
दोहा—लक्ष योग जो साध ही । बैठत ऊठत कोइ ।
सतगुरु के सु प्रसाद से, अति सुख पावे सोइ ॥३६॥

अष्टाग योग

चौपाई–अब यह कहूँ योग अष्टङ्गा । भिन्न भिन्न बहु भाति प्रसङ्गा ॥
प्रथमहि यम अरु नियम विचारे । पकर टेक दश दशहि प्रकारे ॥३७॥
बहुरो करे सु आसन सब ही । नर्म शरीर होय पुनि तब ही ॥
उनमे सारभूत दो साधे । सिद्धासन पद्मासन बाधे ॥३८॥
प्राणायाम करै विधि ऐसी । सतगुरु सधि[1] बताये जैसी ॥ मेत्र[1]
इडा नाडि कर पूरे बाई । रेचक करे पिंगला जाई ॥३९॥
पूरि पिंगला इडा निकारे । द्वादश बार मन्त्र विधि धारे ॥
द्विगुण त्रिगुण कर प्राणायाम । उत्तम मध्यम कनिष्ट नाम ॥४०॥
कु भक अष्ट भाति के जाने । मुद्रा पज प्रकार सु ठाने ॥
बध तीन नीकी विधि लावे । और भेद सतगुरु से पावे ॥४१॥
प्रत्याहार पकर मन राखे । विषय स्वाद कबहू नहि चाखे ॥
जैसे कूरम सकुचै अगा । ऐसे इन्द्रिय राखे सगा ॥४२॥
पच धारणा तत्त्व प्रकाशा । पृथि अप तेज वायु आकाशा ॥
अक्षर सहित देवतन[1] ध्यावे । पच पच घटिका लय लावे ॥४३। देवोंको[1]
ध्यान सु आहि उभय जु प्रकारा । एक सगुण इक निर्गुण सारा ॥
सगुण सु कहिये चक्र स्थान । निर्गुण रूप आतमा ध्यान ॥४४॥
प्रथम चक्र आधार कहावे । कञ्चन वर्ण चतुर दल ध्यावे ॥
दुतिय चक्र है स्वाधिष्ठान । माणिक्याकृति ध्यान सुजान ॥४५॥
नाभि स्थान चक्र मणिपूरा । तरुण अर्क निभ[1] ध्यावे सूरा ॥ सम[1] ।
हृदय स्थान चक्र अनहातू[1] । विज्जुल प्रभा ध्याय सगातू ॥४६॥अनाहत[1]

कंठस्थान सु चक्र विशुद्धा । दीपक प्रभा जु ध्याय प्रवुद्धा ।।
आज्ञा चक्र नील निभ ध्यावे । भ्रू मध्य परमेश्वर पावे ।।४७।।
इति षट चक्र ध्यान जो जाने । तवहि जाय निर्गुण पहचाने ।।
गगनाकार ध्याय सब ठौरा । प्रभा मरीची जल नहि औरा ।।४८।।
अब समाधि ऐसी विधि कर ही । जैसे लौन नीर मे गर ही ।।
मन इन्द्रियो की वृत्य समावे । ताका नाम समाधि कहावे ।।४९।।
जीवातम परमातम दोई । सम रस कर जब एकै होई ।।
विसरे आप कछू नहि जाने । ताका नाम समाधि वखानै ।।५०।।
काल न खाय शस्त्र नहि लागे । यत्र मत्र ता देखत भागे ।।
शीत उष्ण कवहू नाहि होई । परमसमाधि कहावे सोई ।।५१।।
दोहा—यह हठ योग सु चार विधि, नीके कहा सुनाय ।
साधनहारे पुरुप की, 'सुन्दर' बलि बलि जाय ।।५२।।
इति श्री सुन्दरदास विरचितायां सर्वाङ्ग योग प्रदीपिकायां हठयोग नामा
तृतीयोपदेश ।।३।।

अथ सांख्ययोग नामक चतुर्थ उपदेश

चौपाई–अब साख्य सु योग हि सुन लेहू । पीछे हमको दोप न देहू ।।
आतम अनआतम विचारा । या ही से साख्य सु निर्धारा ।।१।।
आतम शुद्ध सु नित्य प्रकाशा । अनआतमा देह का नाशा ।।
आतम सूक्षम व्यापक मूला । अनआतम सो पच सथूला ।।२।।
पृथि अप तेज वायु अरु गगना । ये पाचो आतम सलगना ।।
पचन मे मिले और विकारा । तिन यह किया प्रपच पसारा ।।३।।
शब्द सपर्श रूप रस गधा । तनमातृका पच तन बधा ।।
श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राण । ज्ञान सु इन्द्रिय किया वखाण ।।४।।
वाक्य हि पाणि पाद अरु पायु । उपस्थ सहित पच समझायु ।।
कर्म सु इन्द्रिय इन का नामा । तत्पर अपने अपने कामा ।।५।।
मन अरु बुद्धि चित्त अहकारा । चतुष्ट अन्त करण विचारा ।
तिन के लक्षण भिन्न हि भिन्ना । महा पुरुष समझावे चिन्हा ।।६।।
सकल्प और विकल्प करता । मन सो लक्षण ऐसे धरता ।।
वुद्धि सु लक्षण वोध हि जानी । नीका बुरा लेय पहचानी ।।७।।
चेतन लक्षण चित्त अनूपा । अहकार अभिमान स्वरूपा ।
नौ तत्त्वन का लिंग शरीरा । पद्रह तत्त्व स्थूल गभीरा[1] ।।८।।
ये चौवीस तत्त्व वधान । भिन्न भिन्न कर किया बखान ।।
सबका प्रेरक कहिये जीवा । सो क्षेत्रज्ञ निरन्तर शीवा[1] ।।९।।

[1] सौम्य

[1] शिव

मकल वियापक अरु सर्वंगा[1]। दीसे सगी आहि असगा ।। मर्वअगोंमे[1]
साक्षी रूप सवन से न्यारा । ताहि कछू नहिं लिये[1] विकारा ।।१०।। लगे[1]
यह आतम अनआतम निग्ना[1]। समझे ताको जरा न मरना ।। निर्णय[1]
साख्य सु मत याही को कहिये । मतगुरु विना कहो क्यों लहिये ।।११।।
दोहा—साख्य योग मो यह कहा, भिन्न हि भिन्न प्रकार ।।
आतम नित्य स्वरूप है, देह अनित्य विचार ।।१२।।

ज्ञानयोग वर्णन

चौपाई—ज्ञान योग अब ऐसे जाने । कारण अरु कारज पहचाने ।।
कारण आतम आहि अखडा । कारज भया सकल ब्रह्माण्डा ।।१३।।
ज्यों अकुर से तरु विस्तारा । वहुत भाति कर निकसी डारा ।।
शाखा पत्र और फल फूला । यूं आतमा विश्व का मूला ।।१४।।
जैसे नभ मे वादर होई । ता मे लीन भये पुनि सोई ।।
ऐसे आतम विश्व विचारा । महा पुरुष कीन्हा निरधारा ।।१५।।
जैसे उपजे वायु वघूरा । देखत के दीसहिं पुनि भूरा ।।
आटी छूटे पवन समाही । आतम विश्व भिन्न यू नाही ।।१६।।
ज्यो पावक से दीसत न्यारा । दीप मसाल जु विविध प्रकार ।।
ताही माझ[1] होय सो लीना । यू आतम विश्व लै चीन्हा ।।१७।। मे[1]
जैसे उपजे जलके सगा । फेन बुद्‌बुदा और तरगा ।।
ताही मांझ लीन सो होई । यूं आतमा विश्व है सोई ।।१८।।
ज्यो पृथ्वी से भाजन भाई । विनश गये ता मांझ विलाई ।।
यू आतम सैं विश्व प्रकासे । कहन सुनन को दूजा भासे ।।१९।। दीखे[8]
ज्यो कञ्चन के भूषण नाना । भिन्न भिन्न कर नाम बखाना ।।
गाले सर्व एक ही हूवा । यू आतमा विश्व नहि जूवा[1] ।।२०।। जूदा[1]
जैसे ततुहि पट ले वाना । वोत प्रोत[1] सो त तु समाना ।। मिला-जुला[1]
भेद भाव कुछ भिन्न न होई । यूं आतमा विश्व नहिं दोई ।।२१।।
जैसे करी सूत की माला । मनिका सूत न होय निराला[1]।। न्यारा[1]
यू आतमा विश्व नहिं भेदा । कहत पुकारे प्रकट जु वेदा ।।२२।।
ज्यो प्रतिमा पाहन मे दीसै । दूजी वस्तु न विसवा वीसै ।।
यू आतमा विश्व नहिं न्यारा । ज्ञान योग का यही विचारा ।।२३।।
दोहा—ज्ञान योग सो जान है, जाको अनुभव होय ।
कहे सुने क्या होत है, जाको भासत[1] दोय ।।२४।। दीखे[1]

ब्रह्मयोग

चौपाई—ब्रह्मयोग अब कहिये ऐसा । उपजे मशय रहै न कैसा ।।
ब्रह्मयोग का कठिन विचारा । अनुभव विना न पावे पारा ।।२५।।

ब्रह्मयोग अति दुर्लभ कहिये । परिचय होय तब हि तो लहिये ।।
ब्रह्मयोग पावे निष्कामी । अगत सु फिरे इन्द्रियारामी ।।२६।।
ब्रह्मयोग सोई भल पावे । पहले सकल साधि कर आवे ।।
ब्रह्मयोग सब ऊपर सोई । ब्रह्मयोग बिन मुक्ति न होई ।।२७।।
ब्रह्मयोग जो उपजे आई । तो दूजा भ्रम जाय बिलाई ।।
होय अव्यापक[1] कछू न व्यापे । ब्रह्मयोग तब उपजे आपे ।।२८।।

१ अव्यापक=अर्थात् उसका हृदय अन्य मतो से व्याप्त नही होता, ब्रह्म मे ही लीन रहता है ।

सब ससार आप मे देखे । पूरण आप जगत मे पेखे ।।
आपहि करता आपहि हरता । आपहि दाता आपहि भरता ।।२९।।
आप ब्रह्म कुछ भेद न आने । अह ब्रह्म ऐसे कर जाने ।।
अह परात्पर अहं अखण्डा । व्यापक अह सकल ब्रह्मण्डा ।।३०।।
अह निरञ्जन अह अपारा । अहै निरायम अरु निरकारा ।।
अह निर्लेप अह निज रूप । निर्गुण अह अह सु अनूप ।।३१।।
अह सुख रूप अह सुखराशी । अह सु अजर अमर अविनाशी ।।
अह अनन्त अह अद्वीता । अह सु अज अव्यजं अभीता ।।३२।।
अह अभेद्य अछेद्य अलेखा । अह अगाध सु अकल अदेखा ।।
अह सदोदित सदा प्रकाशा । साक्षी अह सर्व मे वासा ।।३३।।
अह शुद्ध साक्षात सु न्यारा । कर्त्ता अह सकल ससारा ।।
अह सीव[1] सूक्षम सब सृष्टा । अह सर्वज्ञ अह सब द्रष्टा ।।३४।। मुक्त[1]
अह जगनाथ अह जगदीशा । अह जगतपति अह जगईशा ।।
अह गोविन्द अह गोपाल । अह ज्ञानघन अह निराल ।।३५।।

दोहा—अह परम आनन्दमय । अह ज्योति निज सोइ ।
ब्रह्मयोग ब्रह्म हि भया । दुविध्या रही न कोइ ।।३६।।

अद्वैत योग

चौपाई—अब अद्वैत सुनो सु प्रकाशा । ना ह ना त्व ना यह भासा ।।
नहि प्रपच तहँ नही पसारा । न तहां सृष्टि न सिरजनहारा ।।३७।।
न तहा प्रकृति पुरुष न इच्छा । न तहा काल कर्म नहि वछा[1]। कामना[1]
न तहाँ शून्य अशून्य न मूला । न तहा सूक्षम नही सथूला ।।३८।।
न तहाँ तत्त्व अतत्त्व विभेदा । न तहा वस्तु विवस्तु[1] न वेदा ।। अवस्तु[1]
न तहा वर्ण विवर्ण विनाना[1] । न तहा रूप अरूप सथाना ।।३९। विज्ञान[1]
न तहा व्यापक व्याप्य विशेखा । न तहाँ रूप नही तहँ रेखा ।।
न तहा ज्योति अजोति न कोई । न तहाँ एक नही तहँ दोई ।।४०।।

न तहां आदि नमध्य न अंता । नहि प्रतिपाल नहीं तहँ हंता ।।
न तहां शक्ति नहीं तहँ शीवा[1] । न तहां जन्म नहीं तहँ जीवा ।४१। शिव
न तहां लेख न लेखनहारा । न तहां कर्म नहीं कर्तारा ।।
न तहां स्वर्ग न नरक निवासा । न तहां आसक न तहां आसा ।।४२।।
न तहां धर्म अधर्म न करता । न तहां पाप न पुण्य न धरता ।।
न तहां पंडित मूरख कौना । न तहां वाद विवाद न मौना ।।४३।।
न तहां शास्तर वेद पुराना । न तहां होम न यज्ञ विधाना ।।
न तहां सध्या सूत्र न शाखा । न तहां देव मनुष्य न भाखा ।।४४।
न तहां इष्ट उपासनहारा । न तहां सगुण न निर्गुण सारा ।।
न तहां सेवक सेव्य न सेवा । न तहां प्रेम न प्रीति न लेवा ।।४५।।
न तहां भाव नहीं तहँ भक्ती । न तहां मोह नहीं तहँ मुक्ती ।
न तहां जाप्य नहीं तहँ जापी । न तहां मंत्र नहीं लय थापी ।।४६।।
न तहां साधक सिद्ध समाधी । न तहां योग न युक्त्याराधी ।।
न तहां मुद्रा बंध न लागे । न तहां कुण्डलिनी नहि जागे ।।४७।।
न तहां चक्र न नाडि प्रचारा । न तहां वेध न वेधनहारा ।।
न तहां लिंग अलिंग न नाशा । न तहां मन बुधि चित्त प्रकाशा ।।४८।
न तहां-सत-रज-तम गुण तीना । न तहां इन्द्रिय द्वार न कीना ।।
न तहां जाग्रत स्वप्न न धरिया । न तहां सुषुप्ति न तहां तुरिया ।।४९।

दोहा—ज्ञे ज्ञाता नहि ज्ञान तहँ, ध्येे ध्याता न हि ध्यान ।
कहनहार 'सुन्दर' नहीं, यह अद्वैत बखान ।।५०।।

इतिश्री सुन्दरदास विरचितायां सर्वाङ्ग योग प्रदीपिकायां साख्य योग नामा चतुर्थोपदेश । समाप्तोऽयं सर्वाङ्ग योग प्रदीका ग्रन्थ २ । सर्व छन्द २०३ ।

अथ पञ्चेन्द्रिय चरित्र ग्रन्थ ३

दोहा—नमस्कार गुरुदेव को, कीन्हा बुद्धि प्रकास ।
इन्द्रिय पंच चरित्र को, वर्णत 'सुन्दरदास' ।।१।।

गज चरित्र १

निर्भय वन मे फिरत गज, मदन मत्त अति अंग ।
शंक न आने और की, क्रीडत अपने रंग ।।२।।

सखी—गज क्रीडत अपने रंगा । वन मे मद मत्त अनंगा ।।
बलवन्त महा अधिकारी । गह तरुवर लेय उपारी ।।३।।
जब दंत भूमिधर चंपे । तब भारअठारह[1] कंपे ।। वनस्पति[1] ।
जहँ मन माने तहँ धावे । फल भक्ष करे जो भावे ।।४।।

पुनि पीवे निर्मल नीरा। पैठे जल गहर गभीरा।।
जित ही तित सू ड पसारे। गज नाना भाति पुकारे ।।५।।
बैठे जब ही मन माने। सोवे तब भय नहिं आने ।।
पुनि जागे अपनी इछा। उठ चले जहा की बछा[1] ।।६।। इच्छा[1]
ऐसी विधि वन मे डोले। कोइ अपने बल नहिं तोले ।।
कुछ मन मे धरे न शका। हम मे कोउ और न बका ।।७।।
अति गर्व करे अभिमानी। बूझे नहिं अकथ कहानी ।।
घट मे अज्ञान अधेरो। नहिं जानत अपना वैरी ।।८।।
इक मनुज तहा को आवा। तिहिं कु जर देख न पावा ।।
उन ऐसी बुद्धि विचारी। फिर आवा नगर मझारी ।।९।।
तब कहा नृपति मे जाई। इक गज वन माझ रहाई ।।
हम पकड यहा ले आवे। तब कहा बधाई पावे ।।१०।।
राजा कह करू निहाला। तब लोक कुटँब प्रति पाला ।।
जो ले आवे गज भाई। दे हू तब बहुत बधाई ।।११।।

दोहा—बहुत बधाई देउ तुहि, ले आवे गजराज।
तौ तू मेरे काम का[1], करू सबन सिरताज ।।१२।। मतलबका[1]

सखी—तब कीन्हा दूत सलामू। हम करहिं नृपति का कामू ।।
कोउ देहु हमारे सगा। दश बीस जने बल अगा ।।१३।।
नृप तब ही वेगि बुलाये। तिन आवत शीश नमाये ।।
नृप कही सबन से गाथा। तुम जाहु इन्हों के साथा ।।१४।।
नृप दूत हि बीडा दीन्हा। उन शिर चढाय कर लीन्हा ।।
फिर विदा होय घर आवा। कुछ मन मे फिकर उपावा ।।१५।।
पुनि सुमिरे सिरजनहारा। तुम देउ बुद्धि करतारा ।।
तब बुद्धि विधाता दीन्ही। कागज की हथिनी कीन्ही ।।१६।।
बिच काज बूत[1] भर लीन्हा। कुछ अधिक तमाशा कीन्हा ।। हलका कचरा[1]
अति चित्र विचित्र सवारी। सब कीन्हे चिह्न विचारी ।।१७।।
मनु[1] अबही उठ के भागे। मुख बोलत बार न लागे ।। मानो[1]
उन हुन्नर[1] ऐसा कीन्हा। इक जीव माहि नहिं दीन्हा ।।१८। कला[2]
तब दूत वहा ले जाही। गज रहत जहा वन माही ।।
उन एक सरोवर पेखा। गज आवत जाते देखा ।।१९।।
तहँ खधक[1] कीन्हा जाई। पतले तृण पत्र छवाई ।।
तृण ऊपर मृतिका नाखी। ता ऊपर हथिनी राखी ।।२०।।

[1]गहरी खाई। उस पर पतली लकडियां उन पर पत्ते, उन पर थोडी-थोडी मिट्टी डालकर।

वे दूत रहे छिप भाई। चुपचाप अमारति[1] लाई ॥ इशारा[1]
को समय तहा गज आवा। जल पान नही कर पावा ॥२१॥
त्रिय देखत अति वेहाला। हो काम अंध ततकाला ॥
हथिनी का देख स्वरूपा। शठ जाय पडा अँध कूपा ॥२२॥

दोहा—धाय पडा गज कूप मे, देखा नही विचारि।
काम अंध जाने नही, काल वूतकी[1] नारि ॥२३॥ नकली[1]

सखी—गज कालवूत नहिं जाना। सुधि वीसर गई निदाना ॥
गज कूद कूद शिर मारे। भूमी धर सूंठ पछारे ॥२४॥
वल बहुत हि करे गँवारा। निकसन का कतहु न द्वारा ॥
तव आये दूत नजीका। देखा हस्ती अति नीका ॥२५॥
उन सकल तुरत मगाई। कल ही कल[1] पग पहराई ॥ चतुराई[1]
दिन दश नहिं दिया अहारा। वल क्षीण भया तिहिं वारा ॥२६॥
जव उतर गई सव रीसा। तव चढे महावत शीसा ॥
उन अंकुश कर गह लीन्हा। कुंजर के मस्तक दीन्हा ॥२७॥
गज तवहिं कछू दुःख पावा। अंकुश के ओर नवावा[1] ॥ नमने[1]
तव खधक मे से काढा। उन वाहर कीन्हा ठाढा ॥२८॥
पठये राजा पै साथी। ले आये घर को हाथी ॥
उन किया नजर[1] से मेला। पुनि भये परस्पर भेला ॥२९॥ इशारे[1]
गज सबहिन से पतियाना। वश भया तवहि उन जाना ॥
ले चले नृपति के पासा। पूजी[1] दूतन की आसा ॥३०॥ पूरी[1]
जव निकट नगर के आये। तव सब ही देखन धाये ॥
गज लिये गये दरबारा। नृप आगे कीन्ह जुहारा[1] ॥३१॥ प्रणाम[1]
नृप देख खुसी भया भारी। दीया सिरपाव[1] उतारी ॥ शिर से पांव तक के वस्त्र[1]
पुनि द्रव्य दिया ततकाला। नृप कीन्हे दूत खुलासा ॥३२॥
गज भया काम वश अंधा। गह राज दुवारे बंधा ॥
गज काम अंध नहिं जाना। मानुष के हाथ विकाना ॥३३॥
गज बैसाये से बैसे[1]। ज्यो कहै महावत तैसे ॥ बैठे[1]
अति भूख प्यास दुःख देखे। पिछला सुख कतहु न पेखे ॥३४॥
पुनि शीश धुने पछतावे। परवश कुछ होय न पावे ॥
गज काम अंधे गह कीन्हा। इहिं काम वहुत दुःख दीन्हा ॥३५॥

दोहा—काम दिया दुःख बहुत ही, वन तज बध्या ग्राम ।
गज बपुरे की को कहै, विश्व नचाया काम ॥३६॥
चौपाई—यह काम बली हम जाना । ब्रह्मा पुनि काम भुलाना ॥
इहि काम रुद्र भरमाया । भिलनी[1] के पीछे धाया ॥३७॥
[1]पार्वती ने शिव जी की जितेन्द्रियता की परीक्षा लेने के लिये अद्भुत भिलनी का रूप बनाया तब शिव उनके पीछे भागे थे ।
इहि काम पुरन्द्र[1] निपाता । भग सहस किये तिहि गाता ॥ इन्द्र[1]
इहि काम चन्द्रमा वाहे[1] । गुरु गृहनी देख उमाहे ॥३८॥ बहकाये[1]
इहि काम पराशर अन्धा । उन धाय गही मछगन्धा ॥
इहि काम शृंगी ऋषि ताये[1] । तिन नीकी भांति नचाये ॥३९॥ तपाये[1]
इहि काम बालि सहारा । रघुनाथ बाण धर मारा ॥
इहि काम लंकपति खोये । दश शीश पकड कर रोये ॥४०॥
इहि काम विश्वामित्र डूले । तेउ देख उर्वशी भूले ॥
इहि काम कीचक सतापे । गह भीम खंभ तल चापे[1] ॥४१॥ दाबे[1]
इहि काम अनेक बिगोये[1] । जो अघ[2] निशा मे सोये ॥ नष्ट किये[1] । अज्ञान[2]
देवासुर मानुष जेते । गण गन्ध्रव मारे केते ॥४२॥
पुनि जीव लक्ष चौराशी । डाली सब बहिन के पाशी ॥
इहि काम लोक त्रय लूटे । जो शरण राम के छूटे ॥४३॥
बिन परसत[1] यह दुःख होई । परसत[2] कैसी गति लोई[3] ॥ छुये बिना[1]
कह 'सुन्दरदास' विचारा । देखो गज के व्यवहारा ॥४४॥
२ छुये से तो लोगो[3] की क्या गति हो यह तो क्या पता है भगवान् ही जाने । अर्थात् काम अनंग है—शरीर रहित है । अतः छू तो सकता नहीं । बिना छुये ही नचता है ।
दोहा—गज व्यवहारहिं देख कर, वेग हि तजिये काम ॥
'सुन्दर' निश दिन सुमरिये, अलख निरंजन राम ॥४५॥
इति श्री सुन्दरदास विरचिते पंचेन्द्रिय चरित्रे गज चरित्र कामइन्द्रिय प्रसङ्ग प्रथमो पदेशः ॥ ॥

भ्रमर चरित्र २

दोहा—बैठत भ्रमर कली कली, चंचल चपल स्वभाव ।
तृप्त न होय सुगन्ध से, फिरत सु अपने चाव[1] ॥१॥ इच्छा[1]
चौपाई—अलि फिरत सु अपने चाऊ[1] । अति चंचल चपल स्वभाऊ ॥ इच्छा[1]
पियरे[1] मुख श्याम शरीरा । कहूँ रहत नही पल थीरा[2] ॥२॥ पीले[1] स्थिर

अलि[1] बहुत पुष्प का सगो । नहिं ऐसा कोई रगी[2] ।। भँवरा[1] । प्रेमी[2]
अलि वास लेय उड जाई । कहु एक ठौर न रहाई ।। ३।।
अलि करत फिरे गुञ्जारा । जाका मकन्दर[1] अहारा ।। पुष्परस[1]
कबहू के दैव[1] सयोगा । अलि गया कमल के भोगा ।।४।। प्रारब्ध[1]
वह कमल प्रफुल्लित जोया[1] । मन का धोखा सब खोया ।। देखा[1]
बैठा अबुज के माही । शठ[1] काल सु जाने नाही ।।५।। मूर्ख[1]
तिहिं कमल प्रेम रवि केरा[1] । रवि अस्त भया तिहिं वेरा का[1]
तब अबुज सपुट[1] लावा । अलि माहिं रहे सुख पावा ।।६।। बध[1]
मन मे यू करत विचारा । सब रात पिऊ रस सारा ।।
उड जाऊ होय जब भोरा[1] । रजनी[2] आऊ इहिं ठौरा ।।७।। प्रात काल[1] रात[2]
यह उत्तम ठौर सुबासा । इह करहू सदा विलासा[1] ।। सुखभोग[1]
मैं बैठा पुष्प अनेका । पर कमल समान न एका ।।८।।
यू करते रैनि बिहानी[1] । बूझी[4] नहिं अकथ कहानी ।। बीती[1] । समझ[2]
इक गज आया वड प्राता । कछू कीन्हा खेल विधाता ।।९।।
रवि उदय भया था नाही । जासे सपुट खुल जाही ।।
सपुट तो रहिगा लागा । अलि भीतर रहा अभागा ।।१०।।

दोहा—भीतर रहिगा कमल के, अलि सुगन्ध लपटाय ।।
मूरख मर्म न जानिया, काल पहूचा आय ।।११।।

सखी—जल मे पैठा गज धाई । जल पीया बहुत अघाई[1] । तृप्त[1]
उनमत्त करे गज क्रोडा । नहिं जानत पर की पीडा ।।१२।।
करि ऐसे सूड चलाई । कुछ नैक दया नहिं आई ।।
गह अबुज[1] लिया उपारी । गज पीठ सु अपनी झारी ।।१३।। कमल[1]
पुनि पकड पाव तल दीन्हा । अलि मुवा माहिं मति हीन्हा ।।
जो बीधे[1] जाय सु वासा । तो भया भ्रमर का नाशा ।।१४।। फँसे[1]
इहिं गध विषय रुचि जाकी । पुनि होय यही गति ताकी ।।
नासा इन्द्रिय के घाले[1] । अलि प्राण त्याग के चाले ।।१५।। कारण[1]
जिन गध विषय मन दीन्हा । ते भये भ्रमर ज्यो छीना[1] ।। क्षीण[1]
जिनके नासा वश नाही । ते अलि ज्यो देख विलाही[1] ।।१६।। नष्ट[1]
ऐसी रुचि[1] कबहु न करिये । अलि देख देख अति डरिये । इच्छा[1]
यह रुचि हरिनाम भुलावे । यह रुचि ही काम जगावे ।।१७।।
तब काम से उपजे क्रोधा ! पुनि लोभ मोह वड जोधा ।।
सबही गुण उपजे आई । जो रचक गध सुहाई ।।१८।।

चौवा[1] चन्दन कर्पूरा । कस्तूरी अगर हजूरा ॥ अगर से बना[1]
शिर लावे तेल फुलेला । तब कहा राम से मेला ॥१९॥
पुनि और अनेक सुगन्धा । ये सकल जीव को फंधा ॥
जन 'सुन्दर' कह समझावा । यह भ्रमर चरित्र सुनावा ॥२०॥
दोहा—भ्रमर चरित्र सुनाइया, नासा इन्द्रिय जान ।
'सुन्दर' यह रुचि त्याग के, रामचरण रुचि आन[1] ॥२१॥ ला[1]
इति श्री सुन्दरदास विरचिते भ्रमर चरित्रे नासाइन्द्रिय प्रसगे द्वितीयो पदेश ।

मीन चरित्र ३

दोहा—मीन मग्न जल मे रहै, जल जीवन जल गेह ।
जल विछुरत प्राण हि तजे, जल से अधिक सनेह ॥१॥
सखी—वा जल से अधिक सनेहा । जल बिन दुख पावत देहा ॥
जल ही मे विचरत भाई । जल ही मे केलि कराई ॥२॥
कब हू जल ऊपर खेले । कब हू गहरे तन मेले ॥
छिन मे योजन फिर आवे । ताकी गति कोउ न पावे ॥३॥
कुछ शक नही मन माही । अपना रिपु जानत नाही ॥
नृप साह[1] चढहिं जो साथा । तउ मीन न आवे हाथा ॥४॥ बादशा[1]
इक धीवर बुद्धि उपाई । बनसी[1] का साज बनाई ॥ काटा[1]
लोहे का कटक कीन्हा । तिहिं ऊपर आमिष[2] दीन्हा ॥५॥ मास[2]
लीन्हा लबा इक डोरा । कटक बधा तिहिं छोरा ॥
ले आया जल के पासा । सब देखहिं लोक तमासा ॥६॥
जल भीतर बनसी डारी । तहँ आया मीन निहारी ॥
शठ जिह्वा स्वाद भुलाना । उन कटक काल न जाना ॥७॥
गह मास लिया मुख माही । शठ[1] कटक देखा नाही ॥ मूर्ख[1]
मुख मे से भीतर लीला[2] । तब डोरा कर मे लीला ॥८॥ निगला[2]
उन धीवर वेगि सँभारा । जल मे से बाहर डारा ॥
अति छटपटाय बहुतेरा । क्या होय काल जब घेरा ॥९॥
बर[1] केऊ धरि-धरि[2] पटका । कुछ प्राण चले कुछ अटका ॥ बार[1] । पकडा[2]
तब धीवर घर ले आवा । उन गली गली दिखलावा ॥१०॥
शठ स्वाद माहि मन दीन्हा । जिह्वा घर घर का कीन्हा ॥
जिस गहरे ठौर ठिकाना । सो रसना स्वाद बिकाना ॥११॥
तब गाहक ले गया मोली । कुछ दिया गाठ से खोली ॥
उन खण्ड खण्ड गह कीन्हा । इहिं स्वाद बहुत दुख दीन्हा ॥१२॥

दोहा—स्वाद दिया दुख बहुत ही, मीन गये तज प्रान ।
आगे और कथा सुनो, वनचर स्वाद गुलान ॥१३॥

वानर कथा

सखी—वनचर[1] होता वन माही । नाना विधि केलि कराही ॥ वानर[1]
वन है द्रुम द्रुम[2] पर डोले । कबहूँ मुख टह टह बोले ॥१४॥ वृक्ष[2]
को[1] बाजीगर तहँ आवा । मरकट कहु फंधा लावा ॥ कोई[1]
इक गागरि भुइ[1] मे गाडी । तिहि माहि मिठाई छाडी ॥१५॥ भूमि[1]
पुनि छिद्र किया इक आना[1] । मर्कट के हाथ समाना ॥ अल्प[1]
कर पंसे[2] गागर माही । मूठी से निकसे नाही ॥१६॥ प्रवेश[2]
ऐसी विधि फंद पसारा । कुछ बाहर चर्वन डारा ॥
पुनि आप छिपा कहुँ जाई । मर्कट आवा तहँ धाई ॥१७॥
कपि चर्वन[1] मुख मे नावा[2] । अति स्वाद लगा सब पावा ॥ चबीणा[1] डाला[2]
पुनि गागरि मे कर मेला । कुछ भया दई[1] का सेला ॥१८॥ प्रारब्ध[1]
कपि भीतर बाधी मूठी । निकसे नहि बहुर अपूठी[1] ॥ उलटी[1]
कपि गागिर दतन खडे । शठ भीतर मूठि न छडे[2] ॥१९॥ खोले[2]
अति किचकिचाट भो[1] शोरा । बाजीगर आवा दौरा ॥ बहुत[1]
उन रसरी गल मे नाई[2] । तब गागरि फोड अडाई[3] ॥२०॥ डाली[2] गिराई[3]
बाजीगर घर ले आवा । कर लकुटी लेय डरावा ॥
नीके कर दीन्हो त्रासा । बाजीगर कीन्ह तमासा ॥२१॥
जैसे कह तैसे नाचे । माने लकुटी की आचे[1] ॥ ताप = भय[1]
सब काहू करे सलामू । कपि ऐसा किया गुलामू ॥२२॥
जो जिह्वा नहीं सँभारा[1] । तो नाचे घर घर बारा ॥ जीता[1]
यह स्वाद कठिन अति भाई । यह स्वाद सबन को खाई ॥२३॥
दोहा—स्वाद सबन को वश किया, कहत सयाने[1] दास ॥ विचारवान[1]
कपि की कहा चलाइये, सुनो और उल्लास[1] ॥२४॥ कथा[1]

भृङ्गी ऋषि की कथा

सखी—इक सुनो और उल्लासा । जो कीन्हा स्वाद तमासा ॥
भृङ्गी ऋषि वन मे रहई । जिह्वा इन्द्री दृढ गहई ॥२५॥
जिह्वा इन्द्री नहि डोले । पुनि मुख से कबहु न बोले ॥
वह सूके पत्र चबाई । फल गिरे पडे सो खाई ॥२६॥
ऋषि देह नग्न अति क्षीना । तृण ऊपर आसन कीना ॥
ऐसी विधि तपकर धीरा । बैठे सरिता[1] के तीरा ॥२७॥ नदी[1]

कहुं मेघ न बरसे भाई । तब राजहिं कथा सुनाई ।।
जो शृङ्गी ऋषि यहा आवे । तो मेघ इन्द्र वर्षावे ।।२८।।
तब बोले नृपति उदासा । शृङ्गी ऋषि वन मे वासा ।।
क्यो आवे नगर मझारी । वे उग्र तपस्या धारी ।।२९।।
गनिका इक नृप पै[1] आई । उन बात इतै[2] समझाई ।। पास[1] । यह[2]
शृङ्गी ऋषि को ले आवे । तव कौन मौज[3] हम पावे ।।३०।। इनाम[3]
पुनि नृपति कहै इहिं बेरा[1] । हू देऊं धन बहुतेरा ।। समय[1]
गनिका जुहार[1] तब कीन्हा । नृप बीडा ताको दीन्हा ।।३१।। प्रणाम[1]
गनिका अपने घर आई । उन और सखिन समझाई ।।
तुम चलो हमारे संगा । हम जाय करे तप भंगा ।।३२।।
दोहा—भंग करे तप जाय के, तो नृप करहिं सनेहु ।।
अब सखि बिलम न कीजिये, सामग्री सब लेहु ।।३३।।
सखी-तब सामग्री सब लीन्ही । जो नाना विधि उन कीन्हा ।।
चौवा चन्दन कर्पूरा । कस्तूरी केशर जूरा[1] ।।३४।। सग्रह किया[1]
नाना विधि और सु बासा । ले चली शृंगि ऋषि पासा ।।
पुनि लिये बहुत पकवाना । लडुवा लपसी रस पाना ।।३५।।
गनिका वन मे जब आई । इक नीकी ठोर बनाई ।।
तुम बैठो यहां सहेली । हू जाऊं वहा अकेली ।।३६।।
देखू ऋषि की गति जाई । कह हू तुम से तब आई ।।
गनिका गई ऋषि के भेखा । ऋषि बोलत हू[1] उन देखा ।।३७।
१ बोलत=हू =किसी से बोलते हुये ऋषि शृग को उसने देखा ।
जब भई क्षुधा की बेरा । ऋषि चहूं दिशा तब हेरा[1] ।। देखा[1]
पुनि उठे तबहिं ततकाला । जल से मुख हाथ प्रछाला[1] ।।३८।। धोये[1]
ऋषि केउक तरुवर देखे । फल पत्र सवन के पेखे ।।
तब सूखे पात चबाये । फल गिरे पडे सो खाये ।।३९।।
ऐसी विधि कीन अहारा । जल पान किया तिहि बारा ।।
ऋषि आसन बैठे आई । गनिका ऋषि की गति पाई ।।४०।।
फिर आई अपने डेरा । सखिन को दीन्ह निबेरा[1] ।। स्थिति[1]
या सर्व मरम हम जाना । अब ले जाऊ पकवाना ।।४१।।
फिर सामग्री सब लीन्ही । सखियन को शिक्षा दीन्ही ।।
तब ले आई तिहिं ठौरा । ऋषि मरम न जानत और ।।४२।।
लडुवा द्रुम[1] द्रुम तन डारे । मैदा के पत्र सँवारे ।। वृक्ष[1]
लपसी पत्रन पर लाई । गनिका सब युक्ति बनाई ।।४३।।

दोहा—युक्ति बनाई जान सब, जगे मदन की ताप ।।
गनिका पाशी रोपि के, लागि[1] रही कहु आप ।।४४।। छिप[1]

सखी—पुनि आप रही कहु लागी । ऋषि के जु क्षुधा जब जागी ।।
ऋषि चहू दिशा पुनि जोया । तब उठे हाथ मु ह धोया ।।४५।।
ऋषि केउक[1] तरुवर ताके । कुछ बहुत गिरे फल पाके ।। कुछ[1]
ऋषि ले मुख मे छिटकावा । कुछ और हि स्वाद जनावा[1] ।।४६।। जाना[1]
ऋषि कीन्हा बहुत अहारा । अति स्वाद लगा तिहिं वारा ।।
पुनि पीया ऊपर पानी । ऋषि की सुधि सबै हिरानी[1] ।।४७।। हरली[1]
ऋषि आये अपनी ठौरा । मन भया और का औरा ।।
अब आसन लगे न भाई । ऋषि रहे छोड[1] छिटकाई[2] ।।४८।।

१ आसन को छोडकर २ इधर-उधर घूमने लगे। तब मन स्थिर नही रहा।

गनिका तब लाय सु बासा । फल ले आई ऋषि पासा ।।
ऋषि को पूछी कुशलाता । ऋषि कही परमपर बाता ।।४९।।
श्रृङ्गी ऋषि पूछे हरऊ[1] । तुम किंहि वन मे तप करऊ ।। धीरे[1]
गनिका कह फल जहँ ऐसे । हम तिहिं वन मे तप बसै ।।५०।। बैठते है[1]
ऋषि पूछन लागे अगा । यह मृतिका कैसा रगा ।।
गनिका कह हम जिहिं ठाऊ । तहँ मृतिका यही बिछाऊ ।।५१।।
ऋषिराज हु भाव हमारा । फल करिये अङ्गीकारा ।।
ऋषि बहुर कछू फल खाया । गनिका से नेह बढाया ।।५२।।
गनिका तब लागी सेवा । बहु भाति खवावे मेवा ।।
पुनि जल शीतल अचुवावे[1] । ता माहि सुगन्ध मिलावे ।।५३।। पिलावे[1]
ऋषि अति ही भये प्रसन्ना । तुम निकट रहो निश दिन्ना ।।
गनिका नजीक हो सूती । घर घाले बहुत निपूती ।।५४।।
जब लगा अग से अगा । ऋषि कीन्हा तासे सगा ।।
गनिका कीन्हा तप क्षीना । ऋषि भये बहुत आधीना ।।५५।।

दोहा—बहुत भये आधीन ऋषि, सुधि[1] सब गई हिराय[2] । सुबुद्धि[1] नष्ट[2]
मृतकहि फेर जिवाइया, गनिका बडी बलाइ ।।५६।।

सखी—गनिका कह सुन ऋषि प्यारे । अब आसन चलो हमारे ।।
ऋषि चले विलम्बन लाई । गनिका अपने ले आई ।।५७।।
उठ और सखी पग लागी । हम धन्य आज बड भागी ।।
ऋषि आसन दे बैठाये । नाना पकवान खवाये ।।५८।।
ऋषि देख सबन का भाऊ । अति रोम रोम सुख पाऊ ।।
ऋषि कहै इन्हो के गाता । ये कौन वृक्ष के पाता[1] ।।५९।। पत्तो के वस्त्र है[1]

गनिका कह ऋषि सुन लेहू । है अतिथि हमारे येहू ।।
इनके आश्रम द्रुम आही । फल पत्र बडे बडे ताही ।।६०।।
अब हम तुम मिल तहँ जइयें। इनको सुख दे तब अइये ।।
ऋषि चले विलब न कीन्हा । गनिका तब कर गह लीन्हा ।।६१।।
ले आई नगर मझारी । ऋषि देखा दृष्टि पसारी ।।
ऋषि शोर सुना जब काना । मन मे उपजा तब ज्ञाना ।।६२।।
हू यहा कहा से आवा । यह स्वाद धका मोहि लावा ।।
ऋषि सोवत से तब जागे । कर झटक अपूठे भागे ।।६३।।
पुनि आये ऋषि वन माही । मन मे बहुत हि पछताही ।।
जो रसना स्वादहि लागी । तो पीछे इन्द्री जागी ।।६४।।
जो रसना स्वाद न होई । तो इन्द्री जगे न कोई ।।
कह 'सुन्दरदास' सयाना । यह मीन चरित्र बखाना ।।६५।।

दोहा—मीन चरित्र विचार के, स्वाद सबै तज जीव ।
सुन्दर रसना रात दिन, राम नाम रस पीव ।।६६।।

इति श्री सुन्दरदास विरचिते पचेन्द्रिय चरित्रे मीन चरित्र जिह्वा इन्द्रिय प्रसङ्ग स्तृतीयोपदेश ।।३।।

शृ गी ऋषि की कथा रामायण मे प्रसिद्ध है । अत यहा पूरी कथ नही दी हैं

पतग चरित्र ४

दोहा—देह दीप छवि तेल त्रिय, बाती वचन बनाय ।।
वदन ज्योति दृग देख के, पडत पतगा आय ।।१।।

सखी—तहँ पडत पतगा आई । वह जोति देख जल जाई ।।
कुछ खान पान नहि होई । जल भस्म भये शठ सोई ।।२।।
उन अध अग्नि नहि जानी । दृग देखत बुद्धि नशानी ।।
उन देख जोति उजियारा । शठ तन मन अपना जारा ।।३।।
यह दृष्टि प्रबल अति भारी । नहि रोकी जाय हमारी ।।
यह दृष्टि करे बेहाला । यह दृष्टि हि चले कुचाला ।।४।।
यह दृष्टि चहू दिशि धावे । यह दृष्टि हि खता[1] खवावे ।। धोका[1]
यह दृष्टि जहा जहँ अटके । मन जाय तहा तहँ भटके ।।५।।
यह दृष्टि निहारे वामा । यह दृष्टि जगावे कामा ।।
जब देखे दृष्टि स्वरूपा । तब जाय पडे अँध कूपा ।।६।।
पहले मन दृष्टि पठावे[1] । तब सकल सदेसा पावे ।। भेजे[1]
जब दृष्टि ही दृष्टि मिलानी । तब अन्तर की मन जानी ।।७।।

इहिं दृष्टि मरम जब पावा । तब पीछे से मन धावा ॥
मन के पीछे तन जाई । तब सब ही धर्म नशाई ॥८॥
को योगि जती सन्यासी । वैरागी और उदासी ॥
जो देह जतन कर राखे । तो दृष्टि जाय फल चाखे ॥९॥
अति करे विप्र आचारा । दे चौका लीक निकारा ॥
जो शूद्र त्रिया तहँ दरसे । तो दृष्टि जाय नन परसे ॥१०॥
वाजीगर पुतरि नचावे । सब हाव भाव दिखलावे ॥
कपि झूठ साच कर जाना । शठ देखत दृष्टि भुलाना ॥११॥
दोहा—सर्वे भुलाने दृष्टि मे, बुद्धि हो गई नाश ॥
अब भाई आगे सुनो, और दृष्टि की पाश[1] ॥१२॥ फदा[1]

सखी—इक और दृष्टि की पासी । कुछ कहते आवत हाँसी ॥
कोई डायनि दृष्टि चलावे । तव बालक अति दुख पावे ॥१३॥
जब डायनि की सुधि चीन्ही । तब पकड फजीहति कीन्ही ॥
पहले गह मू ड मु डावा । पीछे मुख कालिकलावा ॥१४॥
पुनि पकड नाक धरि काटी । उन रक्त जीभ से चाटी ॥
तब ले कर गदह चढाई । पुनि गलि बाजार फिराई ॥१५॥
लडका सब पीटें तारी । उन पत्थर ढीमन मारी ॥
सब ऐसे लोक सुनावे । जो करे सु[1] तैसा पावें ॥१६॥ सो[1]
यह दृष्टि तना[1] फल देखा । उन दृष्टि सु अपनो पेखा ॥ का[1]
यह दृष्टि हि खेल खिलावे । यह दृष्टि हि बहुत भ्रमावे ॥१७॥
यह दृष्टि हि माया ताके[1] । यह दृष्टि न कब हू थाके ॥ देखे[1]
यह दृष्टि जाय घर फोरे । यह दृष्टि हि गाठी छोरे[1] ॥१८॥ खोले[1]
यह दृष्टि हि महल उठावे । यह दृष्टि हि ठौर बनावे ॥
यह दृष्टि हि वस्त्र सु पेखे । यह दृष्टि आरसी देखे ॥१९॥
यह सकल दृष्टि की बाजी । सब भूले पडित काजी ॥
यह दृष्टि कठिन हम जाना । देवासुर दृष्टि भुलाना ॥२०॥
को सत दृष्टि यह आने । सब ठौर ब्रह्म पहचाने ॥
कह 'सुन्दरदास' प्रसगा । यह देख चरित्र पतगा ॥२१॥

दोहा—देख चरित्र पतग का, दृष्टि न भूलो कोइ ।
'सुन्दर' रमता राम को, निशि दिन नैनहु जोइ[1] ॥२२॥ देखो[1]

इति श्री सुन्दरदास विरचिते पचेन्द्रिय चरित्रे पतग चरित्रे चक्षुरिन्द्रिय प्रसग चतुर्थोपदेश ॥४॥

मृग चरित्र ५

दोहा – मृग वन-वन विचरत फिरे, चहु दिशि केलि करन्त ।
खेत बिराना[1] खायके, होय रहा मैमन्त[2] ।।१।। दूसरो का[1] । मदमस्त[2]

सखी—मृग होय रहा मैमन्ता । चहु ओर फिरे विचरन्ता ।।
मृग हाथ बीस दश डाके । तृण हाल उठे तब ताके[1] ।।२।। देखे[1]
कोउ पत्र पवन से बाजे । मृग चौकि फरक[1] हो भाजो ।। दूर[1]
नहिं काहू का पतियारा । मृग निशि दिन रह हुस्यारा ।।३।।
इक वधिक तहा को आवा । उन नीके नाद बजावा ।।
मृग नाद सुना जब काना । सुधि बिसर गई सब आना ।।४।।
मृग ध्यान धरा मन लाई । कुछ और नहि सुधि पाई ।।
मृग थकित भया तिहि बारा । नहिं तनकी कुछ सभारा ।।५।।
तहँ अनेक पत्र तृण हाले । मृग अब न ठौर से चाले ।।
मृग ऐसे रहिगा सीधा । मनु होय पक मे बीधा[1] ।।६।। फँसा[1]
मृग भया नाद वश सोई । मनु[1] लिखा चित्र मे होई ।। मानो[1]
मृग भया अचेत गँवारा । तब वधिक बान भर मारा ।।७।।
मृग नाद विषय मन दीना । इहि नाद प्राण हरलीना ।।
मृग पहले नही सभाला । यह नाद[1] भया फिर काला ।।८।। वरवेराग[1]
यह नाद विषय मन लावे । सो मृग ज्यो नर पछतावे ।।
इहि नाद विषय जो भीना[1] । सो होय दिनै दिन क्षीना ।।९।। लीन[1]

दोहा—छीज गया मृग नाद[1] रस, भई जीव की घात । वरवेरामकेशव[1]
एक कहत हू और अब, सुनो सर्प की बात ।।१०।।

सर्प कथा

सखी—इक सर्प रहै बिल माही । तिहिं कोई जानत नाही ।।
तहँ बाजीगर इक आवा । मन्तुरे स्वर नाद बजावा ।।११।।
जब सर्प सुना वह नादा । कुछ श्रवनो पाया स्वादा ।।
नहि निकसत लाई बारा । उन आवत ही फुफकारा ।।१२।।
फन करके ध्यान लगावा । बाजीगर तबहि खिलावा ।।
पढ धूरि शीश पर नाई[1] । पुनि पूछ हाथ मे आई ।।१३।। डाली[1]
जब बहुत बार लग खेला । तब पकड पिटारे मेला ।।
बाजीगर लेय सिधारा[1] । नीके कर दात उपारा ।।१४।। चला[1]
इहि नाद हि परवश कीन्हा । इहि नाद बहुत दुख दीन्हा ।।
को नाद न रीझो भाई । यह नाद बडा दुख दाई ।।१५।।

यह नाद सुने सुख बासी । घर तज के होय उदासी ।।
वह जाय कहू परदेशा । पुनि कर योगी का भेशा ।।१६।।
कहु शीत घाम तन छीजे । कहु पानी वरसत भीजे ।।
पुनि कहु जागे कहै सोवे । घर याद करे तब रोवे ।।१७।।
कहँ भूख प्यास अति मरही । ऐसी विधि निश दिन भरही ।।
बिन ज्ञान बहुत दुख पावे । यह समझ-समझ पछतावे ।।१८।।
जो नाद विषय मन लाया । तो नाद[1]तना फल पाया ।। शब्द[1]
यह नाद जीव को पासी । यह नाद लोह की गासी[1] ।।१९।। बरछी[1]
जब मुनि जन लावे तालो[1] । कबहू नहिं देह सँभाली ।। समाधि[1]
यह नाद श्रवण हो धावे । तब जाय समाधि जगावे ।।२०।।
यह नाद करे मन भगा । यह नाद करे बहु रगा ।।
इहि नाद माहि इक ज्ञान । तिहिं समझै सन्त सुजान ।।२१।।
जब नाद सुनावे कोई । तब ब्रह्म विचारे सोई ।।
कह 'सुन्दरदास' सँदेशा । यह मृग चरित्र उपदेशा ।।२२।।
दोहा—मृग चरित्र उपदेश यह, नाद न रीझो जान ।
'सुन्दर' यह रस त्याग के, हरि यश सुनिये कान ।।२३।।
इति श्री सुन्दरदास विरचिते पचेन्द्रिय चरित्रे मृग चरित्रे श्रवण इन्द्रिय प्रसगे पचमोपदेश ।।५।।

अथ पचेन्द्रिय निर्णय

दोहा—गज अलि मीन पतग मृग, इक इक दोष विनाश ।
जाके तन पचो बसे, ताकी कैसी आश[1] ।।१।। मुक्ति आशा[1]
सखी—अब ताकी कैसी आशा । जाके तन पच निवासा ।।
पचो नर के घट माही । अपना-अपना रस चाही ।।२।।
ये श्रवण नाद के लोभी । बहु सुने तृप्ति नहि तोभी ।।
ये नैन रूप को धावे । कबहू सन्तोष न पावे ।।३।।
इहिं नासा ग्रन्थ सुहायी । सो कबहू नही अघाई[1] ।। तृप्त[1]
यह रसना[1] स्वाद भुलानी । इन कबहू तृप्ति न मानी ।।४।।
अध इन्द्रिय भोगहिं राती । नहिं तृप्त होय मदमाती ।।
ये पचो पच अहारा । अपना अपना रस न्यारा ।।५।।
इन पचो जगत नचावा । इन पच सबन को खावा ।।
ये पच प्रबल अति भारी । को सके न पच प्रहारी[1] ।।६।। वश[1]
ये पचों खोवे लाजा । ये पचो करे अकाजा ।।
ये पच पच दिश दौरे । ये पच नरक मे बोरे[1] ।।७।। डाले[1]

ये पच करे अति हीना । ये पच करे आधीना ॥
ये पच लगावे आशा । ये पच करे घट नाशा ॥८॥
ये पच विकर्म करावे । ये पचो मान घटावे ॥
ये पचो चाहे गलुका[1] । ये पच करे पुनि हलुका ॥९॥ नरम ग्रास[1]
ये पच कठिन अति भाई । ये पचो देहि गिराई ॥
ये पचो किनहि न फेरा । नर करे उपाय घनेरा ॥१०॥
दोहा—पचो किनहु न फेरिया वहुते करे उपाय ॥
सर्प सिह गज वश करे, इन्द्रिय गही न जाय ॥११॥
सखी—ये इन्द्रिय गही न जाही । नर शूर वीर वहु आही ॥
को[1] वाघ पकड ले आवे । इन्द्रिय का मरमन पावे ॥१२॥ कोई[1]
को सर्प गहै पुनि धाई । इन्द्रिन की गति नहि पाई ॥
को गज उनमत्त हि फेरे । चलती इन्द्री नहि घेरे[1] ॥१३॥ पीछो[1]
को रण मे सन्मुख झूझे । इन्द्रिन की गति नहिं वूझे ॥
कोऊ पैठे दरिया माही इन्द्रिय वश करी न जाही ॥१४॥
को यत्र मत्र आराधै । ये इन्द्रिय कवहु न साधै ॥
को मुये मसान जगावें । जागत इन्द्री न सुलावें ॥१५॥
को भूत प्रेत वश कीन्हा । पर इन्द्रिन के आधीना ॥
को आगम निगम वखाने । इन्द्रिन की सुधि नहिं जाने ॥१६॥
को कष्ट करे अति भारी । ये इन्द्रिय जाहि न मारी ॥
को पच अग्नि पुनि तापै । इन्द्रिन के आगे कापै ॥१७॥
को मेघाडवर भीजै । इन्द्रिन के घाले[1] छीजै ॥ मार से[1]
को शीतकाल जल पैसे । इन्द्रिन के लालच ऐसे ॥१८॥
को धूम पान अति करही । इन्द्रिन के स्वारथ गरही ॥
को कन्द मूल खन[1] खावे । पर इन्द्रिय हाथ न आवे ॥१९॥ खोद[1]
को रहै रात दिन ठाढे । इन्द्रिन के लिये गाढे ॥
को पकड रहै मुख मौना । इन्द्रिय वश हौंहि न कौना ॥२०॥
को पहुमी[1] भ्रम के आवे । इन्द्रिन के प्रेरे धाये ॥ पृथ्वी[1]
को सीझै[1] जाय हिमालै । इन्द्रिय अपनी नहिं गालै ॥२१॥ गलै[1]
को बूडे[1] झपापाती[2] । इन्द्रिय वश करी न जाती । पड़े[1] । गिर से गि[2]
को मगर[1] भोज तन कीन्हा । इन्द्रिय अपनी नहि चीन्हा ॥२२॥ मच्छ[1]
को करवत धारे शीसा । वश होय न पच पचीसा[1] ॥ प्रकृति[1]
को गला काट तन त्यागे । इन्द्रिय से आगे आगे[1] ॥२३॥ अगले जन्मो मे[1]

पुनि और उपाय अनेका । ये इन्द्रिय किनहु न छेका[1] ॥ काटा[1]
ये इन्द्रिय अति बलवन्ता । को राखे विरले सन्ता ॥२४॥

दोहा—सन्त सयाने राखि हैं, इन्द्रिय अपनी मार ॥
देह दृष्ठि सब दूर कर, पूरण ब्रह्म विचार ॥२५॥

सखी—ये इन्द्रिय कोई मारे । सो पूरण ब्रह्म विचारे ॥
ये इन्द्रिय जिन वश कीन्हा । तिन आतम राम हि चीन्हा ॥२६ ।
ये इन्द्रिय जिन गह फेरा । तिहिं राम कहत हैं मेरा ॥
ये इन्द्रिय जिन गह राखी । ताकी सब बोले[1] साखी ॥२७॥ साक्षी[1]
ये इन्द्रिय जाके हाथा । तिहिं सब जन नावे माथा ॥
ये इन्द्रिय दवे[1] सु[2] शूरा । ये इन्द्रिय दवे सु पूरा ॥२८॥ दमन[1] सो[2]
ये इन्द्रिय दवै सु जपिया । ये इन्द्रिय दवै[1] सु[2] तपया ॥ जीते[1] सो[2]
ये इन्द्रिय दवै सो यती । ये इन्द्रिय दवै सो सती ॥२९॥
ये इन्द्रिय दवै सु जैना । ये इन्द्रिय दवै सु ऐना[1] ॥ परम पुरुष[1]
ये इन्द्रिय दवै सु शैवा । ये इन्द्रिय दवै सु दैवा[1] ॥३०॥ देव पुरुष[1]
ये इन्द्रिह् दवै सु औधू[1] । ये इन्द्रिय दवै सु बोधू[1] ॥ अवधूत[1] बौद्ध[2]
ये इन्द्रिय दवै सुभक्ता । ये इन्द्रिय दवै सु मुक्ता ॥३१॥
ये इन्द्रिय दवै सु पडित ये इन्द्रिय दवैं सु मुण्डित ॥
ये इन्द्रिय दवै सु शेखा । ये इन्द्रिय दवै अलेखा ॥३२॥
ये इन्द्रिय दवै सु जिन्दा । ये इन्द्रिय दवै सु बन्दा ॥
ये इन्द्रिय दवै सु पीरा । ये इन्द्रिय दवै सु मीरा ॥३३॥
ये इन्द्रिय दवै सु न्यारा । ये इन्द्रिय देवै सु प्यारा ॥
ये इन्द्रिय दैव सु राता[1] । ये इन्द्रिय दैव सु माता[2] ॥३४॥ राम मे[1] मस्त[2]

दोहा—इन्द्रिय दवै सु आगम अति । इन्द्रिय दवै अगाध ॥
इन्द्रिय दवै सु जगत गुरु । इन्द्रिय दवै सु साध ॥३५॥

सखी—को साधू यह गति जाने । इन्द्रिय उलटी सब आने ॥
इन श्रवण सुने हरि गाथा । तब श्रवण होहिं सनाथा ॥३६॥
हरि दर्शन को दृग जोवे । ये नैन सफल तब होवे ॥
हरि चरण कमल रुचि घ्राण । यह नासा सफल बखाण ॥३७॥
इहि जिह्वा हरि गुण गावे । तब रसना सफल कहावे ॥
इहि अङ्ग सत को भेटे[1] । तब देह सफल दुख मेटे ॥३८॥ सेवा करे[1]
कुछ और न आने चीतै[1] । ऐसी विधि इन्द्रिय जीतै ॥ चित मे[1]
यह इन्द्रिय को उपदेशा । को समझे साधु सँदेशा[1] ॥३९॥ उपदेश[1]

यह पंच इन्द्रिन का ज्ञाना । को समझे सन्त सुजाना ।।
जो सीखे सुने रु गावे । सो राम भक्ति फल पावे ।।४०।।
यह संवत सोलह सैका । नवका पर करिये एका ।।
श्रावण वदि दशमी भाई । कवि बार[1] कहा समझाई ।।४१।। शुक्र[1]

नोट—यह पचेन्द्रिय चरित्र ग्रन्थ सुन्दरदासजी ने ३८ वर्ष की आयु मे स १६९१ श्रावण कृष्णा दशमी शुक्रवार को समाप्त किया था।

हम बुद्धि प्रमाण बखाना । को दोषन देहु सयाना ।।
कह 'सुन्दरदास' पवित्रा । अति नीके पच चरित्रा ।।४२।।

दोहा—पच चरित्र बखानिया, निर्मल ज्ञान प्रकाश ।
जो ये पचो वश करे, सो प्रभु सुन्दरदास ।।४३।।

इतिश्री सुन्दरदास विरचिते पचेन्द्रिय चरित्रे पचेन्द्रिय निर्णयो नाम भिन्न-भिन्न प्रसङ्ग षष्टोपदेश ।।६।। ग्रन्थ ३ ।

अथ सुख समाधि ग्रन्थ ४

अर्ध सवइया = नमस्कार गुरुदेव हि मेरा, जिनयह कीन्हा ज्ञान प्रकाश ।
घी सा घूट[1] रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास[1] ।।१।।

१ जैसे घृत की घूट भीतर पेट मे जाती है फिर भी उसका स्वाद ६ रसो से विलक्षण है कहा नही जाता वैसे ही अब ब्रह्मानन्द का अनुभव तो होता है किन्तु कहा नही जाता है । यही विचार नाना भाति से इस ग्रन्थ मे कहते है ।

गही गोपि[1] वह भक्ति आगिली । काढे प्रकट पुरातन खास[2] । गुप्त[1] खाई[2]
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।२।।
तक्र त्यागि तत[1] लिया काढि के, भोजन वहै अमृत का ग्राम । तत्त्व[1]
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।३।।
कण हरि नाम सार सग्रह कर, और क्रिया को काटे घास ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।४।।
आतम तत्त्व विचार निरन्तर, कीन्हा सकल कर्म नाश ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।५।।
और कछु उर मे नहि आवे, बातें कोऊ कहो पचास ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।६।।
कौन करे जप तप तीरथ व्रत, कौन करे यम नेम उपवास ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।७।।
इडा पिगला सुषुमन नाडी, को अब करे योग अभ्यास ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।८।।

कोउक दिन लौं[1] आसन साधे, कोइक दिन लौ खेंचे श्वास । तक[1]
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।९।।
कोउक दिन लौं रजनी जागे, कोउक दिन लौ फिरे उदास ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।१०।।
देखे नाना मते ऋषिन के, देखे वर्णाश्रम सन्यास ।
घी सा घूट रहा घट भीनर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।११।।
अर्थ धर्म अरु काम जहा लौं मोक्ष आदि सब छाडी आश ।
घी सा सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।१२।।
को वकवाद करे काहू से, मिथ्या जाना वचन विलास ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।१३।।
कोऊ निन्दा करे बहुत विधि, कोऊ करे प्रसशा हास[1] । हाँसी[1]
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।१४।।
समझ पडी सशय नहि कोऊ, सम कर जाने गृह वनवास ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।१५।।
काहू सग मोह नहि ममता, देखें निर्पख भये तमास ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।१६।।
कौन करे या तन की चिन्ता, जो प्रारब्ध सु [1] आवे पास । सो[1]
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।१७।।
स्वर्ग नरक सशय नहि कोऊ, आवागमन न जम की त्रास ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।१८।।
कीन्हा श्रवण मनन पुनि कीन्हा, ता पीछे कीन्हा निदिध्यास ।
घी सा घूंट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।१९।।
वार-वार अब कासे कहिये, हूआ हिरदय कमल विगास[1] । खिला[1]
घी सा सा घूंट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।२०।।
अधकार मिट गया सहज ही, बाहर भीतर भया उजास ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।२१।।
देह भिन्न आतमा भिन्न है, लिपे न कवहू ज्यो आकाश ।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।२२।।
देह अनित्य उपज कर विनशे, आतम नित्य अजर अविनाश ।।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।२३।।
जाको अनुभव होय सु जाने, पाया परमानन्द निवास ।।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।२४।।

कस्तूरी कर्पूर छिपावे, कैसे छानी रहै सुबास।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।२५।।
जल से पाला पाला से जल, ग्रातम परमातम इकलास[1]। एकता[1]
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।२६।।
जैसे नदी समुद्र समावे, द्वैत भाव तज हो जल रास[1]। राशि[1]
घी सा घूंट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।२७।।
रजु मे सर्प सीप मे रूपा,[1] मृगतृष्णा जल ज्यो ग्राभास। चादी[1]
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।२८।।
पूरण ब्रह्म ग्रखड ग्रनावृत[1], यह निश्चय यही विसवास। बिना छिपा[1]
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।२९।।
देखें सुने सपर्शे बोले, सूघे ग्रनासक्ति ग्रनयास।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।३०।।
जगत क्रिया देखे ऊपर की, ग्राशय पाय सके नहि तास।
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।३१।।
सद्गुरु वहुत भाति समझाया, भक्ति सहित यह ज्ञान उल्हास[1]। सुख[1]
घी सा घूट रहा घट भीतर, सुख से सोवे सुन्दरदास ।।३२।।

समाप्तोऽय सुख समाधि ग्रन्थ ४।

ग्रथ स्वप्न प्रवोध ग्रन्थ ५

दोहा—स्वप्ने मे मेला भया, स्वप्ने माहि विछोह।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, नही मोह निर्मोह ।।१।।
स्वप्ने मे सग्रह किया, स्वप्ने ही मे त्याग।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, ना कुछ राग विराग ।।२।।
स्वप्ने माहि यती भया, स्वप्ने कामी होय।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, कामी यती न कोय ।।३।।
स्वप्ने मे पडित भया, स्वप्ने मूरख जान।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, नही ज्ञान ग्रज्ञान ।।४।।
स्वप्ने मे राजा कहै, स्वप्ने ही मे रक।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, न साथरी[1] न प्रयक ।।५।। घास का विछोना[1]
स्वप्ने मे हत्या लगी, स्वप्ने न्हाया गग।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, पाप न पुण्य प्रसग ।।६।।
स्वप्ने शूरातन किया, स्वप्ने चाला भाग।
दोऊ मिथ्या हो गये, 'सुन्दर' देखा जाग ।।७।।

स्वप्ने गया प्रदेश मे, स्वप्ने आया भौन[1]। घर[1]
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, आया गया सु कौन ॥८॥
स्वप्ने खोई वस्तु को, पाई स्वप्ने माहिं।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, पाई खोई नाहिं ॥९॥
स्वप्ने मे भूला फिरा, स्वप्ने पाई वाट।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, औघट[1] रहा न घाट ॥१०॥ विकट[1]
स्वप्ने चौरासी भ्रमा, स्वप्ने जम की मार।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, नहिं डूबा नहि पार ॥११॥
स्वप्ने मे मरवो करे, स्वप्ने जन्मे आय।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, को आवे को जाय ॥१२॥
स्वप्न माहि स्वर्ग हि गया, स्वप्ने नरक हिं दीन।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, धर्म अधर्म न कीन ॥१३॥
स्वप्ने मे दुर्बल भया, स्वप्ने माहिं सपुष्ट।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, नही रूप नहिं कुष्ट ॥१४॥
स्वप्ने मे सुख पाइया, स्वप्ने पाया दुख।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, ना कुछ दुख न सुक्ख ॥१५॥
स्वप्ने मे योगी भया, स्वप्ने मे सन्यास।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, ना घर ना वनवास ॥१६॥
स्वप्न मे लौका[1] भया, स्वप्ने माहि मथेन[2]। अध विलोया दही[1] विलोनी[2]
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, ना कुछ लेन न देन ॥१७॥
स्वप्ने मे ब्राह्मण भया, स्वप्ने मे शुद्रत्व।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, नहिं तम रज नहिं सत्व ॥१८॥
स्वप्ने मे यम नियम व्रत, स्वप्ने तीरथ दान।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, एक सत्य भगवान ॥१९॥
स्वप्ने दौडा द्वारिका, स्वप्ने मे जगनाथ।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, ना को सग न साथ ॥२०॥
स्वप्ने मे मथुरा गया, स्वप्ने मे हरिद्वार।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, नहिं वदरी केदार ॥२१॥
स्वप्ने मे काशी मुवा, स्वप्ने मगहर माहिं।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, मुक्ति रासभा[1] नाहिं ॥२२॥ गदहा[1]
स्वप्ने दुष्कर तप किया, स्वप्ने सयम जाप।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, न आशिषा[1] न श्राप ॥२३॥ आशीर्वाद[1]

स्वप्ने मे निन्दा भई, स्वप्ने माहिं प्रशंस।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, नही कृष्ण नहिं कंस ॥२४॥
स्वप्ने मे भारत भया, स्वप्ने यादव नाश।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, मिथ्या वचन विलास[1] ॥२५॥ प्रयोग[1]
स्वप्न सकल संसार है, स्वप्ना तीनो लोक।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, तब सब जाना फोक[1] ॥२६॥ निस्सार[1]

समाप्तोऽयं स्वप्न प्रबोध ग्रन्थ ५।

अथ वेद विचार ग्रन्थ ६

दोहा—परमातम हि प्रणाम कर, गुरु संतन शिर नाय।
वेद विचार' हि कहत हू, सुनो सकल चित लाय ॥१॥
वेद प्रकट ईश्वर वचन, ता मे फेर[1] न सार। परिवर्तन[1]
भेद लहैं सद्गुरु मिले, तब कुछ करे विचार ॥२॥
वेद बहुत विस्तार है, नाना विधि के शब्द।
पढते पार न पाइये, जो बीते बहु अब्द[1] ॥३॥ वर्ष[1]
वेद वृक्ष कर वरनिया, पत्र पुष्प फल जाहि।
त्रिविधि भाति शोभित सघन, ऐसा तरु यह आहि[1] ॥४॥ है[1]
एक वचन है पत्र सम एक वचन है फूल।
एक वचन हे फल समा समझ देख मत[1] भूल ॥५॥ नही[1]
कर्म पत्र कर जानिये, मन्त्र पुष्प पहचान।
अन्त ज्ञान फल रूप है काड तीन यू जान ॥६॥
विपयी देखा जगत सब, करत अनीति अधर्म।
इन्द्रिय लपट[1] लालची, तिन हि कहे विधि कर्म ॥७॥ कामी[1]
निषिध[1] छुडावन कारणे, भय उपजाया आय। निषिद्ध[1]
मद्य मास परत्रिय गवन, इनसे नरक हिं जाय ॥८॥
जो सतकर्मन आचरे, तिनको भाषा स्वर्ग।
नाना विधि सुख भोगवे, सो[1] जाने अपवर्ग ॥९॥ उसीको[1]
ज्यो बालक के रोग हो, औषधि कटुक न खात।
मोदक वस्तु दिखाय के, औषधि पावे मात ॥१०॥
यू सतकर्मन को कहै, निषिध[1] छुडावन काज। निषिद्ध[1]
मूरख जाने सत्य कर, सुख स्वर्गपुर राज ॥११॥
ज्यो पशु हरहाई[1] कर हिं, खेत विराने[2] खाहिं।
खूटे बाधे आनि सब, छूट न कतहू जाहिं ॥१२॥

१ अन्यो के हरे हरे खेत खाने की आदत वाली गाय। दूसरो के[2]।

स्वप्ने गया प्रदेश मे, स्वप्ने आया भौन[1]।   घर[1]
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, आया गया सु कौन ॥८॥
स्वप्नै खोई वस्तु को, पाई स्वप्ने माहि।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, पाई खोई नाहि ॥९॥
स्वप्ने मे भूला फिरा, स्वप्ने पाई वाट।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, औघट[1] रहा न घाट ॥१०॥   विकट[1]
स्वप्ने चौरासी भ्रमा, स्वप्ने जम की मार।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, नहि डूबा नहि पार ॥११॥
स्वप्ने मे मरवो करे, स्वप्ने जन्मे आय।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, को आवे को जाय ॥१२॥
स्वप्न माहि स्वर्ग हि गया, स्वप्ने नरक हि दीन।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, धर्म अधर्म न कीन ॥१३॥
स्वप्ने मे दुर्बल भया, स्वप्ने माहि सपुष्ट।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, नही रूप नहि कुष्ट ॥१४॥
स्वप्ने मे सुख पाइया, स्वप्ने पाया दुख।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, ना कुछ दुख न सुक्ख ॥१५॥
स्वप्ने मे योगी भया, स्वप्ने मे सन्यास।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, ना घर ना वनवास ॥१६॥
स्वप्न मे लौका[1] भया, स्वप्ने माहि मथेन[2]। अथ विलोया दही[1] विलोनी[2]
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, ना कुछ लेन न देन ॥१७॥
स्वप्ने मे ब्राह्मण भया, स्वप्ने मे शुद्रत्व।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, नहि तम रज नहि सत्व ॥१८॥
स्वप्ने मे यम नियम व्रत, स्वप्ने तीरथ दान।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, एक सत्य भगवान ॥१९॥
स्वप्ने दौडा द्वारिका, स्वप्ने मे जगनाथ।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, ना को सग न साथ ॥२०॥
स्वप्ने मे मथुरा गया, स्वप्ने मे हरिद्वार।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, नहि बदरी केदार ॥२१॥
स्वप्ने मे काशी मुवा, स्वप्ने मगहर माहि।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, मुक्ति रासभा[1] नाहि ॥२२॥   गदहा[1]
स्वप्ने दुष्कर तप किया, स्वप्ने सयम जाप।
सुन्दर' जागा स्वप्न से, न आशिषा[1] न श्राप ॥२३॥   आशीर्वाद[1]

स्वप्ने मे निन्दा भई, स्वप्ने माहि प्रशस ।
'सुन्दर' जागा स्वप्न मे, नही कृष्ण नहि कंस ॥२४॥
स्वप्ने मे भारत भया, स्वप्ने यादव नाश ।
'सुन्दर' जागा स्वप्न से, मिथ्या वचन विलास[1] ॥२५॥ प्रयोग[1]
स्वप्न सकल ससार है, स्वप्ना तीनो लोक ।
सुन्दर' जागा स्वप्न से, तब सब जाना फोक[1] ॥२६॥ निस्सार[1]

समाप्तोऽय स्वप्न प्रबोध ग्रन्थ ५ ।

अथ वेद विचार ग्रन्थ ६

दोहा—परमातम हि प्रणाम कर, गुरु सतन शिर नाय ।
'वेद विचार' हि कहत हू, सुनो सकल चित लाय ॥१॥
वेद प्रकट ईश्वर वचन, ता मे फेर[1] न सार । परिवर्तन[1]
भेद लहैं सद्गुरु मिले, तब कुछ करे विचार ॥२॥
वेद बहुत विस्तार है, नाना विधि के शब्द ।
पढ़ते पार न पाइये, जो बीते बहु अब्द[1] ॥३॥ वर्ष[1]
वेद वृक्ष कर बरनिया, पत्र पुष्प फल जाहि ।
त्रिविधि भाति शोभित सघन, ऐसा तरु यह आहि[1] ॥४॥ है[1]
एक वचन है पत्र सम एक वचन है फूल ।
एक वचन है फल समा समझ देख मत[1] भूल ॥५॥ नहीं[1]
कर्म पत्र कर जानिये मत्र पुष्प पहचान ।
ब्रह्म ज्ञान फल रूप है काड तीन यू जान ॥६॥
विषयी देखा जगत सब, करत अनीति अधर्म ।
इन्द्रिय लपट[1] लालची, तिन हि कहे विधि कर्म ॥७॥ कामी[1]
निषिध[1] छुडावन कारणे, भय उपजाया आय । निषिद्ध[1]
मद्य मास परत्रिय गवन, इनसे नरक हि जाय ॥८॥
जो सतकर्मन आचरैं, तिनको भाषा स्वर्ग ।
नाना विधि सुख भोगवे, सो[1] जाने अपवर्ग ॥९॥ इनको[1]
ज्यो बालक के रोग हो, औषधि कटुक न खात ।

वर्णाश्रम बधेज कर, अपने अपने धर्म।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पुनि, शूद्र दिढायै[1] कर्म ॥१३॥ दृढकराये[1]
ब्रह्मचर्य गृहचर्य[1] हू, वानप्रस्थ सन्यास। गृहस्थ[1]
अपने अपने धर्म से, हो स्वर्गपुर वास ॥१४॥
योग यज्ञ जप तप क्रिया, दान पुण्य निहु[1] गर्व। रहित[1]
तीरथ व्रत अरु त्याग पुनि, यम नियमादिक सर्व ॥१५॥
जो इन कर्मन को करे, तजे काम आसक्ति।
सकल समर्पे ईश्वर हिं, तब ही उपजे भक्ति ॥१६॥
कर्म पत्र से निकस ही, भक्ति जु पुष्प सुवास।
नवधा विधि निश दिन करै, छाड कामना आस ॥१७॥
पीछे बाधा कुछ नही, प्रेम मगन जब होइ।
नवधा हू तब थक रहै, सुधि बुधि रहै न कोइ ॥१८॥
तब ही प्रकटे ज्ञान फल, समझे अपना रूप।
चिदानन्द चैतन्य घन, व्यापक ब्रह्म अनूप ॥१९॥
वेद वृक्ष यू बरनिया, याही अर्थ विचार।
कर्म पत्र ताके लगे, भक्ति पुष्प निरधार ॥२०॥
ज्ञान सु फल ऊपर लगा, जाहि कहे वेदान्त।
महा वचन[1] निश्चय धरे, सुन्दर तब हो शान्त ॥२१॥ महाकाव्य[1]

समाप्तोऽय वेद विचार ग्रन्थ ६।

अथ उक्त अनूप ग्रन्थ ७

दोहा—नमस्कार गुरुदेव को, बारबार कर जोर[1]। जोड[1]
'सुन्दर' जिन प्रभु शब्द से, काटे बन्ध कोर[1] ॥१॥ करोडो[1]
तिनकी आज्ञा पाय के, भाषू ज्ञान अनूप[1]। उपमा रहित[1]
अन समझे भव जल बहैं, समझे हो चिद्रूप[1] ॥२॥ चेतन रूप[1]
तम गुण रजगुण सत्वगुण, तिनका रचित शरीर।
नित्य मुक्त यह आतमा, भ्रम से मानत सीर[1] ॥३॥ सम्बन्ध[1]
तीन गुणन की वृत्ति मे, है थिर चचल अग।
ज्यो प्रतिबिंब हि देखिये, हालत जल के सग ॥४॥
तीन गुणन की वृत्ति जे, तिन मे तैसी होय।
जड से मिल जडवत भया, चेतन सत्ता[1] खोय ॥५॥ होना[1]
परधन परदारा गवन, चोरी हिंसा कृत्य[1]। कार्य[1]
निद्रा तन्द्रा आलस, ये तम गुण की वृत्य[2] ॥६॥ वृत्ति[2]

तामस गुण की वृत्ति से, होय तामसी आप।
कष्ट पडे जब आय के, माने दुख सताप ॥७॥
राजस गुण की वृति से, कर्म करे बहुत भाति।
सुखचाहै अरु उद्यमी, जक[1]न पडे दिन राति ॥८॥ शाति[1]
राजस गुण की वृत्ति से, सुख दु ख आवें दोइ।
ते सब माने आप को, क्यो कर छूटे सोइ ॥९॥
रज तम मिश्रत वृत्ति ये, जप तप तोरथ दान।
योग यज्ञ यम नेम व्रत, बछे[1] स्वर्ग स्थान ॥१०॥ चाहे[1]
वहुत भॉति की कामना, इन्द्रलोक की चाहि।
सत्य लोक जो पाइये, तहा बहुत सुख आहि[1] ॥११॥ है[1]
कोउक सात्विक शुद्ध हो, सब से भया उदास।
दोउ[1] लोक को त्याग कर, मुक्ति हेतु जिज्ञास ॥१२॥
१ इन्द्र लोक और सत्य लोक की कामना त्याग कर मोक्ष के लिय जिज्ञासा करता है।
उन[1] सद्गुरु को आय के, पूछा यह सन्देह[2]। उसने[1] सशय[2]
मैं हूँ कौन कृपालु हे, दूर करो भ्रम येह ॥१३॥
सद्गुरु देखा शुद्ध अति, मन वच काय सहेत।
भली भूमि मे बीजिये, तब ही निपजे खेत ॥१४॥
तासे सद्गुरु यू कहा, तू है ब्रह्म अखण्ड।
चिदानन्द चैतन्यधन, व्यापक सब ब्रह्मण्ड ॥१५॥
उन वह निश्चय धार के, मुक्त भया ततकाल।
देखा रजु का रजु तहा, दूर भया भ्रम व्याल ॥१६॥
ज्यो रवि के उद्योत से, अन्धकार मिट जाय।
तैसे ज्ञान प्रकाश से, भ्रम सब गया विलाय ॥१७॥
शुद्ध हृदय सुन मनन कर, निदिध्यास पुनि होइ।
याही साधन साध के, भया वस्तु[1]मय सोइ ॥१८॥ ब्रह्म[1]
शुद्ध हृदय मे ठाहरे, यह सद्गुरु का ज्ञान।
अजर वस्तु को जार[1] के, होय रहै गलतान ॥१९॥ पचा[1]
कनक पात्र मे रहत है, ज्यो सिहनि का दुद्ध।
ज्ञान तहा ही ठाहरे, हृदय होय जब शुद्ध ॥२०॥
शुद्ध हृदय जाका भया, वही कृतारथ जान।
सोई जीवन मुक्त है, 'सुन्दर' कहत वखान ॥२१॥

समाप्तोऽय उक्त अनूप ग्रन्थ: ७ ।

अथ अद्भुत उपदेश ग्रन्थ ८

दोहा—सद्गुरु पायन पडत हू, मोहि दिखाया पन्थ ।
तातै 'सुन्दर' कहत है, रचकर अद्भुत ग्रन्थ ।।१।।
परमातम सुत आतमा, ताका सुत मन धूत ।
मन के सुत ये पच है, पचो भये कपूत ।।२।।
रवि समान परमातमा, दर्पण बुद्धि हि जान ।
ता मे प्रतिविम्बत भया, जीवातम पहचान ।।३।।
दर्पण का आभास ज्यो, कस[1] पात्र मे होय । कासी[1]
त्यो आतम प्रकाश मन, देह मध्य है सोय ।।४।।
कस पात्र का होय पुनि, सदन[1] मध्य आभास[2]। घर[1] । प्रतिविम्ब[2]
त्यो मन से इन्द्रिय सकल, बहु विधि करें प्रकाश ।।५।।
परमातम साक्षी रहै, व्यापक सब घट माहि ।
सदा अखडित एकरस, लिपे छिपे कुछ नाहि ।।६।।
ताको भूला आतमा, मन सुत के हित दीन ।
ताके सुख सुख पाव ही, ताके दुख दुख कीन ।।७।।
मन हित बधा पच से, लिपट गया तिन सग ।
पिता आपना छाड के, रचा सु तन के रग[1] ।।८।। प्रेम[1]
ते सुत मद माते फिरें, गणें न काहू रच । किंचित भी[1]
लोक वेद मर्याद तज, निशि दिन करे प्रपच ।।९।।
पचो दौडे पच दिशि, अपने अपने स्वाद ।
नैनू राचा रूप से, श्रवणू राचे नाद ।।१०।।
नथवा[1] रचा सुगन्ध से, रसनू रस वश होइ । नाक[1]
चरमू सपरश मिल गया, सुधि बुधि रही न कोइ ।।११।।
सब हि ठगन के वश पडे, जित खैचे तित जाहि ।
तिन के सग लगे फिरै, तृप्ति सु माने नाहि ।।१२।।
श्रवनू ठगिया नाद वश, राग रग बहुभाति ।
वाह्य गीत वत[1] चातुरी, सुने दिवस अरु राति ।।१३।। वार्ता[1]
नयनू ठगा सु रूप ठग, श्वेत रक्त अरु श्याम ।
हरित पीत निरखत रहैं, निरखत छिनछिन वाम[1] ।।१४।। नारी[1]
नथवा[1] ठगा सुगन्ध ठग, नाना विधि के फूल । नाक[1]
चोवा चन्दन अगरजा[1], सूघ सूघ कर भूल ।।१५।। अगर से उत्पन्न[1]

रसनूं षट रस ने ठगा, मिष्ट अम्ल अरु खार।
तीक्षण कटुक कसाय पुनि, इन से कीन्हा प्यार ॥१६॥
चमूं हि ठगा स्पर्श ठग, कोमल अङ्ग सुहाइ।
कोमल शय्या वस्त्र पुनि, नारी से लिपटाइ ॥१७॥
ये पचो इन ठग ठगे, भये दुखित अरु दीन।
पिता सुनन के सङ्ग ही, सदा रहै पराधीन ॥१८॥
कोउक पूरब पुन्य से, सद्गुरु प्रकटे आय।
परवश देख दया करी, श्रवन्[1] लिया बुलाय ॥१९॥ बड़े पुत्र को[1]
तामे छानै से कही, गुप्त मते[1] की बात। सिद्धान्त[1]
तुम को ठग लीन्हे फिरै, काहे[1] की कुसलात[2] ॥२०॥
१ काहे=कैसे २ सुख मिलेगा, अर्थात् नही दुखी ही रहोगे।
ये ठग तुम को मार हैं, लूट लेहि सब माल।
चेत सको तो चेतियो, ठग नाहीं ये काल ॥२१॥
श्रवनूं मानी सत्यकर, गुरु को किया प्रणाम।
तुम हमरी रक्षा करी, मर जाते बेकाम ॥२२॥
ज्यो हम छूटे ठगन से, सो भाषो गुरुदेव।
भिन्न भिन्न समझाय कर, हमे बताओ भेव[1] ॥२३॥ रहस्य[1]
सुन श्रवनूं तोसे कहूँ, तू है जान[1] प्रवीन। ज्ञान[1]
ये चारो समझे नही, महा मुग्ध[1] मति हीन ॥२४॥ मूर्ख[1]
अब तू मेरा वचन सुन, तोहि कहू सदेश।
निकट पिता के जाय कर, कहिये हित उपदेश ॥२५॥
तब श्रवनूं मन पै[1] गया, बात कही समझाय। पास[1]
तोहि नीद क्यो पडत है, चहुं दिशि लागी लाय[2] ॥२६॥ अग्नि[2]
अहो पिता हम सब ठगे, पँच शत्रु हैं लार।
शब्द स्पर्श रु रूप रस, गध महा बटवार[1] ॥२७॥ ठग[1]
ये सुन मन को भय भया, कहने लागा वोहि[1]। वह[1]
तै यह बात कहा सुनी, श्रवनू पूछू तोहि ॥२८॥
मोहि एक सद्गुरु मिला, तिन यह भाषी आय।
तुमहि पच ठग ठगत है, अपने पितहि सुनाय ॥२९॥
तातै आया कहन को, तुम हि सन्देसा तात।
वे ठग हम को मार है, बुरी भई यह बात ॥३०॥
अब उठ बिलम न कीजिये, चल सद्गुरु पै[1] जाहि। पास[1]
वाके शरणे उबर है, नहि तो उबरै नाहि ॥३१॥

श्रवनू मन को सग कर, ले आया गुरु पास।
कर प्रणाम पावन पड़े, दोऊ खरे[1] उदास[2] ॥३२॥ सचे[1]। विरक्त[2]
नीचे होकर गिर रहे, चरणन से लिपटाय।
हम तो ठग जाने नही, तुम प्रभु दिये बताय ॥३३॥
तुम कृपालु गुरुदेव जू, तुम ही हो रिछपाल[1]। रक्षक[1]
शरण तुम्हारे उबर हैं, जो तुम होउ दयाल ॥३४॥
हम को वेगि छुडाइये, हम सु तुम्हारे दास।
वार बार बिनती करे, कठिन ठगन की पास ॥३५॥
दीन वचन जब ही सुने, सद्गुरु भये प्रसन्न।
तुमहि छुडाऊ वेगि ही, भय जिन आनो मन्न ॥३६॥
श्रवनू मन जिज्ञास अति, देख सु सद्गुरु आप।
लागे कहन उपाय तब, काटन दुख सताप। ३७॥

श्रीगुरुरुवाच

यह निश्चय कर धार मन, तोहि कहू समझाइ।
वे जे तेरे चार सुत, तिन तो दिया बहाइ[1] ॥३८॥ बहकाय[1]
श्रवनू तेरा सुत भला, चारो महा कपूत।
वह तो को निस्तार हैं, उन से जाय अऊन[1] ॥३९॥ नष्ट[1]
अब तू मेरी सीख सुन, चारो निकट बुलाय।
एक मते[1] मे राख सब, अपने अङ्ग लगाय ॥४०॥ मत[1]
तब उन को सुधि होय है, मिल बैठे इक ठौर।
या विधि छूटे ठगन से, भूल न भाषें और ॥४१॥
श्रवनू हरि चरचा सुने, एकाग्रह जब होइ।
तब ही भागे नाद ठग, बधन रहै न कोइ ॥४२॥
नैंन् हरि के दर्श को, लोचहि[1] बारम्बार। देखे[1]
तब ही भागे रूप ठग, रहै न एक लगार[1] ॥४३॥ क्षण भी[1]
नथवा को यह रुचि रहै, हरि चरणाबुज बास।
तब ही भागे गध ठग, रहै न याके पास ॥४४॥
रसनू हरि के नाम का, रटे अखडित जाप।
तब ही भागे स्वाद ठग, कबहु न लागे ताप ॥४५॥
चरमू हरि के मिलन की, रुचि राखे सब जाम[1]। पहर[1]
तब ही भागे स्पर्श ठग, सरे सकल विधि काम ॥४६॥
या उपाय कर छूटिये, उपजे सुख सन्तोष।
पुत्र पिता मिल हरि भजो, पावो जीवन मोख[1] ॥४७॥ मोक्ष[1]

तव मन यह उपदेश सुन, चागे लिये बुलाय ।
नैनू नथवा रसनवा, चमू वैठे आय ॥४८॥
ज्यो उपाय सद्गुरु कही, त्योही करने लाग ।
पुत्र पिता हर्षित भये, जागे पूरव भाग ॥४९॥
तव सद्गुरु इन सबन को, भाषा निर्मल ज्ञान ।
पिता पितामह परपिता, धरिये ताका ध्यान ॥५०॥
सब मिल पूछा सद्गुरु हि, पिता पितामह कौन ।
ताके आगे परपिता, करै कौन विधि गौन[1] ॥५१॥ गगन[1]
तुम पचन का मन पिता, मन का आतम जान ।
आतम पिता परमातमा, ताहि लेहु पहचान ॥५२॥
तव पचो मन से मिले, मन आतम से जाय ।
आतम परमातम मिले, ज्यो जल जल हि समाय ॥५३॥
अपने अपने तात[1] से, विछुरत हो गये और । पिता[1]
सद्गुरु आप दया करी, ले पहुँचाये ठौर ॥५४॥
प्रसरे[1] हू ये शक्तिमय, सकोचे शिव[1] होइ । फैलेसे[1] ब्रह्म[2]
सद्गुरु यह उपदेश कर, किये वस्तुमय[3] सोइ ॥५५॥ ब्रह्ममय[3]
जैसे ही उतपति भई, तैसे ही लयलीन ।
'सुन्दर' जब सद्गुरु मिले, जो होते सो कीन ॥५६॥
याके सुनते परम सुख, दुख न रहै लवलेश[1] । किंचित[1]
'सुन्दर' कहा विचार कर, अद्भुत ग्रन्थ उपदेश ॥५७॥

समाप्तोऽय अद्भुत उपदेश ग्रन्थ' ८ ।

अथ पच प्रभाव ग्रन्थ ९

दोहा—गुरु गोविन्द प्रणाम कर, सन्तन की बलि जात ।
'सुन्दर' सब को कान दे, सुनिये अद्भुत वात ॥१॥
भक्ति सुता परब्रह्म की, आई इहि ससार ।
उत्तम वर ढूढत फिरे, माया दासी लार ॥२॥
देखे जोगी जगमा, सन्यासी अरु जैन ।
वे तो मन माने नही, करते देखे फैन[1] ॥३॥ पाखड[1]
षट दरसन पुनि देखिया, देखे सूफी[1] शेख[1] । मुसलमान[1]
तेऊ मन आये नही, देखे सारे भेख ॥४॥
तव सन्तन के ढिग गई, देखे शीतल रूप ।
क्षमा दया धृति दीनता, सब गुण अजब अनूप ॥५॥

तिन के लक्षण देख के, भक्ति सु बोली आप।
तुम से मन राजी भया, मो से करै मिलाप ॥६॥
भक्ति विवाही सन्तजन, माया दासी सग।
युवती से निस दिन रमैं[1], दासी से नहिं रग[2] ।॥७॥
१ सत भक्ति द्वारा भजन का आनन्द रात दिन लेते थे। किन्तु माया दासी से प्रेम[2] नही करते थे।
युवती[1] अति प्यारी लगी, तामे बाधी प्रीति। भक्ति[1]
दासी[1] को आदर नही यह सन्तन की रीति ॥८॥ माया[1]
दासी घर का काम सब, करती डोले साथ।
युवती ऊँचे वश की, जीमे ताके हाथ[1] ॥९॥ हाथ का बना[1]
दासी आज्ञा मे रहै, जहं भेजे तहँ जाय।
ताका सग[1] करै नही, बरतै सहज स्वाभाय ॥१०॥ व्यवहार[1]
सो वह उत्तम जानिये, जाके नीति[1] विचार।
'सुन्दर' वदे लोक सब, यह उत्तम व्यवहार ॥११॥
१ जिनके माया को परोपकार मे लगाने की नीति रूप विचार रहते हैं, यही जिनका उत्तम व्यवहार है उनको ही उत्तम सत जानने चाहिये, अन्य नही।
जो दासी को आदरै, युवती से अति नेह।
दोऊ घर माही रहैं, सुनें विचार सु येह ॥१२॥
दासी कर[1] जीमे नही, बरतै नाना भाय[2]। हाथ का[1]। भाव[2]
जाति[3] माहि नहिं काढिये, सब मिल बैठे आय ॥१३॥
३ सतो से अर्थात् सत सेवा से माया को दूर नही रखते, सब मिल कर माया से व्यवहार तो बैठे हुये करते हैं किन्तु प्रेम नही, प्रेम तो भक्ति से ही करते हैं।
युवती[1] से रस रग[2] अति दासी[3] से नही प्यार। भक्ति[1]। प्रेम[2]। माया[3]
'सुन्दर' सो[4]मध्यस्थ है, जाका यह व्यवहार ॥१४॥ वेसत[4]
जो दासी[1] के रग[2] रचा, मन राखे तिहिं पास। माया[1] प्रेम[3]
युवती से हलभल[3] करे, कुछ इक राखे आश ॥१५॥ हलचल[3]
दासी[1] कै सँग डोल ही, मन राखे विलवाय। माया[1]
युवती[2] से कबहुक मिले, लष्ट पष्ट[3] कर जाय ॥१६॥ भक्ति[2] वेमन[3]
कोउक वा'से मिल चले, कोउक राखे शक[2]। माया[1] शका[3]
'सुन्दर' यह सु कनिष्टगति, अक लगाया पक[3] ॥१७॥ कलक[3]
जो दासी[1] मे मिल गया, अग अग लिपटाय। माया[1]
जीमन लागा हाथ तिहिं, युवती निकट न जाय ॥१८॥ भक्ति[1] न करे

सो तो वृपली[1] पति भया, कुलहि लगाई गार[2]। शुद्रा[1] कलङ्क[2]
युवती[3] उठ पीहर[4] गई, वाको माथे मार ।।१९।। भक्ति[3] परमात्मा[4]

जाति माहि बाहर किया, जब उपजी औलाद[1]।
तामे कोउ ना मिले, जनम गमाया बाद ।।२०।।

१ जब काम क्रोधादि दुर्गुण उसके हृदय मे उत्पन्न हो गये तब सतजाति से लोग बाहर करके दुर्जन कहने लगे और सत समझकर अब उससे मिलते भी नही। उसने तो अपना जन्म व्यर्थ ही खो दिया।

कुल मर्यादा सब तजी, तजी लोक की लाज।
'सुन्दर' ताकी नीच गति, कीन्हा बहुत अकाज ।।२१।।
ऐसा भेद विचार कर, भक्ति माहि मन देउ।
माया से मिलिये नही, यही सीख सुन लेउ ।।२२।।

सत्व रजो तम तीन गुण, तिनका यह व्यवहार।
उत्तम मध्यम अधम अध[1], कहे सु चार प्रकार ।।२३।।

१ अधमाधम अर्थात् अति नीच है, केवल भेश मात्र का ही सत है।

तीन भक्त चौथा जगत, फेर सार कुछ नाहि।
तीन भजे भगवत को, चौथा भव जल माहि ।।२४।।

ज्ञानी इन चारो परे, ताके चिह्न न कोइ।
ना सो भक्त न जगत है, बध मुक्त नहि सोइ ।।२५।।

ना वह रक्त विरक्त है, ना वह भीत अभीत।
तुरिया[1] मे बरते सदा, निश्चय तुरियातीत ।।२६।। चौथा[1]
जो कोउ पूछे फेरि कर, कैसे तुरियातीत।
क्षुधा तृपा व्यापे सदा, लगे घाम अरु शीत ।।२७।।
याका उत्तर अब कहू, सुन लीजे मनलाय।
शीत उष्ण वाका नही, ना वह पिवे न खाय ।।२८।।

देह प्राण का धर्म यह, शीत उष्ण क्षुत् प्यास।
ज्ञानी सदा अलिप्त है, ज्यो अलिप्त आकाश ।।२९।।
भक्ति भक्त माया जगत, ज्ञानी सब का शीस।
पच प्रभाव बखानिया, 'सुन्दर' दोहा तीस ।।३०।।

इस पच प्रभाव मे भक्ति, भक्त, माया, जगत और ज्ञानी के जैसे जैसे मनुष्यो पर प्रभाव पडते हैं, वे ही इस गन्थ मे दिखाये हैं। ये प्रभाव—१ उत्तम २ मध्यम ३ अधम ४ अध (नीचातिनीच) और पाचवा तुरियातीत ज्ञानी का प्रभाव सर्व-श्रेष्ठ है।

समाप्तोऽय पक्ष प्रभाव ग्रन्थ ९

अथ गुरु सम्प्रदाय ग्रन्थ १०

इस गुरु सम्प्रदाय ग्रन्थ मे किसी के पूछने पर सुन्दरदासजी ने उत्तर मे प्रतिलोमरीति से अपने से लेकर आदि गुरु ब्रह्म तक अपनी गुरु परम्परा देकर अपने ब्रह्मसम्प्रदाय का परिचय दिया है। पहले दादूपथ को ब्रह्मसम्प्रदाय ही बोला जाता था। आगे चलकर कवीर पथ के समान दादू पथ ही प्रसिद्ध हो गया। इससे सब ब्रह्मसम्प्रदाय कहाना भूल गये।

दोहा--प्रथम हिं निज गुरु देव को, वन्दन वारम्बार।
उक्ति युक्ति तब आनिके, करिये ग्रन्थ उचार ॥१॥

चौपाई—नमस्कार गुरुदेव हि करिये। जिनकी कृपा मे हि भव तरिये ॥
गुरु बिन मारग कोउ न पावे। गुरु बिन सशय कौन मिटावे ॥२॥
सम्प्रदाय अब सुनो हमारी। तुम पूछी हम कहै विचारी ॥
सबका गुरु परमातम एका। जिन यह कीन्हे चित्र अनेका ॥३॥
सब का ईश सकल का स्वामी। घट घट व्यापक अतर्यामी ॥
सो जब घट मे लहरि उठावे। तब गुरु शिष्यहि आन मिलावे ॥४॥
कै[1] शिष्य हिं गुरु पै[2] ले जाई। प्रेरक वही और नहिं भाई ॥ वा[1] पास[2]
अब प्रतिलोम हि कहू प्रनाली। जैसी विधि यह पद्धति चाली ॥५॥
प्रथम हिं कहू आपनी वाता। मोहि मिलाया प्रेर विधाता ॥
दादूजी जब दोसा आये। बालपने हम दरशन पाये ॥६॥
तिनके चरणन नाया माथा। उन दीन्हा मेरे शिर हाथा ॥
स्वामी दादू गुरु है मेरा। 'सुन्दरदास' शिष्य तिन केरा[1] ॥७॥ का[1]
दादूजी का गुरु अब सुनिये। बहुत भाति तिनके गुण गुनिये ॥
दादूजी को दर्शन दीन्हा। अकस्मात काहू नहिं चीन्हा ॥८॥
वृद्धानन्द नाम है जाका। ठौर ठिकाना कहू न ताका ॥
सहजरूप विचरै भू माही। इच्छा करे तहा सो जाही ॥९॥
वृद्धानन्द दया जब कीन्ही। काहू पै गति जाय न चीन्ही।
दादूजी तब निकट बुलाये। मुदित होय कर कठ लगाये ॥१०॥
मस्तक हाथ धरा है जबही। दिव्य दृष्टि उघरी है तबही।
यू कर कृपा वडा दत[1] दीन्हा। वृद्धानन्द पयाना कीन्हा ॥११॥ दान[1]

दोहा—तिन का कुशलानन्द गुरु, कहिये परम प्रसिद्धि ॥
दशे दिशा जाके कुशल, पाई पूरण सिद्धि ॥१२॥

चौपाई वीरानन्द तिन्हें गुरु कीन्हा। जिन इन्द्रिय मन वश कर लीन्हा ॥
काम क्रोध मद मत्सर माया। शूरातन[1] कर मार गिराया ॥१३॥ वीरता[1]

धीरानन्द भया गुरु तिनका । धीरज सहित ध्यान है जिनका ।।
धीरज सहित निरजन ध्याया । धन्य धन्य सब काहू गाया ।।१४।।
तिन का गुरु अब कहू सुनाई । लब्धानन्द सकल सुखदाई ।।
जाही का उपदेश बताया[1] । तिन ततकाल परम पद पाया ।।१५।। दिया[1]
तिन का गुरु कहिये विख्याता । समतानन्द परम सुखदाता ।।
कीडी कुजर[1] सम कर जाने । नीच ऊच कुछ भेद न आने ।।१६।। हाथी[1]
तिन हू क्षमानन्द गुरु पाया । क्षमावत सब के मन भाया ।
सहन शील ऐसा नहिं कोई । काहू हु से क्षुभित नही होई ।।१७।।
तिन का गुरु है निर्गत रोसा । तुष्टानन्द लिये सतोषा ।।
तृष्णा सकल खोद जिन गाडी । मुक्ति आदि सब इच्छा छाडी ।।१८।।
तिनके गुरु समान को नाही । सत्यानन्द प्रकट जग माही ।।
मुख से सदा सत्य ही बोले । नहिं तो वदन[1] कपाट न खोलें ।।१९।। मुख[1]
तिनके गुरु अब कहू सुनाई । गिरानन्द गुरु मिलिया आई ।।
जाकी गिरा सबन को भावे । गिरा माहि गोविन्द बतावे ।।२०।।
तिन का गुरु अब कहू विचारी । विद्यानन्द चतुर अति भारी ।।
एक ब्रह्मविद्या उर जाके । और अविद्या रही न ताके ।।२१।।
तिनका गुरु है परम प्रवीना । नेमानन्द नेम यह लीन्हा ।।
नारायण बिन और न भावे । याही नेम निरजन ध्यावे ।।२२।।
प्रेमानन्द भया गुरु ताका । प्रेम भक्ति कर दृढ मन जाका ।।
आठो पहर मग्न हो रह है । देहादिक की सुधि नहिं लह है ।।२३।।
दोहा—तिन का गलितानन्द गुरु, गलित रहै हरिनाम ।।
गलित भया गोविन्द से, निशि दिन आठो याम[1] ।।२४।। पहर[1]
चौपाई—योगानन्द तासु गुरु कहिये । योग युक्ति से निश दिन रहिये ।
आतम परमातम से जोडे । याही योग जुगति से तोडे[1] ।।२५।। जगत से[1]
तिनका गुरु कबहू न विगोगी । भोगानन्द ब्रह्मरस भोगी ।।
इन्द्रिय भोग मृषा कर जाने । इन्द्रिय परे[1] भोग मन माने ।।२६।। ब्रह्मरस[1]
तिन का गुर है ज्ञानानन्दा । सौलह कला प्रकट ज्यो चन्दा ।।
सुधा स्रवे[1] अरु शीतल रूपा । ताका दर्शन परम अनूपा ।।२७।। झरे[1]
तिनहू का गुरु प्रकट बताया । नाम निष्कलानन्द सुनाया ।।
सकल कला जिन दूर नियारी । ज्ञान कला उर अन्तर धारी ।।२८।।
तिनका गुरु है तत्त्वस्वरूप । नाम पुष्कलानन्द अनूप ।।
पुष्कल प्रकट करी जिन वानी । पुष्कल कीरति सब जग जानी ।।२९।।

तिनका गुरु सब रहित विकारा । अखिलानन्द अनन्त अपारा ॥
अखिल विश्व मे महिमा ऐसी । वरणी जाय न काहू कैसी ॥३०॥
तिनका गुरु या जग मे नामी । बुद्धयानन्द बुद्धि का स्वामी ॥
सब के अन्तर्गत की जाने । वा से कछू रहा नहिं छाने ॥३१॥
तिन के गुरु के और न झोरा[1] । रमानानन्द रमे सवठौरा ॥ झोड[1]
तीन लोक मे अटक न कोई । तासे मिले सु तैसा होई ॥३२॥
तिनके गुरु का पार न लहिये । अध्धानन्द महद्‌गुरु कहिये ॥
पूरण ज्ञान भरा जल जामे । मुक्ता फल उपजे है तामे ॥३३॥
तिन के गुरु कीन्हा भ्रम नाशा । सहजानन्द द्वन्द्व नहिं पासा ॥
सहजे ब्रह्म माहि थिर होई । कष्ट कलेश किया नहिं कोई ॥३४॥
तिनका गुरु कहिये निष्कामा । निजानन्द है ताका नामा ॥
निज आनन्द माहिं सुख पाया । तुच्छानन्द दृष्टि नहि आया ॥३५॥
दोहा—तिन का वृहद्यानन्द गुरु, वृहद ब्रह्म मे वास ॥
वोर छोर ताका नही, जैसे वृहदाकाश ॥३६॥
चौपाई—तिन का गुरु आतम सलग्ना । शुद्धानन्द शुद्ध ज्यो गगना ॥
हृदय शुद्ध वाणी अति शुद्धा । जो परसे[1] सो होय विशुद्धा ॥३७॥ मिल[1]
तिनका गुरु है अति गम्भीरा । अमितानन्द अमोलिक हीरा ॥
जाकी मति कुछ कही न जाई । वहुत भाति कर ग्रन्थन गाई ॥३८॥
तिनका गुरु अब कहू समझाऊ । नित्यानन्द जासु का नाऊ ॥
नित्य मुक्त निर्मल मति जाकी । कोऊ लख न सके गति ताकी ॥३९॥
तिनका सदानन्द गुरु ऐसा । सदा एकरस कहू न भै[1] सा ॥ भय[1]
एक सदा सबहिन मे जाने । द्वैत भाव कवहू नहिं आने ॥४०॥
तिनहू चिदानन्द गुरु कीन्हा । चेतन ब्रह्म आप जिन चीन्हा ॥
जाकी शक्ति जगत सव होई । चेतन कर वरतावे सोई ॥४१॥
तिन गुरु किया अद्‌भुतानन्दा । अद्‌भुत आशय निकट न द्वन्द्वा ॥
अद्‌भुत गति मति अद्‌भुत वानी । अद्‌भुत लीला किनहु न जानी ॥४२॥
तिनका गुरु है सुख का सागर । नाम अक्षयानन्द उजागर ॥
अक्षय ज्ञान सुनाया जाको । अक्षय रूप किया ता ना[1]को ॥४३॥ उस उसको[1]
तिन का गुरु सब ऊपर छाजे[1] । नाम अच्युतानन्द विराजे ॥ शोभा दे
अच्युत सदा रहै सुन भाई । च्युत[1] सब और जगत हो जाई ॥४४॥ नष्ट[1]
तिन का गुरु सवहिन से न्यारा । नाम पूरणानन्द पियारा ॥४५॥
तिनका गुरु सवके शिर मौरा । ऐसा कोऊ सुना न औरा ॥
ब्रह्मानन्द नाम तिहिं कहिये । तिनके मिले ब्रह्म हो रहिये ॥४६॥

यह पद्धति प्रतिलोम सुनाई। जहँ से भई तहा पहुँचाई।।
सप्रदाय यू चली हमारी । आदि अन्त तुम लेहु विचारी ।।४७।।

दोहा—परम्परा परब्रह्म से, आयाचल उपदेश।
'सुन्दर' गुरु से पाइये, गुरु बिन लहै न लेश ।।४८।।
सप्रदाय इहि विधि चली, प्रकट करी जगदीश।
सुन्दर' शिर से नख गिने, नख से गनिये शीश ।।४९।।
पैंडी पैंडी उतरिये, पैंडी ही चढ जाय।
'सुन्दर' यू अनुलोम है, अरु प्रतिलोम कहाय ।।५०।।
गिने एक से सौ लगे, सौ से गिनये एक।
कहवे ही का फेर है, 'सुन्दर' समझ विवेक ।।५१।।
'सुन्दर' पृथ्वी आदि दे, गिने व्योम लौ कोइ।
व्योम आदि दे जो गिने, पृथ्वी आवे सोइ ।।५२।।
सप्रदाय यह ग्रन्थ है, ग्रन्थित गुरु का ज्ञान।
'सुन्दर' गुरु से पाइये, गुरु बिन लहै न प्रान ।।५३।।

समाप्तोऽय गुरु सम्प्रदाय ग्रन्थ. १० ।

नोट—इस गुरु सप्रदाय ग्रन्थ को किसी वादी के प्रश्न पर सुन्दरजी ने अपने सम्प्रदाय को अपने से लेकर परब्रह्म तक पहुचा दिया है और परब्रह्म से अपने तक बता दिया है। इससे वादी को बता दिया कि हमारा सप्रदाय अति पुराणा है, आधुनिक नही है। यही इसका तात्पर्य ज्ञात होता है।

अथ गुण उत्पत्ति नीसानी ग्रन्थ ११

इस ग्रन्थ मे गुणो की उत्पत्ति आदि नीसानी छन्द मे वर्णन करने मे इसका नाम गुण उत्पत्ति नीसानी रखा है।

दोहा—मन उमगा कुछ कहन को, हृदह वढा आनन्द।
सुन्दर' बहुत प्रकार कर, वन्दत गुरु गोविन्द ।।१।।

नीसानी - गुरु गोविन्द प्रसाद से, प्रकटी मुख वानी।
जैसा बुद्धि प्रकाश है, वरनो नीसानी[1] ।।२।। लक्षण[1]
प्रथम निरजन आप ही, मन मे यह आनी।
पच तत्त्व गुण तीन से, सब सृष्टि उपानी ।।३।।
व्योम वायु पावक किये, जल भूमि मिलानी।
राजस सात्विक तामसा, तीनो विवधानी ।।४।।
रज गुण से ब्रह्मा किये, राजस अभिमानी।
सात्विक विष्णु उपाइया, प्रतिपालक प्रानी ।।३।।

तम गुण से शकर भये, सहारक जानी ।
ऐसी विधि भव पथ चले, यह रचना ठानी ।।६।।
सत्य लोक ब्रह्मा रहै, ताके ब्रह्मानी ।
विष्णु बसे वैकुण्ठ मे, ठाकुर ठुकुरानी ।।७।।
रुद्र रहै कैलाश मे, भव लिये भवानी ।
इन्द्र रहै अमरावती, जाके इन्द्रानी ।।८।।
सुर अरु असुर सबै किये, अप[1] अपने थानी । अपने[1]
गण गधर्व उपाइया, हाहा हू[2] गानी ।।९।। हूह[2]
किन्नर अरु विद्याधरा, यक्षादि धनानी[1] । धन के स्वामी कुबेर[2]
भूत पिशाच निशाचरा, राक्षस दुखदानी ।।१०।।
चन्द सूर दीपक किये, तारा नभ तानी[1] । वितान[1]
सप्त द्वीप नव खड मे, दिन रैन थपानो[1] ।।११।। स्थापन किये[1]
सागर मेरु उपाइया, पृथ्वी मध्यानी[1] । मध्य मे[1]
अप्ट कुली[1] पर्वत किये, बिच नदी बहानी[2] ।।१२।। बहादी[1]
१ नागो के अष्ट कुल - शेष, वासुकी, कबल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शख, कुलिक और पर्वत भी रचे ।
भार अठारह[1] वनस्पती, फल फूलानी । सब जाति की[1]
समय समय मे आइ के, घन बरषे पानी ।।१३।।
मानव पशु पक्षी किये, करतार विनानी[1] । विज्ञानी[1]
ऐसी विधि रचना रची, कुछ अथक कहानी ।।१४।।
स्वेदज अण्ड[1] जरायुजा, उद्भिज उपजानी । अण्डज[1]
खेचर[2] भूचर जलचरा, ये चारो खानी ।।१५।। आकाशचारी[2]
कीट पतग जहा लगे[1], गिनती न गिनानी[2] । लग[1] नही[2]
चौरासी लख कह न को, जिव जाति बखानी ।।१६।।
शेष नाग वैकुण्ठ लो, विस्तार वितानी ।
चवदह तीनो लोक मे, जाकी रजधानी ।।१७।।
आपुन[1] बैठे गुप्त हो, व्याक सब कानी[2] । आप[1] ओर[2]
अध ऊरध दश हूँ दिशा, ज्यो शून्य[1] समानी ।।१८।। आकाश[1]
चेतन शक्ति जहा तहा, घट घट नहिं छानी ।
हलन चलन जा से भया, सो है सेनानी[1] ।।१९।। मुख्य[1]
जड चेतन दो भेद है, ऐसे समझानी ।
जड उपजे विनशे सदा, चेतन अप्रमानी[1] ।।२०।। माप रहित[1]

लिपे छिपे नहिं सब करे, जिन मँड[1] मडानी[2]। सृष्टि[1] रची[2]
'सुन्दर' अद्भुत देखिये, अति गति हैरानी[3] ॥२१॥ आश्चर्य[3]

समप्तोऽय गुणत्पत्ति नीसानी ग्रन्थ ११

अथ सद्गुरु महिमा नीसानी[1] ग्रन्थ १२ (छन्द व लक्षण[1])

दोहा—अद्भुत ख्याल रचा प्रभु, बहुत भाति विस्तार।
सत किये उपदेश को, पार उतारन हार ॥१॥

नीसानी—पार उतारन हार जो, गुरु दादू आया।
जीवन के उद्धार को, हरि आप पठाया[1] ॥२॥ भेजा[1]
राम नाम उपदेश दे, भ्रम दूर उडाया।
ज्ञान भक्ति वैराग्य हू, ये तीन दृढाया ॥३॥
विमुख जीव सम्मुख किये, हरि पथ[1] चलाया। मार्ग[1]
झूठ क्रिया सब छाड के, प्रभु सत्य बताया ॥४॥
माया मिथ्या सापिनी, जिन सब जग खाया।
मुख से मत्र उचार के, उन मृतक जिवाया ॥५॥
बूडत काली धार मे, गह नाव चढाया।
पैली पार उतार के, जिन पद पहुँचाया ॥६॥
पर उपकारी है इसे, मोटी निधि ल्याया।
जन्म मरण की भूख थी, सब जीव अघाया ॥७॥
दयावत दुख मेटना, सुख दायाक भाया।
शीलवत साचे मतै, सतोष गहाया ॥८॥
रवि ज्यो प्रकट प्रकाश से, जिन तिमिर मिटाया।
शशि ज्यो शीतल है सदा, रस अमृत पाया ॥९॥
अति गभीर समुद्र ज्यो, तरुवर ज्यो छाया।
वाणी वर्ष मेघ ज्यो, आनन्द बढाया ॥१०॥
चन्दन ज्यो लिपटे बनी, द्रुम नाम गमाया।
पारस जैसे परस[1] से, कचन हो काया ॥११॥ स्पर्श[1]
चुबक ज्यो लोहा लगे, भृत[1] अग लगाया ॥ शिष्य=दास[1]
हीरा ज्यो अति जगमगे, निरमोल निपाया[1] ॥१२॥ उपाया[1]
कामधेनु चिन्तामणी, तरुकल्प कहाया।
सबकी पूरे कामना, जिन जैसा ध्याया ॥१३॥
अडिग इसा है मेरु ज्यो, डोलेन डुलाया।
भूमि जिसी भारी क्षमा, जिन सहन सिखाया ॥१४॥

निर्मल जैसा नीर है, मल दूर वहाया।
तेजवत पावक जिसा, भय शीत नशाया ॥१५॥
पवन जिमा सब[1] सारिखा, को रक न राया[2]। सबसे[1] लाया[2]
व्योम[3] जिसा हृदया वडा, कहु पार न पाया ॥१६॥ आकाश[3]
टेक जिसी प्रहलाद की, ध्रुव ज्यो मन लाया[1]। लगाय[1]
ज्ञान गहा शुकदेव ज्यो, परब्रह्म दिखाया ॥१७॥
योग युक्ति गोरक्ष ज्यो, वधा[1] मुरझाया। प्रपचसे[1]
हद्द छाड वेहद्द मे, अनहद्द[2] वजाया ॥१८॥

१ अनहद = नाद जो नाभि के पास निरतर होता रहता है जिसे नाद जाग्रत होना भी योगी लोग कहते हैं, वह ॐ ध्वनि होती है ढाई वर्ष के अभ्यास मे जाग्रत होती है, यह अनाहत नाद से भिन्न है। अनाहत नाद अनाहत चक्र मे होता है और दश प्रकार का होता है और अनहद एक ॐ की ही ध्वनि होती है।

जैसे नाम[1] कवीर जी, यू साधु कहाया। नामदेव[1]
आदि अतलो आय के, रम राम समाया ॥१९॥
सद्गुरु महिमा कहन को, मैं वहुत लुभाया।
मुख मे जिह्वा एक ही, तासे पछताया ॥२०॥
नमस्कार गुरुदेव को, जिन वन्ध छुडाया।
दादू दीन दयाल का, 'सुन्दर' यश गाया ॥२१॥
दोहा—सद्गुरु की महिमा कही, मति अपनी उनमान।
'सुन्दर' अमित अनन्त गुण, को कर सके वखान ॥२२॥

समाप्तोऽय सद्गुरु महिमा नीसांनी ग्रन्थ १२।

बावनी ग्रन्थ १३

दोहा—गुरु अविनाशी पुरुष है, घट का दादू नाउ[1]। नाम[1]
'सुन्दर' शोभा का कहू, नख शिख पर जाउ ॥१॥
शब्द सुनत मुक्ता भया, काटे कर्म अनेक।
मनसा वाचा कर्मना, हृदये राखै एक ॥२॥
इक अक्षर[1] है एकरस, क्षरे[2] सु है ओकार। ब्रह्म[1] वर्ण[2]
तरुवर ज्यो का त्यो रहै, छाया वहुत प्रकार ॥३॥
बावन अक्षर सव कथै, पण्डित वेद पुरान।
इक अक्षर सो अगम घर, वूझै[1] सन्त सुजान ॥४॥ समझे[1]
चौपाई—ओमकार आदी उतपन्ना। ओमकार त्रिधा भया भिन्ना ॥
(ॐ) ओमकार ऊरे यह माया। ओमकार हि परे हरि राया ॥५॥
नमस्कार निश दिन है ताको। नित्य निरतर नमिये वाको ॥

(न) निकट न दूर नजर नहि आवे । नेति नेति कह निगम सुनावे ।।६।।
(म) मन मे अगम मरे नहिं जीवे । मुक्त न बध शक्ति नहिं शीवे[1] । शिव[1]
मौन अमौन कहा नहिं जाई । मोल माप नहिं रहा समाई ।।७।।
(सि) सित[1]न असित[2] कुछ हरित न पीरा[3] । शशिहर[4] सूर तप्त नहि सीरा[5] ।
शीश न पाव श्रवण नहि नासा । सरस[6] न निरस[7] शब्द नहि श्वासा ।।८।।
१ श्वेत २ काला ३ पीला ४ चन्द्रमा ५ शीतल ६ रस सहित ७ रस रहित
(द्ध) द्धन्ध[1] अद्धन्ध[2] धूप नहिं छाया । धीर अधीर न भूखा धाया[3] ।
धरा[4] अधर[5] नहि रूप कुरूप । ध्ये[6] धाता नहिं ध्यान स्वरूप ।।९।।
१ क्रिया २ क्रिया रहित ३ तृप्त ४ सगुण ५ निर्गुण ६ ध्येय ।
(अ) अकह अगह अति अमित अपारा । अकल अमल अज आम[1] विचारा ।। प्रसिद्ध[1]
अलख अभेव[2]लखे नहिं कोई । अति अगाध अविनाशी सोई ।।१०।। अभेद[2]
(आ) आदि न अत मध्य कहु कैसा । आशा पास नही कुछ ऐसा ।।
आवे जाय न सुप्त न जागे । आहि अखण्डित पीछे आगे ।।११।।
(इ) इत उत जित कित है भरपूरा । इडा पिंगला से अति दूरा ।।
इच्छा रहित इष्ट को ध्यावे । इतनी जाने तो इत पावे ।।१२।।
(ई) ईश्वर एक और नहिं कोई । ईश शीश पर राखें सोई ।।
ईहा[1] और ईरखा भानो[2] । ईतरता[3] कबहू नहिं आनो ।।१३।।
१ इच्छा २ नाश करो ३ भेद भाव हृदय मे कभी भी नहिं आने दे ।
(उ) उत्तम वही उनमनी[1] लावे । उर मे पेख अपूठा जावे । समाधि[1]
उरे[1] उरे[1] उरझा[2] ससारा । उलटा[3]चले सु उतरे पारा ।।१४।।
१ इधर-उधर ही २ उलझ रहा है ३ ससार को पीठ देकर ईश्वर की ओर ।
(ऊ) ऊच नीच सम देख दोऊ । ऊरा[1] पूरा है नहिं कोऊ ।। अधूरा[1]
ऊपर तले एक[1]पहचाने । ऊवावाई[2] जगतहिं जाने ।।१५।।

१ ब्रह्म २ ऊवावाई-एक खडेला नरेश के पुत्र न था, पोपा नामक पुत्री थी । राजा का देहान्त हुआ तब पोपा को राजगद्दी पर बैठाया गया । वह राजनीति नही जानती थी, जो कोई कहता उसे ही मान लेती थी । यह सुन एक किसी अन्य ग्राम की चतुर स्त्री अपना नाम ऊवावाई रख कर खडेलेगई और पोपा को कहला भेजा कि आप की भुआ ऊवावाई आपसे मिलने आई है । पोपा ने उसे बुला लिया । ऊवावाई ने उससे पूछा मुझे पहचाना ? पोपा नही । ऊवावाई ने कहा—मैं तुम्हारे पिता की बडी बहिन हू आप से मिलने आई हूँ और अभी शीघ्र ही जाऊगी । मुझे विदाई का धन दे दो । पोपा ने दे दिया और वह लेकर चली गई । ऊवावाई विना हुई ही थी, पोपा ने अज्ञान से उसे धन देकर खोया, वैसे ही जगत विना हुआ ही है अज्ञान से जीव उसे जीवन देकर व्यर्थ खोता है, हरि भजन नही करता ।

(ए) एक ही ब्रह्म अनेक दिखाये । एकाकी हुये तिन पाये ।
ये मेरे ये तेरे कीये । येही अन्तर इन कर लीये ॥१६॥

(ऐ) ऐया बूझ तुम्हारी जानी । ऐयन[1]कोटिन दृष्टि भुलानी ॥ घनी[1]
ऐश्वर्य हि मन को मत[1] लावे । ऐसा ज्ञान गुरु समझावे ॥१७॥ नहीं[1]

(ओ) ओत प्रोत ओ व्यापक सारे । ओछी बुद्धि ओस जल[1] धारे ॥ भोगी[1]
ओर छोर वाका कहु नाही । ओट आख की आवहि जाही ॥१८॥

(औ) औषधि याही एक विचारी । और उपाय सकल अधियारी ॥
औसर वीते फिर पछतावे । औतर[1]औतर यासे आवे ।१९॥ जन्म[1]कर

(अ) अग[1] वही वोले या[2] माही । अजन[3] माहि निरजन[4] छाही[5] ॥
अघ[6] न लहे और दिशि दौरे । अतक[7] आय आय शिर फोरे ॥२०॥
१ जीव २ शरीर मे ३ माया मय देह मे ४ साक्षी ५ प्रतिविम्व रूप से ।
६ अज्ञानी ७ यमदूत वार वार आकर शिर फोडते है ।

(अ) अः अ उपजे आतम ज्ञाना । अहन[1]अहन मे वाही ध्याना । दिन दिन[1]
अलह[1]ताहि कवहू नहि होई । अहटि[2] रेहै सो वूडे सोई ॥२१॥ हानि[1] विमुख[2]

(क) कक्का कर काया मे वासा । काया माही कमल[1] प्रकाशा ॥ हृदय[1]
कमल माहि कर ताको[1] जोई[2] । करता मिले कर्म नहि कोई ॥२२॥
१ उस 'क' रूप ब्रह्म को २ देखे तो उसे ब्रह्म का साक्षात्कार हो और कोई
भी कर्म नही रहे, ज्ञानाग्नि से सव भस्म हो जावे ।

(ख) खख्खे खेल पसारा वाका । खलक[1]हि तजे खमम[2] हो ताका ॥ जगत[1]।स्वामी[2]
खैंच खैंच मन से[1] मन लावे । खरी[2] वात खालिक[3] को भावे ॥२३॥
१ समष्टि मन से=परमात्मा से मन को लगावे २ सच्ची वात जगत का
स्वामी[3] है ।

(ग) गग्गा गुप्त कहै गुरुदेवा । ज्ञानगुफा मे अलख अभेवा[1] । भदे शून्य[1]
गलगल[1]स्वाद तजे गुण[2] मारे, गगन[3] गहै गोविन्द[4] निहार ॥२४॥
१ गले तक के स्वादो को त्यागे २ तीन गुणो व कामादि को नष्ट करे
विकार ३ शून्य स्थिति मे जाकर ४ परब्रह्म का साक्षात्कार करे ।

(घ) घघ्घा घट[1] मे औघट[2] कहिये । घर ही माहि घाट[3] को लहिये ।
घाट माहि घन[4]घुरे[5] निसाना[6] । घण्टा[7] घोर[8] सुने को[9] काना ॥२५॥
१ अन्त करण २ विकट ३ प्रभु प्राप्ति का पथ ४ वादल ५ वजे ६नागाडे
७ अनाहत चक्र मे ८ महान ९ कौन अपने कानो सुने वा कोई सत ही सुनें ।

(ङ) ङङा नेह निरजन लागे । नारी तजे नरक से भागे ॥
निशि दिन नैनो नीद न आवे । नर तव ही नारायण पावे ॥२६॥

(च) चच्चा चित चहु दिशि से फेरे । चौक[1]हि बैठ चहूँ दिशि हेरे[2] ।।अन्त करण[1]।
चलत चलत[3] जब आगे जाई । चार पदारथ लागे पाई[4] ।।२७।।
२ मन, बुद्धि, चित्त, अहकार रूप चारो दिशा मे हेरे अर्थात् खोजे वा देखे[2] ।
उक्त प्रकार साधना मार्ग मे आगे वढते वढते[3] अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष पाता
है । प्राप्त करना ही उनका ४ पाऊ मे लगना है ।

(छ) छच्छा छाया[1] देख न भूली । छल बल करे छलगी ऊली[3] ।।
छिनछिन जो तरुवर[3]तत[4]पीवे । छाकिर[5]है तो युग युग जीवे ।।२८।।
१माया २ चेतन से इधर दूर रहने वाली माया ३ ब्रह्म ४ ज्ञानरस५मस्त रहे ।

(ज) जज्जा जाएत जागत जाणे[1] । जतन करे तो सहज पिछाणे ।।ज्ञान से[1]।।
जोग जुगति तनमन हि जरावे । जरा न व्यापे जोति[2]जगावे ।।२९।। ज्ञान [2]

(झ) झझ्झा झरत[1] रहै झल[2] देखे । झुकझुक[3] नीझर[4] पीव अलेखे[5]
झूझि[6] झटिक[7] उलटा[8] रस बूझे[9] । झलमल[10] झाल[11] दशो दिश सूझे[12] ।।३०।
१निकलती हुई २किरण३अन्तरमुख होकर४ज्ञान का झरणा ५लिखने न आवे
ब्रह्म ६युद्ध करके ७जीवत्व अहकार को हटावे ८बुद्धि ब्रह्म की ओर पलट करके
९ ज्ञान रस को समझे १० मद मद प्रकाश की ११ किरणें १२ दीखेंगी ।

(ञ) ञञ्ञा नाम लिये निसतरिये । नखिर[1]उपाय कछू नहिं करिये ।। लघु[1]
नारी नख शिख करे सिंगारा । नाक हि बिना फजीहत वारा ।।३१।।

(ट) टट्टा टेरि कहा गुरु ज्ञाना । टूक टूक हो[1] मर मैदाना[2] ।। वासना के[1]
टगे[3] न टैक टूट[4] नहिं जाई । टले काल और[5] हिं को खाई ।।३२।।
१ वासना के टूक टूक होकर २ ज्ञान रूप मैदान मे नष्ट हो जाय ३ अपने
साधन की टेक से डिगे[3] नही ४ भजन का तार टूटे नही तव काल अन्य
५ देहादि को ही खाता है आत्मा को नही ।

(ठ) ठट्ठा ठगनी[1] की मति धीजे । ठगे फेरि तो तव क्या कीजे ।।
ठौर[2] छोड जिन तके[3] पसारा[4] । ठगनी पैठि करे घट[5] छारा ।।३३।
१ माया २ ब्रह्म चिन्तन ३ देखे नही ४ मायिक फैलाव को देखगा तो
माया ५ अन्त करण को त्रिताप से जला देगी ।

(ड) डड्डा डारि देह डर[1] सब ही । डोरी[2] पकड डिगे नहिं कब ही ।
डड कमडल[3] दिढ कर राखी । डेरे[4] गये सु बोले साखी ।।३४।।
१ देह के नाश आदि का सब भय[1] छोट दे । २ भजन की डोरी पकडे ले
३ ध्यान ज्ञान के साधन दृढता से पकड ले ४ निज स्थान ब्रह्म को प्राप्त
करने की साक्षी देते है ।

(ढ) ढढ्ढा ढारत ढारै पासा[1] । ढारे अब जिन देख तमासा ।।
ढूढै[2] चौपड ढुल मिल जाई । ढवका[3] तब काहे को खाई ।।३५।।
१ व्यवहार रूप पासा २ न देखे इन्द्रिय पुन व्यवहार से न मिलें तब ३ धोखा क्यो खायेगा ।

(ण) णण्णा रुण झुण वाजे वीणा[1] । णारायण[2] सागर अति झीणा ।
णाम[3] प्रवीण होय जे कोई । णागर[4] मरण मिटावे सोई ।।३६।।
१ अनाहत नाद की । २ नारायण ३ नाम ४ नागर=ईश्वर वे ही जन्मादि मिटाते हैं ।

(त) तत्ता तरली[1] लगे शरीरा । तन मन भूले पैली तीरा ।।
तव त्रिभुवन पति पकडे वाही । तत्वे तत्त्व मिले तू नाही ।।३७।।
१ सूक्ष्म शरीर तत्त्व चिन्तन मे लग जाय और तन का अध्यास भूल जाय, तो ससार से पार हो जायगा तब प्रभु तेरा आत्मरूप हाथ पकड लेंगे फिर शरीर जिन तत्त्वो से बना है उन्ही मे मिल जायगा, तू नही तू तो ब्रह्म ही हो जायगा ।

(थ) थथ्था थावर[1] जगम थाना । थिरक[2] रहा सब माहि समाना ।।
थिर[3]सु होय थकिया[4] जनि राहा । थाहत[5]थाहत मिले अथाहा[6] ।।३८।
१ स्थावर २ स्थित ३ स्थिर रहेगा ४ थके नही ५ खोजत खोजत ब्रह्म[6] से मिल जायगा ।

(द) दद्दा दम गह दिल को धोई । दिल मे दर्द मिलेगा सोई ।।
दह[1]दिश तोहि होय दीदारा । देय अभयपद सिरजन हारा ।।३९।। दश[1]

(ध) धध्धा धाम धणी का दीसे । धून्धमार[1] जो नान्हा[2] पीसे ।।
ध्यान धरे धुनि से लय लावे[4] । धन्य धन्य सब कोई गावे ।।४०।।
१ राजा त्रिशकु का पुत्र कुवलयाश्व के समान सूक्ष्म[2] तत्त्व का सूक्ष्म रूप मे विचार करे और ध्यान, नाम धुनि, लय चिन्तन ४ करे उसे सब धन्य ही कहते हैं ।

(न) नन्ना निरणेकर नीखारा[1] । निकट निरजन सब से न्यारा ।। अलग[1]
न्यारे को नीके कर जाने । नाही कछू तहा मन माने ।।४१।।

(प) पप्पा परमित लहै न कोई । परम पुरुष परले नहि होई ।।
पाणी[1] पादौ पेट न पृष्टी । पच तत्त्व से पैला[2] इष्टी ।।४२।। हाथ[1] परे[2]

(फ) फफ्फा फूल[1] विना फल[2] चाखे । फूल जाय[2] तो फिर कर नाखे ।।
फटकि पिछौडि डार चतुराई फूक देह सब मान वडाई ।।४३।।
१ माया २ ब्रह्म ३ मन माया मे जाये तो उस माया को त्याग दे । जैसे छाज कचरा को निकाल दे, वैसे ही चतुराई को त्याग दे । देह सम्बन्धी मान वडाई जला दे ।

(व) बब्बा बानिक बन है तेरा । बद[1] लगाइ शब्द सुन मेरा ।।
बार बार बहुरो नहिं भेटा[2] । वेगि न मिले बाप[3] को बेटा[4] ।।४४।।
१ मन के एग्रहता रूप वन्द लगा, मेरा शब्द सुनेगा। २ मिलन ३ ईश्वर से ४ आत्मा शीघ्र ही नही मिल जाता। अत पूर्ण प्रयत्न करके प्रभु से मिल।

(भ) भभ्भा भया सिधो का मेला । भारी भेद[1] बूझ ले चेला ।। रहस्य[1]
भिक्षा[2] भोजन भर भर खाई । भडारा गुरु बाटा आई ।।४५।। ज्ञान[2]

(म) मम्मा मार ममता मत आने । मोम[1] होय सब मरमहि जाने ।। नम्र[1]
मरदहि मान मैल हो दूरी । मन मे मिले सजीवन[2] मूरी ।।४६।। परमात्मा[2]

(य) यय्या याको याही[1] पावे । याहि[2] पकड थाके घर ल्यावे ।। इसीसे[1] आत्मा[2]
याका याही वैरी होई । याका यही मित्र है सोई ।।४७।।

(र) रर्रा रती रती समझाया । रे रे रक सुमिर लै राया[1] ।। हरि[1]
रमता राम रहा भरपूरा । राख हृदव पण[2] छाड न सूरा ।।४८।। गर्भ मे करा[2]

(ल) लल्ला लगकर उठे भभूका[1] । लबा गुरु लगावे लूका[2] ।।
लूट पाट लोगन को खाई । लका छोड प्रलका[3] जाई ।।४९।।
१ लपट २ जलती लकडी वा ज्ञान । ३ हनुमान लका को जला कर लका से परे चले गये थे। वैसे ही ज्ञान सब का अन्त कर गुणमय वृत्तिये जलाकर ब्रह्मरूप मे ही जाता है।

(व) वव्वा बोरा[1] ज्यो गल जावे । वैसा होय उसी ल्यौ लावे ।। ओला[1]
वासे[2] कोई कहै न जूवा[3]। वाहि वाहि कर वाही हूवा ।।५०।। ब्रह्म से[2] जूदा[3]

(स) सस्सा सेत[1] पीत न हिं श्यामा । सकल शिरोमणि जिसका नामा ।। श्वेत।।[1]
ससकार से सुमिरे कोई । सोधे मूल[2] सुखी सो होई ।।५१।। ब्रह्म[2]

(ष) षष्षा खत[1] को फाड जलावे । खोड[2] तजे खोट[3] नहि खावे ।। सचितकर्म का[1]
खुसी होय खग[4] चढ आकाशा[5] । खाय अभख[6] तब निहचल वासा[7] ।।५२।।
२ देह ३अभक्ष । ४ज्ञान वैराग्य पखो वाला पक्षी ५ब्रह्म ६ममता को ७ ब्रह्म मे।

(श) शश्शा साहिब सेवक सगा । सुरति करे जब सिमटे अगा[1] ।। वृत्तिया[1]
सो रस पी रसिया हो ऐसा । शकर शेष रसिक है जैसा ।।५३।।

(ह) हह्हा होणहार पर राखे । हरषि हरषि कर हरि रस चाखे ।।
हाल[1]हाल हो हेत लगावे । हँसि हँसि हँसे[2] हस मिलावे ।।५४।।
१ प्रेम निग्न हो होकर २ परम हसो = सतो के द्वारा आत्मा को परमात्मा से मिलाये।

(क्ष) क्षक्षा क्षिर क्षिर[1] गये अनेका । क्षण क्षण माहिं खबर कर येका[2] ।।
क्षर ससार[3] क्षाल[4]जिन किया । क्षाली[5]सहीखरा[6]कर लीया[7] ।।५५।।
१ नाश २ ब्रह्म ३ नाशवान ४ धोकर ५ जिनने बुद्धि साफ करली उन्ही ने सत्यरूप से अपने को श्रेष्ठ ६बना लिया और ७ ब्रह्म को प्राप्त कर लिया ।।

(ज्ञ) ज्ञान वही कोई जो पावे। ज्ञाता के हृदय ठहरावे ॥
ज्ञेय वस्तु को जाने सोई। ज्ञानी वही और नहिं कोई ॥५६॥
करत करत अक्षर का जौरा[1]। निशि वितीत प्रकट भया भोरा[2] ॥
'सुन्दर' दास गुरु मुख जाना। खिरे[3] नही तासे मन माना ॥५७॥
१ जोडते जोडते २ प्रात काल ३ नाश नही हो उसी ब्रह्म के चिन्तन मे सतोष मानता है।

दोहा—क्षर[1] माही अक्षर लखा, सतगुरु के सुप्रसाद। नाशवान[1]
'सुन्दर' ताहि विचार कर, छूटा सहज विषाद[2] ॥५८॥ जन्मादि दुख[2]

समाप्तोऽय बावनी ग्रन्थ. १३।

अथ गुरु दया षट् पदी ग्रन्थ १४

दोहा—अलख निरजन बन्दके, गुरु दादू के पाउ[1] ॥ चरण[1]
दोऊ कर भल जोड कर, सन्तन को शिर नाउ ॥१॥
'सुन्दर' तोहि दया करी, सतगुरु गहिया हाथ।
माता[1] था अति मोह मे, राता[2] विषया साथ ॥२॥ मस्त[1] रत[2]

त्रिभगी—तो मैं मत माता विषयराता बहिया जाता इन बाता।
तब गोते खाता बूडत गाता होती घाता पछताता ॥
उन सब सुखदाता काटा नाता आप विधाता गहलेला।
दादूका चेला चेतन भैला[1] सुन्दर' मारग बूझेला ॥१॥ भया[1]
तो सतगुरु आया पथ बताया ज्ञान गहाया मन भाया।
सब कृत्रिम माया यू समझाया अलख लखाया सच पाया ॥
हू फिरता धाया उनमनि[1]लाया त्रिभवन राया दत[2]देला। समाधि[1]दान[2]।
दादू का चेला चेतन भैला 'सुन्दर' मारग[3] बूझेला ॥२॥ प्रभुका[3]
तो माया बटके[1] कालहि झटके लेकर पटके सब गटके। टुकडे[1]
ये चेटक[2] नटके जानहि तटके नैकन अटके वे सटके[3] ॥ खेल[2] चले गये[3] ॥
जो डोलत भटके सतगुरु हटके बन्धन घटके[4] काटेला। अन्त करणके[4]
दादू का चेला चेतन भैला 'सुन्दर' मारग बूझेला ॥३॥
तो पाई जरिया[1] शिर पर धरिया विष ऊखरिया तन तरिया ॥ जडी[1]
जी[1]अब नहिडरिया चचल थिरिया गुरु उच्चरिया सो करिया॥ जीव[1]
तब उमगा दरिया[2]अमृत झरिया घट[3]भरिया छूटे रेला ॥ ज्ञान[2] हृदय[3]
दादू का चेला चेतन भैला 'सुन्दर' मारग बूझेला ॥४॥
तो देखा सीना[1] माफ नगीना[2] मारग झीना पग हीना। अन्त कारण[1]ब्रह्म॥[2]
अब हो तू दीना दिन दिन छीना[3]जल विन मीना यू लीना[4] ॥ अहकार[3]तल्लीन[4]

जी[5] सो परवीना रस मे भीना अन्तर कीना मन मेला[6] । जीव[5] मेल[6]
दादू का चेला चेतन भैला 'सुन्दर' मारग बूझेला ॥५॥
तो वेठा छाज[1] अन्तर[2] गाज रण मे राज नहिं भाज[5] । शोभे[1] हृदय[2] मंदिर से[3]
जी कीया काज जोडा साज तोडी लाज यह पाजं[4] । भव सिन्ध पर सेतु[4]
उन सब शिरताज तबहिं निवाज आनन्द आज अब केला[5] । अकेला[5]-
दादू का चेला चेतन भेला 'सुन्दर' मारग बूझेला ॥६॥

समाप्तोऽयं गुरु दया षट् पदी ग्रन्थ १४

अथ भ्रम विध्वंस अष्टक ग्रन्थ १५

दोहा 'सुन्दर' देखा सोधके, सब काहू का ज्ञान ।
कोई मन माने नहीं, बिना निरंजन ध्यान ॥१॥
षट दर्शन हम खोजिया, योगी जंगम शेष ।
सन्यासी अरु सेवडा,[1] पण्डित भक्ता भेषा ॥२॥ जैनयती[1]

त्रिभंगी—तो भक्ति न भावे दूर बतावे तीरथ जावे फिर आवे ।
जी कृत्रिम गावे पूजा लावे झूठ दिढावे बहकावे ॥
अरु माला नावे तिलक बनावे क्यो पावे गुरु बिना गैला[1] । अज्ञानी[1]
दादू का चेला भरस पछेला[2] 'सुन्दर' न्यारा हो खेला ॥१॥ पीछे[2]
तो योगी गहला देखे सहिला नाही लहिला वो महिला[1] । महल[1]
वे मास भखेला मद पीवेला भूत जपेला पूजेला ॥
जो गोरख कहिला[1] सो न करहिला बिनही चहला[2] बीधेला[3] ॥
दादू का चेला भरम पछेला[4] 'सुन्दर' न्यारा हो खेला ॥२॥
१ कहेगे २ कीचड ३ फँसेगे ४ भरम को पीछे छोडकर सबसे अलग होकर ।
तो तपी सन्यासी राख लगासी जटा बधासी भटकासी ।
जब जोवन जासी धोला आसी तब कर दासी बैठासी ॥
सब अकल गमासी लोक हँसासी माया पाशी उरझेला ।
दादू का चेला भरम पछेला 'सुन्दर' न्यारा हो खेला ॥३॥
तो जंगम अंगा लटके लिगा[1] फिरे कुढंगा शिव मंगा । चिन्ह[1]
वे डसे अनङ्गा[2] बड भुजंगा दीप पतंगा सर्वंगा ॥ काम[2]
पुनि नाही चंगा देखे रंगा उनका संगा छाडेला ।
दादू का चेला भरम पछेला 'सुन्दर' न्यारा हो खेला ॥४॥
तो अरहत[1] धरमी भारी भरमी केश उपरमी बेशरमी । जैन[1]
जी भोजन नरमी खावे खुरभी मनमथ[1] करभी अति उरभी[2] । काम[1] तरंग[2]
अरु दृष्टि सु चरमी अन्तर गरमी नाही मरमी[1] गह ठेला[2] ॥ मरमज्ञ[1] त्याग[3]
दादू का चेला भरम पछेला 'सुन्दर' न्यारा हो खेला ॥५॥

तो शेष मुलाना पढे कुराना पश्चिम जाना उन ठाना ।
जी भाग भुजाना बगनी छाना भये दिवाना सैताना ।।
अरु जीव दुखाना दरद न आना कहा न माना[1] वरजेला ।	सतोका[1]
दादू का चेला भरम पछेला 'सुन्दर' न्यारा हो खेला ।।६।।
तो पडित आये वेद भुलाये षट करमाये त्रपनाये[1] ।	तर्पणादि[1]
जी सध्या गाये पढ उरझाये राना राये[2] ठग खाये ।	राजा[2]
अरु वडे कहाये गर्व न जाये राम न पाये थाघला[3] ।	थाह लग गया[3]
दादू का चेला भरम पछेला 'सुन्दर' न्यारा हो खेला ।।७।।
तो ये मत हेरे सब हिन केरे गह गह गेरे वहुतेरे ।
तब सतगुरु टेरे कानन मेरे जाते फेरे आघेरे ।।
उन सूर सवेरे उदय कियेरे सबै अन्धेरे नागेला ।
दादू का चेला भरम पछेला 'सुन्दर' न्यारा हो खेला ।।८।।

छप्पया—सतगुरु मिले सुजान, श्रवण जिन शब्द सुनाया ।
शिर पर दीया हाथ, भरम सब दूर उडाया ।।
उपजा आतम ज्ञान, ध्यान अभिअन्तर लागा ।
किया ब्रह्म से नेह, जगत से तोडा तागा ।।
तो राम नाम दत पाइया, छूटे वाद विवाद से ।
अब 'सुन्दरदास' सुखी भये, गुरु दादू सु प्रसाद से ।।९।।

समाप्तोऽयं भ्रम विध्वंस अष्टक ग्रन्थ १५

अथ गुरु कृपा अष्टक ग्रन्थ १६

दोहा—दादू सद्गुरु के चरण, अधिक अरुण अरविन्द ।
दुःखहरण तारण-तरण, मुक्त करण सुख कन्द ।।१।।
नमस्कार 'सुन्दर' करत, निश दिन वारवार ।
सदा रहो मम शशि पर, सद्गुरु चरण तुम्हार ।।२।।

त्रिभगी—तो चरण तुम्हारा प्राण हमारा तारण हारा भव पोत ।।
जो गहै विचारा लगे न वारा विन श्रम पारा सो होत ।।
सब मिटे अधारा होय उजारा निर्मल सारा सुख राशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ।।१।।

दोहा—तन मन इन्द्रिय वशकरण, ऐसा सद्गुरु शूर ।।
शक न आने जगत की, हरि से सदा हजूर ।।३।।

त्रिभगी—तो सदा हजूर अरिदल चूर भागे दूर भकभूर[1] ।	अतितीव्र[1]
तब बाजे तूरं आतम मूर झिलमिल नूर भरपूर ।।

पुनि रहै अकूर नाही ऊर[2] प्रेम हिलूर[3] वरपाशी । कम[2] लहर[3]
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥२॥
दोहा – द्वन्द्व रहित निर्मल दशा[1], सुख दुःख एक समान । अवस्था[1]
भेदाभेद न देखिये, सद्गुरु चतुर सयान ॥४॥
त्रिभंगी—तो चतुर सयान भेद न आन अविचलथान जिन जान ।
अरु सब भ्रम भान नाही छान पद निर्वान मन मान ॥
जो रहै निदान सो पहिचान पूरण ज्ञान मम आशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाय ब्रह्म बताया अविनाशी ॥३॥
दोहा—सम दृष्टी शीतल सदा, अद्भुत जाकी चाल ।
ऐसा सद्गुरु कीजिये, पल मे करे निहाल ॥५॥
त्रिभंगी – तो करे निहाल अद्भुत चाल भया निराल तज जाल ।
सो पिवे पियाल अधिक रसाल ऐसा हाल यह ख्याल ॥
पुनि वृद्ध न वाल करम न काल भागे साल चतुराशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥४॥
दोहा – मनसा वाचा कर्मना, सब ही से निर्दोष ।
क्षमा दया जिनके हृदय, लीये सत संतोष ॥६॥
त्रिभंगी—तो सत सन्तोष है निर्दोष कतहु न रोष सब पोष ।
पुनि अन्तहु कोप निर्मल चोख नाही धोख गुण सोख ॥
तिहिं समसरि[1] जोश[2] कोइन होंस[3] जीवन मोष[4] दरसाशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥५॥
१ समान २ आवेश ३ इच्छा ४ मोक्ष ।
दोहा—भानु उदय ज्यो होत ही, रजनी तम का नाश ।
सुख दाई सद्गुरु सदा, जिन के हृदय प्रकाश ॥७॥
त्रिभंगी – तो हृदय प्रकाश रटते श्वास भया उजास तम नाश ।
पुनि धर[1] आकाश[2] मध्य निवास कीया वास अनयास ॥ ध्यान[1] ब्रह्म[2]
सो है निज दास प्रभु के पास करत विलास[3] गुण रासी । आनन्द[3]
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥६॥
दोहा—सद्गुरु प्रकटे जगत मे मानो पूरण चन्द ।
घट माही घट से पृथक, लिप्त न कोऊ द्वन्द ॥८॥
त्रिभंगी—तो लिप्त न द्वन्द्व पूरण चन्द नित्यानन्द निस्पद[1] । गात[1]
सो गुरु गोविन्द एक पसन्द गावत छन्द सुख कन्द ॥
जे है मति मन्द बोधे[1] फन्द वे नव रिद[2] सुखरासी । फंसे[1] नास्तिक[2]
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥७॥

दोहा—सद्गुरु सुधा[1] समुद्र हैं, सुधामयी है नैन।　　अमृत[1]
नख शिख सुधा स्वरूप पुनि, सुधा सु बरषत बैन ॥९॥

त्रिभंगी—तो जिनकी बानी अमृत बखानी सतन मानी सुखदानी।
जिन सुन कर प्रानी हृदये आनी बुद्धि थिरानी उन जानी॥
है अकथ कहानी प्रकट प्रमानी नाही छानी गगासी।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी॥८॥

छप्पय—सदगुरु ब्रह्म स्वरूप, रूप धारे जग माही।
जिनके शब्द अनूप, सुनत सशय सब जाही॥
उर मे ज्ञान प्रकाश, होत कुछ लगे न बारा।
अन्धकार मिट जाय, कोटि सूरज उजियारा।
दादू दयाल दह[1] दिश प्रकट, झगर झगर दीपख थकी।　　दश[1]
कह 'सुन्दर' पथ प्रसिद्ध यह, सप्रदाय परब्रह्म की॥१॥

समाप्तोऽय गुरु कृपा अष्टक ग्रन्थ १६।

अथ गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक ग्रन्थ १७

दोहा—दादू सद्गुरु शीश पर उर[1] मे जिनका नाम।　　हृदय[1]
'सुन्दर' आये शरण तकि, तिन पाया निज धाम॥१॥
बहे जात ससार मे, सद्गुरु पकडे केश।
'सुन्दर' काढे डूबते, दे अद्भुत उपदेश॥२॥

गीतक—उपदेश श्रवण सुनाय अद्भुत, हृदय ज्ञान प्रकाशिया।
चिरकाल का अज्ञान पूरण, सकल भ्रमतम नाशिया॥
आनन्ददायक पुनि सहायक, करत जन निष्काम हैं।
दादू दयालु प्रसिद्ध सद्गुरु, ताहि मोर[1] प्रनाम हैं॥१॥　　मेरी[1]

दोहा—'सुन्दर' सद्गुरु हाथ मे, करडी लिई कमान।
मारा खैंचिकसीस[1] कर, वचन लगया वान॥३॥　　तानकर[1]

गीतक—जिन वचन बान लगाय उर मे, मृतक फेरि जिवाइया।
मुख द्वार होय उचार कर, निज सार अमृत पिवाइया॥
अत्यन्त कर आनन्द मे हम, रहत आठो जाम[1] हैं। पहर[1]
दादू दयालु प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम॥२॥

दोहा—सुन्दर' सद्गुरु जगत मे, पर उपकारी होइ।
नीच ऊँच सब ऊधरे, शरणे आवें कोइ॥४॥

गीतक—जो आय शरणे होहि प्रापत, ताप तिन तन की हरे।
पुनि फेरि बदले घाट उनका, जीव से ब्रह्महि करे।

आपा मेटे हरि भजे, तन मन तजे विकार
निर्वैरी सब जीव सौ, दादू यह मत सार ॥

सन्त प्रवर अनन्त श्री दादू जी महाराज

आविर्भाव वि० स० १६०१
फाल्गुन शुक्ला अष्टमी गुरवार

धरातल त्याग वि० स० १६६०
ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी शनिवार

कुछ ऊच नीच न दृष्टि जिनके, सकल को विश्राम हैं ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सद्गुरु, ताहि मोर प्रनाम हैं ॥३॥

दोहा—'सुन्दर' सद्गुरु सहज मे, कीये पैली पार ।
और उपाय न तिर सके, भवसागर संसार ॥५॥

गीतक—ससार सागर महा दुस्तर, ताहि कहि अब को तरै ।
जो कोटि साधन करे कोऊ, वृथा ही पच पच मरै ॥
जिन बिना परिश्रम पार कीये, प्रकट सुखके धाम है ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं ॥४॥

दोहा—'सुन्दर' सद्गुरु यू कहैं, याही निश्चय आन ।
जो कुछ सुनिये देखिये, सर्व स्वप्न कर जान ॥६॥

गीतक—यह स्वप्न तुल्य दिखाइये जे, स्वर्ग नरक उभय कहै ।
सुख दु ख हर्ष विषाद पुनि, मानापमान सबै गहैं ॥
जिन जाति कुल अरु वर्ण आश्रम, कहे मिथ्या नाम हैं ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सद्गुरु, ताहि मोर प्रनाम हैं ॥५॥

दोहा—'सुन्दर' सद्गुरु यूं कहैं सत्य कछू नहिं रच ।
मिथ्या माया विस्तरी, जो कुछ सकल प्रपच ॥७॥

गीतक—उपजा प्रपच अनादि का यह, महा माया विस्तरी ।
नानात्व होकर जगत भासा[1], बुद्धि सब हिन की हरी ॥ दीखा[1]
जिन भ्रम मिटाय दिखाय दीन्हा, सर्व व्यापक राम है ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सद्गुरु, ताहि मोर प्रनाम है ॥६॥

दोहा—'सुन्दर' सद्गुरु यू कहैं, भ्रम से भासे और ।
सीप माहि रूपा द्रसे, सर्प रज्जु की ठौर ॥८॥

गीतक—रज्जु माहि जैसे सर्प भासे, सीप मे रूपा[1] यथा । चादी[1]
मृगतृष्णि[1] को जल बुद्धि देखे, विश्व मिथ्या है तथा ॥ तृष्णा[1]
जिन लहा ब्रह्म अखड पद, अद्वैत[3] सबही ठाम है । एक[3]
दादू दयालु प्रसिद्ध सद्गुरु, ताहि मोर प्रनाम है ॥७॥

दोहा—'सुन्दर' सद्गुरु यू कहै, मुक्त सहज ही होय ।
या अष्टक से भ्रम मिटे, नित्य पढे जे कोय ॥९॥

गीतक—जो पढे नित प्रति ज्ञान अष्टक, मुक्त होय सु सहज ही ।
सशय न कोऊ रहै ताके, 'दास सुन्दर' यह कही ॥
जिन हो कृपालु अनेक तारे, सकल विधि उद्दाम[1] है । महान[1]
दादू दयालु प्रसिद्ध सद्गुरु, ताहि मोर प्रनाम ॥८॥

दोहा—'सुन्दर' अष्टक सब सरस, तुम जिन जानो आन ।
अष्टक याही कहै सुने, ताके उपने ज्ञान ।।१०।।

समाप्तोऽयं गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक ग्रन्थ १७

अथ गुरुदेव महिमा स्तोत्राष्टक ग्रन्थ १८

दोहा—परमेश्वर अरु परम गुरु, दोऊ एक समान ।
'सुन्दर' कहत विशेष यह, गुरु से पावे ज्ञान ।।१।।
दादू सदगुरु के चरण, वदत 'सुन्दरदास' ।
तिनकी महिमा कहतहू, जिन से ज्ञान प्रकाश ।।२।।

भुजङ्ग प्रयात—प्रकाश स्वरूप हृदै ब्रह्म ज्ञान, सदाचार येही निराकार ध्यान ।
निरीह[1] नि जानद जाने जगादू, नमो देव दादू नमो देवदादू ।।१।। विरक्त[1]
अछेद अभेद अनत अपार, अगाध अबाध निराधार सार ।
अजीत अभीत गहे हैं समादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ।।२।। समादिपद[1]
हते काम क्रोध तजे काल जाल, भगे लोभ मोह गये सर्व साल[1] । दुःख[1]
नही द्वन्द्व कोऊ डरे हैं जमादू[2], नमो देव दादू नमो देव दादू ।।३।। यमादि[2]
गुणतीत देहादि इन्द्री जहाँ लौं, किये सर्व सहार वैरी तहा लौं ।
महाशूरवीर नही को विषादू[1], नमो देव दादू नमो देव दादू ।।४।। दुःख[1]
मनो काय वाच तजे हैं विकार, उदै भानु होते गया अधकार ।
अजोन्य[1] अनायास पाये अनादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ।।५।। अयोनि[1]
क्षमावत भारी दयावन्त ऐसे, प्रमाणीक आगे भये सत जैसे ।
गहा सत्य सोई लहा पथ आदू[1], नमो देव दादू नमो देव दादू ।।६।। आदिका[1]
किये आप आपै बडे तत्त्व ज्ञाता, बडी मौज पाई नही पक्ष पाता ।
बडी बुद्धि जाकी तजा है विवादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ।।७।।
पढे याहि नित्य भुजग प्रयात, लहै ज्ञान सोई मिले ब्रह्म तात ।
मनो कामना सिद्धि पावे प्रसादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ।।८।।

दोहा—परमेश्वर मे गुरु वसे, परमेश्वर गुरु माहिं ।
'सुन्दर' दोऊ परसपर, भिन्न भाव सो नाहिं ।।३।।
परमेश्वर व्यापक सकल, घट धारे गुरुदेव ।
घट को घट उपदेश दे, 'सुन्दर' पावे भेव[1] ।।४।। रहस्य[1]

समाप्तोऽय गुरुदेव महिमा स्तोत्राष्टक ग्रन्थ १८ ।

अथ रामाष्टक ग्रन्थ १९

मोहनी—आदि तुम ही हुते, और नहि कोइ जी ।
अहक[1] अति अगह अति, वर्ण नहि होय जी ।। कहने मे न आवे[1]

रूप नहिं रेख नहिं श्वेत नहिं श्याम जी ।
तुम सदा एकरस, रामजी रामजी ॥१॥
प्रथम ही आपने, मूल माया करी ।
बहुर वह क्षुब्ध[१] हो, त्रिगुण हो विस्तरी ॥ चचल[१]
पच हू तत्त्व से, रूप अरु नाम जी ।
तुम सदा एकरस, रामजी रामजी ॥२॥
विधि रजो गुण लिये, जगत उतपति करै ।
विष्णु सतगुण लिये, पालना उर धरै ॥
रुद्र तम गुण लिये, सहरै धाम[१] जी । प्रभाव[१]
तुम सदा एकरस, रामजी रामजी ॥३॥
इन्द्र आज्ञा लिये, करत नहिं और जी ।
मेघ वर्षा करै, सर्व ही ठौर जी ।
सूर शशि फिरत हैं, आठ हू याम[१] जी । पहर[१]
तुम सदा एकरस, रामजी रामजी ॥४॥
देव अरु दानवा, यक्ष ऋषि सर्व जी ।
साधु अरु सिद्ध मुनि, होहि निह[१] गर्व जी ॥ रहित[१]
शेष हू सहस्र मुख, भजत निष्कामजी ।
तुम सदा एकरस, रामजी रामजी ॥५॥
जलचरा थलचरा, नभचरा जन्त जी ।
चार हू खानि के, जीव अगिनन्त जी ॥
सर्व उपजे खपै, पुरुप अरु वाम जी ।
तुम सदा एकरस, रामजी रामजी ॥६॥
भ्रमत सँसार कतहूँ, नाही ओर जी ।
तीन हू लोक मे, काल का शोर जी ॥
मनुष तन यह वडे, भाग्य से पाम[१]जी । पाते हैं[१]
तुम सदा एकरस, रामजी रामजी ॥७॥
पूर्ण दशहू दिशा, सर्व मे आपजी ।
स्तुति हि को कर सके, पुन्य नहिं पापजी ॥
'दास सुन्दर' कहै, देहु विश्राम जी ।
तुम सदा एकरस, रामजी रामजी ॥८॥

समाप्तोऽय रामाष्टक ग्रन्थ १९ ।

अथ नामाष्टक ग्रन्थ २०

मोहनी—आदि तूं अन्त तूं, मध्य तूं व्योम[1]वत ।　　　आकाश[1]
वायु तूं तेज तू, नीर तूं भूमि तत[2] ।।　　　तत्त्व[2]
पच हू तत्त्व तूं, देह तैं ही करे ।
हे हरे हे हरे, हे हरे हे हरे ।।१।।
चार हू खानि के, जीव तैं ही सृजे ।
जोनि ही जोनि के, द्वार आये वृजे[1] ।।　　　गये[1]
ते सर्व दुख मे, जे तुम्हे वीसरे ।
ईश्वरे ईश्वरे, ईश्वरे ईश्वरे ।।२।।
जे कछू ऊपजे, व्याधि हू आधवे[1] ।　　　मनके दुख[1]
दूर तूं ही करै, सर्व जे बाधवे[3] ।।　　　बाधक[3]
वैद्य तू औषधी, सिद्ध तूं साधवें[2] ।।　　　साधु[2]
माधवे माधवे माधवे माधवे ।।३।।
ब्रह्म तूं विष्णु तूं, रुद्र तूं वेष[1] जी । ब्रह्मादि से विशेष[1]
इन्द्र तूं चन्द्र तू, सूर तू शेष जो ।।
धर्म तूं कर्म तूं, काल तूं देशवे[2] ।　　　देशभी[2]
केशवे केशवे, केशवे केशवे ।।४।।
देव मे दैत्य मे, ऋष्यि[1] मे यक्ष मे ।　　　ऋषि[1]
योग मे यज्ञ मे, ध्यान मे लक्ष मे ।।
तीन हू लोक मे, एक तू ही भजे[2] ।　　　भजते है[2]
हे अजे हे अजे, हे अजे हे अजे[3] ।।५।।　　　अजन्मा[3]
राव मे रंक मे, साह मे चोर मे ।
कीर[1] मे काग मे, हंस मे मोर मे ।।　　　तोता[1]
सिंह मे स्याल मे, मच्छ मे कच्छये[2] ।　　　कछवामे[2]
अक्षये अक्षये, अक्षये अक्षये ।।६।।
बुद्धि मे चित्त मे, पिंड मे प्राण मे ।
श्रोत्र मे वैन मे, नैन मे घ्राण मे ।।
हाथ मे पाव मे, शीश मे सोहने[3] ।　　　सुन्दर[3]
मोहने मोहने, मोहने मोहने ।।७।।
जन्म से मृत्यु से, पुन्य से पाप से ।
हर्ष से शोक से, शीत से ताप से ।।

राग से द्वेष से, द्वन्द्व से है परे।
सुन्दरे सुन्दरे, सुन्दरे सुन्दरे ।।८।।

समाप्तोऽयं नामाष्टक ग्रन्थ २०

अथ आत्मा अचलाष्टक ग्रन्थ २१

कुण्डलिया—पानी चडस सदा चले, चले लाव अरु बैल।
खाभी[1] चलता देखिये, कूप चले नहि गैली ।। कीलिया[1]
कूप चले नहि गैल[2], कहैं सब कूवा चाले। साथ[2]
ज्यो फिरता नर कहै, फिरे आकाश पताले ।।
'सुन्दर' आतम अचल, देह चाले नहि छानी।
कूप ठौर का ठौर, चलत है चडस रु पानी ।।१।।

सृष्टि[1] सवाई चलत है, चले न कबहू राह। के प्राणी[1]
अपने अपने काम को, चले चोर अरु साह ।।
चले चौर अरु साह, कहै सब मारग चाले।
जल हालत लग पवन, कहै प्रतिबिंबहि हाले ।।
'सुन्दर' आतम अचल, देह आवे अरु जाई।
राह ठौर का ठौर, चलत है सृष्टि सवाई[2] ।।२।। सब[2]

तेल जरे[1] बाती जरे, दीपक जरे न कोइ। जले[1]
दीपक जरता सब कहै, भारी अचरज होइ ।।
भारी अचरज होइ जरे लकरी अरु घासा।
अग्नि जरत सब कहैं, होय यह बडा तमासा ।।
'सुन्दर' आतम अजर, जरे यह देह विजाती।
दीपक जरे न कोय जरत है तेल रु बाती ।।३।।

बादल दौरे जात है, दौरत दीसे चन्द।
देह संग से आतमा चलत कहै मतिमन्द ।।
चलत कहै मतिमन्द, आतमा अचल सदा ही।
हले चले यह देह, थापि[1]ले आतम माही। मानले[1]
'सुन्दर' चंचल बुद्धि, समझ ता मे नहि दौरे।
दौरत दीसे चन्द, जात है बादल दौरे ।।४।।

गंगा बहती कहत हैं, गंगा वाही ठौर।
पानी बह बह जात है, कहै ओर की ओर ।।
कहै ओर की ओर, परत है देखन चाही[1]। समुद्र में[1]
गंगा बहती कहै, यहै पानी को गाही ।।

'सुन्दर' आतम अचल, देह हलचल हो भंगा ।
पानी बह बह जात, बहै कबहु नहि गगा ॥५॥
कोल्हू[1] चालत सब कहैं, समझ नहि घट माहि ।
पाठ[2] लाठ[3] मकडी[4] चलै, बैल चले पुनि जाहि ।
बैल चले पुनि जाहि, चलत है हाकन हारो ।
पेली[5] घालत चले, चलत सब ठाट विचारो ।
'सुन्दर' आतम अचल, देह चचल है मोल्हू[6] ।
समझ नही घट माहि, कहत है चालत कोल्हू ॥६॥

१ गन्ने की घाणी　२ घाणी की एक लकडी　३ दूसरी लकडी ४ जिसमे लाठ फिरती है　५ गन्ने के टुकडे　६ मूर्ख, उक्त सब घाणी की वस्तुयें हैं ।

बिन जाने नर कहत हैं, चला जाय बाजार ।
लोग चले सब जात है, हाट न चले लगार[1] ।　　किंचित्[1]
हाट न चले लगार, विचार कछू नहि लहते ।
नदी नीर के वृक्ष, कहैं पानी मे बहते ॥
'सुन्दर' आतम अचल, देह यह चले दिवाने[1] ।　　पागल[1]
चला जाय बाजार, कहत है नर बिन जाने ॥७॥

सब कोऊ ऐसे कहै, काटत हैं हम काल ।
काल नाश सबका करे, वृद्ध तरुण अरु बाल ॥
वृद्ध तरुण अरु बाल, साल[1] सबहि न के भारी ।　　दुख[1]
देह आपको जान, कहत हैं नर अरु नारी ॥
'सुन्दर' आतम अमर, देह मर है घर खोऊ ।
काटत है हम काल, कहत ऐसे सब कोऊ ॥८॥

समप्तोऽय आत्माअचलाअष्टक ग्रन्थ २१ ।

अथ पजाबी भाषा अष्टक ग्रन्थ २२

चौपइया–वहु दिलदा[1] मालिक दिलदी, जाणे दिलमों[2] बैठा देखै ।
हुण[3] तिसनो[4] कोई क्यो कर पावे, जिसदे रूप न रेखै ॥
वै[5] गोस[6] कुतब[7] पैकम्बर[8] थक्के, पीर अवलिया सेखै ।
भी 'सुन्दर' कहि न सके कोइ, तिसनो जिसदी सिफत[9] अलेखै ॥१॥

१ दिल का　२ में　३ अब　४ उसको　५ वह गोस=पुकार　६ सुनने वाला　७ धर्म का ज्ञाता　८ मुसलमानो का अवतार ९ गुण ।

वहु खोजनहारा तिसनो पूछे जे बाहर नों दौडै ।
वे कोई जाय गुफा मों बैठे, कोई भीजत चौडे ॥

भी दिठ्ठे[1] सोक[2] हजारन दिठ्ठे, दिठ्ठे लख[3] करोडै ।
कहि 'सुन्दर' खोजु[4] बतावे प्रभुद्रा[5], वे[6] केई जग मे थोडै ।।२।।

१ देखे २ सौ ३ लाख ४ मार्ग ५ प्रभु का ६ वे जगत मे थोडे हैं ।

भी उसदा खोजु करै बहुतरे, खोजु तिग्गा[1] दै बोलै ।
वह भुल्लेनो भुल्ला समझावे, सो भी भुल्ला डोलै ।।
वै जित्थे[2] कित्थे[3] फिरै विचारा, फिर फिर छिल्लकु छोले ।
कहि 'सुन्दर' अपना बन्धनु[4], कप्पे[5] सोई बन्धन खोले ।।३।।

१ उनका २ जहा ३ कहा ४ बन्धन ५ काटे, सोइ अन्य का बन्धन खोल सकता है ।

भी खोजें जती पती सन्यासी, सभ्भो[1] दिठ्ठे रोगी । सभी[1]
वह उसदा खोजु न पाया किन्ही, दिठ्ठे ऋषि मुनि योगी ।।
वै वहुते फिरै उदासी जग मौ, बहुते फिरे वियोगी ।
कहि 'सुन्दर' कोई विरले दिठ्ठे, अमृत रसदे भोगी ।।४।।
वहु खोजी विना खोजु नहि निकले, खोज न हथ्थो आवे ।
पखीदा खोज मीनदा मारगु, तिसनो क्यो कर पावे ।।
है अति वारीक खोजु नहि दरशै, नदर[1] किथो ठहराये । नजर[1]
कहि 'सुन्दर' बहुत होय जब नन्हा, नन्हेनो दरसावे ।।५।।
भी खोजत खोजत सभुजुग हढचा, खोज किथो[1]नहि पाया । कही भी[1]
तू जिसनो खोजे खोज तुसी[1] मौ, सतगुरु खोज बताया ।। तेरे मे[1]
तै अपना आपु सही जब कीता,[2] खोज इथा ही आया । किया[2]
जब 'सुन्दर' जागि पाया[3] सुपने थौ, सभु सदेह गमाया ।।६।। पडा[3]
भी जिसदा आदि अन्तु नहि आवे, मध्य हु तिसदा नाही ।
वह बाहर भितरु सर्व निरतर, अगम अगोचर माही ।।
वह जाग न मोवे खाय न भुख्खा, जिसदे धुप्प न छाही ।
कहि 'सुन्दर' आपै आपु अखडित, शब्द न पहुँचे ताही ।।७।।
वै ब्रह्मा विष्णु महेश प्रलैमौ, जिसदी खुसे न रु ही ।
भी जिसदा कोई पारु न पावे, शेष महेश फणु[1]मूही ।। फण[1]
भी यहु नहि यहु नहि यहु नहि, होवे, इस दै परे सु तू ही ।
वह जो अब शेष रहै सो 'सुन्दर', सो तू ही सो तू ही ।।८।।

समाप्तोऽय पजावी भाषाष्टक ग्रन्थ २२

ब्रह्मस्तोत्राष्टक ग्रन्थ २३

भुजग प्रयात—अखड चिदानन्द देवाधिदेव । फणिन्द्रादि रुद्रादि इन्द्रादि सेव ।।
मुनीद्रादि कवीन्द्रादि चन्द्रादि मित्र । नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्र ।।१।।

धरात्व जलाग्नि मरुत्व नभस्त्व । घटत्व पटत्व अणुत्व महत्व ।
मनस्त्व वचस्त्व दृगत्व दृशत्व । नमस्ते मस्तेन नमस्ते समत्व ।।२।।
अडोल अतोल अमोल अमान । अदेह् अछेह् अनेह् निधान ।।
अजाप अथाप अपाप अताप । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमाप ।।३।।
न ग्राम न धाम न शोत न चोष्ण । न रक्त न पीत न श्वेत न कृष्ण ।
न शेष अशेष न रेख न रूप । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अनूप ।।४।।
न छाया न माया न देशो न कालो । न जाग्रन्न स्वप्त न वृद्धो न बालो ।।
न ह्रस्व न दीर्घ न रम्य अरम्य । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्य ।।५।।
न बद्ध न मुक्त न मौन वक्तु । न धूम्र न तेजो न यामी न नक्त ।
न युक्त अयुक्त न रक्त विरक्त । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अशक्त ।।६।।
न रुष्ट न तुष्ट न इष्ट अनिष्ट । न जेष्ठ कनिष्ठ न मिष्ठ अमिष्ठ ।
न अग्र न पृष्ट न तूल गरिष्ट । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अदृष्ट ।।७।।
न वक्त्र न घ्राण न कर्ण न अक्ष । न हस्त न पाद न शीश न लक्ष ।।
कथ सुन्दर भुन्दर नामध्येय । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमेय ।।८।।

समाप्तोऽय ब्रह्मस्तोत्राष्टक ग्रन्थ २३ ।

अथ पीर[1] मुरीद[2] अष्टक ग्रन्थ २४ (सिद्ध[1] शिष्य[2])

दोहा—सुन्दर खोजत खोजते, पाया मुरसिद[1]पीर[2] । गुरु[1] सिद्ध[2]
कदम[3] जाय उसके गहे देखा, अति गम्भीर ।।१।। चरण[3]

चामर—औवलि[1] कदम उस्ताद के मैं गहे दोऊ दस्त[2] । प्रथम[1] हाथो से[2]
उन महर मुझ पर करी, ऐसी हो गया मैं मस्त ।।
जब सखुन[3]कर मुझ को कहा, तू बन्दिगी कर खूब । वचन[3]
इस राह सीधा जायगा, तब मिलेगा महबूब[4] ।।१।। ईश्वर[4]
तब उठ अरज उस्ताद से, मैं करी ऐसी रौम[1] । प्रकार[1]
तुम महर मुझ पर करो, मुरसिद मैं तुम्हारी कोस[8] । शरण[2]
वह बन्दगी किस रौस[3] करिये, मुझे देहु बताय । तरहँ[3]
वह राह सीधा कौन है, जिस राह बन्दा जाय ।।२।।
तब कहै पीर मुरीद से, तू हिरस[1] रा[2] बुगुजार[3] । इच्छा[1] को[2] छोड[3]
यह बन्दीगी तब होयगी, इस नप्स[4] को गह मार ।। अहन्ता[4]
भी दुई[5] दिल से दूर करिये, और कछू न चाह । द्वैत[5]
यह राह तेरा तुझी भीतर, चला तू ही जाइ ।।६।।
तब फिर कहा उस्ताद से मैं, राह[1] यह बारीक । मार्ग[1]
क्यो चले बन्दा बिगर देखे, सबो से फारीक[2] ।। न्यारा[2]

अब महर कर उस राह को, दिखलाय दीजे पीर[3]। गुरु[3]
मुझ तलब[4] है उस राह की, ज्यो पिवे प्यासा नीर ॥४॥ चाह[4]
तब कहै पीर मुरीद सेती[1], बन्दगी है येह। से[1]
इस राह पहुचे चुस्त[2] दम[3] कर, नाम उसका लेह ॥ दृढ[2] श्वास[3]
तू नाम उसका लेहगा तब, जायगा उस ठौर।
जहँ अरस[4] ऊपर आप बैठा, दूसरा नहि और ॥५॥ आकाश[4]
तब कहै तालिब[1] सुनो मुरसिद, जहाँ बैठा आप। जिज्ञासु[1]
वह होय जैसा कहो तैसा, जिसे माइ न बाप ॥
बैठा उठा कहिये तिसे, औजूद[2] जिसके होई। देह[2]
बेचून[3] उसको कहत है, अरु बेनिमूने सोइ ॥६॥ अनूप[3]
जब कहा तालिब सुखन[1] ऐसा, पीर पकडी मौन। बचन[1]
को कहैगा न कहा न किनहू, अब कहै कहि कौन ॥
तब देख ओर मुरीद की, उन पीर मूदे नैन।
जो खूब तालिब होयगा, तो समझ लेगा सैन ॥७॥
हैरान[1] है हैरानहै, हैरान निकट न दूर। आश्चर्य[1]
भी सखुन[2] क्यों कर कहै, तिसका सकल है भरपूर ॥ वचन[2]
सम्वाद पीर मुरीद का, यह भेद पावे कोइ।
जो कहै सुन्दर सुने सुन्दर, वही सुन्दर होई ॥८॥

समाप्तोऽयं पीर मुरीद अष्टक ग्रन्थ २४।

अथ अजब ख्याल अष्टक ग्रन्थ. २५।

दोहा—सिजदा[1] सिरजनहार को, मुरसिद को ताजीम[2]।
'सुन्दर' तालिब[4] करत है, बन्दो को तसलीम[3] ॥१॥

१ दडवत २ सम्मान ३ प्रणाम ४ जिज्ञासु।

'सुन्दर' इस औजूद[1] मो, अजब चीज है याद। शरीर[1]
तब पावे इस भेद[2] को, खूब[2] मिले उस्ताद ॥२॥ रहस्य[2] श्रेष्ठ[2]

गीतक—उस्ताद शिर पर चुस्त[1] दम कर, इश्क अल्लह लाइये। दृढ[1]
गुजरान[2] उसकी बन्दगी मैं, इश्क बिन क्यो पाइये। निर्वाह[2]
यह दिल फकीरी दस्तगीरी[3], गस्त[4] गु ज[5] सिनाल[6] है। हाथ पकडना[3]
यू कहत 'सुन्दर' कब्ज[7] दून्दर[8], अजब[9] ऐसा ख्याल है ॥१॥

४ फेरी ५ ध्वनि ६ साथ ७ निग्रह करना ८ द्वन्द्व काम आदि ९ अद्‌भुत।

दोहा—'सुन्दर' रत्ता एक से, दिल मे दूजा नेश[1]। नही[1]
इश्क मुहब्वत[2] बन्दगी, सो कहिये दुरवेश[3] ॥३॥ प्रेम[2] सत[3]

गीतक—दुरखेश दर की खबर जाने, दूर दिल की काफिरी[1] । विमुखता[1]
दर[2] दरदवद खरादस्ने[3], उसी बीच मुसाफिरी । द्वार[2] भीतर के[3]
है बेतमा[4] इसमाइ[5] हर्दम, पाक दिल दरहाल है । निर्लोभ[4]हरिनामरट[5]
यू कहत 'सुन्दर' कब्ज दुन्दर, अजब ऐसा ख्याल है ।।२।।

दोहा—'सुन्दर' सीने बीच मे, बन्दे का चौगान ।
पहुचावे उस हाल[1] को, इहै गोइ[2] मैदान ।।४।। दशा[1] गेंद[2]

गीतक—काब्दस्त[1] इस मैदान मे, चौगान खेले खूब है । चालक[1]
असवार ऐसा तुरी वैसा, प्यार उस महबूब[2] है । प्रिय[2]
इस गोइ[3] को ले जायके, पहुचाय दे उस हाल[4] है । मन गेंद[3] अवस्था[4]
यू कहत 'सुन्दर' कब्ज दुन्दर, अजब ऐसा ख्याल है ।।३।।

दोहा—'सुन्दर' उसका नाम ले, एक उसी की चाह ।
रब्बु[1] रहीम[2] करीम[3] वह, वह कहिये अल्लाह ।।५।।
१ ईश्वरी २ दयालु ३ कृपालु । इत्यादिक सब उसी ईश्वर के नाम हैं।

गीतक—अल्लाह खुदाय करीम[1] कादिर,[2] पाक प्रवर्दिगार है । कृपालु[1] समर्थ[2]
सुबहान[3] तू सत्तार[4] साहिब, साफ सिरजनहार है । पवित्र[3] सूक्ष्म[4]
मुस्ताक[5] तेरे नाम उपर, खूब खूबा लाल है । उत्सुक[5]
यू कहत 'सुन्दर' कब्ज दुन्दर, अजब ऐसा ख्याल है ।।४।।

दोहा—सुन्दर इस औजूद मौ, इश्क लगाई अर्क[1] । ताप[1]
आशिक[2] ठडा होय तब, आय मिले माशूक[3] ।।६।। प्रेमी[2] प्रेम पात्र[3]

गीतक—माशूक मौला[1] हक्क[2]ताला, तू जिमी असमान मौं । ईश्वर[1] सत्य[2]
है आब आतश बाद म्याने[3], खबरदार जिहान मौ ।। भीतर[3]
मालिक मलूक मालूम जिसको, दुरस[4] दिल हरसाल[5] है । शुद्ध[4] सदा[5]
यू कहत 'सुन्दर' कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ख्याल है ।५।।

दोहा—'सुन्दर' जो गाफि हुवा, तो वह साई दूर ।
जो बन्दा हाजिर हुवा, तो हाज रा हजूर ।।७।।

हाजर हजूर कहै गुसइया, गाफिलो को दूर ।
निरसध इकलस[1] आप वोही, तालिवा भरपूर ।। एक रस[8]
बारीक से बारीक कहिये, बडो बडा विसाल है ।
यू कहत 'सुन्दर' कब्ज दुन्दर, अजब ऐसा ख्याल है ।।६।।

दोहा—'सुन्दर' साई हक्क[1] है, जहा तहा भरपूर । सत्य[1]
एक उसी के नूर से, दीसे सारे नूर ।।८।।

गीतक—उस नूर से सब नूर दीसे, तेज से सब तेज ।
उस जोति से सब जोति चमके, हेज[1] से से सब हेज ।। प्रेम[1]
आफताब[2] अरु महताब[3] तारे, हुकम उसके चाल है । सूर्य[2] चन्द्रमा[3]
यूं कहत 'सुन्दर' कब्ज दुन्दर, अजब ऐसा ख्याल है ।।७।।
दोहा—आलम[1] इलम[2] सब, खूब पढा आखून[3] । जगत[1] विद्या[2] गुरु[3]
पर उसको क्यो कह सके, जो कहिये बेचून[4] ।।९।। अनूप[4]
गीतक—बेचून उसको कहत बुजरग[1], बेनमून[2] उसे कहै । बडे[1] दृष्टात न[2]
अरु औलिया अविया[3] वैभी, गोस[4] कुतब[5] खडे रहै । पैगम्बर लोग[3]
को कहि सके न कहा न किनहू, सखुन[6] परे निराल[7] है ।
यूं कहत 'सुन्दर' कब्ज दुन्दर, अजब ऐसा ख्याल है ।।८।।
४ कान । ५ किताबों वाले । ६ शब्द से परे । ७ सबसे भिन्न ।
दोहा—ख्याल अजब उस एक का, 'सुन्दर' कहा न जाय ।
सखुन[1] तहा पहुँचे नही, थका उरै ही आय ।।१०।। शब्द[1]

समाप्तोऽय अजब ख्याल अष्टक ग्रन्थः २५ ।

अथ ज्ञानझूलनाष्टक ग्रन्थ २६

झूलना—उस्ताद के कदम शिर पर धरू, अब झूलना खूब बखानता हू ।
अरवाह मे आप विराजता है, वह जानका जान है जानता हू ।।
उस ही के डुलाये डोलता हू, दिल खोलता बोलता मानता हू ।।
उसी ही के दिखाये मैं देखता सुनता, 'सुन्दर' यू पहचानता हूँ ।।१।।
कोई नेरे कहे कोई दूर कहै, आपहि नेरे न दूर है रे ।
दिल भीतर बाहर एकसा है, असमान ज्यो वो भरपूर है रे ।।
अनुभव बिना नहि जान सके, निरसन्ध निरन्तर नूर है रे ।
उपमा उसकी अब कौन कहै, नहि 'सुन्दर' चन्दन सूर है रे ।।२।।
कोई वार कहै कोई पार कहै, उसका कहू वार न पार है रे ।
कोई मूल कहै कोई डार कहै, उसके कहू मूल न डार है रे ।।
कोई शून्य कहै कोई शूल कहै वह शून्य हु शूल निराल[1] है रे । न्यारा[1]
कोई एक कहै कोई दोय कहै, नहि 'सुन्दर' द्वन्द्व लगार[2] हैरे ।।३।। किंचित्[2]
कोई योग कहै कोई याग कहै, कोई त्याग वैराग बतावता है ।
कोई नाम रटे कोई ध्यान ठटै, कोई खोजत ही थक जावता है ।।
कोई और हि और उपाय करे, कोई ज्ञान गिरा कर गावता है ।
वह 'सुन्दर' सुन्दर सुन्दर है, कोई सुन्दर होय सु पावता है ।।४।।
नहि बैठता है नहि ऊठता है, नहि आवने का नहि जावने का ।
नहि बोलता है न अबोलता है, नहि देखता है न दिखावने का ।।

नहि सूंघता है न असूंघता है, नहि सुनता है न सुनावने का ।
नहि सोवता है नहि जागता है, नहि 'सुन्दर' सबुन[1] पावने का ।। शब्द[1]
कहु कौन कहै कहु कौन सुने, वह कहन सुनन से भिन्न है रे ।
कहु ठौर नही कहु ठाव नही, कहु गाव नही तिन किन्न है रे ।।
तहा शीत नही तहा घाम नही, तहा धाम न रात न दिन्न है रे ।
तहा रूप नही तहा रेख नही, तहा 'सुन्दर' कछू न चिन्ह है रे ।।६।।
नहि गोस[1] है रे नहि नैन है रे, नहि मुख है रे नहि बैन है रे ।। कान[1]
नहि ऐन[2] है रे नहि गैन[3] है रे, नहि सैन हे रे न असैन है रे । विशेष[2] निर्वशेष[3]
नहि पेट है रे नहि पीठ है रे, नहि कडवा है नहि मीठ है रे ।
नहि दुश्मन है नहि ईठ[4] है रे, नहि 'सुन्दर' दीठ अदीठ है रे ।।७।। मित्र[4]
नहि शीश है रे नहि पाव है रे, नहि रक है रे नहि राव है रे ।
नहि खानव पीवन चाव है रे, नहि हारने जीतने दाव है रे ।।
नहि नीर है रे नहि नाव है रे, नहि खाक[1] है रे नहि वाव[2] है रे । भू[1] वायु[2]
नहि मौत है रे नहि आव है रे, नहि 'सुन्दर' भाव अभाव है रे ।।८।।

समाप्तोऽयज्ञानभूलनाष्टक ग्रन्थ २६ ।

अथ सहजानन्द ग्रन्थ २७

चौपाई—प्रथमहि निराकार निज वन्द । गुरु प्रसाद सहजै आनन्द ।।
पूरण ब्रह्म अकल अविनाशी । पच तत्त्व की सृष्टि प्रकाशी ।।१।।
चिह्न बिना सब कोई आये । यहा भये दो पन्थ चलाये ।।
हिन्दू तुरक उठा यह भर्मा । हम दोऊ का छोडा धर्मा ।।२।।
ना मैं कृत्तम[1] कर्म बखानू । ना रसूल[2] का कलमा[3] जानू ।।
ना मैं तीन[4] ताग गल नाऊ । ना मैं सुन्नत कर बौराऊ ।।३।।

१ बनावटी २ मोहम्मद ३ मुसलमानो का मूल मत्र ४ यज्ञो पवीत ।

माला जपू न तसवी फेरू । तीरथ जाऊ न मक्का हेरू ।।
न्हाय धोय नहि करू अचारा । ऊजू से पुनि हूवा न्यारा ।।४।।
एकादशी न व्रतहि विचारू । रोजा, धरू न बङ्ग पुकारू ।।
देव पितर नहि पीर मनाऊ । धरती गडू न देह जलाऊ ।।५।।

दोहा—हिन्दू की हद छोड के, तजी तुरक की राह[1] । मार्ग[1]
'सुन्दर' सहजे चीह्निया, एकै राम अलाह ।।६।।

चौपाई—और अचंभा सुनिये भाई । जो मुहि सतगुरु दिया बताई ।।
सहजै नाम निरजन लीजे । और उपाय कछू नहि कीजे ।।७।।
सहजै ब्रह्म अग्नि पर जागी । सहज समाधि उनमनी तारी ।।
सहजै सहज राम ध्वनि होई । सहजहि माहि समावे सोई ।।८।।

अव मोसे कुछ होय न आवे । ब्रह्मा विष्णु महेश बुझावे ।।
ना मोहि योग यज्ञ की आशा । ना मैं करू पवन अभ्यासा ।।९।।
ना मैं कोई आसन साधू । ना मैं सूती[1] शकत्याराधू ।। कुण्डलनी[1]
प्राणायाम धारणा ध्यान । ना मे रेचक पूरक ठान[4] ।।१०।। करू[1]
ना मै कुम्भक त्राटक लाऊ । नौलि भुवगम[1] दूर बहाऊ ।। घुगाना[1]
नेती धोती करू न कर्मा । उलटी पलटी ये सब भर्मा ।।११।।

दोहा—जोइ आरभ कीजिये, सोई सशय काल ।
'सुन्दर' सहज स्वभाव गह, मेटा सब जजाल ।।१२।।

चौपाई–ना मै मेघाडवर भीजू । शीतकाल जल मे नहिं छीजू[1] ।। दुखी[1]
ना मैं शिर पर करवत सारू । ना मैं नीद भूख तिस मारू ।।१३।।
देह कष्ट मै करू न कोई । सहजै सहजै होय सु होई ।।
ना मैं पचा अग्नि जलाऊ । जासे राज पाट कुछ पाऊ ।।१४।।
ना ले मरू गले मे पासा । मुये मुक्ति की करू न आशा ।।
ना मैं गलू हिमाले माही । स्वर्ग लोक को बछू नाही ।।१५।।
ना मैं लटकि अधोमुख झूलू । धूम पान कर मैं नहिं भूलू ।।
ना वन मे बस करू तपस्या । कद मूल की करू न हिंस्या ।।१६।।
पुहमी देव[1] न दहिनाबर्ता । नागे पाऊ न फिरू न मरता ।। देवता[1]
दुख कलेश और बहुतेरा । तिन से मन माने नहिं मेरा ।।१७।।

दोहा—सतगुरु कह समझाइया, निजमत वार वार ।
'सुन्दर' कष्ट कहा करे, पाया सहज विचार ।।१८।।

सहज निरजन सबमे सोई । सहजै सत मिले सब कोई ।।
सहजै शकर लागे सेवा । सहजै सनकादिक शुकदेवा ।।१९।।
सहजै शेष भया लय लीना । सहजै हनुमान तत्त[1] चीन्हा ।। तत्त्व[1]
सहजै ध्रुव कीना अहलादा[2] । सहज स्वभाव गहा प्रहलादा ।।२०।। आनद[3]
पहले गोरख कर्म दिढावा । दत्त मिले तिन सहज वतावा ।।
सहज स्वभाव भरथरी लीधा । गोपीचन्द सहज ही सीधा ।।२१।।
नामदेव जब सहज पिछाना । आतमराम सकल मे जाना ।।
दास कबीर सहज सुख पाया । सबमे पूरण ब्रह्म बताया ।।२२।।
सोझा पीपा सहज समाना । सेन धना सहजै रस पाना ।।
जन रैदास सहज का बन्दा, गुरु दादू सहजै आनन्दा ।।२३।।

दोहा—एक हि सहज स्वभाव गह, सतन किया विलास[1] । आनन्द[1]
मनसा वाचा कर्मना, तिहिं पथ 'सुन्दरदास' ।।२४।।

समाप्तोऽय सहजानन्द ग्रन्थ २७

अथ गृह वैराग बोध ग्रन्थ २८ ।

रुचिरा—गृही कहै जु सुनो वैरागी, विरक्त भये सु काहे जू ।
के तुमसे परमेश्वर रूसे, कं[1] तुम काहू वाहे[2] जू ॥१॥　वा[1] बहकावे[2]
वैरागी बोले जु गृही सुन, मेरे ज्ञान प्रकाशा जू ।
मिथ्या देख सकल ससारा, ता से भये उदासा जू ॥२॥
गृही कहै जु बुरी तुम कीनी, कछू विचार न आया जू ।
जनक वसिष्ठ और मुनि साधुन, तिन घर ही मे पाया जू ॥३॥
वैरागी बोले जु गृही सुन, विरक्त बहुत सुनाऊ जू ।
ऋषभ देव अरु भरत आदि दे, केते और बताऊ जू ॥४॥
गृही कहै जु बडा सुख घर मे, पुत्र कलत्र रु माया जू ।
ताहि छाड जो मुक्ति कहत है, तिन तो ज्ञान न पाया जू ॥५॥
वैरागी बोले जु गृही सुन, गृह दु ख का भडारा जू ।
मुक्ति होन की सो क्या जाने, अध कूप मे डारा जू[1] ॥६॥　कर्मो ने[1]
गृही कहै जु पुत्र धन देखत, सब दु ख दूर विसारू जू ।
नवयौवना जब हि हँस बोले, कोटि मुक्ति गह वारू जू ॥७॥
वैरागी कहै जो जहा राता, सोइ तहा सुख पावे जू ।
नरकहि रुचे नरक का कीडा, चन्दन ताहि न भावे जू ॥८॥
गृही कहै जु त्रिया मृगनैनी, कटि केहरी गज चाला जू ।
अधर पान जिन की या नाहि, तिनके भाग न भाला[1] जू ॥९॥　अच्छा नही[1]
वैरागी कहै हाड चाम सब, नैनन झलकत पानी जू ।
मज्जा मेद उदर मे विष्टा, तहा न भूले ज्ञानी जू ॥१०॥
गृही कहै जु चन्द्रवदनी त्रिय, अग अग छवि सोहै जू ।
चन्दन लेपन कुच मडल पर, देव दानवा मोहै जू ॥११॥
वैरागी कहै नव द्वार मे, निश दिन नरक बहाई जू ।
लोहू माँस कुचन के भीतर, ताको कहा बडाई जू ॥१२॥
गृही कहै जु विरक्त भये तुम, त्रिया सही[1] मे त्यागी जू ।　साहस से[1]
माया तुम पै छूटी नाही, काहे के वैरागी जू ॥१३॥
वैरागी कहै माया सोई, जा से आप बधावे जू ।
और सकल यह वरतन कहिये, अनबछी ही आवे जू ॥१४॥
गृही कहै जु नही अनबछी, करे हमारी आशा जू ।
बार बार धरती तन चितवे, चील्ह उडे आकाशा जू ॥१५॥

वैरागी कहै आशा हरि की, देह रहै जग माही जू ।
जैसे कमल रहै जल भीतर, जल से सन्मुख नाही जू ।।१६।।
गृही कहै जु बडा गृह आश्रम, यती तहा चल आवे जू ।
मन तो तब ही होय सुनिश्चल, भिक्षा भोजन पावे जू ।।१७।।
वैरागी कहे धर्म देह का, याही भाति बनाया जू ।
पच दोष तेरे तब छूटे, यती आय कुछ पाया[1] जू ।।१८।। खाया[1]
पचदोष = चूल्हा, चक्की, झाडू, ऊखली, और परीडा मे मरने वाले जीवो के पाप ।
विरक्त धर्म रहै जु गृही से, गृहि को विरक्त तारे जू ।
ज्यो वन करे सिह की रक्षा, सिह सु वन हिं उवारे जू ।।१९।।
विरक्त सु तो भजे भगवन्तहि, गृही सु ताकी सेवा जू ।
अश्व के कान बराबर दोऊ, यती सती का भेवा[1] जू ।।२०।। रहस्य
गृह वैराग बोध यह कीन्हा, सुनियो सत सुजाना जू ।
'सुन्दरदास' जु भिन्न भिन्न कर, नीकी भाति वखाना जू ।।२१।।

समाप्तोऽयगृह वैराग बोध ग्रन्थ २८

अथ हरि बोल चितावनी ग्रन्थ २९ ।

दोहा—रचना यह परब्रह्म की, चौरासी झकझोल[1] । झटका देना[1]
मनुष देह उत्तम करी, (सु) हरि बोलो हरि बोल ।।१।।
आया नर ससार मे, कर साहिब से कोल[1] । प्रतिज्ञा[1]
पवन लगत ही बीसरा, (सु) हरि बोलो हरि बोल ।।२।।
बालपने समझा नही, तरुना पै भया लोल[1] । चचल[1]
चपरि[2] वुढापा आइया, (सु) हरि बोलो हरि बोल ।।३।। शीघ्र[2]
मेरी मेरी करत है, देखो नर की भोल[1] । भूल[1]
फिर पीछे पछताहुगे, (सु) हरि बोलो हरि बोल ।।४।।
कीये रुपये एकठे, चौकूटे अरु गोल ।
रीते हाथन वे गये, (सु) हरि बोलो हरि बोल ।।५।।
चहल पहल सा देख के, माना बहुत अँदोल[1] । नृत्र[1]
काल अचानक ले गया, (सु) हरि बोलो हरि बोल ।।६।।
घर मे धरे सुमेरु से, अजहू खाली ओल[1] । कोल = कृपा[1]
तृष्णा कबहू ना बुझी, (सु) हरि बोलो हरि बोल ।।७।।
हा हा हू हू मे मुवा, करके घोलमथोल[1] । गडबड[1]
हाथ कछू आया नही, (सु) हरि बोलो हरि बोल ।।८।।
तीन लोक भटकत फिरा, हूवा डावा डोल ।
कतहू सच[1] पाया नही, (सु) हरि बोलो हरि बोल ।।९।। [illegible]

धामधूम[1] बहुतहि करी, अधधन्ध[2] धमसोल[3]।
धेधकधीना[4] हो गये, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥१०॥
१ मारधार २ अन्धाधुन्ध ३ धमरोल=४ ऊधम। धींगामस्ती[4]।
सुकृत कोऊ ना किया, राचा झक्षट[1] झोल[2]। झगडा[1] बखेडा[2]
अंत चला सब छाड के, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥११॥
सूता[1] है बहु जन्म का, अजहू आख[2] न खोल। अज्ञान मे[1] ज्ञान नेत्र[2]
आवत है दिन नीयरा[3], (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥१२॥ मृत्युकापास[3]
मूछ मरोडत डोल ही, ऐंठा[1] फिरत ठठोल[8]। गर्व से[1] हँसी[2]
ढेरी हो है राख की, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥१३॥
पैंडा ताका नरक का, सुन सुन कथा कपोल[1]। मिथ्या[1]
बूडे काली[2] धार मे, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥१४॥ अज्ञान[2]
राम विमुख नर होहिगे, सर्प गुहेरा नोल।
और जतु कहि को गिने, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥१५॥
मौत सु आई नीयरी, भया श्याम से धोल[1]। केश सा द[1]
अब का सोचत बावरे, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥१६॥
माल मुलक हय[1]गय[2]घने, कामिन करत कलोल[3]। घोडे[1]हाथी[2]क्रीडा
कतहू गये बिलाय के, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥१७॥
मोटे मीर कहावते, करते बहुत डफोल[1]। ढोंग
मरद गरद मे मिल गये, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥१८॥
खासा मलमल पहरते, वस्तर बहुत अमोल।
लिई तनगटी[1]तोडके (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥१९॥ कनगती
चोवा[1] चन्दन अरगजा, सौंधे भीनी[2] चोल[3]।
सो तन माटी मिल गये, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥२०॥
१ चोवा, चन्दन, अरगजा, सौंधा, ये सब सुगंध युक्त वस्तु हैं भीगा[2] चोला
सेज सुखासन बैठते चलते चढ चौडोल[1]। पालकी
मूते जाय मसान मे, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥२१॥
देह जली संग काठ के, हो गई होहो[1] होल[2]। हाहाकार[1] घबराहट
खुर न खोज कहु पाइये, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥२२॥
जार बार भस्मी करी, ऊपर दीये टोल[1]। पत्थर
प्रेत प्रेत कर उठ चले, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥२३॥
ऐसी गति संसार की, अजहू राखत जोल[1]। बल गर्व
आप मुये ही जान है[1], (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥२४॥ जानेगा

वाक[1] बुराई छाड सब, गाठ हृदय की खोल । टेढापन[1]
वेग विलम्ब क्यो बनत[2] है, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥२५॥ होता[2]
घटी बढी सब देखले, मन अपने मे तोल[1] । विचार[1]
काहे को कल्पा मरे, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥२६॥
हिरदै भीतर पैठकर, अन्त करण विरोल[1] । ससार से अलगकर[1]
को तेरा तू कौन का, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥२७॥
तेरा तेरे पास है, अपने माहि टटोल[1] । खोज[1]
राई घटे न तिल बढे, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥२८॥
साधू शब्द लागे न ही, बडा जगत का छोल[1] । दुष्ट[1]
तामे पच पच को मरे, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥२९॥
'सुन्दरदास' पुकार के, कहत बजावे ढोल ।
चेत सको तो चेतियो, (सु) हरि बोलो हरि बोल ॥३०॥

समाप्तोऽय हरि बोल चितावनी ग्रन्थ २९ ।

अथ तर्क चितावनी ग्रन्थ ३० ।

चौपाई—पूरण ब्रह्म निरजन राया । जिन यह नखशिख साज बनाया ।
ताको भूल गये विभचारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥१॥
गर्भ माहि कीनी प्रतिपाला, तहा बहुत होते बेहाला ॥
जनमत ही वह ठौर बिसारी । अइया[1] मनुपहु बूझ[2] तुम्हारी ॥२॥ यह[1] बुद्धि[2]
बालापन मे भये अचेता । मात पिता से बधा हेता ॥
प्रथम हि चूके सुधि न सभारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥३॥
बहुर कुमार अवस्था आई । ताहू माहि नही सुधि काई ॥
खाय खेल हँस रोई गुदारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥४॥
भया किशोर काम जब जागा । परदारा को निरखन लागा ॥
ब्याह करन की मन मे धारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥५॥
मात पिता जोडा सनमधा । कै कुछ आपहि कीया धधा ॥
लेकर पास गले मे डारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥६॥
भया गृहस्थ बहुत सुख पाया । पुत्र सखी मित्र सगन गाया ॥
कर सयोग बडी अखगारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥७॥
ता पीछे जोवन मद माता । अति गति हो विषया सन राता ॥
अपनी गिने न पर की नारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥८॥
निलज काम बस लाज न आने । साधु सगाई कहु न माने ॥
लोक वेद मरजादा टारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥९॥

गर्व करे पुनि ऐंठा[1] डोले । मुख से जो भावे सो बोले ।। अकड़ा[1]
लाज कानि सब पटक पछारी । अइया मनुषहुँ बूझ तुम्हारी ।।१०।।
मूछ मरोरे पाग सँवारे । दर्पण लेकर वदन[1] निहारै ।। मुख[1]
खुशी होय अतिमहा विकारी । अइया मनुषहुँ बूझ तुम्हारी ।।११।।
आठहु पहर विषय रस भीना । तन मन धन युवती को दीन्हा ।।
ऐसी विषया लागी प्यारी । अइया मनुषहुँ बूझ तुम्हारी ।।१२।।
खान पान वस्तर ले आवे । विविध भाति भूषण पहरावे ।।
अति आधीन लहे बलिहारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।१३।।
कामिनि सग रहा लिपटाई । मानहु यही मोक्ष हम पाई ।।
कबहू नैक होय जिन न्यारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।१४।।
जो त्रिय कहै सु अति प्रिय लागे । निशिदिन कपि ज्यो नाचत आगे ।।
मारउ सहै सहै पुनि गारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।१५।।
खेती करै वनिज कर ल्यावे । चाकर होय दशो दिश धावे ।।
आगे आई धरे भर थारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।१६।।
लकडी घास पोट पुनि ढोवे । लाज बडाई अपनी खोवे ।।
तासे करै आय मनुहारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।१७।।
औरहु कर्म करे बहुतेरा । जन जन के आगे हो चेरा ।।
चोरी करै करै बटपारी[1] । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।१८।। लूटना[1]
ज्यो त्यो कर कुछ घर मे आने । वनिता आगे दीन बखाने ।।
हू तेरा नित आज्ञाकारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।१९।।
यू करते सतति[1] हो आई । तब तो फूला अँग न माई ।। सतान[1]
देत बधाई ता पर वारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।२०।।
माने मोद बहुत सुख पावे । ता सुतको ले गोद खिलावे ।।
चिटकी देय बजावे तारी । अइय मनुपहु बूझ तुम्हारी ।।२१।।
लडका चार पाच हो आये । तिनको जुदे[1] घर करवाये । जुदे[1]
साल बोबरा महल अटारी । अइया मनुषहुँ बूझ तुम्हारी ।।२२।।
पुत्र पौत्र बधा परिवारा । मेरे मेरे कहैं गँवारा ।
करत बडाई सभा मझारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।२३।।
उद्यम करके जोडी माया । कै कुछ भाग्य लिखा सो पाया ।।
अजहू तृष्णा अधिक पसारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।२४।।
जब दश बीस पचासक चाहै । सौ सहस्र लख कोटि उमाहे[1] ।। उमग[1]
अरब खरब तोहू अधियारी[1] । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।२५।। अधा हो रहा है[1]

देश विलायत हाथी घोडे । ज्यो ज्यो बाधे त्यो त्यो थोडे ॥
कर सतोप न बैठे हारी[1] । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ॥२६॥ हार कर[1]
ऐसे करत बुढापा आया । तब काठी कर पकडी माया ।
कोडी खरचत कसके[1] भारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥२७॥ दर्द हो[1]
मेरे बेटे पोते खैहै । मेरी सची कोउ न लैहै ॥
ईश्वर की गति कुछ न विचारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥२८॥
निपट[1] वृद्ध जब भया शरीरा । नैनन आवन लागा नीरा । नीरा[1]
पौरी परा करे रखवारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥२९॥
कानहु सुने न आखिहु सूझे । कहैं और की और बूझे ॥
अब तो भई बहुत विधि ख्वारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥३०॥
बेटा बहू नजीक न आवे । तू तो मति चल कह समझावे ॥
टूक देहि ज्यो श्वान बिलारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥३१॥
बकता रहै जीभ नहि मोडे । मरहु न जाय खाटली तोडे ॥
तै खखारि सब ठौर बिगारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥३२॥
खिज[1]कर उठे सुने जब ऐसी । गारि देह मुख आवे तैसी ॥ क्रोध[1]
भौंडी राड करकसा दारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ॥३३॥
उठ न सके कपे कर चरणा । या जीवन से नीका मरणा ॥
तो हू मन मे अति अहकारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥३४॥
ताका कहा करे नहि कोई । परवश भया पुकारे सोई ॥
मारी अपने पाव कुहारी । अइया मनुषहु बूज तुम्हारी ॥३५॥
तासे कछू होय नहि आवे । मन मे बहुत भाति पछतावे ॥
शीश धुने अति होय दुखारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ॥३६॥
अब तो निकट मौत चल आई । रोका कठ पित्त कफ वाई[1] । वायु[1]
यमदूतन पासी विस्तारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ॥३७॥
निकसत प्राण सैन समझावे । नारायण का नाम न आवे ॥
देख सबन को आसू ढारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ॥३८॥
हम बटाऊ किया पयाना । मृतक देख कर सबै डराना ॥
घर मे से ले जाहु निकारो । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ॥३९॥
वे श्रवणा नैना मुख नासा । एक नही जो चलती श्वासा ॥
अब क्यो यासे प्रीति निवारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥४०॥
निशदिन खबर बाग की लेता । पलक पलक मे पानी देता ॥
माली गया जु सीचत क्यारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ॥४१॥

लोग कुटम्ब सबै मिल आये । आपन रोये और रुलाये ।।
लेकर चाले धाह[1] उचारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।४२।। धान्हे[1]

ले मसान मे आये जब ही । कीये काठ एकठे सबही ।।
अग्नि लगाय दिया तन जारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ।।४३।।

हितकारी सो रोवहि गाढे । किरिया करै जने दो ठाडे ।।
बेटा ठोकै मूण्ड कपारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ।।४४।।

भस्म भया जब दीया दागा । प्रेत प्रेत कह सबको भागा ।।
न्हाय धोयकर छौत उतारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।४५।।

जार बार कै घर को आये । बेटा बहू सबे समझाये ।
अब जिन रोवो सौह[1] हमारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ।।४६।। शपथ[1]

सच सच कर राखी माया । औरहि दिया न आपु न खाया ।।
हाथ झाड ज्यौ चला जुवारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ।।४७।।

सुकृत किया न राम सँभारा । ऐसा जन्म अमोलक हारा ।।
क्यो न मुक्ति की पौरि उघारी । अइया मनुपहु बूझ तुम्हारी ।।४८।।

कबहु न किया साधु का सगा । जिन के मिले लगे हरि रगा[1] । प्रेम[1]
कलाकन्द तज बनजी खारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।४९।।

प्रभु से सनमुख कबू न हूये । धन्धा ही मे पच पच मूये ।।
भजे न विश्वभरन बनवारी । अइया मनुषहुँ बूझ तुम्हारी ।।५०।।

किया कृत्य सो भुक्तन लागा । जन्म जन्म दुख सहे अभागा ।
राम विना को लेय उबारी । अइया मनुषहुँ बूझ तुम्हारी ।।५१।।

शूकर श्वान काग पै होई । कीट पतग गिने क्या कोई ।
औरो जोनि भ्रमे हत्यारी । अइया मनुषहुँ बूझ तुम्हारी ।।५२।।

भूत पिशाच निशाचर जेते । राक्षस देह भयानक केते ।
सो पुनि होय जीव ससारी । अइया मनुपहुँ बूझ तुम्हारी ।।५३।

भ्रमत भ्रमत जब आवे अन्ता । तब नर देह देहि भगवन्ता ।।
आपु मिलन की मौज सँवारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।५४।।

सकल शिरोमणि है नर देहा । नारायण का निज घर येहा ।।
जामे पइये देव मुरारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।५५।।
चेत सके तो चेतै भाई । जिन डहकावे[1] राम दुहाई ।। बहकोमती[1]
'सुन्दरदास' कहै जु पुकारी । अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी ।।५६।।

समाप्तोऽय तर्क चितावनी ग्रन्थ ३० ।

अथ विवेक चितावनी ग्रन्थ ३१

चौपाई—आप निरजन है अविनाशी । जिन यह बहु विधि सृष्टि प्रकाशी ।।
अव तू पकड उसी का शरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।१।।
जो तूं जन्म जगत मे आया । तो तू करले यही उपाया ।।
निशि दिन राम नाम उच्चरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।२।।
माया मोह माहि जिन भूले । लोग कुटम्ब देख मत फूले ।।
इनके सग लाग क्या जरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।३।।
मात पिता बान्धव किस केरे । सुत दारा कोऊ नहिं तेरे ।।
छिनक माहि सवसे बीछुरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।४।।
अपने अपने स्वारथ लागे । तू मत जाने मोसन पागे[1] ।। अनुरक्त[1]
इनको पहले छोड निसरना । समझ देख निश्च कर मरना ।।५।।
जिन के हेत दशो दिशि धावे । कोऊ तेरे सग न आवे ।।
धाम धूम धधा परिहरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।६।।
गृह का दुख न वरना जाई । मानहु अग्नि चहू दिश लाई ।।
तामे कहु कैसी विधि ठरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ।।७।। शीतल[1]
करना है सो कर किन लेहू । पीछे हम को दोष न देहू ।।
इक दिन पाव पसार उलरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ।।८।। गिरना[1]
या शरीर से ममता कैसी । याकी तो गति दीसत ऐसी ।।
ज्यो पाले का पिंड पिघरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।९।।
मृत्यु पकड के सबन हिलावे । तेरी बारी नियरी[1] आवे ।। नजदीक[1]
जैसे पात वृक्ष से झरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।१०।।
दिन दिन छीन होत है काया । अजुली मे जल किन ठहराया ।।
ऐसी जान वेगि निस्तरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।११।।
देह खेह माही मिल जाई । काग श्वान कै[1] जबुक खाई ।। वा[1]
तेल फुलेल कहा चोपरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।१२।।
खड विहड काल तन कर है । सकट महा एक दिन पर है ।।
चाकी माहि मूग ज्यो दरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।१३।।
काहे को कुछ मन मे धारे । मौत सु तेरी ओर निहारे ।।
वाला गिने न वूढा तरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ।।१४।। तरुण[1]
साप गहै मूसा को जेसे । मजारी सूवा को तैसे ।।
ज्यो तीतर को वाज विथुरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ।।१५।।

१ मारकर पख आदि को विखेरता है, वैसे काल तेरे को नष्ट करेगा ।

मन को दड बहुत विधि दीजे । याही[1] दगा बाज वश कीजे ।। इसी[1]
और किसी सेनो नहि अरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ।।३२।। अडना[1]
जिन के राग द्वेष कहुं नाही । ब्रह्म विचार सदा उर माही ।।
उन सनन के गहिये चरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।३३।।
काचा पिंड रहत नहिं दीसे । यह हम जानी विसवा बीसै ।।
हरि समरण कवहू न विसरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।३४।।
जो तूं स्वर्गलोक चल जावे । इन्द्रलोक पुनि रहन न पावे ।।
ब्रह्मा हू के घर से गिरना । समझ देख निश्च कर मरना ।।३५।।
गर्व न करिये राजा राना । गये विलाय देव अरु दाना ।।
तिन के कहू खोज हू खुरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ।।३६।। चिह्न
धरती माप एक डग करते । हाथो ऊपर पर्वत धरते ।।
केते गये जाहिं नहिं वरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ।।३७।। वर्णन[1]
आसन साध पवन पुनि पीवे । कोटि वर्ष लग काहि न जीवे ।।
अत तऊ तिनका घट परना[1] । समझ देख निश्च कर मरना ।।३८।। पडेगा[1]
कपे[1] धर जल अग्नि समदा । वायु व्योम तारागण चन्दा ।। कापे[1]
कपे सूर गगन आभरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ।।३९।।
[1]भूपण=सूर्य आदि आकाश की शोभा वढाने से भूपण रूप ही है ।।
जुदा न कोई रहने पावे । होय अमर जो ब्रह्म समावे ।।
'सुन्दर' और कहू न उवरना । समझ देख निश्चयकर मरना ।।४०।।

समाप्तोऽय विवेक चितावनी ग्रन्थ ३१ ।

अथ पवगव छन्द ग्रन्थ ३२ ।

पवगम—पिय[1] के विरह वियोग भई हू बावरी[2] ।
शीतल मद सुगन्ध सुहात न वावरी[3] ।।
अव मोहि दोप न कोय, परूगी वावरी[4] ।
(परिहा) 'सुन्दर' चहु दिश विरह सु घेरी बावरी[5] ।।१।।

परमात्मा स्वामी[1] के विरह वियोग से मैं पागल[2] हो गई हू । शीतल मद और सुगधित वायु[3] भी मुझे अच्छी नही लगती है । ऐसी स्थिति मे जीवित नही रह सकती । अत आत्म घात का दोप मुझे कोई न दें, मैं तो अव वावडी[4] मे पड जाऊगी, कारण मुझ को चारो ओर से विरह रूप प्रचड वायु[5] (आधी) ने घेर लिया है । (परिहा) छद से वाहर है वोलने वाले इसे वोल कर ही वोलते है । इस विरह प्रसग मे सत परमात्मा को अपना स्वामी और अपनी बुद्धि को उसकी पत्नी मानकर ही वर्णन करते हैं, यह सभी सत वाणियो मे ऐसा ही मिलता है, ध्यान रहे ।

बोक[1] निलज्ज चरत नित डोले । बकरी सग काम रत बोले ।। बकरा[1]
पकड कसाई पटक पिछरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ।।१६।। पछाडना[1]
काल खडा शिर ऊपर तेरे । तू क्यो गाफिल इत उत हेरे ।।
जैसे वधिक हते तकि हरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ।।१७।। हिरण[1]
क्षण भगुर यह तन है ऐसा । काचा कुभ भरा जल जैसा ।।
पलक माहि बैठे हो दुरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।१८।।
जोड जोड धन भरे भडारा । अर्ब खर्ब कुछ अन्तन पारा ।।
खोखी[1] हाडी हाथ पकरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।१९।। खाली[1]
हीरा लाल जवाहिर जेते । माणिक मोती घर मे केते ।।
धरा रहै रूपा[1] सोवरना[1] समझ देख निश्चय कर मरना ।२०।। चांदी[1]सोना[1]
रीता आया रीता जाई । वही भली जो खरची खाई ।।
माया मच सच क्या करना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।२१।।
देश विलायत घोडा हाथी । इन मे कोउ न तेरा साथी ।।
पीछे हो है हाय मसरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।२२।।
मदिर माल छोड सब जाना । होय बसेरा बीच मसाना ।।
अवर[1] ओढन भूमि पथरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।२३।। आकाश[1]
बहु विधि सत कहत हैं टेरे । यम की मार पडे शिर तेरे ।।
धर्मराय का लेखा[1] भरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।२४।। हिसाब[1]
पाप पुन्य का व्योरा[1] मागे । कागद निकसे तेरे आगे ।। विवरण[1]
रती रती का हो है निरना[2] । समझ देख निश्चय कर मरना ।।२५।। निर्णय[2]
कटक ऊपर चल है भाई । ताते खभन से लिपटाई ।।
ऐसी त्रास जान अति डरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।२६।।
कबहू काहू दुख न दीजे । अपनी घात आप क्यो कीजे ।।
बार बार चौराशी फिरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।२७।।
जो बाहै लुनियेगा[1] सोई । अमृत खाय कि विष फल होई ।। फल पायेगा[1]
यही विचार अशुभ से टरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।२८।।
वेद पुराण कहै समझावे । जैसा करे सु[1] तैसा पावे ।। सो[1]
ताते देख देख पग धरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।२९।।
भोजन करे तृप्त सो होई । गुरू शिष्य भावे किन कोई ।।
अपनी करनी पार उतरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।३०।।
काम क्रोध बैरी घट माही । और कोउ कछु बैरी नाही ।।
रात दिवस इनही से लरना । समझ देख निश्चय कर मरना ।।३१।।

मन को दड बहुत विधि दीजे । याही[1] दगा बाज वश कीजे ॥ इसी[1]
और किसी सेतो नहि अरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ॥३२॥ अड़ना[1]
जिन के राग द्वेष कहु नाही । ब्रह्म विचार सदा उर माही ॥
उन सतन के गहिये चरना । समझ देख निश्चय कर मरना ॥३३॥
काचा पिड रहत नहिं दीसे । यह हम जानी विसवा वीसैं ॥
हरि समरण कवहू न विसरना । समझ देख निश्चय कर मरना ॥३४॥
जो तूं स्वर्गलोक चल जावे । इन्द्रलोक पुनि रहन न पावे ॥
ब्रह्मा हू के घर से गिरना । समझ देख निश्च कर मरना ॥३५॥
गर्व न करिये राजा राना । गये विलाय देव अरु दाना ॥
तिन के कहू खोज हू खुरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ॥३६॥ चिह्न
धरती माप एक डग करते । हाथो ऊपर पर्वत धरते ॥
केते गये जाहि नहि बरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ॥३७॥ वर्णन[1]
आसन साध पवन पुनि पीवे । कोटि वर्ष लग काहि न जीवे ॥
अत तऊ तिनका घट परना[1] । समझ देख निश्च कर मरना ॥३८॥ पड़ेगा[1]
कपे[1] धर जल अग्नि समदा । वायु व्योम तारागण चन्दा ॥ कापे[1]
कपे सूर गगन आभरना[1] । समझ देख निश्चय कर मरना ॥३९॥
[1]भूषण = सूर्य आदि आकाश की शोभा बढाने से भूषण रूप ही है ॥
जुदा न कोई रहने पावे । होय अमर जो ब्रह्म समावे ॥
'सुन्दर' और कहू न उबरना । समझ देख निश्चयकर मरना ॥४०॥

समाप्तोऽय विवेक चितावनी ग्रन्थ ३१ ।

अथ पवगव छन्द ग्रन्थ ३२ ।

पवगम—पिय[1] के विरह वियोग भई हू वावरी[2] ।
शीतल मद सुगन्ध सुहात न बावरी[3] ॥
अब मोहि दोष न कोय, परूगी वावरी[4] ।
(परिहा) 'सुन्दर' चहु दिश विरह सु घेरी बावरी[5] ॥१॥

परमात्मा स्वामी[1] के विरह वियोग से मैं पागल[2] हो गई हू । शीतल मद और सुगधित वायु[3] भी मुझे अच्छी नही लगती है । ऐसी स्थिति मे जीवित नही रह सकती । अत आत्म घात का दोष मुझे कोई न दें, मैं तो अब वावडी[4] मे पड जाऊगी, कारण मुझ को चारो ओर से विरह रूप प्रचड वायु[5] (आधी) ने घेर लिया है । (परिहा) छद से वाहर है वोलने वाले इसे वोल कर ही वोलते है । इस विरह प्रसग मे सत परमात्मा को अपना स्वामी और अपनी बुद्धि को उसकी पत्नी मानकर ही वर्णन करते हैं, यह सभी सत वाणियो मे ऐसा ही मिलता है, ध्यान रहे ।

इत उत चलत न चित्त, थके दोउ पावरी[1] ।
छाडे सकल सिगार, चढत नहिं पावरी[2] ।।
'सुन्दर' विरहनि दुखित, पीव[3]नहिं पावरी[4] ।
(परिहा) तनक जहर की वाटि[5], सखी मुहि पावरी[6] ।।२।।

इधर उधर जाने का भी मन नही करता दोना पैर[1] थक गये है । सभी शृंगार भी छोड दिये हैं तथा पैर इतने शिथिल हो गये हैं कि खडाउ[2] पर भी नही चढ सकते, स्वामी राम[3] नही मिलते[4] इससे मे विरहनि अति दुखित हू । हे साधक सत सखी अब जीने से क्या लाभ है तुम मुझे विष की कटोरी[5] पिला[6] दो तो वहुत अच्छा हो मैं विरह दुख से मुक्त हो जाऊ ।

विरह जरावत मोहि, न कवहू आरसी[1] ।
विरहनि अति वेहाल, न कर मे आरसी[2] ।।
शीतल मद सुगध, पवन पुनि आरसी[3] ।
(परिहा) 'सुन्दर' पिय[4] परदेश, न आया आरसी[5] ।।३।।

विरह मुझे जलाता है, किसी की आड[1] लेने पर भी जलाना नही छोडता । विरह से मैं अति वेहाल हो गई हू कि हाथ मे दर्पण[2] भी नही पकडा जाता । शीतल मंद सुगध वायु आरी[3] के समान चीरती है । प्रभु[4] अन्य हृदय परदेश मे हैं, मेरे हृदय मे आने के लिये आलसी[5] हो रहे हैं, आते ही नही है ।

विरह हृदय मे पैठ सु लागी वारने[1] ।
विरहनि घर से निकस, रु आई वारन[2] ।।
और सखी समझाय, सु लागी वारने[3] ।
(परिहा) 'सुन्दर' पिय[4]हि मिलाय, जाऊगा वारने[5] ।।४।।

जलाने[1] = द्वार पर[2] = वाहर अन्य सत सखी समझा कर उसका विरह दुख दूर[3] करने लगी, तब विरहनि कहती है, प्रभु[4]को मिला दे मैं तेरे पर वारी आऊगी[5] ।

प्रिय नैनन की ओर, सैन मुहि देहरी[1] ।
फेर न आये द्वार, न मेरी देहरी[2] ।।
विरह सु अदर पैठ, जरावत देहरी[3] ।
(परिहा) 'सुन्दर' विरहनि दुखित, सीख का देहरी ।।५।।

प्रभु ने अपने नेत्रो की सैन देकर मेरी वुद्धि हरली[1] । फिर वे न मेरे द्वार पर आये न मेरे देह के[2] हृदय मे ही ध्यान द्वारा आये । विरह भीतर प्रवेश करके देह[3] को जलाता है । मैं विरहनी अति दुखी हू, हे सत सखी ! मुझे क्या शिक्षा दे रही हो यह न लगेगी ।

विरहनि के मन माहि, रहै यह सालरी[1] ।
तज आभूषण सकल, न ओढत सालरी[2] ।।
वेगि मिले नहि आप, सु अब की सालरी[3] ।
(परिहा) 'सुन्दर' कपटी पीव, पढे किहि सालरी[4] ।।६।।

विरह का दु ख[1] । दुसाला का आधा भाग साल[2] । इस वर्ष[3] । प्रियतम स्वामी ऐसा कपट करना किस पाठशाला[4] मे पढे है ? ।

छाडे सकल सिगार, शीश पर मागना[1] ।
विरहा घेरी आय, सु कत हू मागना[2] ।।
प्रिय के बिन दीदार, और नहि मागना[3] ।
(परिहा) 'सुन्दर' पतिव्रत माहि, नही यह मागना[4] ।।७।

शिर के बालो के बीच की रेखा में सिन्दूर आदि[1] । मार्ग[2] । याचना[3] । पतिव्रत धर्म मे याचना[4] की आवश्यकता नही रहती । पति आप ही आ मिलता है ।

दीपक मदिर माहि, सु राखा जोइ[1] री ।
नैन रहे पुनि थाकि, सु मारग जोइ[2] री ।।
पीव न आये भवन, भला रथ जोइ[3] री ।
(परिहा) 'सुन्दर' कंत न और, उसीको जोइ[4] री ।।८।।

जलाकर[1] । देख[2] । जोत ले[3] । विरहनी के लिये अन्य स्वामी नही होता उसी को देख[4] ।

पीव गया परदेश, सु कत हू सोधना[1] ।
अब हू गृह से निकस, करूंगी सोधना[2] ।।
जाकी सूनी सेज, रहै क्यो सोधना[3] ।
(परिहा) 'सुन्दर' प्रान अधार, सु मेरे सोधना[4] ।।९।।

खोजन नही है[1] । खोज करूगी[2] । स्त्री[3] । मेरे तो वे ही धन[4] प्राण धार है ।

भूपण सकल उतार, बखेरी माग[1] ही ।
अग विभूति लगाय, चली तब माग[2] ही ।।
मैं वासे फिर कहा, अबै मुहि मागही[3] ।
(परिहा) 'सुन्दर' रहू न बैठ, जाउ पिय माग[4] ही ।।१०।।

शिरका शृगार[1] । मार्ग[2] । मत पकड[3] । अत मैं बैठी नही रहूँगी । मार्ग[4] ।

दूभर[1] रैनि विहाय, अकेली सेजरी[1] ।
जिनके सग न पीव, विरहनी सेजरी[2] ।।
विरह सकल वाहि, विचारी सेजरी[3] ।
(परिहा) 'सुन्दर' दु ख अपार, न पाऊ[4] सेजरी ।।११।।

सखी श्य्या पर[1] जली[2] विरहाग्नि से । उसके लिये रात्रि निकालना कठिन[1] है । विरह साकल से वह जकडी[3] गई । यदि अन्त करण रूप सेज पर प्रभु को नही प्राप्त[4] किया तो मेरे को असह्य महान् दु ख ही रहेगा । सुख प्रभु प्राप्ति पर होगा ।

पथी[1] आवे कोइ, शीश हू बैसना[2] ।
कहू वहा ही जाहु, अवै इह बैमना[3] ।।
पीव हि जाय सुनाय, रहन[4] की बैसना[5] ।
(परिहा) 'सुन्दर' देव न और, भई हू वैसना[6] ।।१२।।

प्रभु का समाचर लेकर आवे[1] । बैठने[2] के लिये । मत बैठ[3] । मेरे रहने[4] की स्थिति प्रभु को सुनाकर ही बैठना[5] । वैष्णव ६ हो गई हू अत मेरे लिये अन्य देव उपास्य नही हो सकता ।

हार हमेल[1] उतार, उतारी राखरी[2] ।
चौवा चन्दन छाड, लगाई राखरी[3] ।।
जैहू देश विदेश, अब न मुहि राखरी[4] ।
(पीरहा) ,सुन्दर' पिय विन जारि, करू तन राखरी[5] ।।१३।।

चादी सोने के सिक्के हार[1] । चूडामणि[2] । राख[3] । रखो नही[4] । राख[5] ।

पीव बिना तन छीन, सूख गई साखरी[1] । — खेती[1]
हाड रहे कै चाम, विरहनी साखरी[2] ।। — साक्षी[2]
निशि दिन जोवे माग, विचारी साखरी[3] । — वह खड़ी[3]
(परिहा) 'सुन्दर' पति को छाड, फिरत है साखरी[4] ।।१४।।

अपने पति के विना वह खरी[4] हैं गधी के समान फिरती रहती है ।

छाड आपना नाथ, आनकी सेव[1]का । — सेवा[1]
रुचे न खाटे बेर, स्वाद अति सेवका ।।
को कर सके बखान, प्रभु की सेविका[2] । — सेवा का[2]
(परिहा) 'सुन्दर' अनत न जाहि, तुम्हारे सेवका ।।१५।।

मूरख माने मोद, सेव कर आनकी ।
पति अपना दे छाड, रहै क्यो आन[1]की ।। — अन्य[1]
पावे दुख अपार, प्रभुकी आनकी[2] । — शपथ[2]
(परिहा) 'सुन्दर' फिर पछताय, कहेगा आनकी[3] ।।१६।। — आनेकी[3]

टेढी पाग बनाय, अग क्या मोरना[1] । — मोडना[1]
कीये बहुत सिगार, कहा कुछ मोरना[2] ।। — मुकुट[2]
जत्र सु झूटा साज, चढावे मोरना[3] । — तार कसने का[3]
(परिहा) 'सुन्दर' देख विचार, यहा कुछ मोरना[4] ।। १७।। — मेरा नही[4]

उपजा आतमज्ञान, अवै या तन्न मे ।
देखा बुद्धि विचार, वस्तु है तन्न मे ।।
पूरण ब्रह्म अखड, विराजे तन्न मे ।
(परिहा) 'सुन्दर' यह सुप्रपच देखिये तन्न मे ।।१८।।

समाप्तोऽयं पवंगम छन्द ग्रन्थ ॥ ३२ ॥

अडिला छन्द ग्रन्थ ॥ ३३ ॥

अडिला— पिये[1]बिन शीश न पारू पाटी[2]। पिय बिन आखिन बाधो पाटी[3]।
पिय बिन और लिखूं नहिं पाटी। 'सुन्दर' पिय बिन छतिया पाटी[4] ॥१॥
[1]प्रभु राम के बिना। शिर के केश का शृंगार[2], पट्टी[3] कपडे की। फटती[4] है दुख से।

'सुन्दर' बिरहनि बिरहै बारी[1]। प्रीति करत किनहू नही वारी[2] ॥
पिया को फिरी बाग अरु बारी[3]। अब तो आय पहूँची बारी[4] ॥२॥
जलाई[1]। रोकी नही[2]। प्रभु के लिये बाग और बाटिका=बगीची[3]। मिलने का समय[4]।

प्रियजी आप लगाइसि बाना[1]। पिय कारण यह कीया बाना[2] ॥
विरह कसे कचन ज्यो बाना[3]। 'सुन्दर' तन कर पिय से बाना[4] ॥३॥
बाण=टेव[1]। भेष[2]। चमक[3]। शरीर से प्रभु के साथ तानावाना समान एक[4] हो गई।

विरह गह दशहू दिश फेरी[1]। किन हू सीख देय नहिं फेरी[2] ॥
'सुन्दर' पीव करी नहिं फेरी[3]। विरहनि पडी खाय कर फेरी[4] ॥४॥
फिराई[1], लोटाई[2], प्रभु फिरकर नही आये[3], इस से विरहनि चक्कर[4] खाकर पड गई।

पिय बिन हियरा होय न सीरा[1]। पिय बिन सजनी खाउ न सीरा[2] ॥
मैं कीया पिव ही से सीरा[3]। 'सुन्दर' मेरे रहै नसीरा[4] ॥५॥
ठडा[1], हलुवा[2], साजा=मेल[3], मेरे नसीब[4]=भाग्य मे यही था।

मैं तो प्रीति करत नहि जाना[1]। पिव मु ले आये नहिं जाना[2] ॥
निशि दिन विरह जरावत जाना[3]। 'सुन्दर' अब पिय ही पै जाना[4] ॥६॥
जान न सकी[1], प्रभु ही मुझे ले आये अब प्रभुको छोडकर जाना[2] नही है। जीव[3], अत अब तो प्रभुके पास ही जाना[4]है, अन्य के पास नही।

पिय कारण मैं दीन्ही हेरी[1]। पिय को गली गली सब हेरी[2] ॥
अब क्या करू सखी सुन हेरी[3]। 'सुन्दर' पिय कबहू नहि हेरी[4] ॥७॥
अवाजै[1], खोजी[2], हे सखी=हेली[3]। प्रभु ने मेरे को खोजी[4] नही।

विरह विथा कर सूखत मासा[1]। लोग सु पावन लागे मासा[2] ॥
पिय बिन आया फागुन मासा[3]। 'सुन्दर' विरहनि तोला मासा[4] ॥८॥
मांस[1], उडद[2] की दाल मास बढाने को। महिना[3], तोलामासा=बेचैन[4]।

पिय बिन नीद परै नहि खाटा[1]। पिय बिन विरहनि खाय न खाटा[2] ॥
पिय बिन दिल मे और न खाटा[3]। 'सुन्दर' मन सबसे भया खाटा[4] ॥९॥
खाट=पलग[1]। कढी[2] दु ख[3]। अर्थात् वियोग बिना। उपराम[4] हो गया है।

पिय विन जागी रजनी सारी[1]। पिय विन कबहुं न पहरी सारी[2] ॥
'सुन्दर' विरहा करवत सारी[3]। विरहनि कहो रहै क्यो सारी[4] ॥१०॥
सव १। बहुमूल्य साडी २। खैंची ३। ऐसी स्थिति मे सावुत ४। कैसे रहेगी।
अव सखि अपना मन वश करना। वह तो पिया किस ही के कर[1]ना ॥ हाथो मे नही[1]
अपनी खुसी करे सो करना[2]। तो 'सुन्दर' किस ही का करना[3] ॥११॥सुकृत[2]दड नही[3]
पिय को ढूढे वारी[1] बागा। पिय विन क्यो कर थभू वागा[2] ॥
पिय कारण यह पहरा बागा[3]। 'सुन्दर' डाका दहदिश वागा[4] ॥१२॥
पुष्प वाटिका १। घोडे की लगाम २। भेष ३। पड गया ४। विरही की ऐसी ही स्थिति हो जाती हैं।
मात पिता अरु काका काकी। सुत दारा अरु सपत काकी[1] ॥ किसकी[1]
ज्यो कोयल सुत सेवे काकी[2]। 'सुन्दर' रिद्धि राखकर काकी[3] ॥१३॥
कागली[2] क्या किया[3]
घर मे बहुत भई जव माया। तव से फूला अगन माया ॥
बहुर त्रिया से बाधी माया[1]। 'सुन्दर' छाड जगत की माया[2]।१४। मोह[1] माया[2]
गर्भ माहि तव किन तू पाला[1]। अव माया को दौडत पाला[2] ॥
ऐसी कुबुद्धि ढाकि दे पाला[3]। 'सुन्दर' देह गले ज्यो पाला[4] ॥१५॥
पोषण १। पैदल ही २। ऐसी कुबुद्धि को ठीकरा ३ से ढकदे। हिम = बर्फ ४।
खैचि कमर से बाधा पटका[1]। अधिपति हुवा बैठकर पटका[2] ॥ वस्त्र[1]गदी[2]
काल अचानक मारा पटका[3]। 'सुन्दर' पकड जिमी पर पटका ॥१६॥ थप्पड[3]
भूला कहा देख या पल[1] मे। सव ससार भुलाया पल[2] मे ॥ नि मेष[2]
देखत विनश जायगा पलमे। सुन्दर' भारकिता इक पलमे ॥१७॥
इस क्षण[1] मे दर्पण मे मुख देखकर काल को क्या भूल रहा हैं। मास मे[2]।
आप हि जाल किया ज्योमकरी[1]। पीछे फिरा लाठ ज्यो मकरी[2] ॥
अजहू समझ देख कुछ मकरी[3]। 'सुन्दर' मकर[4] छाडदे मकरी[4] ॥१८॥
मकडी १। घाणी के ऊपर का भाग २। अज्ञानी ३। छली ४ अभिमान ५।
पाववन निमित देह जो दाना। सो हाथी हो खावे दाना[1] ॥
उनकी मति खसखस का दाना[2]। 'सुन्दर' सत मिले नहिं दाना[3] ॥१९॥
खाने के १। अति छोटी २। उनको ज्ञानी ३ सत नही मिले।
आगे महापुरुष जे भूता[1]। तिनवश कीया पाँचो भूता ॥ हुये[1]
अव ये दीसत नाना भूता[2]। 'सुन्दर' वे मर मर हो भूता[3] ॥२०॥ प्राणी[2] प्रेत[3]
कोई खाहि लापसी माडा[1]। कोई पीवे पतला माडा[1] ॥
जिन चरित्र ऐसा यह माडा[3] सोतो 'सुन्दर' व्यापक माडा[4] ॥२१॥
मैदा की पपडी १। चावल का माड २। फैलाया ३। ब्रह्माण्ड ४ वह ब्रह्म।
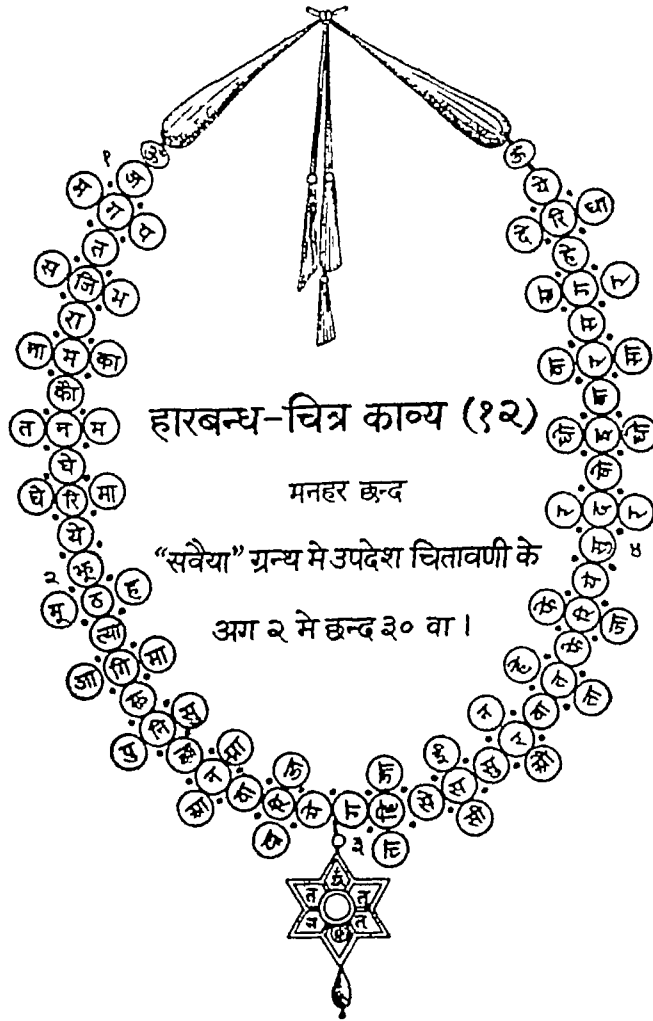
जग मग पग तजि सजि भजि राम नाम, काम कौंन तन मन घेरि घेरि मारिये ।
झूट मूठ हठ त्यागि जागि भागि सुनि पुनि, गुनि ज्ञान आन आन वारि वारि डारिये ।।
गहि ताहि जाहि सेस ईस सीस सुर नर, और बात हेत तात फेरि फेरि जारिये ।
सुन्दर दरद खोइ धोइ धोइ बार बार, सार सग रग अग हेरि हेरि धारिये ।।३०।।

इसके पढने की विधि

हार की प्रथम पचनगी के प्रथम नग मे जो ‘ज’ अक्षर है वहा से प्रारभ करें। मध्य के नग के अक्षर के साथ उस ‘ज’ को फिर बाईं ओर के ‘म’ को फिर दाहिनी ओर के ‘प’ को मिलाकर पढें। आगे नीचे के पाचवें अक्षर ‘त’ को दूसरी पचनगी के अक्षरो के साथ पूर्ववत् पढे। आगे इस ही प्रकार। दूसरा चरण छटी पचनगी से। तीसरा ११ वी से। चौथा १६ वी से। प्रत्येक चरण पर अङ्क है ।।

लालच लग सेवा की हरकी[1] । भौडी चाल लिई तै हरकी[2] ॥
मूरख फिर पिछली ही हरकी[3] । 'सुन्दर' सबै बात भइ हरकी[4] ॥२२॥
हर किसी की[1] । मैंढक की[2] । इच्छा[3] । हरि भक्ति बिनासब हलकी[4] हो गई ।
जलता फिरा तपत ज्यो हरिकी[1] । शीतलता उपजी नहि हरिकी[2] ॥
बहुविधि मार खाय है हरिकी[3] । 'सुन्दर' सेवाकरी न हरिकी[4] ॥२३॥
सूर्य की[1] । त्रितापसे । चन्द्रमा की[2] । यमकी[3] । भगवान की[4] ।
ऐसे रट जैसे सारगा[1] । अनत न भ्रम जैसे सारंगा[2] ॥
रसिक होय जैसे सारङ्गा[3] । तो 'सुन्दर' पावे सारङ्गा[4] ॥२४॥
पपीहा[1] । हिरण[2] । भौंरा[3] । तो भगवान्[4] को प्राप्त होगा ।
जो कर्मन का ढारे पासा[1] । तो लग पड है यमका पासा[2] ॥
सत सगति के लागे पासा[3] । तो 'सुन्दर' हरि ही के पासा[4] ॥२५॥
जबतक सकाम कर्मों का । पासा[1] (चौपड का) पटकेगा । तबतक यमकी फासी[2] ।
पासमे[3] आवेगा तो भगवान के ही पास[4] पहुच जायगा अत सत्सग करना श्रेष्ठ है ।
जो तेरे ढिग आवे नारी[1] । तो तू कह उठ नारी[2] नारी[3] ॥
पल मे शोप लेय सब नारी[4] । 'सुन्दर' रथ न चले बिन नारी[5] ॥२६॥
स्त्री १ । बाधिन २ । निषेध कर दे ३ । वीर्य की नाडी ४ । नाडी ५ ।
जामे हुता सबन का भागा[1] । भाडा सोई भ्रमका भागा[2] ॥ हिस्सा[1] टूटा[2]
अब तो मस्तक जागा भागा । 'सुन्दर' छाड जगत को भागा[3] ।२७। दौडा[3]
बसन[1] छाड तन कीया नागा । बन मे जाय रहै ज्यो नागा[2] ॥ वस्तर[1] जाति[2]
पवन अहार करे ज्यो नागा[3] । 'सुन्दर' रामबिना सब नागा[4] ।२८। सर्प[3] हीन[4]
रिपु क्यो मरे ज्ञान का सर[1] ना । तातै मन मैवासी[2] सरना[3] ॥
देख विचार बहुर ओसर[4]ना । 'सुन्दर' पकड राम का सरना[5] ॥२९॥
बाण १ । प्रबल २ । वशमे ३ । समय ४ । इससे राम की शरण ५ पकड ।
जो तो तू प्रभुजी का चर[1]ना । तो तू भया विमुख हरि चरना[2] ॥
अब तू पहर कमर मे चरना[3] । 'सुन्दर' इत उत फिर कुछ चरना[4] ॥३०॥
यदि तू प्रभुजी का दास[1] नही । तो हरि चरणो[2] विमुख है । कमर बन्ध[3] ।
इधर उधर फिर कर ही हरि का दिया मतखा[4] । हरि भक्ति अवश्य कर ।

समाप्तोऽयं अडिला छन्द ग्रन्थ ३३

अथ मडिल्ला ग्रन्थ ३४

मडिल्ला-बन्धनभया प्रीतिकर रामा[1] । भक्त होय जो सुमिरे रामा[2] ॥ स्त्री[1]राम[2]
निशिदिन याही करे विचारा[3] । सुन्दर' छूटे जीव विचारा[4] ।१। विचार[3] हीन[4]
एक कर्म बन्धन हो मोटा । तै बाधी कर्मनकी मोटा[1] ॥ पोट[1]
याही सीख सुने किन काना । 'सुन्दर' देहु जगत से काना[2] ॥२॥ उपराम[2]

मूरख तृष्णा वहुत पसारी । हरद हींग ले भया पसारी ॥
औरन को ठगठग धन साचा । 'सुन्दर' हरि से होय न साचा[1] ।३। सच्चा[1]

तृष्णा कर कर परजा[1] भूले । तृष्णा करकर राजा भूले । प्रजा के लोग[1]
तृष्णा लग दश हू दिश धाया । 'सुन्दर' भूखा कवहु न धाया[2] ॥४॥ तृप्त[2]

माल मुलक हाथी अरु घारा[1] । वहुत गर्व कर घन ज्यो घोरा[2] ॥ घोडा[1] गर्जा[2]
काल आवतं करी न वेरा[3] । 'सुन्दर' छिन मे किया न वेरा[4] ।५। देर[3] नाश[4]

माया लेकर घर मे गाडी । निशदिन भर भर ल्यावे गाडी ॥
भगर लूकसी[1] से दिनाकाटे । 'सुन्दर' सूम न कोडी काटे ।६। लूखासूखा[1] खाकर

औरहि दिई न आप न खाई । मायाधरी खोद कर खाई ॥
मेल्ही रही सूम की थाती[1] । 'सुन्दर' दी आगे का थाती[2] ।७। धरोहर[1] जमा[2]

मू छ मरोडत टेडी पागा । रोमहि रोम विषय रस पागा ॥
काल अचानक आय पछारा । 'सुन्दर' भया छिनक मे छारा[1] ॥८॥ राख[1]

पाट[1] पटवर[2] सोना रूपा । भूला कहा देख यह रूपा ॥ रेशम[1] रेशमी[2] वस्तर
छिन मे विलय जात नहि वारा । 'सुन्दर' टेर कहा कै वारा ॥९॥

जो तू देहि धणी[1] को लेखा[2] । तो तू जो जाने सो लेखा ॥ हरिको[1] हिसाब[2]
जो तो पै नहि आवे जावा[3] । तो 'सुन्दर' टूटेगी जावा[4] ॥१०॥ उत्तर[3] जवाडी[4]

जो तू हाथ लिया है आसा[1] । तो अव छाड और की आसा[2] ॥
निहचै पकड एक हो भौना[3] । तो 'सुन्दर' किसही का भौना[4] ॥११॥
आसन को सीधा रखने का काष्ट[1] । आश[2] । हरि को भवन[3] । भय[4] नही रहेगा ।

वर्षा शीश शीत मधि[1] नीरा । उष्णकाल पावक अतिनीरा[2] ॥ मध्य[1] पास[2]
ऐसी कठिन तपस्या साधी । 'सुन्दर' राम विना क्या साधी[3] ॥१२॥ साधना[3]
अधो शीश ऊरध को पाया[1] । राजपाट कुछ चाहै पाया[2] ॥ पैर[1] पाना[2]
भीतर भरा कुवुधि से भाडा[3] । 'सुन्दर' राम बिना हो भाडा[4] ।१३। शरीर[3] बुरा[4]
शिर पर जटा हाथ नख राखा । पुनि सव अग लगाई राखा ॥
कहै दिगम्वर हम औधूता[1] । 'सुन्दर' राम विना सव धूता[2] ।१४। अवधूत[1] धूर्तता[2]
योगी सो जु करे मन न्यारा । जैसे कचन काढे न्यारा[1] । न्यारिया[1]
कान फडाये कोई न सीधा[2] । 'सुन्दर' हरि मारग चल सीधा ॥१५॥ सिद्ध[2]
जो सबसे हूवा वैरागी । सो क्यो होय देह वैरागी[1] ॥ अनुरागी[1]
निशि दिन रहै ब्रह्म से राता । 'सुन्दर' सेत[2] पीत नहि राता ।१६। सबरगो मे सम[2]
सन्यासी जो रहै उदासा । जाने सबको होय उदासा[1] ॥ देह दृष्टि से[2]
तामस छाड ज्ञान मे रहना । 'सुन्दर' या विन दूजी रह[2] ना ॥१७॥ मार्ग[2]

जीव दया क्या कीनी जैना[1] । ज्ञान दृष्टि ग्रभि अतर जैना[2] ।।
जीव ब्रह्म का लहा न खोजा[3] । 'सुन्दर' जती भये ज्यो खोजा[4] ।।१८।।

जैनो ने[1] क्या जीव दया की । यदि ज्ञान दृष्टि मे भीतर नही गये[2] तो । विचार[3] नही किया। तो वे जती भी भये तो केवल नपु सक[4] के समान ही है, उनमे विशेपता क्या है ? ।।

पडित कहै पिंड[1] की बाता । पृथ्वी आप[2] तेज नभ बाता[3] ।। देह[1] जल[2] वायु[3]
धर्म रु काम सुनावे ग्रर्था । 'सुन्दर' ढकहि वेद का ग्रर्था ।।१९।।
कथा कहै बहुभाति पुराणी । नीकी लागे बात पुराणी ।।
दोप जाय जब छूटे रागा[1] । 'सुन्दर' हरि रीझे सो रागा[2] ।।२०।। आसक्ति[1] प्रेम[2]

समाप्तोऽय मडिल्ला ग्रन्थ' ३४

अथ बारह मासा ग्रन्थ ३५

पवगम--प्रथम सखी[1] री[2], चैत वर्ष लागा नया । साधक सत[1] ग्ररी[2]
मेरा पिव[3] परदेश[4], बहुत दिन का गया ।। परमात्मा[3] हृदय से[4]
विरह जरावे मोहि, विथा का से कहू ।
(परिहा) 'सुन्दर' ऋतु बसत[5], कत बिन क्यो रहू ।।१।। पूरा साधन[5]
ग्रब आया वैशाख, भाप[1] नही कत की । समाचार[1]
यौवन[2] क्यो वश होय, छक्क मैमत[3] की ।। मन[2] हाथी[3]
तब ही माने शक सु बिसवा बीसरी ।
(परिहा) 'सुन्दर' अकुश पीव, धरे जब शीशरी ।।२।।
जेठ तपे दिन रैनि, सु मेरी छत्तिया ।
पीव सदेश लिखाय, न भेजी पत्तिया ।।
चदन चन्द बयारि[1], लगे तन तीर री । शीतल वायु[1]
(परिहा) 'सुन्दर' विरहनि देख, धरे क्यो धीर री ।।३।।
आया मास आसाढ, गाढ[1] किन हू किया । वैर[1] दृढ पकडने का
राखे पिय बिरमार[2], सु आवन ना दिया ।। विलमाय[2]
हूव[3] रहू किस लाग, अकेली सेज[4]री । मैं अब[3] हृदय से[4]
(परिहा) 'सुन्दर' विरहनि रोय, मरे इस हेज[5] री ।।४।। प्रेम[5]
श्रावण मास सदेश, कहै को नेह के[1] । प्रेम के[1]
पथी रहै सु बैठ, डराने मेह के ।।
ना इत तै कोउ जाय, न ह्वासे आव ही ।
(परिहा) 'सुन्दर' बिरहनि दु ख, न रैनि विहाव[2] ही ।।५।। बीतती[2]
भादो गहर गभीर, अकेली कामिनी[1] । बुद्धि वृत्ति[1]
मेघ रहा झर लाय, चमकत दामिनी ।।

बहुत भयानक रैनि, पमन चहु दिशि वहै ।
(परिहा) 'सुन्दर' विन उस पीव[2], विरहनि क्यों रहै ।।६।।
२ प्रभु दर्शन विना सन्त, शांति से कैसे रह सकते हैं ।

आश रही आसोज, आय है पीवरी ।
वार वार समझाय, सु राखा जीव[1] री ।। प्राण को[1]
निर्मल देख आकाश, शरद ऋतु की निसा ।
(परिहा) 'सुन्दर' पीवन पास, अवै जीवन किसा ।।७।।
कातिक कत समीप, त्रिया ते है सुखी ।
हूँ तो फिरू उदास, पीव विन अति दुखी ।।
फूले कमल अनन्त, चहूँ दिशि चादनी ।
(परिहा) 'सुन्दर' विरहनि देख, भई है मादिनी[1] ।।८।। उदास[1]
अगहन पिय की वात, कहै को सुन सखी[1] । साधक सत[1]
हृदय और मुख और, सु मैं मन मे लखी ।।
आवन को कह[2] गये, अजू नहि आइया । वेदादि मे[2]
(परिहा) 'सुन्दर' कटीकत, वही विरमाइया[3] ।।९।। विलमाया[3]

पोस मास की रात, पीव विन क्यो कटे[1] । वीते[1]
तलफ तलफ जिय जाय, कलेजा अति फटे ।।
सूनी सेज सँताप, सहै सो वावरी ।
(परिहा) 'सुन्दर' काढू प्राण, सु अबहि उतावरी ।।१०।।
माघ सु पडे तुषार[1], जतन सब को करे । वर्फ[1]
सौड सपेदी ओढ, सग पिय के परे[2] ।। सोवे[2]
हू तो भई अनाथ, आसिरा[3] को नही । आश्रय[3]
(परिहा) 'सुन्दर' विरहनि दुखित, पुकारे मन मही ।।११।।

फागुन घर घर फाग, सु खेलहि कत से ।
केशर चन्दन अगर, गुलाल वसत से ।।
मेरे नख शिख अग्नि, बारि[1] विरहा दिई । जलादी[1]
(परिहा) 'सुन्दर' मृतक समान, देख विरहनि भई ।।१२।।
बीते बारह मास, विरहनी तलफतै ।
महर[1] न आई तो हि, निशि दिन कलपतै ।। दया[1]
अबहि दयाकर आव, जीवका दान दे ।
(परिहा) 'सुन्दर' प्रानहि राख, निकस जनि[1] जाने दे ।।१३।। क्यो[1]

समाप्तोऽय वारह मासा ग्रन्थ ३५

आयुर्बल भेद आतमा विचार ग्रन्थ ३६

चौपाई—गुरु वन्दन कर करूं उचारा । आयुर्बल का सुनो विचारा ॥
ब्रह्मा आदिकीट पर्यन्ता । आर्यबल[1] बीते हो अन्ता ॥ १ ॥ उम्र[1]
सतयुग लक्ष वर्ष की आवू[1] । त्रेता दश सहस्र ठहरावू ॥ आयु[1]
द्वापर एक सहस्रहिं जानी । कलियुग मे सौ वर्ष बखानी ॥ २ ॥
घटत घटत नउवे रहि जाही । असी वर्ष कै सत्तर माही ।
साठ पचास वर्ष चालीसा । तीस बीस दश एक वरीसा[1] ॥ ३ ॥ वर्ष[1]
एक वर्ष के बारह मासा । ताहू मांहि घटत है स्वासा ॥
ग्यारह दश नव आठ कि साता । षट कै पाच चार पुनि जाता ॥ ४ ॥
तीन दोय कै एकै होई । आयुर्बल गति लखे न कोई ।
एक महीना के दिन तीसा । घटत घटत दिन रहे जु बीसा ॥ ५ ॥
बीसहु मे पन्द्रह दश पाचा । चार तीन दो इक दिन साचा[1] ॥ सत्य[1]
एक दिवस की घटिका साठी । कै पचास चालीस हु नाठी[2] ॥६॥ नष्ट[2]
तीस वीस दश पाच कि एका । एक घडी मे गये अनेका ॥
एक घडी की साठ निमेषा । घटत घटत एकै पल शेषा ॥ ७ ॥
एक पलक षट स्वासा होई । तासे घट बध कहै न कोई ॥
पच चार त्रय दोइक स्वासा । अर्ध पाव अध पाव विनाशा ॥ ८ ॥
यू आयुर्बल घटता जायी । काल निरतर सबको खायी ॥
ब्रह्मा आदि पतग जहा लौ । उपजे विनशे देहतहा लौ ॥ ९ ॥
यथा बास लघु दीरथ होई । तिन की छाया घट बध होई ॥
जब सूरज आवे मध्याना । दोऊ छाया एक समाना ॥१०॥
यू लघु दीरघ घट का नाशा । आतम चेतन स्वय प्रकाशा ॥
अजर अमर अविनाशी अगा । सदा अखडित सदा अभगा ॥११॥
घटे न बढै न आवे जाई । आतम नभ ज्यो रहा समाई ॥
जो कोई यह समझे भेदा । सत कहै यूं भाषे वेदा ॥१२॥
ये चौपाई त्रयोदश कही । आतम साक्षी जानोउ सही[1] ॥ सत्य[1]
'सुन्दर' सुने विचारे कोई । सो जन मुक्त सहज ही होई ॥१३॥

समाप्तोऽयं आयुर्बल भेद आतमा विचार ग्रन्थ' ३६

अथ त्रिविध अन्तःकरण भेद ग्रन्थ ३७ (प्रश्न और उत्तर)

चौपाई—कौन बहिर मन कहिये स्वामी । अन्तर्मन कहि अन्तर्यामी ।
कौन परम मन कहिये देवा । 'सुन्दर' पूछत मन का भेवा[1] ॥१॥ भेद[1]
उत्तर—वही बहिर्मन भ्रमत न थाके । इन्द्रिय द्वार विषय सुख जाके ।
अन्तर्मन यू जाने कोह । 'सुन्दर' ब्रह्म परम मन सोह ॥२॥

प्रश्न— वहिर्बुद्धि अब कहो गुसाईं । अतर्बुद्धि कहो किहिं ठाईं ।।
परम बुद्धि का कहो विचारा । 'सुन्दर' पूछै शिष्य तुम्हारा ।। ३ ।।
उत्तर—वहिर्बुद्धि रज तम गुण रक्ता । अंतर्बुद्धि सत्व आसक्ता ।।
परम बुद्धि त्रय गुण से न्यारी । 'सुन्दर' आतम बुद्धि विचारी ।। ४ ।।
प्रश्न —वहिर्चित कैसे पहचाने । अतर्चित्त कौन विधि जाने ।।
परम चित्त कैसे कर कहिये । 'सुन्दर' सद्गुरु बिन नहिं लहिये ।। ५ ।।
उत्तर—वहिर्चित्त चितवैहि अनेक । अतरचित्त चित्तवन एक ।।
परम चित्त चितवन नहि कोई । चितवन करत ब्रह्ममय होई ।। ६ ।।
प्रश्न —बहि[1]जो अह सु कौन प्रकारा । अत अह कौन निर्धारा ।। वहिर्मुख[1]
परम अह कैसे कर पइये । 'सुन्दर' सद्गुरु मोहि लखइये ।। ७ ।।
उत्तर—वहि जो अह देह अभिमानी । चार वर्ण अतिज लौ प्रानी ।।
अत [1] अह कहै हरिदासं । परम अह हरि स्वय प्रकाश ।।८ । अतर[1]
चतुष्ट[4] अत करण सुनाये । त्रिधा भेद सद्गुरु से पाये ।। चार[4]
यह नीके कर समझो प्रानी । 'सुन्दर' नौ चौपई बखानी ।। ९ ।।

समाप्तोऽय त्रिविधि अन्त करण भेद ग्रन्थ' ३६

अथ पूरबी भाषा बरवै ग्रन्थ ३८

बरवै— सद्गुरु चरण निनाऊ[1], मस्तक मोर । नमाऊं[1]
बरवै सरस सुनाऊ, अद्भुत जोर[2] ।। १ ।। जोडकर[2]
पण्डित होय सु पावे, अरथ अनूप ।
हेठ[1] भरल[2] पनिहारिय[3], ऊपर कूप ।। २ ।।

ब्रह्म रूप कूप सबसे महान होने से ऊपर है । साधक सतो की बुद्धि वृत्तियां नीची[1], स्थिति मे रहकर उस ब्रह्म की उपासना करके पनिहारियो[3] के समान उससे गुरु की बताई हुई युक्ति से ज्ञान जल भरती है[2] और हृदय स्थान मे रखती हैं ।

कुम्भ[1] भरल[3] सपूरन निर्मल नीर[2] ।
पखि तिसाई[4] गइले[5], सागर तीर ।। ३ ।।

जिज्ञासुओ ने अपना हृदय रूप घडा[1] मे सशय विपर्यय मल से रहित ज्ञान रूप जल[2] पूर्णरूप से भर लिया[3] किन्तु व्यापक ब्रह्म रूप सागर की तीर पर अर्थात् पास रहकर भी विषयाशा रूप पखो वाले जीव प्यासे[4] ही गये,[5] उनकी आशा रूप प्यास नही मिटी ।

गगा जमुना दोउ बहइय[1], तीक्षण धार ।
सुमति नवरिया[2] बैसल,[3] उतरव[4] पार ।। ४ ।।

आशा तृष्णा रूप गगा-यमुना की तीक्षण धार मे सब प्राणी बह रहे हैं[1] । किन्तु कोई श्रेष्ठ बुद्धि वाला साधक ज्ञानरूप नवका[2] पर बैठ[3]कर उनसे पार उतरता[4] है ।

औरउ[1] अचिरज देखल[2], बाझ कपूत[3] ।
पगु[4] चढल[5] परवत पर, बड अवधूत ॥ ५ ॥

और भी[1] एक आश्चर्य देखा[2] है कि साधक की सात्विक बुद्धि ज्ञान पुत्र के बिना वध्या थी उसके[3] ब्रह्मज्ञान रूप पुत्र तमोगुण रजोगुण पैरो से रहित लगडा[4] हुआ और वह जीवत्व अहकार रूप पर्वत पर चढ गया[5] तथा मन इन्द्रियादि को जीतकर महान अवधूत सत हो गया ।

जल मे पावक प्रजल्यउ[1], पु ज[2] प्रकाश ।
कमल प्रफुल्लित भइले[3], अधिक सुवास ॥ ६ ॥

राम प्रेम रूप जल मे ब्रह्मज्ञान रूप अग्नि प्रज्वलित[1] हुआ, उसकी प्रकाश राशि[2] फैल गई, उससे हृदय कमल खिल गये[3], उनसे अभेद-निष्ठा रूप सुन्दर सुगन्ध आने लगी अर्थात् वचन निकलने लगे ।

अधकार मिट गइले[3], ऊगल[2] भान[1] ।
हस चुगै मुक्ताफल[4] सरवर मान ॥ ७ ॥

ज्ञान रूप सूर्य[1] उगते[2] ही अज्ञान रूप अधकार नष्ट हो गया[3] तब हृदय रूप मानसरोवर मे परमहस सत ब्रह्म विचार द्वारा महावाक्य रूप मोती[4] चुनने लगे। अर्थात् धारण करने लगे ।

बहुत जतन कै[1] लावल[2] अद्‌भुत बाग ।
मूल उपर तर[3] डरिया[4] देखहु भाग ॥ ८ ॥

बहुत यत्न करके[1] ब्रह्मादिक ने यह ससार रूप अद्‌भुत बाग लगाया[2] है । इस बाग के जीव रूप वृक्षो के मूल तो परब्रह्म ऊपर है और देवादि सब जगत रूप डालियां[4] नीचे[3] हैं । इस ससार बाग से भागकर इसके मूल परब्रह्म को देखोगे तब ही परम शाति रूप मोक्ष प्राप्त कर सकोगे ।

सहज फूल फल लागन, बारह मास ।
भवर करत गु जारनि[1], विविध विलास[2] ॥ ९ ॥

उक्त ससार रूप बाग मे जो सत रूप वृक्ष है उनकी सात्विक वृत्ति रूप डालियो के सहज स्वभाव से ही भक्ति रूप पुष्प और ज्ञान रूप फल बारह मास ही लगे रहते हैं, उनका हृदय भक्ति ज्ञानादि से रहित नही होता और भक्ति रूप पुष्प पर मन रूप भ्रमर गु जार[1] अर्थात् चिन्तन करता ही रहता है । इस से वे सत भक्ति ज्ञानादि द्वारा विविध प्रकार आनन्द[2] प्राप्त करते हैं ।

अवडार पर बैसल[1], कोकिल कीर[2] ।
मधुर मधुर ध्वनि बोलइ[3], सुखकर सीर[4] ॥१०॥

जैसे आम की डाली पर बैठ[1] कर कोयल और तोता[2] मीठी मीठी ध्वनि से

बोलते है, वैसे ही संत हृदय मे भक्ति ज्ञानादि स्थिर होने से सत आनन्द से मिली[4] हुई वाणी बोलते[3] हैं। उससे सब जिज्ञासुओं को आनन्द मिलता है।

और अनेक विहंगम[1], चातक मोर।
चकवा कोकिल केकिये, प्रकट चकोर ॥११॥

और उक्त छन्द मे कथित अनेक पक्षी[1] यों के समान हृदय मे चातक के समान चिन्तन करता वृत्ति हैं इत्यादि दैवी गुण सत के हृदय में रह कर हरि उपासना करते हैं।

सब के हू मन भावन, सरस[1] वसंत।
करत सदा कौतूहल[2], कामिनि कंत ॥१२॥

जैसे सुन्दर[1] वसंत ऋतु सबके मन को प्रिय लगती हैं, पति पत्नी लीला[2] करते हैं, वैसे ही राम और संत सदा आनन्द करते हैं। 'सदा वसंत' है संत को यह प्रसिद्ध है।

झूलत बैस हिंडोरन, पिय कर संग।
उत्तम चीर विराजत,[1] भूषण अंग ॥१३॥

वसंत ऋतु मे पति के संग पत्नी हिंडोला मे श्रेष्ठ वस्तर और भूषण धारण कर के विराज[1] कर झूलती हैं, वैसे ही संत सदा लज्जा रूप वस्तर और साधन रूप भूषण धारण करके सदा ही हृदय रूप हिंडोला पर ध्यानावस्था मे झूलते हैं।

निशि दिन प्रेम हिंडुलवा[1], दिहल[2] मचाइ[3]।
सेई[4] नारि सभागिनि, झूलइ जाइ ॥१४॥

जिस साधक की वृत्ति रूप नारी ने अपने हृदय मे प्रभु-प्रेम रूप हिंडोला[1] बनाकर[2] चला दिया है[3] और उस पर जाकर परमात्मा राम के साथ रात दिन झूलती हैं वही[4] सौभाग्यवती है अर्थात् रात दिन प्रभु प्रेम मे निमग्न रहने वाला ही सच्चा संत है।

सज्जन मिलि कैं गावल[1] मंगलचार।
प्रेम प्रकाश दशो दिश, भय उजियार[2] ॥१५॥

उक्त प्रकार की आंतर वसंत ऋतु मे संतजनों की वृत्तियां मिल कर आन्तर ध्यानादि मे मंगल गीत गाती है[1] और उनके प्रेम का प्रभाव रूप प्रकाश दशो इन्द्रियों रूप दशो दिशाओं मे फैल कर सब मे ज्ञान रूप प्रकाश[2] हो जाता है अर्थात् सब इन्द्रियां ज्ञान युक्त हो जाती हैं।

सुख निधान परमातम, आतम अंस।
मुदित सरोवर महियां[1] क्रीडत हंस ॥१६॥

आनन्द का आधार अर्थात् आनन्द स्वरूप परमात्मा का अंश आत्मा प्रसन्न होकर जैसे मानसरोवर मे[1] हंस क्रीडा करता है, वैसे ही आत्मा ब्रह्मानन्द सरोवर मे आनन्दित होता है।

एक[1] सेज वर[2] कामिनि, लागलि[4] पाइ[3] ।
पिय कर अगि है परसत, गइलि[6] विलाइ[5] ॥१७॥

अद्वैत[1] रूप श्रेष्ठ[2] सेज पर जिज्ञासु की बुद्धि वृत्ति रूप कामिनी जब जाकर परब्रह्म रूप प्रियतम के चरणों[3] मे लगती है[4] तब परब्रह्म रूप प्रियतम के स्वरूप से मिलने ही उसी मे विलीन[6] हो गई[5] ।

रस महिया[1] रस होइहि[3], नीर[2] हि नीर ।
आतम मिल परमातम, क्षीरहि क्षीर ॥१८॥

जैसे रस मे[1] रस मिलकर, जल[2] मे जल मिलकर, दूध मे दूध मिलकर एक ही जाते हैं,[3] वैसे ही आत्मा परमात्मा से मिलकर दोनो एक हो जाते हैं ।

सरिता[1] मिलइ[2] समुद्र हि, भेद न कोइ ।
जीव मिलइ[3] परब्रह्म हि, ब्रह्महि होइ ॥१९॥

जैसे नदी[1] समुद्र मे मिलती[2] है तब नदी और समुद्र का भेद न ही रहता, वैसे ही जीव परब्रह्म से मिलता[3] है, तब ब्रह्म रूपी ही हो जाता है ।

इह[1] अध्यातम जानहु, गुरु मुख दीस[2] ।
'सुन्दर' सरस[3] सुनावल[4], बरवै बीस ॥२०॥

यह[1] अध्यातम तत्त्व गुरु के मुख से सुनकर जानो फिर विचार द्वारा देखो तो यथाथ रूप से इनका रहस्य दीखेगा।[2] मैंने यह सुन्दर[3] बीस बरवै सुनाये[4] हैं ।

समाप्तोऽयं पूरवी भाषा बरवै ग्रन्थ ३८ ।

ज्ञान समुद्र से पूरवी भाषा बरवै ग्रन्थ तक छन्दो की सख्या १५३० है ।

अथ सवैया (सुन्दर विलास) ग्रन्थ ३९

अथ गुरुदेव का अग १

इन्दव— मौज करी गुरुदेव दयाकर, शब्द सुनाय कहा हरि नेरा[1] । पास[1] हृदय मे
ज्यो रवि के प्रकटे निशि जात सु दूर किया भ्रम भानि[2] अधेरा ॥ नाश[2]
कायक वायक मानस हू कर, है गुरु देव हि वन्दन[3] मेरा । प्रणाम[3]
'सुन्दरदास' कहै कर जोरि जु, दादु दयाल हि[5] हू नित चेरा[4] ॥१॥ दास[4] का[5]

पूरण ब्रह्म विचार निरतर काम न क्रोध न लोभ न मोहै[1] । मोह[1]
श्रोत्रत्वचा रसना अरु घ्राणसु, देख कछू कहु नैन न मोहै ॥
ज्ञान स्वरूप अनूप निरूपण, जासु गिरा सुन मोहन मोहै ।
'सुन्दरदास' कहै कर जोर सु, दादु दयाल हि[2] मोर नमो है ॥२॥ को[2]

धीरजवत अडिग्ग जितेन्द्रिय, निर्मल ज्ञान गहा दृढ आदू ।
शील सतोष क्षमा जिनके घट, लाग रहा सु अनाहद नादू[1] ॥ शब्द[1]
भेष न पक्ष निरतर लक्ष जु, और नही कुछ वाद विवादू ।
ये सब लक्षण हैं जिन माहि सु, 'सुन्दर' के उर हैं गुरु दादू ॥३॥

भौं[1]जल मे बहि जात हुते जिन, काढ लिये अपने कर आदू[2]। — भव[1] आदि[2]
और सँदेह मिटाय दिये सब, कानन टेर सुनाय के नादू[3]। — शब्द[3]
पूरण ब्रह्म प्रकाश किया पुनि, छूट गये सब वाद विवादू।
ऐसी कृपा जु करी हम ऊपर, 'सुन्दर' के उर[4] हैं गुरु दादू ॥४॥ — हृदय[4]

कोउक गोरख को गुरु थापत, कोउक दत्त दिगम्बर[1] आदू। — नग्न[1]
कोउक कथर[2] कोउ भरथ्थर, कोउ कबीर का राखत नादू ॥ — नाथ[2]
कोउ कहै हरदास हमारे जु, यूँ कर ठानत वाद विवादू।
और तु[3] सत सबै शिर ऊपर, 'सुन्दर' के उर है गुरु दादू ॥५॥ — तो[3]

कोउ विभूति जटा नख धार, कहैं यह भेष हमारा हि आदू।
कोउक कान फडाय फिरै पुनि, कोउक सीग बजावत नादू ॥
कोउक केश लुचाय करै व्रत, कोउक जगम के शिव बादू।
ये सब भूल परे जित ही तित, 'सुन्दर' के उर है गुरु दादू ॥६॥

जोगि कहैं गुरु जैन कहै गुर, बोध कहै गुरु जगम मानै।
भक्त कहैं गुरु न्यासी कहै, वनबीसि कहैं गुरु और बखानै ॥
शेख कहैं गुरु सोफि कहै गुरु, याही से 'सुन्दर, होत हरानै।
वाहु कहै गुरु वाहु कहै गुरु, है गुरु सोइ सबै भ्रम भानै[1] ॥७॥ — नष्ट करे[1]

सो गुरुदेव लिपे न छिपे कुछ, सत्व रजो तम ताप निवारी।
इन्द्रिय देह मृषा कर जानत, शीतलता समता उरधारी ॥
व्यापक ब्रह्म विचार अखडित, द्वैत उपाधि सबै जिन टारी।
शब्द सुनाय सँदेह मिटावत, 'सुन्दर' वा गुरु की बलिहारी ॥८॥

पूरणब्रह्म बताय दिया जिन, एक अखडित व्यापक सारै।
राग रु द्वेष करे अब कौन से, जोइ है मूल सोई सब डारै ॥
सशय शोक मिटा मन का सब, तत्त्व विचार कहा निरधारै।
'सुन्दर' शुद्ध किये मल धोन सु, है गुरु का उर ध्यान हमारे ॥९॥

ज्यो कपडा दरजी गह ब्यौतत, काष्ट हि को बढई कसि आनै।
कचन को जु सुनार कसे पुनि, लोह सु घाट लुहार हि जानै ॥
पाहन को कसि लेत सिलावट, पात्र कुम्हार हि हाथ निपानै।
तैसे हि शिष्य कसे गुरुदेव जु, 'सुन्दरदास' तबै मन मानै ॥१०॥

मनहर — शत्रु ही न मित्र कोउ जाके सब है समान,
देह का ममत्व छाडे आतमा ही राम है ।
और हू उपाधि जाके कबहू न देखियत,
सुख के समुद्र[1] मे रहत आठो याम[2] हैं ।। ब्रह्म[1] पहर[2]
ऋद्धि और सिद्धि जाके हाथ जोड आगे खडी,
'सुन्दर' कहत ताके सबही गुलाम है ।
अधिक प्रशसा हम कैसे कर कह सकें,
ऐसे गुरुदेव को हमारी सु प्रणाम है ।।११।।

ज्ञान का प्रकाश जाके अधकार[1] भया नाश, अज्ञान[1]
देह अभिमान जिन तजा जान सार[2] धी[3] । ब्रह्म[2] बुद्धि[3]
सोई सुख सागर उजागर वैरागर[4] ज्यो, हीरा[4]
जाके बैन सुनत विलात है विकार धी[5] । बुद्धि के[5]
अगम अगाध अति कोऊ नहि जाने गति[6], स्थिति[6]
आतमा का अनुभव अधिक अपार धी ।
ऐसा गुरुदेव बदनीक[1] तिहु लोक माहि, पूज्य[1]
'सुन्दर' विराजमान शोभित उदार धी ।।१२।।

काहू से न रोष तोष[1] काहू से न राग दोष, प्रसन्न[1]
काहूसे न बैरभाव काहू की न घात है ।
काहू से न बकवाद काहू से नही विषाद[2], दु ख[2]
काहू से न सग[3] न तो कोउ पक्षपात ।। मेल[3]
काहू से न दुष्ट बैन काहू से न लेन देन,
ब्रह्म का विचार कुछ और न सुहात है ।
'सुन्दर' कहत सोई ईशन का महाईश[4], ब्रह्म स्वरूप[4]
सोई गुरुदेव जाके दूसरी[5] न बात है ।।१३।। द्वैत की[5]

लोह को ज्यो पारस पपान[1] हू पलट लेत, पत्थर[1]
कचन छुवत होय जग मे प्रवानिये[2] । प्रमाणित[2]
द्रुम[3] को ज्यो चन्दन हू पलट लगाय वास, वृक्ष[3]
आपके समान ताके शीतलता आनिये ।
कीट को ज्यो भृङ्ग हू पलट के करत भृङ्ग,
सोउ उड जाय ताका अचरज मानिये ।
'सुन्दर' कहत ये है सगरी[4] प्रसिद्ध बात, सब[4]
सद्य[5] शिष्य पलटे सो सत्य गुरु जानिये ।।१४।। शीघ्र[5]

गुरु बिन ज्ञान नाहिं गुरु बिन ध्यान नाहिं,
गुरु बिन आतमा विचार न लहत है।
गुरु बिन प्रेम[1] नाहिं गुरु बिन प्रीति[2] नाहिं, हरि मे[1] संता मे[2]
गुरु बिन शील हू संतोष न गहत हैं।
गुरु बिन प्यास[3] नाहिं बुद्धि का प्रकाश नाहिं, जिज्ञासा[3]
भ्रमहू[4] का नाश नाहिं संशय रहत है। अज्ञान[4]
गुरु बिन बाट[5]नाहिं कौडी[6]बिन हाट नाहिं, ज्ञान मार्ग[5] धन[6]
'सुन्दर' प्रकट लोक वेद यू कहत है ।।१५।।

पढे के न बैठा पास अक्षर न बाच सके।
बिन हिं पढे से कैसे आवत है फारसी[1]। भाषा[1]
जौहरी के मिले बिन परख न जाने कोई,
हाथ नग लिये फिरे सशै नहिं टारसी[2] ।। हटासी[2]
वैद्य हू मिला न कोउ बूटी को बातय देत,
भेद बिन पाये वाके औषध है छारसी[3]। राखजैसी[3]
'सुन्दर' कहत मुख रच हूँ न देखा जाय,
गुरु बिन ज्ञान ज्यो अंधेरे माहिं आरसी[4] ।।१६।। दर्पण[4]

गुरु के प्रसाद[1] बुद्धि उत्तम दशा[2] को गहै, कृपा[1] स्थिति[2]
गुरु के प्रसाद भव दुःख बिसराइये।
गुरु के प्रसाद प्रेम[3] प्रीति[4] हूँ अधिक बढे, प्रभु से[3] संतो मे[4]
गुरु के प्रसाद राम नाम गुण गाइये ।।
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति जाने,
गुरु के प्रसाद शून्य मे[5] समाधि लाइये। एकान्त मे[5]
'सुन्दर' कहत गुरुदेव जो कृपालु होहि,
तिनके प्रसाद तत्त्व ज्ञान पुनि पाइये ।।१७।।

बूडत भौ[1] सागर मे आय के बधावे धीर, भव[1]
पार हूँ लघाय देत नाव को ज्यो खेवसो[2]। केवट सम[2]
पर उपकारी सब जीवन के सारै[3] काज, सिद्ध करें[3]
कबहू न आवे जाके गुणन का छेव[4] सो[5] ।। अन्त[4] वे[5]
वचन सुनाय भय भ्रम सब दूर करै,
'सुन्दर' दिखाय देत अलख अभेव[6]सो[7]। अभेद रूप[6] ब्रह्म[7]
और हू सनेही हम नीके कर देखे सोध,
जग मे न कोऊ हितकारी गुरुदेव सो[8] ।।१८।। जैसा[8]

गुरु तात गुरु मात गुरु बधु निज गात,
गुरुदेव नख शिख सकल सवारा है ।
गुरु दिये दिव्य नैन गुरु दिये मुख वैन,
गुरुदेव श्रवण दे शव्द हू उचारा है ।।
गुरु दिये हाथ पाव गुरु दिया शीश भाव ।
गुरुदेव पिड माहि प्राण आय डारा है ।
'सुन्दर' कहत गुरु देव जु कृपालु होय,
फेर घाट घड[1] कर मोहि निसतारा है ।।१९।।

नख मे शिखा तक सपूर्ण अग ससार परायण थे, गुरुदेव ने उन सब को बदल कर भगवद्र परायण कर दिया है, यही उनका पुन घडना[1] है । इस प्रकार घडकर गुरुदेव ने मुझे ससार-सागर से पार कर दिया है ।

कोउ देत पुत्र धन कोउ दल बल घन[1], घना[1]
कोउ देत राज साज देव ऋषि मुनि हैं ।
कोउ देत यश मान कोउ देत रस[2] आन, औषधिरस[2]
कोउ देत विद्या ज्ञान जगत मे गुनि हैं ।।
कोउ देत ऋद्धि सिद्धि कोउ देत नव निधि,
कोउ देत और कुछ ताते शीश धुना है ।
'सुन्दर' कहत एक दिया जिन राम नाम,
गुरु सा उदार कोउ देखा है न सुना है ।।२०।।

भूमिहू की रेनु की तो सख्या कोउ कहत है,
भार[1] हू अठारा द्रुम[2] तिन के जो पात हैं ।
मेघन की सख्या[3] सोऊ ऋषिन कही विचार, ४९ कोटि[3]
बूदन की सख्या तेऊ आय के बिलात है ।।
तारन की सख्या सोऊ कही है पुराण माहि,
रोमन की सख्या[4] पुनि जितनेक गात है ।
'सुन्दर' जहा लौ जत सबही का होय अन्त,
गुरु के अनन्त गुण कापै कहे जात है ।।२१।।

भार[1] वीस पसेरी का एक भार होता है, सब वृक्षो[2] का एक एक पत्ता लेकर तोलने से अठारह भार होते हैं । एक मनुष्य तन पर साडे तीन कोटि रोम[4] होते हैं ।

गोविन्द के किये जीव जात है रसातल को,
गुरु उपदेशे सो तो छूटे यम फद से ।
गोविन्द के किये जीव वश पडे कर्मन के,
गुरु के निवाजे[1] सो फिरत हैं स्वच्छद से ।। कृपा किये[1]

गोविन्द के किये जीव बूडत भौसागर में,
'सुन्दर' कहत गुरु काढे दु ख द्वन्द्व[2] से । कामादि[2]
और हू कहाँ लौं कुछ मुख से कहैं बनाय,
गुरु की तो महिमा अधिक हैं गोविन्द से ।।२२।।
चिन्तामणि पारस कलपतरु कामधेनु,
और हु अनेक निधि वार'वार नाखिये । निछावर[1]
जोई कुछ देखिये सो सकल विनाशवत,
बुद्धि मे विचार कर वहु अभिलाषिये[2] ।। इच्छा करें[2]
तातें अब मन वच कर्म कर कर जोड,
'सुन्दर' कहत शीश मेल दीन भाषिये ।
बहुत प्रकार तीनो लोक सब सोधे[3] हम, खोजे,[3]
ऐसी कौन भेंट गुरु देव आगे राखिये ।।२३।।
महादेव वामदेव ऋषभ कपिलदेव,
व्यासदेव शुक्र हू जैदेव नामदेव जू ।
रामानन्द सुखानन्द कहिये अनन्तानन्द,
सुरसुरानन्द हू के आनन्द अछेव[1] जू ।। अनन्त[1]
रैदास कबीरदास सोझादास पीपादास,
धनादास हू के दास भाव ही की टेव जू ।
'सुन्दर' सकल संत प्रकट जगत माँहि,
वैसे गुरु दादूदास लागे हरि सेव[2] जू ।।२४।। सेवा[2]
गुरुदेव सर्वोपरि अधिक विराजमान,
गुरुदेव सब ही से अधिक गरिष्ट[1] है । अति महान[1]
गुरुदेव दत्तात्रय नारद शुकादि मुनि,
गुरुदेव ज्ञानघन प्रकट वशिष्ट है ।।
गुरुदेव परम आनन्दमय देखियत,
गुरुदेव वर[2] वरियान[3] हू वरिष्ट[4] है । श्रेष्ठ[2]
'सुन्दर' कहत कुछ महिमा कही न जाय,
ऐसे गुरु देव दादू मेरे थिर इष्ट है ।।२५।।

जो बिना पूछे कुछ न कहै और पूछने पर यथार्थ उत्तर दें वही वरियान ३ होता है । सब को ब्रह्मरूप जानने के कारण उपदेश नही देता वही वरिष्ठ ४ गुरु होता है ।

योगी जैन जगम सन्यासी बनवासी बौध ।
और कोऊ भेष पक्ष सब भ्रम भाना[1] । नष्ट किया[1]

तापस ऋषीश्वर मुनीश्वर कवीश्वर हू,
सबन का मत देख तत्त्व पहचाना है ।।
वेदसार तत्रसार स्मृति पुराण सार,
ग्रन्थन का सार सोई हृदै माहि आना[2] है । लाया[2]
'सुन्दर' कहत कुछ महिमा कही न जाय,
ऐसा गुरुदेव दादू मेरे मन[3] माना है ।।२६।। मनने[3]
जीते है सु काम क्रोध लोभ मोह दूर किये ।
और सब गुणन का मद जिन भाना[1] है । नष्ट किया[1]
उपजे न कोउ ताप शीतल स्वभाव जाका,
सब ही मे समता सतोष उर आना है ।।
काहू से न राग दोष देत सब ही को पोष,
जीवत ही पाया मोक्ष एक ब्रह्म जाना है ।
'सुन्दर' कहत कुछ महिमा कही न जाय,
ऐहे गुरुदेव दादू मेरे मन माना है ।।२७।।

इति गुरुदेव का अग १

अथ उपदेश चितावनी का अग २

हमाल—तो सही चतुर तू जान परबीन अति, पडे जनि[1] पजरे मोह कूवा ।। क्यो[1]
पाय उत्तम जनम लाय ले चपल मन, गाइ गोविन्द गुण जीव जूवा ।।
आप ही आप अज्ञान नलनी[2] बधा, बिना प्रभु विमुख कै बार मूवा ।
'दास सुन्दर' कहै परम पद तोल है, राम हरि राम हरि बोल सूवा ।।१।।

२ नलनी = तोते को पकडने वाला एक जल के कूडे के दोनो ओर दो सीगो वाली दो लकडी गाडकर एक नली को एक लकडी मे डाल उक्त दोनो लकडियो मे रख देता है, तोता उस पर बैठकर पानी पीने के लिये नीचे झुकता है तब नलनी फिरने से उसका मस्तक नीचे और पैर ऊपर हो जाते हैं, वह समझता है मेरे को पकड लिया । इससे व्याकुल होकर बोलता है पकडने वाला उसे पकड लेता है, वैसे ही जीव अज्ञान नलनी मे बधकर बार बार मरता जन्मता है । तोता के निमित्त से उपदेश है ।

नफस[1] सैतान को आपनी कैद कर, क्यो दुनी मे पडा खाय गोता । मन[1]
है गुनहगार भी गुनह ही करत है, खायगा मार तब फिरे रोता ।।
जिन तुझे खाक से अजब पैदा किया, तू उसे क्यो फरामोस[2] होता । भूला[2]
'दास सुन्दर' कहै शरम तबही रहै, हक्क[3] तू हक्क तू बोल तोता ।२।सत्य[3]
आब[1] की बुन्द औजूद पैदा किया, नैन मुख नासिका कर सजूती[2] । पानी[1]
ख्याल ऐसा करै वही लीये फिरे, जाग के देख क्या करे सूती ।।

भूल उस खसम को काम तै क्या किया, वेगिदे[3] याद कर मर निपूती।
'दास सुन्दर' कहै सर्व सुख तो लहै, भी तुही भी तुही बोल तूतूं ।।३।।

उक्त तीन के हमाल मैं एक चिडिया के व्याज से उपदेश किया है, वह भी तुही हा तुही बोलती। सयुक्त[2]। शीघ्र अपना मन दे[3]।

अवल[1] उस्ताद[2] के कदम[3] की खाक[4] हो, हिरस[5] बुगुजार[6] सब छोड फैना[7]।
यार[8] दिलदार[9] दिल माहि तू याद कर, तुझी पास तू देख नैना[10] ।।
जान[11] का जान है जिंदे[12] का जिंद है, सखु[13]न का सखुन है कुछ समझ सैना[14]।
'दास सुन्दर' कहै सकल घट मे रहै, एकतू एकतू बोल मैना ।।४।।

प्रथम[1] गुरु[2] चरण[3] रज[4] लोभ[5] कामना[6] छल=कपट[7] प्रभु[8] प्यारा[9] ज्ञान नेत्रो से[10] प्राणो का प्राण[11] जीवन का जीवन[12] वचन का वचन है[13] गुरु के सकेत[14] से समझो। इसमे मैना के निमित्त से उपदेश किया है।

मनहर—कान के गये से कहा कान ऐसे होत मूढ,
नैन के गये से कहा नैन ऐसे पाय है।
नासिका गरे से कहा नासिका सुगन्ध लेत,
मुख के गये कहा मुख ऐसे गाय है।।
हाथ के गये से कहा हाथ ऐसे काम होत,
पाव के गये से ऐसे पाव कत[1] धाय है। क्यो[1]
याही से विचार देख 'सुन्दर' कहत तोहि,
देह के गये से ऐसी देह नही आय है ।। ५ ।।

बार बार कहा तोहि सावधान क्यो न होय,
ममता की मोट[1] शिर काहे को धरत है। पोट[1]
मेरा धन मेरा धाम मेरे सुत मेरी वाम,
मेरे पशु मेरा गाम भूला यू फिरत है ।।
तू तो भया बावरा विकाय[2] गई बुद्धि तेरी, विषयो से[2]
ऐसा अध कूप गृह तामे तू परत है।
'सुन्दर' कहत तोहि नैक[3] हू न आवे लाज, थोडी[3]
काज को विगाड के अकाज क्यो करत है ।। ६ ।।

तेरे तो कुपेच परा गाठ अति घुल गई,
ब्रह्मा आय छोरे[1] क्यो ही छूटत न जवहू। छुडावे[1]
तेल से भिजोय कर चीथरा लपेट राखे,
कूकर की पूछ सूधी होय नही तवहू ।।

सासू देत सीख बहू कीडी को गिनत जाय,
कहत कहत दिन बीत गया सवहू ।
'सुन्दर' अज्ञान ऐसा छोडा नहिं अभिमान,
निकसत प्राण लग चेता नहिं कवहू ।।७।।

वालू मांहि तेल नहिं निकसत काहू विधि,
पाथर न भीजे वहु वरषत घन है ।
पानी के मथे से कहुं घीव नहि पाइयत,
कूकूस के कूटे नहि निकसत कन है ।।
शून्य[1] को मूठी भरे से हाथ न पडत कुछ, आकाश[1]
ऊपर[2] के वाहे कहा उपजत अन[3] है । न उपजाऊ[2] अन्न[3]
उपदेश औषधि कवन विधि लागे ताहि,
'सुन्दर' असाध्य रोग भया जाके मन है ।।८।।

बैरी घर माहि तेरे जानत सनेही मेरे,
दारा सुत वित्त तेरा खोस खोस खाहिंगे ।
और हु कुटम्ब लोग लूटें चहु ओर ही से,
मीठी मीठी बात कह तो से लपटा हिंगे ।।
सकट पडेगा जब कोऊ नहिं तेरा तब,
अतिहि कठिन बाकी बेर उट[1] जाहिंगे । भाग[1]
'सुन्दर' कहत तातें झूठा ही प्रपच[2] यह, ससार[2]
स्वपने की नाई[3] सब देखत बिलाहिंगे ।।९।। जैसे[3]

वालू के मन्दिर माहि बैठ रहा थिर होय,
राखत है जीवने की आशा केऊ[1] दिन की । कितने ही[1]
पल पल छीजत घटत जात घडी घडी,
विनशत बार कहा खबर न छिन की ।।
करत उपाय झूठे लेन देन खान पान,
मूसा इत उत फिरे ताक रही मिनकी ।।
'सुन्दर' कहत मेरी मेरी कर भूला शठ, मूर्ख[2]
चंचल चपल माया भई किन किन की ।।१०।।

श्रवण् ले जाय कर नाद[1] को ले डाले पासि, शब्द[1]
नैनवा ले जाय कर रूप वश करा है ।
नथुवा ले जायकर बहुत सुंघावे फूल,
रसनूं ने जाय कर स्वाद मन हरा है ।।

नरसू मे जायकर नारी मे सपर्श करे,
'सुन्दर' कौतुक साधु ठगन मे ठगा है।
काम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग,
ठगन की नगरी मे जीव आय पगा[2] ॥११॥　　　फसा[2]

पाया है मनुष देह औसर बना है आय,
ऐसा देह बार बार कहाँ कहाँ पाइये।
भूलत है बावरे तू अबके सयाना होय,
रतन अमोल यह[1] काहे को ठगाइये ॥　　　मनुष देह[1]
समझ विचार कर ठगन का सग त्याग,
ठगवाजी देख रह मन न डुलाइये।
'सुन्दर' कहत तोहि अब सावधान होय,
हरि का भजन कर हरि मे समाइये ॥१२॥

घडी घडी घटत छीजत जात छिन छिन,
भीजत ही गल जात माटी का ढेल है।
मुक्ति हु के द्वारै आय सावधान क्यो न होय,
बार बार चढत न त्रिया का सा तेल[1] है ॥　　　कुमारी रे[1]
करले सुकृत हरि भजन अखड[1] उर,　　　निरन्तर[1]
याही[2] मे अन्तर[1] पडे यामे ब्रह्म मेल है।　　　देह[2] भेद[1]
मनुष जनम यह जीत भावे हार अब,
'सुन्दर' कहत या मे जूवा का सा खेल ॥१३॥

यौवन का गया राज और सब भया साज,
आपनी दुहाई फेर दमामा[1] बजाया है।　　　नगाडा[1]
लकुटी हथ्यार[2] लिये नैनन को ढाल दीये,　　　हथियार[2]
श्वेत बाल भये तावा तबू सा तनाया है ॥
दशन[3] गये सो मानो दरबान दूर कीये,　　　दात[3]
जोगरी[4] पडी सो औरे बिछोना बिछाया है।　　　चमडी ढीली[4]
नीश कर कपत सु 'सुन्दर' निकारा रिपु,
देखत ही देखत बुढाया दौड आया है ॥१४॥

इन्दव—ग्रीव[1] तुचा कटि है लटकी कचहू पलटे अजहू रत वामी[2]। ग्रीवा स्त्री[2]
दत भया[3] मुख के उखडे नखरे न गये सु खरा खर कामी ॥　　　भार्ग[3]
कपत देह सनेह सु दपति[4] सपति जपति है निश जामी[5]। पति पत्नी[4] पहर[5]
'सुन्दर' अत हु भौन तजा न भजा भगवत सु लौन हरामी ॥१५॥

देह घटी पग भूमि मडै नहिं औ लठिया पुनि हाथ लई जू ।
आख हु नाक पडे मुख मे जल शीश हले कटि धीच नई जू ।।
ईश्वर को कबहू न सँभारत दु ख पडे तब हाय दई[1]जू । ईश्वर[1]
'सुन्दर' तोहु विषै सुख बछत घोडे गये पै वगै न गई जू ।।१६।।

पाय अमोलक देह इहै नर क्यो न विचार करै दिल अन्दर ।
कामहु क्रोधहु लोभहु मोहहु लूटत है दश हू दिशि द्वन्द्वर ।।
तू अब बछत है सुरलोक हि काल हु पाय पडे सु पुरदर[1] । इन्द्र विष्णु शिव[1]
छाडि कुबुद्धि सुबुद्धि हृदै धर आतम राम भजै किन सुन्दर ।।१७।।

इन्द्रिन के सुख मानत है शठ या हित[1] से बहुते दुख पावे । प्रेम[1]
ज्यो जल मे झष[2] माम हि लीलत स्वाद बधा जल बाहर आवे ।। मच्छी[0]
ज्यो कपि मू ठ न छाडत है रसना वश बध पडा विललावे ।
'सुन्दर' क्यो पहिले न सँभारत जो गुड खाय सु कान विधावे ।।१८।।

कौन कुबुद्धि भई घट अतर तू अपने प्रभु से मन चौरे ।
भूल गया विषया सुख मे शठ लालच लाग रहा अति थौरे ।।
ज्यो कोउ कचन छार मिलावत लेकर पाथर से नग फोरे ।
'सुन्दर' या नर देह अमोलक तीर लगी नवका कत वौरे[1] ।।१९।।

देखत के नर शोभित है जैसे आहि अनूपम केलि[1] का खभा ।
भीतर तो कुछ सार नही पुनि ऊपर छीलक अवर[2] दभा ।।
बोलत है परि नाहि कछू सुधि ज्यो व[3] वयारि[4] मे बाजत कु भा ।
रूम रहै कपि ज्यो छिन माहिं सु याहि[5] से 'सुन्दर' होत अचभा[6] ।।२०।।

केलका १ वस्त्रो से श्रेष्ठ पने का दभ है २ अब ३ वायु ४ इस से ५ आश्चर्य ६ होता है ।

देखत के नर दीसत है पर लक्षण तो पशु के सब ही है ।
बोलत चालत पीवत खात सु वै घर वै वन जात सही हैं ।।
प्रात गये रजनी फिर आवत 'सुन्दर' यू नित भार वही है ।
और तो लक्षण आय मिले सब एक कमी शिर शृ ग नही है ।।२१।।

प्रेत भया कि पिशाच भया कि निशाचर सा जित ही तित डोलै ।
तू अपनी सुधि भूल गया मुख से कुछ और कि और ही बोलै ।।
नोइ उपाइ करै जु मरै पचि बधन तो कबहू नहि खोलै ।
'सुन्दर' जा तन मे हरि पावत सो तन नाश किया मति भोलै ।।२२।।

पेट से बाहर होत ही बालक आयके मात पयोधर पीनो ।
मोह बढा दिन ही दिन और तरुन्न भयो त्रिय के रस भीनो ।।

पुत्र पउत्र वधा परिवार मु ऐसि हि भाति गये पन तीनो ।
'सुन्दर' राम का नाम विसार मु आप हि आप को बन्धन कीनो ।।२३।।
मात पिता सुत भाइ बँधा युवती के कहे कहा का न करै है ।
चौरि करे वटपारि करे किरपी वनजी कर पेट भरै है ।।
शीत सहैं शिर घाम सहे कहि 'सुन्दर' सो रण माहि मरै है ।
बाध रहा ममता सबसे नर ताहि मे बाधा हि बाधा फिरै है ।।२४।।

तू ठग के धन और हि लावत तेरउ तो घर और हि फोरै ।
आग लगे सब ही जर जाय सु तू दमरी दमरी कर जोरै ।।
हाकिम का डर नाहि सु सूझत 'सुन्दर' एकहि बार निचोरै ।
तू खरचे नहि आप न खाय सु तोर हि चातुरि तोहि ले बोरै ।।२५।।

मनहर— करत प्रपच इन पचन के वश पडा,
परदारा रत भैन आनत बुरा का ।
परधन हरै पर जीव की करत घात
मद्य मास खाय लव लेश न भलाई का ।।
होयगा हिसाव तव मुख मे आवे ज्वाव,
'सुन्दर' कहत लेखा लेत राई राई का ।
यहा तो किये विलास यम की न तोहि त्रास,
वहा तो नही है कुछ राज पोपाबाई[1] का ।।२६।।

१ पोपाबाई ख ला नरेश की पुत्री थी, राजा का देहान्त होने पर पुत्र न होने से वही राजा बनी वह जैसा कोई कहता था वैसा ही मान लेती थी। एक सेठ की स्त्रियो के भूपण चुराये गये । उसने पोपा के आगे पुकार की, चोर को पकडवा कर उसे पूछा चोरी क्यो की, उसने कहा मैं दीवाल के सहारे पेशाव करके उठा तव शिर की टक्कर से दीवाल गिरकर भूपण मुझे दीखे उनकी सुन्दरता से मेरा मन चल गया । तव सुनार को बुलाकर पूछा, ऐसे सुन्दर भूपण क्यो बनाये । उसे उत्तर नही आया तव उसे शूली पर चढाने की आज्ञा दे दी । वह शूली के पास जाकर भागा तव पूछा क्यो भागा, उसने कहा शूली कहती है तू दुवला है किसी मोटे ताजे को चढाओ । उन दिनो दो गुरु शिष्य वहा मोटे शरीर के आये हुये थे, उनको पकडकर शूली देने की आज्ञा पोपा ने दे दी । तव गुरु ने शिष्य को कहा मैंने पहले कहा था 'यह अनाथ नगरी' अबूझ राजा है । यहा 'टके सेर भाजी, टके सेर खाजा है । पर तुम ने नही माना । अव मैं शूली की ओर जाऊ तव मेरे धक्का देकर तू जाना और तेरे धक्का देकर मैं जाऊगा फिर पोपा पूछेगी तव मैं उत्तर दे दूगा । उन्होंने वैसा ही किया । पोपा ने पूछा ऐसा क्यो करते हो ? गुरु ने कहा—जो शूली पर चढेगा उसे विमान स्वर्ग मे ले

जायगा । इससे शिष्य कहता है मै जाऊ मैं कहता हूँ मैं गुरु हू इससे मैं जाऊ । यह सुनकर पोपा ने कहा—तुम हटो शूली मेरी है मैं चढ़ू गी वह चढकर मर गई । यही वृतात २६ वें मनहर मे दिया है ।

दुनिया[1] को दौड़ता है औरत को लोडता[2] है, पदार्थो[1]देखता[2]
ओजूद को मोडता है बटोही सराइ का ।
मुरगी को मोसता है बकरी को रोसता है,
गरीबो को खोसता है बेमहर[3] गाइ का ।। दया हीन[3]
जुलम को करता है धणी[4] से न डरता है, ईश्वर[4]
दोजग[5] को भरता है खजना बालइ का । नरक[5]
होयगा हिसाब तब आवेगा न ज्वाब कुछ,
'सुन्दर' कहत गुन्हे गार है खुदाइ का ।।२७।।

कर[1] कर आया जब खर खर काटा नाल, पूर्व कर्म[1]
भर भर बाजा ढोल घर घर जाना है ।
दर[2] दर दौडा जाय नर नर आगे दीन, द्वार[2]
बर बर बकत न नैक अलसाना है ।।
रस[3]भर साधै[4] धन तर तर तोडे पात, सरड[3] ल्यावे[4]
जर[5] जर काटत अधिक मोद माना है । जरड[5]
फर फर फूला फिरै डर डरपे न मूढ,
हर हर हँसत न 'सुन्दर' सकाना है ।।२८।।

जनम सिराना[1] जाय भजन विमुख शठ, बीता[1]
काहे को भवन कूप बिन मीच मर है ।
गहत अविद्या जान शुक नलिनी ज्यो मूढ,
करम विकरम करत नहि डर है ।।
आप ही मे जात अध नरकन[2] बारबार, नरको में[2]
अजहु न शक मन माहि कुछ कर है ।
दु ख का समूह अवलोक के न त्रास होय,
'सुन्दर' कहत नर नागपासि पर है ।।२९।।

जग[1] मग[2] पग तजि नजि भजि राम नाम, जगत[1] मार्ग[2]
काम कोन[3] तन मन घेरि घेरि मारिये । दया[3]
झूठ मठ[4] हठ त्यागी जागि भागि सुन पुनि, मिथ्या[4]
गुनि[5] ज्ञान ध्यान[6] ध्यान धारि धारि टारिये ।। विचार[5] ध्यान[6]
गहि नाहि जाहि भेद ईश शीश मन नर,
और बात हेत[7] तात फेरि फेरि जारिये । प्रेम[7]

'सुन्दर' दरद खोइ धोइ धोइ बार बार,
मार[8] संग रंग[9] अंग हेरि हरि धारिये ॥३०॥　　श्रद्धा[8] प्रेम[9]

झूठ जग एन मुन नित्य गुरु बैन देख,
आपने हू नैन तोऊ अंध रहे ज्वानी मे ।
केते राव राजा रंक भये रहे चलि गये,
मिलि गये धूर माही आये ते कहानी मे ॥
'सुन्दर' कहत अब ताहि न सुरत आवे,
चेते क्यो न मूढ चित लाय हिरदानी[1] मे ।　　हृदय में[1]
भूले जन दाव जात लोह का मा ताव जात,
आप जात ऐसे जैसे नाव जात पानी मे ॥३१॥

दुर्मिल—हठ योग धरो तन जात भया[1] हरि नाम विना मुख धूरि परै ।
शठ सोग[2] हरो छन गात किया चरि[3] चाम दिना भुख[4] पूरि जरै ॥
भठ[5] भोग परो गन[6] खात धिया अरि काम किना सुख झुरि मरै ।
मठ[7] रोग करो घन[8]घात हिया परिराम तिना दुख दूरि करै ॥३२॥

बीतता १ शोक २ खाकर ३ भोगकर ४ भट्टी ५ भोग समूह ६ मिटाइया ७ बहुत ८

गुरु ज्ञान गहै अति होइ सुखी मन मोह तजे सब काज सरे[1] ।
धुर[2] ध्यान रहै पति[3] खोय मुखी रन लोह बजे तब लाज परे ॥
सुरतान[4]उहे हति होइ रुखी तन छोह[5] सजै अब आज मरे ।
पुर थान लहै मति[6] धोइ दुखी जन वोह रजै[7] जब राज करै ॥३३॥

सिद्ध हो १ अन्त तक २ लाज ३ बादशाह ४ हर्ष ५ दुख प्रद बुद्धि ६ शोभादे ७ ।

इति उपदेश चितावनी का अंग २

अथ काल चितावनी का अंग ३

इन्दव—मंदिर माल विलायत हैं गज ऊंट दमामे[1] दिना इक दो है ।
तात हु मात त्रिया सुत बांधव देख धौं[2] पामर[3] होत विछोहै ॥
झूठ प्रपंच[4] से राचि रहा शठ काठ की पूतरि ज्यो कपि मोहै ।
मेरि हि मेरि करै नित 'सुन्दर' आख लगे कहि कौन का को है ॥१॥

(१) नगारा १, अन्त मे २, पापी ३, मिथ्या संसार ४, मे अनुरक्त हो रहा है ।

ये मेरे देश विलायत है गज ये मेरे मंदिर या मेरी थाती[1]।　　धरोहर[1]
ये मेरे मात पिता पुनि बांधव ये मेरे पूत सु ये मेरे नाती ॥
ये मेरि कामिनि केलि करै नित ये मेरे सेवक हैं दिन राती ।
'सुन्दर' वैसे हि छाडि गया सब तेल जरा रु बुझी जब बाती ॥२॥

तै दिन चार विराम लिया शठ तेरे कहे कुछ हो गई तेरी ।
जैसे हि बाप ददा गये छाडि सु तैसे हि तू तज है पल फेरी ॥

मार है काल चपेट अचानक होय घडीक मे राख की ढेरी ।
'सुन्दर' ले न चले कुछ सग सु भूल कहै नर मेरि हि मेरी ।।३।।
कै यह देह जलाय के छार किया कि किया कि किया कि किया है ।
कै यह देह जिमी महि खोद दिया कि दिया कि दिया कि दिया है ।।
कै यह देह रहै दिना चार जिया कि जिया कि जिया कि जिया है ।
'सुन्दर' काल अचानक आय लिया कि लिया कि लिया कि लिया है ।।४।।

सत सदा उपदेश बतावत केश सबै शिर सेत भये हैं ।
तूं ममता अज हू नहि छाडत मौत हु आय सँदेश दिये है ।।
आज कि काल्हि चले उठ मूरख तेरे हि देखत केते गये हैं ।
'सुन्दर' क्यो नही राम सँभारत या जग मे कहि कौन रहे है ।।५।।

देह सनेह न छाडत है नर जानत है शठ है थिर येहा ।
छीजत जाय घटे दिन ही दिन दीसत है घट का नित छेहा ।।
काल अचानक आय गहै कर ढाहि गिराय करे तन खेहा ।
'सुन्दर' जान यहे निहचै धर एक निरजन से कर नेहा ।।६।।

तूं कुछ और विचारत है नर तेरा विचार धरा हि रहेगा ।
कोटि उपाय करे धन के हित भाग लिखा तितना हि लहेगा ।।
भोर की साझ घडी पल माझ सु काल अचानक आय गहेगा ।
राम भजा न किया कुछ सुकृत 'सुन्दर' यू पछताय कहेगा ।।७।।

भूल गया हरि नाम को तू शठ देख धौ कौन सँयोग बना है ।
काल अचानक आय गहै कँठ पेख धौं झूठ हि ताना तना है ।।
छार करे सब चाम को लूट जु आदि का ऐसे हि जीव हना हैं ।
कोउ न होत सहायक कू टे अनादि का 'सुन्दर' या से सना है ।।८।।

बीत गये पिछले सब ही दिन आवत हैं अगले दिन नेरे ।
काल महा बलवन्त बडा रिपु साध रहा शिर ऊपर तेरे ।।
एक घडी महि मार गिरावत लागत ताहि कछू नहि बैरे ।
'सुन्दर' सत पुकार कहैं सब हू पुनि तोहि कहू अब टेरे ।।९।।

सोय रहा कहा गाफिल हो कर तो शिर ऊपर काल दहारे ।
धामस धूमस लाग रहा शठ आय अचानक तोहि पछारे ।।
ज्यो वन मे मृग कूदत फादत चित्रक[1] ले नख से उर फारे ।
'सुन्दर' काल डरे जिहि के डर ता प्रभु को कहि क्यो न सँभारे ।।१०।।

चेतन क्यो न अचेतन ऊंघन काल सदा शिर ऊपर गाजे ।
रोक रहै गढ के सब द्वारन तू तब कौन गली होय भाजे ।।

[1] चीना

आय अचानक केश गहै जब पाकड के पुनि तोहि झुलाजे ।
'सुन्दर' कौन सहाय करे जब मूड हि मूड भडाभड वाजे ।।११।।
तू अति गाफिल होय रहा शठ कुजर ज्यो कुछ शक न आने ।
माय नही तन मे अपने बल मस्त भया विपया सुख ठाने ।।
खोसत खात सबै दिन बीतत नीति अनीत कछू नहिं जाने ।
'सुन्दर' केहरि काल महा रिपु दत उखार कुभस्थल भाने ।।१२।।
मात पिता जुबती सुत बाधव आय मिला इनसे सनबधा ।
स्वारथ के अपने अपने सब सो यह नाहिं सु जानत अधा ।।
कर्म विकर्म करे तिनके हित भार धरे नित आपन कधा ।
अत विछोह भया सब से पुनि याहि से सुन्दर है जग धधा ।।१३।।

मनहर—करत करत धध कछुव न जाने अध,
आवत निकट दिन आगिला चपाकि[1]दे ।   झटपट[1]
जैसे वाज तीतर को दावत अचानक,
जैसे वक मछरी को लीलत लपाकि दे ।।
जैसे मक्षिका की घात मकडी करत आय,
जैसे साप मूषक को ग्रसत गपाकि दे ।
चेतरे अचेत नर 'सुन्दर' सभार राम,
ऐसे तोहि काल आप लेयगा टपाकि दे ।।१४।।

मेरा देह मेरा गेह मेरा परिवार सब,
मेरा धन माल मै तो बहु विधि भारा[1] हू ।   भारी[1]
मेरे सब सेवक हुकम कोउ मेटे नाहिं,
मेरी युवती का मै तो अधिक पियारा हू ।।
मेरा वश ऊचा मेरे बाप दादा ऐसे भये,
करत बडाई मैं तो जगत उजारा हू ।
'सुन्दर' कहत मेरा मेरा कर जाने शठ,
ऐसा नहिं जाने मैं तो काल ही का चारा हू ।।१५।।

जब से जनम धरा तब ही से भूल परा,
बालापन माहि भूला समझा न रुख मे ।
जोवन भया है जब काम वश भया तब,
जुवती से एकमेक भूल रहा सुख मे ।।
पुत्रउ पौउत्र भये भूला तब मोह बाध,
चिन्ता कर कर भूला जाने नहिं दुख मे ।

'सुन्दर' कहत शठ तीनो पन माहि भूला,
भूला भूला जाय पडा काल ही के मुख मे ॥१६॥

ऊठत बैठत काल जागत सोवत काल,
चलत फिरत काल काल वोर[1] धसा है । सब ओर[1]
कहत सुनत काल खात हू पीवत काल,
काल ही के गाल माहि हर हर हँसा है ॥
तात मात बधु काल सुत दारा गृह काल,
सकल कुटब काल काल जाल फँसा है ।
'सुन्दर' कहत एक राम बिन सब काल,
काल ही का कृत[2] किया अत काल ग्रसा है ॥१७॥ काम[2]

जब से जनम लेत तब ही से आयु घटे,
माइ तो कहत मेरा बडा होत जात है ।
आज और काल्हि और दिन दिन होत और,
दौडा दौडा फिरत खेलत अरु खात है ॥
बालापन बीता जब जोवन लगा है आय,
जोवन हू बीते बूढा डोकरा दिखात है ।
'सुन्दर' कहत ऐसे देखत ही बुझ गया,
तेल घट गये जैसे दीपक बुझात है ॥१८॥

सब कोउ ऐसे कहैं काल हम काटत हैं,
काल तो अखड नाश सबका करत है ।
जाके भय ब्रह्मा मुनि होत हैं कपाय मान,
जाके भय सुरासुर इन्द्र हु डरत है ॥
जाके भय शिव अरु शेषनाग तीनो लोक,
केउक कलप बीते लोमस परत है ।
'सुन्दर' कहत नर गरब गुमान करे,
तू तो शठ एक ही पलक मे मरत है ॥१९॥

काल मा न बलवत कोऊ नहि देखियत,
सब का करत अत काल महा जोर है ।
काल ही का डर सुन भागा मूसा[1] पैगम्बर, यहूदी[1]
जहा जहा जाय तहा तहा वाको गोर[2] है ॥ कबर[2]
काल है भयानक भैभीत सब किये लोक,
स्वर्ग मृत्यु पाताल मे काल ही का शोर है ।

'सुन्दर' काल का काल एक ब्रह्म है अखंड,
बासे काल डरे जोई चला उहि[3] ओर है ॥२०॥　　ब्रह्म[3]

वरषा भये से जैसे बोलत भभीरी[1] स्वर,　　भींगरी[1]
खंड न परत कहु नैंक हु न जानिये ।
जैसे पूंगी बाजत अखंड स्वर होत पुनि,
ताहू में न अंतर अनेक राग गानिये ॥
जैसे कोऊ गुडी[2] को चढावत गगन माहि,　　पतंग[2]
ताहू की तो ध्वनि सुन वैसे ही बखानिये ।
'सुन्दर' कहत तैसे काल का प्रचंड वेग,
रात दिन चला जाय अचरज मानिये ॥२१॥

माया जोड जोड नर राखत जतन कर,
कहत है एक दिन मेरे काम आय है ।
तोहि तो मरत कुछ वार नहि लागे शठ,
देखत ही देखत बबूला[1] सा विलाय है ॥　　बुदबुदा[1]
धन तो धरा ही रहै चलत न कौढी गहै,
रीते ही हाथन जैसा आया तैसा जाय है ।
कर ले सुकृत यह बरिया न आवे फेर,
'सुन्दर' कहत पुनि पीछे पछताय है ॥२२॥

बावरा सा भया फिरे बावरी ही बात करे,
बावरे ज्यो देत वायु[1] लागत बोराना है, ।　　बकवाद[1]
माया का उपाय जाने माया की चातुरी ठाने,
माया मे मगन अति माया लिपटाना है ॥
यौवन का मदमाता गिनत न कोऊ नाता,
काम वश कामिनी के हाथ ही विकाना है ।
अति ही भया बेहाल सूझत न माथे काल,
'सुन्दर' कहत ऐसा और को दिवाना है ॥२३॥

झूठा धन झूठा धाम झूठा कुल झूठा काम,
झूठी देह झूठा नाम धर के बुलाया है ।
झूठा तात झूठी मात झूठे सुत दारा भ्रात,
झूठा हित मान मान झूठा मन लाया है ॥
झूठा लेन झूठा देन झूठे मुख बोले वैन,
झूठे झूठे कर फैन झूठे ही को धाया है ।

झूठ ही मे ये तो भया झूठ ही मे पचि गया,
'सुन्दर' कहत साच कबहू न आया है ।।२४।।

दीर्घाक्षरी—झूठे हाथी झूठे घोडा झूठे आगे झूठा दौडा,
झूठा बधा झूठा छोडा झूठा राजा रानी है ।
झूठी काया झूठी माया झूठा झूठे धधा लाया,
झूठा मूवा झूठा जाया झूठी वाकी बानी है ।।
झूठा सोवे झूठा जागे झूठा झूझे झूठा भाजे,
झूठा पीछे झूठा लागे झूठे झूठी मानी है ।
झूठा लीया झूठा दीया झूठा खाया झूठा पीया,
झूठा सौदा झूठे कीया ऐसा झूठा प्रानी है ।।२५।।

झठ से बधा है लाल ताही से ग्रसत काल,
काल विकराल व्याल[1] सब ही को खात है । सर्प[1]
नदी का प्रवाह चला जात है समुद्र माँहि,
तैसे जग काल हि के मुख मे समात है ।।
देह से ममत्व ताते काल का भै मानत है,
ज्ञान उपजे से वह काल हू विलात है ।
'सुन्दर' कहत परब्रह्म है सदा अखड,
आदि मध्य अन्त एक सोई ठहरात है ।।२६।।

इन्दव—काल उपावत काल खपावत काल मिलावत है गह माटी ।
काल हलावत काल चलावत काल सिखावत है सब आटी ।।
काल बुलावत काल भुलावत काल डुलावत है वन घाटी ।
'सुन्दर' काल मिटे तब ही पुनि ब्रह्म विचार पढे जब पाटी ।।२७।।

इति काल चितावनी का अग ३

अथ देहात्म विछोह का अग ४

इन्दव—वे श्रवना रसना मुख वैसे हि वैसे हि नासिका वैसे हि अखी[1] ।
वे कर वे पग वे सब द्वार सु वे नख शीश हि रोम असखी[2] ।।
वैसे हि देह पडी पुनि दीसत एक[3] विना सब लागत खखी[4] ।
'सुन्दर' कोउ न जान सके यह बोलत हा सु कहा गया पखी[5] ।।१।।
आख [1] असख्य[2] आत्मा[3] खोखला[4] पक्षी[5]

बोलत चालत पीवत खात सु सीचत हो द्रुम को जैसे माली ।
लेत हु देत हु देखत रीझत तोरत तान बजावत ताली ।।
जा महिं कर्म विकर्म किये सब है यह देह पडी अब ठाली ।
'सुन्दर' सो कतहू नहिं दीसत खेल गया इक खेल सो ख्याली ।।२।।

मात पिता युवती सुत बाधव लागत है सब को अति प्यारो ।
लोग कुटम्ब खरा हित राखत होय नही हम से कहु न्यारो ।।
देह सनेह तहा लग जानहु बोलत है मुख शब्द उचारो ।
'सुन्दर' चेतन शक्ति गई जब वेगि कहै घर माहि निकारो ।।३।।

रूप भला तब ही लग दीसत जो लग बोलत चालत आगे ।
पीवत खात सुने अरु देखत सोइ रहै उठके पुनि जागे ।।
मात पिता भइया मिल बैठत प्यार करे युवती गल लागे ।
'सुन्दर' चेतन शक्ति गई जब देखत ताहि सबै डर भागे ।।४।।

मनहर—कौन-भाति करतार किया है शरीर यह,
पावक के मध्य देखो पानी का जमावना ।
नासिका श्रवण नैन वदन रसन बैन,
हाथ पाव अग नख शिख का बनावना ।।
अजब अनूप रूप चमक दमक ऊप,
सुन्दर' शोभित अति अधिक सुहावना ।
जाही क्षण चेतना शकति जब लीन होय,
ताही क्षण लगत सबन को अभावना ।।५।।

मृतिका का पिंड देह ताही मे युगति भई,
नासिका नयन मुख श्रवण बनाये है ।
शीश हाथ पाव अरु अगुली विराजमान,
अगुली के आगे पुनि नख हू लगाये हैं ।।
पेट पीठ छाती कठ चिवुक अधर गाल,
दशन रसन बहु वचन सुहाये है ।
'सुन्दर' कहत जब चेतना शकति गई,
वह देह जारि बारि छार कर आये हैं ।।६।।

देह तो प्रकट यह ज्यो का त्यो ही जानियत,
नैन के झरोखे माहि झाकत न देखिये ।
नाक के झरोखे माहि नैकु न सुबास लेत,
कान के झरोखे माहि सुनत न लेखिये[1] ।।
मुख के झरोखे मे न वचन उचार होत,
जीभ हू को षट रस स्वाद न विशेषिये[2] ।
'सुन्दर' कहत कोउ कौन विधि जाने ताहि,
काला पीला काहू द्वार जाताहू न पेखिये ।।७।।

लखाता[1]
विशेप[2]

माइ तो पुकार छाती कूट-कूट रोवत है,
बाप हू कहत मेरा नन्दन कहा गया।
भइया कहत मेरी बाह भाज दूर भई,
बहन कहत मेरा वीर दुख है दिया ।।
कामिनी कहत मेरा शीश सिरताज कहा,
उन ततकाल हाथ मे सिधारा[1] है लिया। नारेल[1]
'सुन्दर' कहत ताहि कोऊ नहि जान सके,
बोलत हुता सु यह छिन मे कहा भया ।।८।।
रज और वीरज का प्रथम सयोग भया,
चेतना शकति तब कौन भाति आई है।
काउ एक कहै बीज[1] मध्य ही किया प्रवेश, वीर्य[1]
किनहूक पत्र मास पीछे कै सुनाई है।।
देह का वियोग जब देखत ही होय गया,
तब कोउ कहो कहा जाय के समाई है।
पण्डित ऋषीश्वर तपोश्वर मुनीश्वर हू
'सुन्दर' कहत यह किन हु न पाई[2] है ।।९।। जाना[2]
तब लौहि क्रिया सब होत है विविधि भाति,
जब लग घट माहि चेतना प्रकाश है।
देह के अशक्त भये क्रिया सब थक जात,
जब लग श्वास चले तब लग आश है ।।
श्वास हू थका है जब रोवन लगे हैं तब,
सब कोऊ कहै यह भया घट नाश है।
काहू नहि देखा किहि ओर कौन कहा गया,
'सुन्दर' कहत यह बडाई तमाश है ।।१०।।
देह तो सुरूप तोलो जौ लौ है अरूप[1] माहि, आत्मा[1]
सब कोउ आदर करत सनमान है।
टेढी पाग बाध बार बार हो मरोडे मूछ,
बाह उसकारे[2] अति धरत गुमान है ।। ऊपर उठावे[2]
देश देश ही के लोक आयके हजूर होहि,
बैठ कर तखत कहावे सुलतान[3] है। बादशाह[3]
'सुन्दर' कहत जब चेतना शकति गई,
वही देह ताकी कोउ मानत न आन है ।।११।।

इति देहात्म विछोह का अग ४

अथ तृष्णा का अंग ५

इन्दव – नैनन की पल ही पल मे क्षण आध घडी घटिका जु गई है ।
जाम[1] गया युग जाम गया पुनि साझ गई तब रात भई है ।। पहर[1]
आज गई अरु कालिह् गई परसो तरसो कुछ और ठई[2] है । होगई[2]
'सुन्दर' ऐसे हि आयु गई तृष्णा दिन ही दिन होत नई है ।।१।।

दुर्मिला— कन ही कन को बिललात फिरे शठ जाचत है जन ही जन को ।
तन ही तन का अति सोच करे नर खात रहै अन[1] ही अन को ।। अन्न[1]
मन ही मन की तृष्णा न मिटी पुनि धावत है धन ही धन को ।
छिन ही छिन 'सुन्दर' आयु घटी कबहु न गया बन ही बन को ।।२।।

इन्दव—जो दस बीस पचास भये शत[1] हो हि हजारन लाख मगेगी । सौ[1]
कोटि अरब्ब खरब्ब असखि पृथीपति होन कि चाह[2] जगेगी ।। चाह[2]
स्वर्ग पताल का राज करू तृषणा अधिकी अति आग लगेगी ।
'सुन्दर' एक सनोष विना शठ तेरि तो भूख न क्योहु भगेगी ।।३।।
लाख करोड अरब्ब खरब्बनि नील पदम्म तहा लग घाटी[1] । कम[1]
जोड हि जोड भण्डार भरे सब और रही सु जिमी तल दाटी ।।
तो हु न तोहि सनोष भया शठ 'सुन्दर' तै तृष्णा नहि काटी ।
सूझत नाहि जु काल सदा शिर मार के थाप मिलावत माटी ।।४।।
भूख लिये दश हू दिश दौडत ताहि से तु कबहु न अघै[1] है । तृप्त[1]
भूख भण्डार भरे नहिं कैसेहु जो धन मेरु कुबेर लौ पै[2] है ।। पाय[2]
तू अब आगेहि हाथ पसारत ताहि से हाथ कछू नहि ऐहै ।
'सुन्दर' क्यो नहिं तोष करे नर खाय हि खाय कताइक खैहै ।।५।।
भूख नचावत रक हि राज हि भूख नचाय के विश्व विगोई[1] । हैरान[1]
भूख नचावत इन्द्र सुरासुर और अनेक जहा लग जोई ।।
भूख नचावत है अध ऊरध तीनहु लोक गिने कहा कोई ।
'सुन्दर' जाय तहा दुख ही दुख ज्ञान विना न कहू सुख होई ।।६।।
पेट पसार दिया जित ही तित तै यह भूख कितोयक थापी[1] । स्थापन[1]
ओर न छोर कछू नहि आवत मैं बहु भाति भली विधि मापी ।।
देखत देह भया सब जीरण तू नित नौतन आहि अजापी[2] । अब भी[2]
'सुन्दर' तोहि सदा समझावत हे तृषणा अज हू नहिं धापी ।।७।।
तीनो हु लोक अहार किया फिर सात समुद्र पिया सब पानी ।
और जहा तहा ताकत डोलत काढत आख डरावत प्रानी ।।
दात दिखावत जीभ हिलावत याहि से मैं यह डायनि जानी ।
'सुन्दर' खात भये कितने दिन हे तृपणा अजहू[2] न अघानी ।।८।। अब भी[2]

पाव पताल परे गये नीकस शीश गया असमान सुघेरा ।
हाथ दशो दिशि को पसरे पुनि पेट भरे न समुद्र सुमेरा ।।
तीन हु लोक लिये मुख भीतर आंखहु कान बघे चाहु फेरा ।
'सुन्दर' देह धरा अति दीरध हे तृषणा कहु छेह न तेरा ।।९।।

चाद वृथा भटके निशि वासर दूर किया कबहूँ नहिं धोखा ।
नू हनियारिनि पापिन कोटनि[1] साच कहू मत मानहु रोषा ।। कुहिनी[1]
तोहिं मिला तब से भया वन्धन तू मर है तव ही होइ मोषा[2] । मोक्ष[2]
'सुन्दर' और कहा कहिये तुहि हे तृषणा अब तो कर तोषा[3] ।।१०।। सतोष[3]

क्यो जग माहि फिरे झख मारत स्वारथ को न परी जिहि जोले ।
ज्यो हरिहाइ गऊ नहिं मानत दूध दुहा कुछ सो पुनि ढोले ।।
तू अति चचल हाथ न आवत नीकस जाय नही मुख बोले ।
सुन्दर' तोहि कहा वर केतक हे तृषणा अब तू मत डोले ।।११।।

तै कुछ कान धरी नहिं एकहु बोलत-बोलत पेट हि पाका ।
हूँ कुछ वात वनाय कहू जब तै तब पीसत ही सब फाका ।।
केतक द्योस[1] भये परमोधत तै अब आगे हि को रथ हाका । दिन[1]
'सुन्दर' सीख गई सब ही चले हे तृषणा कहि के तोहि थाका ।।१२।।

तू हि भ्रमाय प्रदेश पठावत बूडत जाय समुद्र जहाजा ।
तू हि भ्रमाय पहाड चढावत बादि वृथा मर जाय अकाजा ।।
तै सब लोक नचाय भली विधि भाड किये सब रकरु राजा ।
'सुन्दर' तोहि दुखाय कहू अब हे तृषणा तोहि नैक न लाजा ।।१३।।

इति तृष्णा का अग ।।५।।

अथ अधीर्य उराहने का अग ।।६।।

इन्दव—पाव दिये चलने फिरने कहु हाथ दिये हरि कृत्य कराया ।
कान दिये सुनिये हरि का-यश नैन दिये तिन माग[1] दिखाया ।। मार्ग[2]
नाक दिया मुख शोभत ता कर जीभ दिई हरि का गुण गाया ।
'सुन्दर' साज दिये परमेश्वर पेट दिया वड पाप लगाया ।।१।।

कूप भरे अरु वाय[1] भरे पुनि ताल भरे वरषा ऋतु तीनो । बावडी[1]
कोठि भरे घट माट भरे घर हाट भरे सब ही भर लीनो ।।
खन्दक खास बुखार भरे पर पेट भरे न वहा दर[2] दीनो । खाडा[2]
'सुन्दर' रीता हि रीता रहै यह कौन खडा परमेश्वर कीनो ।।२।।

मनहर— किधौ[1] पेट चूल्हा किधौं भाठी किधौ भाड आहि, 　　क्या[1]
जोई कुछ झौंकिये सो सब जल जात है ॥
किधौ पेट थल किधौ बावी किधौं सागर है,
जिता जल पडे तिता सकल समात है ॥
किधौ पेट दैत्य किधौ भूत प्रेत राक्षस है
खाऊ खाऊ करै कहु नैंक न अघात है ।
'सुन्दर' कहत प्रभु कौन पाप लाया पेट,
जब से जनम भया तब ही को खात है ॥३॥

विग्रह तो विग्रह करत अति बार बार,
तन पुनि तनक न कबहु अघाया है ।
घट न भरत क्यो ही घटा ही रहत नित,
शरीर निराई[1] मै तो कुछव न खाया है ॥ 　　निराशा[1]
देह देह कहत ही कहत जनम बीता,
पिण्ड पिण्ड[2] काजे निश दिन ललचाया है । 　　ग्रास[2]
पुदगल[3] गिलत गिलत न तृपत होय, 　　शरीर[3]
'सुन्दर' कहत वपु[4] कौन पाप लाया है ॥४॥ 　　देह[4]

पाजी[1] पेट काज कोतवाल के आधीन होत, 　　दुष्ट[1]
कोतवाल सो तो सिकदार[2] आगे लीन है । 　　एक अफसर[2]
सिकदार दीवान के पीछे लगा डोले पुनि,
दीवान हू जाय पतसाह[3] आगे दीन है ॥ 　　बादशाह[3]
पातसाह कहै या खुदाय मुझे और देहु,
पेट ही पसारे नहि पेट वश कौन है ।
'सुन्दर' कहत प्रभु क्यो हु नहिं भरे पेट
एक पेट काज एक एक के आधीन है ॥५॥

तै तो प्रभु दीया पेट जगत नचाया जिन,
पेट ही के लिये घर घर द्वार फिरा है ।
पेट ही के लिये हाथ जोड आगे ठाडा[1] होय, 　　खडा[1]
जोइ-जोइ कहा सोइ सोइ उन करा है ॥
पेट ही के लिये पुनि मेघ शीत घाम सहै,
पेट ही के लिये जाय रण माहि मरा है ।
'सुन्दर' कहत इन पेट सब भाड[1] किये, 　　बरबाद[1]
और गैल छूटी पर पेट गैल परा है ॥६ ।
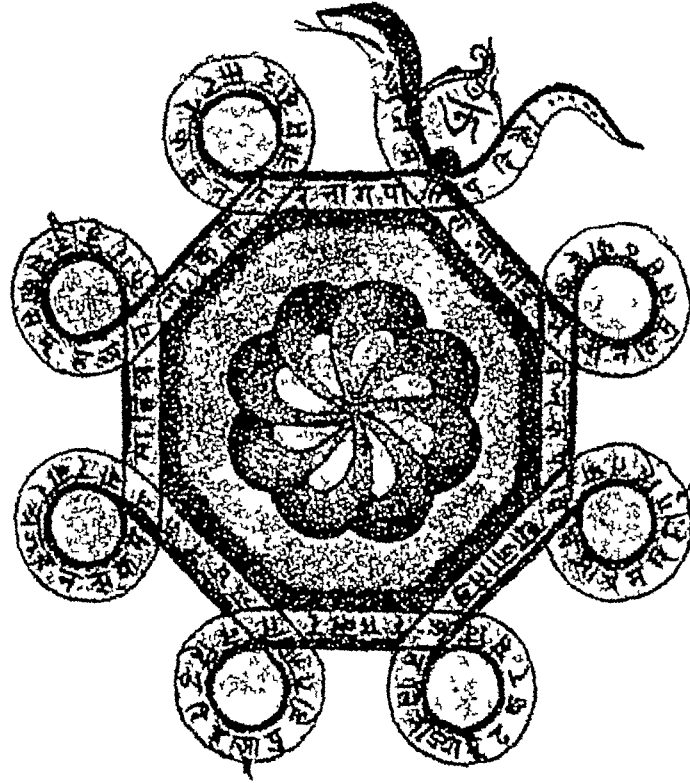
सर्प बन्ध (११)

मनहर छन्द

जन्म सिरानो जाय भजन बिमुख सठ,
काहेकौं भवन कूप बिन मीच मरि है।
गहित अविद्या जानि शुकनलिनि ज्यौंमूढ
करम विकरम करत नहिं डरी है ॥
आपुही तें जात अध नरकन बार बार,
अजहूं न शक मन मांहि अब करि ह।
दुःख को समूह अवलोकि कै न त्रास होइ
सुंदर कहत नर नागपासि परि है।११।

नोट—यह नागबन्ध "सवैया" ग्रन्थ के अग उपदेश चितावनी का ३० वा छन्द है।

पढने की विधि:—

सर्प के मुख के पास 'ज' अक्षर से आरभ करें कि जिस पर एक का अक है। प्रथम चरण को सर्प के पहिले मरोडे मे होकर पढते हुए दूसरे मरोडे के आधे पर 'मरि है' पर पूर्ण करें। आगे 'ग' से प्रारभ करें जिस पर दो का अक लगा हुआ है, और तीसरे मरोडे में होकर पढते हुए चौथे के आधे मे पूर्ण करें इसही प्रकार तीसरे और चौथे चरणो को चौथे और छठे मरोडो के मध्य से पढें जहा ३ और ४ के अक लगे हुए हैं। ४ था चरण वा सारा छन्द ही सर्प को पूछ मे समाप्त होता है ॥

पेट सा न बली जाके आगे सब हार चले,
राव और रक एक पेट जीत लीये है।
कोउ बाघ मारत विदारत है कुंजर को
ऐसे शूर वीर पेट काज प्रान दिये है॥
यंत्र मंत्र साधत अराधत ममान जाय,
पेट आगे डरत निडर ऐसे हिये है।
देवता असुर भूत प्रेत तीनो लोक पुनि,
'सुन्दर, कहत प्रभु पेट जेल किये हैं॥७॥
प्रात ही उठत जब पेट ही की चिन्ता सब,
सब कोऊ जात आप आपने अहार को।
कोउ अन्न खात पुनि आमिष[1] भखत कोउ, मास[1]
कोउ घास चरत चरत कोउ दार[2] को॥ लकडी[2]
कोऊ मोती फल कोऊ बास रस पय पान,
कोऊ पौन पीवत भरत पेट भार को।
सुन्दर' कहत प्रभु पेट ही भ्रमाये सब,
पेट तुम दिया है जगत होन ख्वार[3] को॥८॥ खराब[3]

इन्दव—पेट हि कारण जीव हतै बहु पेट हि मास भखे रु सुरापी।
पेटहि लेकर चौरी करावत पेट हि को गठरी गह कापी[1]॥ काटी[1]
पेट हि पासि गले महि डारत पेट ही डारत कूप हु बापी[2]। बावडी[2]
'सुन्दर' काहे को पेट दिया प्रभु पेट सा और नही कोउ पापी॥९॥
औरन को प्रभु पेट दिये तुम तेरे तो पेट कहू नहिं दीसै[1]।
ये भटकाय[2] दिये दश हू दिशि कोउक राधत कोउक पीसै॥
पेटहि कारण नाचत है सब ज्यो घर ही घर नाचत कीसै[3]।
'सुन्दर' आप न खाहु न पीवहु कौन करी इन ऊपर रीसै[4]॥१०॥
दीखे[1] भ्रम मे डाल दिये[2] वानर[3] क्रोध[4]।

मनहर— काहे को काहु के आगे जाय के आधीन होय,
दीन दीन वचन उचार मुख कहते।
जिन के तो मद अरु गरब गुमान अति,
तिन के कठोर बैन कबहु न सहते॥
तुम्हरे हि भजन मे अधिक लै लीन अति,
सकल को त्याग के एकात जाय गहते।
'सुन्दर' कहत यह तुम ही लगाया पाप,
पेट न होता तो प्रभु बैठ हम रहते॥११॥

पेट ही के वश रक पेट ही के वश राव,
पेट ही के वश और खान सुलतान है।
पेट ही के वश योगी जगम सन्यासी शेख,
पेट ही के वश बनवासी खात पान है।।
पेट ही के वश ऋषि मुनि तपधारी सब,
पेट ही के वश सिद्ध साधक सुजान है।
'सुन्दर' कहत नहि काहू का गुमान रहै
पेट ही के वश प्रभु सकल जिहान है।।१२।।

इति अधीर्य उराहने का अग ६

अथ विश्वास का अग ७

इन्दव— होय निचिंत करे मत चिंत हि चचदिई वहि चिंत करेगा।
पाव पसार पडा किन सोवत पेट दिया वहि पेट भरेगा।।
जीव जिते जल के थल के पुनि पाहन मे पहुँचाय धरेगा।
भूख हि भूख पुकारत है नर 'सुन्दर' तू कहा भूख मरेगा।।१।।

धीरज धार विचार निरन्तर तोहि रचा सुतो[1] आप हि ऐ है। सो[1]
जेतक भूख लगी घट प्राणहि तेतक तू अनयास हि पै है।।
जो मन मे तृषणा कर धावत तो तिहूँ लोक न खात अघै है।
'सुन्दर' तू मत सोच करे कुछ चच दिई वहि चु न हु दे है।।२।।

नैक न धीरज धारत है नर आतुर होय दशो दिश धावे।
ज्यो पशु खेच तुडावत बधन जो लग नीर न आवहि आवै।।
जानत नाहि महामति मूरख जा घर द्वार धणी पहुँचावै।
'सुन्दर' आप किया घड भाजन मो भरहै मत सोच उपावै।।३।।

भाजन आप घडा जिन सो भरहै भरहै भरहै भरहै जू।
गावत है जिनके गुण को ढर[1]है ढरहै ढरहै ढरहै जू।। दया करेंगे[1]
'सुन्दरदास' सहाय सही करहै करहै करहै करहै जू।
आदि हु अतहु मध्य सदा हरिहै हरिहै हरिहै हरिहै जू।।४।।

काहे को दौडत है दश हू दिशि तू नर देख किया हरि जू का।
बैठ रहै दूर[1] के मुख मू द उघार के दात खवाय है टूका।। छिपके[1]
गर्भ थके[2] प्रतिपाल करी जिन होय रहा तब तू जड मूका[3]। मे[2] मौन[3]
'सुन्दर' क्यो बिललात फिरे अब राख हृदै विसवास प्रभू का।।५।।
जा दिन से गर्भवास तजा नर आय अहार लिया तब ही का।
खात हि खात भने इतने दिन जानत नाहि मु भू छ[1] कही का।। मूर्ख[1]

दौडत धावन पेट दिखावत तू शठ कीट सदा अन[2] ही का । अन्न[2]
'सुन्दर' क्यो विसवासन राखत सो प्रभु विश्व भरे कब ही का ।।६।।

खेचर[1] भूचर जे जल के चर देत अहार चराचर पोषे[2] ।
वे हरि जी सब को प्रतिपालत जो जिहि भाति तिसी विधि तोषे[3] ।।
तू अब क्यो विसवासन राखत भूलत है कत[4] धोखे हि धोखे ।
तोहि तहा पहुचाय रहै प्रभु 'सुन्दर' बैठ रहै किन ओखे[5] ।।७।।
आकाश मे चलाने वाला[1] पोषण[2] संतोष[3] कहा[4] ओट मे[5]

मनहर— काहे को बघूरा[1] भया फिरत अज्ञानी नर, भभूला[1]
तेरा तो रिजक तेरे घर बैठै आय है ।
भावे[2] तू सुमेरु जाहि भावे जाहि मारू देश, चाहे[2]
जितनाक भाग लिखा तितना ही पाय है ।।
कूप माझ भर भावे सागर के तीर भर,
जितनाक भाडा नीर तितना समाय है ।
ताहि ते सतोष कर 'सुन्दर' विश्वास धर,
जिन तो रचा है घट सोई अमराय[3] है ।।८।। भरेंगे[3]

मनहर— काहे को करत नर उद्यम अनेक भाति,
जीवना है थोडा ताते कल्पना निवारिये ।
साढे तीन हाथ देह छिनक मे छूट जाय,
ताके लिये ऊचे ऊचे मदिर सवारिये ।।
मालहू मुलक भये तृपति न क्यो ही होय,
आगे ही को प्रसरत इन्द्री क्यो न मारिये ।
'सुन्दर' कहत तोहि बावरे समझ देख,
जितनीक सोड पाव तितने पसारिये ।।९।।

काहे को फिरत नर दीन भया घर घर,
देखियत तेरा तो अहार एक सेर है ।
जाका देह सागर मे सुना शत[1] योजन का, सौ[1]
ताहू को तो देत प्रभु या मे नहि फेर है ।।
भूखा कोउ रहत न जानिये जगत माहि,
कीडी अरु कुजर सबन ही को दे रहै ।
'सुन्दर' कहत तू विश्वास क्यो न राखे शठ,
बार-बार समझाय कहा केती[2] बेर है ।।१०।। कितनी ही[2]

तेरे तो अधीरज तू आगली ही चिंता करे,
आज तो भरा है पेट काल्हि कैसी होय है।
भूखा ही पुकारे अरु दिन उठ खाता जाय,
अति ही अज्ञानी जाकी मति गई खोय है॥
ताको नहि जाने शठ जाका नाम विश्वम्भर,
जहा तहा प्रकट सबन देत सोय है।
'सुन्दर' कहत तोहि वाका तो भरोसा नाहि,
एक विसवास विन याही भाति रोय है॥११॥

देख धौ[1] सकल विश्व भरत भरनहार,　　निश्चय ही[1]
चूच के समान चून सब ही को देत है।
कीट पशु पक्षी अजगर मच्छ कच्छ पुनि,
उन के न सौदा[2] कोऊ न तो कुछ खेत है॥　　व्यापार[2]
पेट ही के काज रात दिवस भ्रमत शठ,
मै तो जाना नीके कर तू तो कोऊ प्रेत है।
मानुष शरीर पाय करत है हाय हाय,
'सुन्दर' कहत नर तेरे शिर रेत है॥१२॥

तू तो भया बावरा उतावरा फिरत अति,
प्रभु का विश्वास गह काहे न रहत है।
तेरा तो रिजक[1] है सो आय है सहज माहि,　　जीविका[1]
यू ही चिन्ता कर कर देह को दहत[2] है॥　चिन्ता मे जलाता[2]
जिन यह नख शिख साज के सवारा तोहि,
अपने किये की वह लाज को बहत[3] है।　　निवाहता[3]
काहे को अज्ञानी कुछ सोच मन मोहि करे,
भूखा तू कदे न रहै 'सुन्दर' कहत है॥१३॥

जगत मैं आय तै विसारा है जगतपति,
जगत किया है सोई जगत भरत[1] है।　　पोषण[1]
तेरे चिन्ता निश दिन और ही पडी है आय,
उद्यम अनेक भाति भाति के करत है॥
इत उत जाय के कमाय कर ल्याऊ कुछ,
नेक[2] न अज्ञानी नर धीरज धरत है।　　किंचित[2]
'सुन्दर' कहत एक प्रभु का विश्वास बिन,
बादि[3] के वृथा ही शठ पच के मरत है॥१४॥　विना काम[3]

इति विश्वास का अंग ७

अथ देह मलीनता गर्व प्रहार का अंग ८

मनहर— देह तो मलीन अति बहुत विकार भरे,
ताहू माहि जरा व्याधि सब दुःख राशी है।
कबहूक पेट पीड कबहूक शिर वायु,
कबहूँक आख कान मुख मे विथासी है ।।
औरहू अनेक रोग नखशिख पूर रहे,
कबहूक श्वास चले कबहूँक खासी है।
ऐसा या शरीर ताहि अपना कै[1] मानत है, कहकर[1]
'सुन्दर' कहत या मे कौन सुख बासी है ।।१।।

जा शरीर माहि तू अनेक सुख मान रहा,
ताही तू विचार या मे कौन बात भली है।
मेद मज्जा मास रग रगन माहि रकत,
पेट हू पिटारी[1]सी मे ठौर-ठौर मली[2] है ।। बासश की[1] मल[2]
हाडन से मुख भरा हाड ही के नैन नाक,
हाथ पाव सोऊ सब हाड ही की नली है।
'सुन्दर' कहत वाहि देख जिन भूले कोइ,
भीतर भगार[1] भरे ऊपर से कली है ।।२।। कचरा[3]

इन्दव—हाड का पिंजर चाम मढा सब माहि भरा मल मूत्र बिकारा।
थूक रु लार पडे मुख से पुनि व्याधि वहै सब ओर हु द्वारा ।।
मास की जीभ से खाय सबै कुछ ताहि तै ताका है कौन विचारा।
ऐसे शरीर मे पैस[1] के 'सुन्दर' कैसेक कीजिये सुच्य[2] अचारा ।।३।।प्रवेश[1]शौच[2]

थूक रु लार भरा मुख दीसत आख मे गीज[1] रु नाक मे सेढा। गीड[1]
और हु द्वार मलीन रहै नित हाड के मास के भीतर बेठा[2] ।। बखेडा[2]
ऐसे शरीर मे वास किया तब एक से दीसत बाभन[3] ढेढा। ब्राह्मण[3]
'सुन्दर' गर्भ कहा इतने पर काहे को तू नर चालत टेढा ।।४।।

जा दिन गर्भ सयोग भया जब ता दिन बून्द छिपाहुति[1]ताही। छिपी[1]
द्वादश मास अधो मुख झूलत बूड[2] रहा पुनि वा रस माही ।। डूबा[2]
ता रज वीरज की यह देह सु तू अब चालत देखत छाही।
'सुन्दर' गर्भ गुमान कहा शठ आपनि आदि विचारत नाही ।।५।।

इति देह मलीनता गर्व प्रहार का अग ८

अथ नारी निन्दा का अग ९

मनहर—

कामनी का देह मानो कहिये सघन[1] वन, — गहरा[1]
वहा कोऊ जाय सो तो भूल के परत है।
कु जर है गति कटि केहरि[2] का भय जामे, — सिंह[2]
वेनी[3] काली नागनी हू फन को धरत है।। — चोटी[3]
कुच है पहाड जहा काम चोर रहै तहा,
साधि के कटाक्ष बाण प्रान को हरत है।
'सुन्दर' कहत एक और डर अति तामे,
राक्षस वदन[4] खाऊ खाऊ ही करत है ।।१।। — मुख[4]

विष ही की भूमि माहि विष के अकूर भये
नारी विष वेलि वढी नख शिख देखिये।
विष ही के जड मूल विप ही के डाल पात,
विष ही के फूल फल लागे जू विशेखिये[1] ।। — विशेप[1]
विष के ततू[2] पसारि उरझाये आटी मार, — हाथ[2]
सब नर वृक्ष पर लिपटी ही लेखिये[3]। — देखिये[3]
'सुन्दर' कहत कोऊ एक[1] तरु वच गये, — सतजन[4]
तिन के तो कहु लता लागी नहि पेखिये ।।२।।

उदर मे नरक नरक अध द्वारन मे,
कुचन मे नरक नरक भरी छाती है।
कठ मे नरक गाल चिबुक नरक विंब[1], — होठ[1]
मुख मे नरक जीभ लारहू चुचाती है ।।
नाक मे नरक आख कान मे नरक वहै,
हाथ पाव नख शिख नरक दिखाती है।
'सुन्दर' कहत नारी नरक का कु ड यह,
नरक मे जाय पडे सो नरक पाती[1] है ।।३।। — पडता है[2]

कामिनी का अग अति मलिन महा अशुद्ध,
रोम रोम मलिन मलिन सव द्वार है।
हाड मास मज्जा मेद[1] चाम से लिपेट राखे, — वसा[1]
ठौर ठौर रकत के भरे ही भडार है ।।
मूत्रहू पुरीष[2] आत एक मेक मिल रही, — मल[2]
और हू उदर माहि विविध विकार हैं।
'सुन्दर' कहत नारी नख शिख निन्द रूप,
ताहि जे सराहै तेतो वडे ही गवार हैं ।।४।।

कुण्डलिया— रसिकप्रिया[1] रसमजरी[2] और सिंगार हि जान ।
चतुराई कर बहुत विधि विषै बनाई आन ।।
विषै[4] बनाई आन लगत विषयिन को प्यारी । विषय[4]
जागे मदन प्रचण्ड सराहै नख शिख नारी ।।
ज्यो रोगी मिष्ठान खाय रोगहि विस्तारे ।
'सुन्दर' यह गति होय जुतो रसिकप्रिया धारे ।।५।।

कवि केशवदास का रचा रस काव्य व नायिका भेद का ग्रन्थ[1] है । सस्कृत का रस-काव्य का ग्रन्थ[2] है, इसी का अनुवाद 'सुन्दर शृगार काव्य ग्रन्थ है इसे आगरा निवासी 'सुन्दर' कवि ने रचा था अथवा शृगार शतक भर्तृरी का भी है ।

रसिकप्रिया के सुनत ही उपजे बहुत विकार ।
जो या माही चित्त दे वहै होत नर ख्वार ।।
वहै होत नर ख्वार बार तो कुछव न लागे ।
सुनत विषय की बात लहरि विष ही की जागे ।।
ज्यो कोइ ऊघत हुतो लहो पुनि सेज बिछाई ।
'सुन्दर' ऐसी जान सुनत रसिकप्रिया भाई ।।६।।

इति नारी निन्दा का अग ९

अथ दुष्ट का अग १०

मनहर— आपने न दोष देखे पर के औगुण पेखे,
दुष्ट का स्वभाव उठ निन्दा ही करत है ।
जैसे काहू महल सभार राखा नीके कर,
कीडी तहा जाय छिद्र ढूढत फिरत है ।।
भोर[1] ही से साझ लग साझ ही से भोर लग, सबेरे[1]
'सुन्दर' कहत दिन ऐसे ही भरत है ।
पाव के तरोस[2] की न सूझे आग मूरख को, तले[2]
और से कहत शिर ऊपर वरत[3] है ।।१।। बलती[3]

इन्दव—घात अनेक रहैं उर अतर दुष्ट कहै मुख से अति मीठी ।
लोटत पोटत व्याघ्रहि ज्यो नित ताकत है पुनि ताहि[1] की पीठी । उसकी[1]
ऊपर से छिरके जल आन सु हेठ लगावत जाल अगीठी ।
या महिं कूर कछू मत जान हु 'सुन्दर' आपनि आखिन दीठी[2] ।।२।। देखी[2]
आपन काज सवारन के हित औरहि काज बिगाडत जाई ।
आपन कारज होउ न होउ बुराकर औरहि डारत भाई ।।
आपहु खोवत औरहु खोवत खोय दुवो घर देत बहाई ।
'सुन्दर' देखत ही वन आवत दुष्ट करे नहिं कौन बुराई ।।३।।

ज्यो नर पोपत है निज देहहि अन्न विनाश करे तिहि वारा ।
ज्यो अहि[1] और मनुष्य हि काटत वाहि कछू नहि होय अहारा ।। सर्प[1]
ज्यो पुनि पावक जाल सबै कुछ आपहु नाश भया निरधारा[2] । निर्णय[2]
त्यो यह 'सुन्दर' दुष्ट स्वभाव हि जान तजो किन तीन प्रकारा ।।४।।

सर्प डसे सु नही कुछ तालक[1] बीछु लगे सु भला कर मानो । हानि[1]
सिह हु खाय तु नाहि कछु डर जो गज मारत तो नहि हानो[2] ।। हानि[2]
आग जलो जल बूड मरो गिरि जाय गिरो कुछ भै मत आनो[3] । लाओ[3]
'सुन्दर' और भले सब ही दुख दुर्जन सग भला जिनि जानो ।।५।।

इति दुष्ट का अग १०

अथ मन का अग ११

मनहर— हटकि[1] हटकि मन राखत जु छिन छिन, रोक[1]
सटकि[2] सटकि चहु ओर अब जात है। शीघ्र[2]
लटकि[3] लटकि ललचाय लोल[4] वार वार, लचक[3] चचल[4]
गटकि[5] गटकि कर विप फल खात है ।। निगल[5]
झटकि झटकि तार तोरत[6] करम हीन, भजन का[6]
भटकि[7] भटकि कहु नैक न अघात है। भटक ने से[7]
पटकि पटकि शिर 'सुन्दर' जु मानी हार,
फटकि[8] फटकि जाय सुधा कौन बात है ।।१।। फटकारे से[8]

पल ही मे मर जात पल ही मे जीवत है,
पल ही मे पर हाथ देखत विकाना है।
पल ही मे फिरे नव खडहु ब्रह्मण्ड सब,
देखा अनिदेखा सो तो याते नहि छाना है ।।
जाता नहि जानियत आवता न दीसे कुछ,
ऐसी है बलाय[1] अब तासे पडा पाना है। विपत्ति[1]
'सुन्दर' कहत याकी गति हू न लखि पडे,
मन की प्रतीति कोऊ करे सो दिवाना[2] है ।।२।। पागल[2]

घेरिये तो घेरा हू न आवत है मेरा पूत,
जोई परबोधिये सो कान न धरत है।
नीति न अनीति देखे शुभ न अशुभ पेखे,[1] देखे[1]
पल ही मे होती अनहोती हु करत है ।।

गुरु की न साधु की न लोक वेद हु की शक,
काहू की न माने न तो काहू से डरत है।
'मुन्दर' कहत ताहि धीजिये सु कौन भाति,
मन का स्वभाव कुछ कहा न परत है ।।३।।

काम जब जागे तब गिनत न कोऊ साख,[1] सम्बन्ध[1]
जाने सब जोइ[2] कर देखत न मा धी[3] है। नारी[2] पुत्री[3]
क्रोध जब जागे तब नैक न सभार सके,
ऐसी विधि मूल की अविद्या जिन साधी ।।
लोभ जब जागे तब तृपत न क्यो हू होय,
'सुन्दर' कहत इन ऐसे हि मे खाधी[4] है। ग्रहण[4]
मोह मतवारा निश दिन हि फिरत रहै,
मन सा न कोऊ हम देखा अपराधी है ।।४।।

देखबे को दौडे तो अटक जाय वाही ओर,
सुनबे को दौडे तो रसिक सिरताज है।
सू घबे को दौडे तो अघाय न सुगध कर,
खायबे को दौडे तो न धापे महाराज है ।।
भोग हू को दौडे तो तृपति नही क्यो हू होय,
'सुन्दर' कहत याहि नैक हू न लाज है।
काहू का कहा न करे आपनी ही टेक परे[1], करे[1]
मन सा न कोऊ हम जाना दगाबाज है ।।५।।

देखे न कुठौर ठौर कहत और की ओर,
लीन जाय होत हाड मास हू रगत[1] मे। रक्त[1]
करत बुराई सर[2] औसर न जाने कुछ, वे समय[2]
धका आय देत राम नाम से लगत[3] मे ।। लगने मे[3]
बाहे[4] सुर असुर वहाये सब भेष जिन, बहकाये[4]
'सुन्दर' कहत दिनघालत[5] भगत मे। दुख देता है[5]
और हू अनेक अतराय ही करत रहै,
मन सा न कोऊ है अधम या जगत मे ।।६।।

जिन ठगै शकर विधाता इन्द्र देव मुनि,
आपना हू अधिपति ठगा जिन चन्द है।
और योगी जगम सन्यासी शेख कौन गिने,
सब ही को ठगत ठगावे न स्वछन्द[1] है ।। स्वतन्त्र[1]
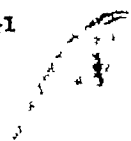
तापस ऋषीश्वर सकल पच पच गये,
काहू के न आवे हाथ ऐसा या पै वद[2] है। पेच[2]
'सुन्दर' कहत वश कौन विधि कीजे ताहि,
मन सा न कोऊ या जगत माहि रिन्द[3] है ।।७।। बदमाश[3]

रक को नचावे अभिलाषा धन पाइवे की,
निश दिन सोच कर ऐसे ही पचत हैं।
राजा हि नचावे सब भूमि ही का राज लेउ,
और हु नचावे जोई देह मे रचत हैं।
देवता असुर सिद्ध पन्नग[1] सकल लोक, नाग[1]
कीट पशु पक्षी कहु कैसे कै बचत हैं।
'सुन्दर' कहत काहू सत की कही न जाय,
मन के नचाये सब जगत नचत है ।।८।।

इन्दव—केतक द्यौस भये समझावत नैक न मानत है मन भोंदू[1]। मूर्ख[1]
भूल रहा विषया सुख मे कुछ और न जानत है शठ दौंदू[2] ।। नीच[2]
आख न कान न नाक बिना शिर हाथ न पाव नही मुख पौंदू[3]। चूतड[3]
'सुन्दर' ताहि गहै कोउ क्योकर नीकस जाय बडा मन लौंदू[4] ।।९।। लौंडा[4]

दौडत है दशहू दिशको शठ वायु लगी तब से भया बैंडा[1]। टेडा[1]
लाज न कान कछू नहिं राखत शील स्वभावकि फोडत मैंडा[2] ।। मेर[2]
'सुन्दर' सीख कहा कहि देइ भिदै नहिं बाण छिदे नहिं गैंडा ।।
ल लच लाग गया मन बीसर बारह बाट अठारह पैंडा[3] ।।१०।। माग[3]

श्वान कहू कि शृगाल कहू कि बिडाल कहूँ मन की मति तैसी।
ढेढ कहूँ किधौ डूमकहू किधौ भाड कहूँ कि भडाइ दे जैसी ।।
चोर कहू बटपार कहूँ ठग जार कहू उपमा कहु कैसी।
'सुन्दर' और कहा कहिये अब या मन की गति दीसत ऐसी ।।११।।

कै[1] बर तू मन रक भया शठ मागत भीख दशो दिश डूला। कितनी[1]
कै बर तै मन छत्र धरा शिर कामिनि सग हिडोलन झूला।
कै बर तू मन क्षीण भया अति कै बर तू सुखा पाय रु फूला।
'सुन्दर' कै बर तोहि कहा मन कौन गली किहिं मारग भूला ।।१२।।

इन्द्रिन के सुख चाहत है मन लालच लाग भ्रमे शठ यू ही।
देख मरीचि[1] भरा जल पूरण धावत है मृग मूरख ज्यो ही ।। मृगतृष्णा

प्रेत पिशाच निशाचर डोलत भूख मरे नहिं धापत क्यो ही ।
वायु बघूर हि कौन गहैं कर सुन्दर दौड़त हैं मन त्यो ही ॥१३॥
कौन स्वभाव पड़ा उठ दौडत अमृत छाड चचोरत[1] हाडैं । चूसत[1]
ज्यो भ्रम की हथिनी दृग देखत आतुर होय पडे गज खाडैं ॥
'सुन्दर' तोहि सदा समझावत एक हु सीख लगे नहि राडैं[2] । राडका[2]
वादि वृथा भटके निश वासर रे मन तू भ्रमवा किन छाडैं ॥१४॥

हो सब का शिरमौर ततक्षण जो अभिअंतर ज्ञान विचारे ।
जो कुछ और विषै सुख वछत तो यह देह अमोलक हारे ॥
छाड कुबुद्धि भजै भगवत हि आप तिरे पुनि औरहि तारे ।
'सुन्दर' तोहि कहा कितनी बर तू मन क्यो नहि आप सँभारे ॥१५॥

जो मन नारी की ओर निहारत तो मन होत है ताहि का रूपा ।
जो मन काहु से क्रोध करे जब क्रोध मई हुइ जात तद्रूपा ॥
जो मन माया हि माया रटे नित तो मन बूडत माया के कूपा ।
'सुन्दर' जो मन ब्रह्म विचारत तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा ॥१६॥

मनहर—
कबहू कै हँस उठे कबहूँ कै रोइ देत,
कबहू बकत कहु अंत हू न लहिये ।
कबहूक खाय तो अघाय नहि काहो कर,
कबहूक कहै मेरे कुछ नहि चहिये ॥
कबहू आकाश जाय कबहू पाताल जाय,
'सुन्दर' कहत ताहि कैसे कर गहिये ।
कबहूक ताप लागे कबहूँ उतार[1] भागे, शीघ्र[1]
भूत के से चिह्न करे ऐसा मन कहिये ॥१७॥

कबहूँ तो पाख का परेवा[1] कै दिखावे मन, पक्षी[1]
कबहूक धूरि के चावर कर लेत है ।
कबहू तो गोटिका उछालत आकाश ओर,
कबहूँक राते पीरे रंग श्याम सेत है ॥
कबहूँ तो ग्राम को उजाड कर ढाडा[1] करे, ढेर[1]
कबहु तो सीस धड जुदे कर देत है ।
बाजीगर का सा ख्याल 'सुन्दर' करत मन,
सदाई भ्रमत रहै ऐसा कोई प्रेत है ॥१८॥

कबहूँक साधु होत कबहूँक चोर होत,
कबहूँक राजा होत कबहूँक रंक सा ।

कवहूँक दीन होत कवहु गुमानी होत,
कवहूँक सूधा होत कवहूँक वकसा ।।
कवहूँक कामी होत कवहूँक जती होत,
कवहूँ निर्मल होत कवहूक पंक[1] सा । कीच[1]
मन का स्वरूप ऐसा 'सुन्दर' फटिक[2] जैसा, श्वेत पत्थर[2]
कवहूक सूर होत कवहू मयंक[1] सा ।।१९।। चन्द्रमा[1]

हाथी का सा कान किधौं[1] पीपल का पान किधौं, क्या[1]
ध्वजा का उडान कहू थिर न रहत है ।
पानी का सा घेर[2] किधो पौन उरझेर[3] किधौं, भँवर[2] वघूरा[3]
चक्र का सा फेर कोऊ कैसे कै गहत है ।।
अरहट माल किधौ चरखा का ख्याल किधौं,
फेरी खात बाल कुछ सुधि न लहत है ।
धूम का सा धाव ताको राखिवे का चाव ऐसा,
मन का स्वभाव सो तो 'सुन्दर' कहत है ।।२०।।

सुख माने दुख माने सम्पति विपति माने,
हर्ष माने शोक माने माने रक धन है ।
घट माने बढ माने शुभ हू अशुभ माने,
लाभ माने हानि माने याही से कृपन है ।।
पाप माने पुण्य माने उत्तम मध्यम मानै,
नीच माने ऊच माने माने मेरा तन है ।
स्वरग नरक माने बन्ध माने मोक्ष माने,
'सुन्दर' सकल माने तातै नाम मन है ।।२१।।

जोई-जोई देखे कुछ सोई सोई मन आहि,
जोई जोई सुने सोई मन ही का भ्रम है ।
जोई जोई सूघे जोई खाय जो सपर्श होइ,
जोई जोई करे सोऊ मन ही का क्रम[1] है ।। कर्म[1]
जोई जोई गहै जोई त्यागे जोई अनुरागे,
जहा जहा जाय सोई मन ही का श्रम[2] है । परिश्रम[2]
जोई जोई कहै सोई सुन्दर सकल मन,
जोई जोई कलपे सो मन ही का ध्रम[3] है ।।२२।। धर्म[3]

एक ही विटप[1] विश्व ज्यो का त्यो ही देखियत, वृक्ष[1]
अति ही सघन[2] ताके पत्र[3] फल फूल है । गहरे[2] जीव[3]

आगले झरत पात नये नये होत जात,
ऐसे याही तरु का अनादि[4]काल मूल है ।। ब्रह्म[4]
दश चार लोक लौं प्रसर जहां तहा रहा,
अध[5] पुनि ऊरध सूक्षम अरु थूल है । नीचे[5]
कोऊ तो कहत सत्य कोऊ तो कहे असत्य,
'सुन्दर' सकल मन ही का भ्रम भूल है ।।२३।।

तो सा न कपूत कोऊ कतहू[1]न देखियत, कही भी[1]
तो सा न सपूत कोऊ देखियत और है ।
तूं ही आप भूल महा नीच हू मे नीच होय,
तूं ही आप जाने से सकल शिरमौर है ।।
तूं ही आप भ्रमे तब भ्रमत जगत देखे,
तेरे थिर भये सब ठौर ही का ठौर है ।
तू ही जीव रूप तू ही ब्रह्म है आकाशवत,
'सुन्दर' कहत मन तेरी सब दौर[1] है ।।२४।। दौड़[1]

मन ही के भ्रम से जगत यह देखियत,
मन ही का भ्रम गये जगत विलात है ।
मन ही के भ्रम जेवरी मे उपजत साप,
मन के विचारे साप जेवरी समात है ।।
मन ही के भ्रम से मरीचिका[1] को जल कहै, मृगतृष्णा[1]
मन ही के भ्रम सीप रूपा[2] सा[3] दिखात है । चादी[2] जैसा[3]
'सुन्दर' सकल यह दीसे मन ही का भ्रम,
मन ही का भ्रम गये ब्रह्म होय जात है ।।२५।।

मन ही जगत रूप होय कर विसतरा,
मन ही अलख रूप जगत से न्यारा है ।
मन ही सकल घट व्यापक अखण्ड एक,
मन ही सकल यह जगत पियारा है ।।
मन ही आकाशवत हाथ न पडत कुछ,
मन के न रूप रेख वृद्ध ही न बारा है ।
'सुन्दर' कहत परमारथ विचारे जब,
मन मिट जाय एक ब्रह्म निज सारा है ।।२६।।

इति मन का अग ११

अथ चाणक[1] का अंग १२

कोरड़ा[1]

मनहर— जोई जोई छूटवे का करत उपाय अज्ञ[1],
सोई सोई दृढ कर बन्धन परत है ।
योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रतादि और,
झपापात[2] लेत जाय हिमाले गरत है ।।
कान हू फडाय पुनि केश हू लु चाय[3] अंग,
विभूति लगाय शिर जटाहूँ धरत है ।
बिन ज्ञान पाये नहिं छूटत हृदै की ग्रन्थि,
'सुन्दर' कहत यूं ही भ्रम के मरत है ।।१।।

अज्ञानी[1]
पहाड़ से गिरना[2]
उपाड़ना[3]

निमात्रिक— जप तप करत धरत व्रत जत सत,
मन वच क्रम[1] भ्रम कपट[2] सहत तन ।
वलकल बसन अशन फल पत्र जल,
कसत[3] रसन रस तजत वमत वन ।।
जरत मरत नर गरत[4] परत सर,
कहत लहत हय[4] गय[5] दल बल घन ।
पचत पचत भव भय न टरत शठ,
घट घट प्रकट रहत[6] न लखत जन ।।२।।

कर्म[1] कष्ट[2]
वश करना[3]
गलना[4]
घोड़ा[4] हाथी[5]
व्यापक ब्रह्म[6]

जोग करे जाग[1] करे वेद विधि त्याग करे,
जप करे तप करे यूं ही आयु खूट है ।
यम करे नेम करे तीरथ हूँ व्रत करे,
पुहमी[2] अटन[3] करे वृथा श्वास टूट है ।।
जीव का जतन करे मन में वासना धरे,
पचपच यूं ही मरे काल शिर कूट है ।
और हू अनेक विधि कोटिक उपाय करे,
'सुन्दर' कहत बिन ज्ञान नहिं छूट है ।।३।।

यज्ञ[1]
पृथ्वी[2] भ्रमण[3]

बुद्धि कर हीन रज तम गुण छाय रहा,
वन वन फिरत उदास होय घर से ।
कठिन तपस्या धर[1] मेघशील घाम सहै,
कन्द मूल खाय कोऊ कामना के डर से ।।
अति ही अज्ञान और विविध उपाय करे,
निज रूप भूल कर बन्धे जाये पर[2]से ।
'सुन्दर' कहत ऊंधी ओर दिश देखे मुख,
हाथ माहि आरसी[3] न फेरे मूढ कर से ।।४।।

धड़, देह[1]
दूसरे द्वैत[2]
दर्पण[3]

मेघ सहै शीत सहै शीश पर घाम[1] सहै, — धूप[1]
कठिन तपस्या कर कन्द मूल खात है।
योग करे यज्ञ करे तीरथ हू व्रत करे,
पुन्य नाना विधि करे मन मे सिहात[2] है ।। — ललचाता है[2]
और देवी देवता उपासना अनेक करे,
आमन की हौंस[3] कैसे आक[4] टोडे जात है। — इच्छा[3] आकडा[4]
'सुन्दर' कहत एक रवि के प्रकाश बिन,
जेंगने[5] की ज्योति कहा रजनी विलात है ।।५।। — भागया[5]
आप ही के घट मे प्रकट परमेश्वर है,
ताहि छोड भूले नर दूर दूर जात है।
कोई दौडे द्वारिका को कोई काशी जगन्नाथ,
कोई दौड़े मथुरा को हरिद्वार न्हात है ।।
कोई दौडे वद्रीनाथ विषम पहाड चढे,
कोई तो केदार जात मन मे सिहात[1] है। — प्रसन्न[1]
'सुन्दर' कहत गुरुदेव देहि दिव्य नैन[2], — ज्ञान नेत्र[2]
दूर ही के दूरवीन निकट दिखात है ।।६।।
कोऊ फिरे नागे पाव कोऊ गूदडी बनाय,
देह की दशा दिखाय आय लोक धूटा[1] है। — धूर्तता की[1]
कोऊ दूधाधारी होय कोऊ फलाहारी तोय[2], — जल[2]
कोऊ अधो मुख चूल झूल धूम घूटा[3] है ।। — धौंवा से घूटना[3]
कोऊ नहिं खाय लौन कोऊ मुख गहै मौन,
'सुन्दर कहत यू ही वृथा भुस[3] कूटा है। — तुष[3]
प्रभु से न प्रीति माहि ज्ञान से परचे नाहि,
देखो भाई आधरे ने ज्यो वजार लूटा है ।।७।।

इन्दव—आसन मार सँवार जटा नख उज्जल अग विभूति चढाई।
या हम को कुछ देय दया कर घेर रहे बहु लोग लुगाई ।।
कोउक उत्तम भोजन ल्यावत कोउक ल्यावत पान मिठाई।
'सुन्दर' लेकर जात भया सब मूरख लोगन या सिधि पाई ।।८।।

यह[8] का इन्दव 'सुन्दरदासजी' ने फतेहपुर मे एक साधु के ढोग को देख कर रचाथा। वह सब से सोने के भूषण मगवाकर मत्र के द्वारा कामना-पूर्ण का विश्वास देता था फिर काली रात्रि मे सबके लेकर भाग गया। तब सुन्दरदासजी ने चौथा पाद रच कर इसको पूर्ण किया था। यहा इतना ही सकेत किया है। जीवनी मे शेष देंगे।

ऊरध पांव अधोमुख होकर घूंटत धूम हि देह झुलावे।
मेघ हु शीनहू घाम मह्रै शिर तीन हुं काल महा दुख पावे।
हाथ कछू न पड़े कब हूँ कण मूरख कूकस[1] कूट उडावे।　　भूस[1]
'सुन्दर' बछ विषै मुख को घर बूडत है अरु झझाण[2] गावे।।९।। बाजा[2]

गेह तजा अरु नेह तजा पुनि खेह[1] लगाय के देह सँवारी।
मेघ सहे शिर शीत सहा तन धूप समै जु पचागनि वारी[2]।।
भूख सही रह रूंख तने इम 'सुन्दरदास' सहे दुख भारी।
डासन[3] छाड के कासन[4] ऊपर आसन मारा[5] पै[6] आश न मारी।।१०।।
भस्म[1] जलाई[2] बिछौना[3] कास घास[4] लगाया[5] पर[6]

जो कोऊ कष्ट करे बहु भानिन जात अज्ञान नही मन केरा[1]।　　का[1]
ज्यो तम पूर रहा घर भीतर कैसे हु दूर न होत अधेरा।।
लाठिन मारिये ठेल[2] निकारिये और उपाय करे बहुतेरा।　　धक्का[2]
'सुन्दर' सूर प्रकाश भया तब तो कबहू नहि देखिये नेरा।।११।।

धार बहा खग धार हया[1] जल धार सहा गिरधार[2] गिरा है।
भार[3] सचा धन भारथ[4]हु कर भार लिया शिर भार परा है।।
मार[5] तया वहि मार गया जममार दिई मन तो न मरा है।
सार तजा खुट सार[6] पढा कहि सुन्दर' कारज कौन सरा[7] है।।१२।।
मरा[1] किनारे[2] धन का बोझ[3] लडाई[4] काम[5] खोटे विद्यालय मे[6] सिद्ध[7]

कोउ भया पय पान करे नित कोउक खात है अन्न अलोंना।
कोउक कष्ट करे निश बासर कोउक बैठ के साधत पौना[1]।।　　प्राण[1]
कोउक वाद विवाद करे अति कोउक धार रहै मुख मौना।
'सुन्दर' एक अज्ञान गये बिन सिद्ध भया नहि दीसत कोना।।१३।।

कोउक अग विभूति लगावत कोउक होत निराट[1] दिगम्बर।　　सवथा[1]
कोउक श्वेत कषायक[2] ओढत कोउक काथ रगे बहु अम्बर।।　　गेरुरग[2]
कोउक वल्कल शीश जटा नख कोउक ओढत है जु बघम्बर[3]।　　बागम्बर[3]
'सुन्दर' एक अज्ञान गये बिन ये सब दीसत आहि अडम्बर।।१४।।

कोउक जात पिराग बनारस कोउ गया जगनाथहिं धावे।
को मथुरा बदरी हरिद्वार सु कोउ भया कुरुखेत हि न्हावे।।
कोउक पुष्कर हो पञ्च तीरथ दौडेइ दौडे जु द्वारिका आवे।
'सुन्दर' वित्त[1] गडा घर[2] मांहि सु बाहर ढूंढत क्यो कर पावे।।१५।। हरि[1] हृदय[2]

आगे कछू नहि हाथ पडा पुनि पीछे बिगाड गये निज भौना।।
ज्यो कोउ कामिनि कतहि मार चली सँग औरहि देख सलोंना।।

सोउ गया तज के ततकाल कहै न बने जु रही मुख मौना ।
तैसे हि 'सुन्दर' ज्ञान बिना सब छाड भये नर भाड के दौना ।।१६।।

(१६) भाड का दौना—एक भाड भोजन करने पक्ति मे बैठा, उस ने आगे पत्तल लगा ली और पिछली पक्ति मे अपने पीछे एक दोना रख लिया । परसने वाले आये तब पत्तल और पीछे दोने मे भी मिठाई मागी तब लोगो ने कहा यह भाड है इस को पक्ति मे उठा दो फिर उठा दिया । उस दोने से उसकी हानि ही हुई, वैसे ज्ञान बिना अन्य क्रियाओ से हानि ही होती है ।

ज्यो कोउ कोस कटा नहिं मारग तेलक ले घर मे पशु जोये ।
ज्यो बनिया गया बीस के तीस को बीसहु मे दसहू नहिं होये ।।
ज्यो कोउ चौवा छवे को चला पुनि होय दुवे दुइ गांठ के खोये ।
तैसे हि 'सुन्दर और क्रिया सब राम बिना निहचै नर रोये ।।१७।।

(१७) तेली के बैल आदि दिन भर चलते हैं पर वहा ही रहते है। बनिया बीस के तीस करना चाहता था किन्तु उसे दश भी नही प्राप्त हुये । एक चौबा ब्रह्मभोज मे जीमने गया । उसमे द्विवेदी को दो आना त्रिवेदी को तीन आना और चतुर्वेदी को चार आना दक्षणा देने की व्यवस्था थी । चौवे ने सोचा मै अपने को छब्वा कहूँगा तो मुझे छ आने मिलेगे । जब पूछ कर दक्षणा देने लगे तो उस ने अपने को छव्वा कहा तब देने वालो ने कहा छ तो वेद ही नही होते अत दुवे है, इसे दो आने दे दो । उसे दो आने ही दिये' वैसे ही लोभ से हानि होती है उसी प्रकार राम के चिन्तन विना अन्य क्रियाओ से हानि ही होती है ।

जो कोउ राम बिना नर मूरख औरन के गुण जीभ भनेगी[1] ।
आन क्रिया गढते[2] गडवा[3] पुनि होत है भेरि[4] कछू न बनेगी ।।
ज्यो हथफेरि दिखावत[5] चावल अन्त तो धूरि की धूरि छनेगी ।
'सुन्दर' भूल भई अति से कर सूते की भैंस पाडाइ जनेगी ।।१८।।

(१८) कथेगी[1] घडते[2] लोटा[3] नोबत[4] फिर कुछ भी नही होगा बाजीगर[5] दो की भैंसे ब्याने वाली थी एक सो गया एक जागता रहा सोने वाले की भैंस ने पाडी दी थी किन्तु जगने वाले ने तत्काल बदल दिया उसको उक्त वचन कह दिया ।

होय उदास विचार बिना नर गेह तजा बन जाय रहा है ।
अम्बर छाड बघम्बर लेकर कै तप को तन कष्ट सहा है ।।
आसन मार सवासन[1] हो मुख मौन गही मन तो न गहा है । वासनायुत[1]
'सुन्दर' कौन कुबुद्धि लगी कहि या भवसागर माहि बहा है ।।१९।।
भेष धरा पर भेद न जानत भेद लहै बिन खेद हि पै है ।
भूख हि मारत नींद निवारत अन्न तजे फल पत्रन खै है ।।

और उपाय अनेक करे पुनि ताहि तै हाथ कछू नहि ऐ है ।
या नर देह वृथा शठ खोवत 'सुन्दर' राम विना पछितै है ।।२०।।

आपने आपने थान मुकाम सराहन को सब बात भली है ।
यज्ञ व्रतादिक तीरथ दान पुराण कथा जु अनेक चली है ।।
कोटिक और उपाय जहा लग ते सुनके नर बुद्धि छली है ।
'सुन्दर' ज्ञान बिना न कहू सुख भूलन को बहु भाति गली है ।।२१।।

कोउक चाहत पुत्र धनादिक कोउक चाहत बाझ जनाया ।
कोउक चाहत धातु रसायन कोउक चाहत पारद खाया ।।
कोउक चाहत जत्रन मत्रन कोउक चाहत रोग गमाया ।
'सुन्दर' राम विना सब ही भ्रम देख हु या जग यू डहकाया[1] ।।२२।। धोखा खाया[1]

काहे को तू नर भेष बनावत काहे को तू दश हू दिश डूले ।
काहे को तू तन कष्ट करे अति काहे को तू मुख से कहि फूले ।।
काहे को और उपाय करै अब आन क्रिया करके मत भूले ।
'सुन्दर' एक भजै भगवत हि तो सुख सागर मे नित भूले ।।२३।।

इति चाणक का अग १२

अथ विरीत ज्ञानी का अग १३

मनहर—

एक ब्रह्म मुख से बनाय कर कहत हे
अन्तहकरण तो विकारन से भरा है ।
जैसे ठग गोबर से कूपा[1] भर राखत हे, मोदडा[1]
सेर पाच घृत लेके ऊपर ज्यो करा है ।'
जैसे कोउ भाडे माहि प्याज का छिपाय राखे,
चीथरा कपूर का ले मुख बाध धरा है ।
'सुन्दर' कहत ऐसे ज्ञानी है जगत माहि,
तिनको तो देखकर मेरा मन डरा है ।।१।।

देह से ममत्व पुनि गेह से ममत्व सुत,
दारा से ममत्व मन माया मे रहत है ।
थिरता न लहै जैसे कदुक[1] चौगान माहि, गेंद[1]
कर्मन के वश मारा धक्का को वहत[2] है ।। खाता[2]
अन्तहकरण सो तो जगत से रचि रहा,
मुख से बनाय बात ब्रह्म की कहत है ।
'सुन्दर' अधिक मोहि याही मे अचभा आहि,
भूमि पर पडा कोऊ चन्द को गहत है ।।२।।

मुख से कहत ज्ञान भ्रमे मन इन्द्री प्रान,
मारग के जल मे न प्रतिविम्ब लहिये ।
गाठ मे न पैका[1] कोऊ भया रहै साहूकार, पैसा[1]
वातन ही मुहर रुपैया गिन गहिये ।।
स्वपने मे पचामृत जीम के तृपत भया,
जागे से मतर भूख खाइवे को चहिये ।
सुन्दर' सुभट जैमे कायर मारत[2] गाल, बढ़े वड़े वचन कहना[2]
राजा भोज सम कहा गागातेलो कहिये ।।३।।

उज्जैत मे गागा नामक तेली अपने को बहुत बुद्धिमान समझता था उसकी चर्चा राजा भोज के पास भी लोग करते थे । राजा ने उससे मौन मे शास्त्रर्थ करना चाहा । गागा ने मान लिया । शास्त्रार्थ होने लगा तब राजा ने उसकी ओर एक अगुली, की तात्पर्य था एक ही ब्रह्म है, तब गागा ने यह समझ कर कि एक अगुली से मेरी एक आँख फोडने को कहाता है, उसने दो अगुली की तात्पर्य था मैं तेरी दोनो आख फोड दू गा । राजा ने समझा जीव और ब्रह्म दो हैं । फिर राजा ने गागा की ओर तीन अगुली की जीव, ब्रह्म और माया तीन हैं । गागा ने यह समझ कर कि तोन अगुली तेरे मारू गा । गागा ने चार अगुली राजा की ओर को तात्पर्य था मै तेरे चारो को मारू गा । राजाने समझा जीव, ब्रह्म, माया और जगत चार है । फिर राजा ने गागा की ओर पाच अगुलिया की तात्पर्य था पाच तत्त्व से जगत वनता है । तब गागा ने राजा की ओर मुक्का किया तात्पर्य था तू मेरे पाचो को मारेगा तो मैं तेरे मुक्का मारू गा । राजा ने समझा पीछे एक ब्रह्म ही रहता है पचभौतिक ससार नष्ट हो जाता है। शास्त्रार्थ समाप्त हो गया। कहावत है "कहा तो राजा भोज और कहा गागा तेली" तात्पर्य सच्चे ज्ञानी और वाचिक ज्ञानी अर्थात् ऊपर से वाते कहने वाला ज्ञानी समान नही हो सकते ।

ससार के सुखन मे आसक्त अनेक विधि,
इन्द्री हू लोलप मन कबहू न गहा है ।
कहत है ऐमे मैं तो एक ब्रह्म जानत हू,
ताहि से छोड के शुभ कर्मन से रहा है ।।
ब्रह्म की न प्राप्ति पुनि कर्म सब छूट गये,
दोहुन से भ्रष्ट होय अधवीच बहा है ।
'सुन्दर' कहत ताहि त्यागिये स्वपच जैसे,
याही भाति ग्रन्थ मे वशिष्ट जी ने कहा है ।।४।।

ज्ञान की सी बात कहै मन तो मलीन रहै,
बासना अनेक भरी नैक न निवारि[1] है । — हटता[1]
जैसे कोऊ आभूषण अधिक बनाय राखा,
कलीई ऊपर कर भीतर भगारि[2] है ।। — कूडा[2]
ज्यो ही मन आवे त्यो ही खेलत निशक होय,
ज्ञान सुन सीख लिया ग्रन्थन विचारि है ।
'सुन्दर' कहत वाके अटक न कोऊ आहि[3], — है[3]
जोई वासे मिले जाय ताहि को विगारि[4] है ।।५।। — बिगाडता[4]

हस श्वेत वक[1] श्वेत देखिये समान दोऊ, — वगला[1]
हस मोती चुगे बक मछरी[2] को खात है । — मच्छी[2]
पिक[3] अरु काक दोऊ कैसे कर जाने जाहिं, — कोयल[3]
पिक आम डार काक करक हि जात है ।।
सिधा अरु फटक[4] पषाण सम देखियत, — श्वेत[4]
वह तो कठोर वह जल मे समात है ।
'सुन्दर' कहत ज्ञानी बाहर भीतर शुद्ध,
ताकी पटतर[4] और वातन की बात है ।।६।। — समान[4]

इति विपरीत ज्ञानी का अंग १३

अथ वचन विवेक का अंग १४

मनहर—

जाके घर ताजी[1] तुरकीन का तवेला बधा, — अरब का घोडा[1]
ताके आगे फेर फेर टटुवा नचाइये[2] । — नचाना[2]
जाके खासा मलमल सिरी[3] साफ ढेर पडै, — श्रेष्ठ वस्त्र[3]
ताके आगे आनि कर चौसई[4] रखाइये ।। — मोटा कपडा[4]

जाको पचामृत खात खात सब दिन वीते,
'सुन्दर' कहत ताहि रावडी चखाइये ।
चतुर प्रीवीण आगे मूरख उचार करे,
सूरज के आगे जैसे जैगणा[5] दिखाइये ।।१।। — जुगनू[5]

एक वाणी रूपवत भूषन वसन अग,
अधिक विराज मान कहियत ऐसी है ।
एक वाणी फटे टूटे अबर[1] उढाये आन, — वस्त्र[1]
ताहू माहि विपरीत सुनियत तैसी है ।।
एक वाणी मृतक हि बहुत सिंगार किये,
लोकन को नीकी लगे सतन को भै[2]सी है । — भय[2]

'सुन्दर' कहत वाणी त्रिविधि जगत मांहि,
जाने कोऊ चतुर प्रवीण जाके जैसी है ।।२।।

राजा का कुंवर जो सुरुप कै[1] कुरूप होय, — वा[1]
ता को तसलीम[2] कर गोद मे खिलाइये । — प्रणाम[2]
और काहू रैत[3] का सुरूप होय शोभनीक, — प्रजा[3]
ताहू को तो देख कर निकट बुलाइये ।।
काहू का कुरूप काला कूबरा हो अग हीन,
वाकी ओर देख देख माथा हि हिलाइये ।
'सुन्दर' कहत वाके बाप ही को प्यारा होय,
यूं ही जान वाणी का विवेक ऐसे पाइये ।।३।।

बोलिये तो तब जब बोलबे की सुधि होय,
न तो मुख मौन कर चुप होय रहिये ।
जोडिये हू तब जब जोडबा हू जान पडे,
तुक छद अरथ अनूप जामे लहिये ।।
गाइये हू तब जब गाइबे का कठ होय,
श्रवण के सुनत ही मन जाय गहिये ।
तुक भग छन्द भग अरथ मिले न कुछ,
'सुन्दर' कहत ऐसी वाणी नहि कहिये ।।४।।

एकन के वचन सुनत अति सुख होय,
फूल से झडत हैं अधिक मन भावने ।
एकन के वचन अशम[1] मानो वरषत, — पत्थर[1]
श्रवण के सुनत लगत अलखावने ।।
एकन के वचन कटक कटु विष रूप,
करत मरम छद दुख उपजावने ।
'सुन्दर' कहत घट घट मे वचन भेद,
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनावने ।।५।।

काक अरु रासभ[1] उलूक जब बोलत है, — गधा[1]
तिनके तो वचन सुहात कहि कौन को ।
कोकिला[2] हू सारो[3] पुनि सूवा जब बोलत है, — कोयल[2] मैना[3]
सब कोऊ कान दे सुनत रव[4] रौन[5] को ।। — शब्द[4] सुन्दर[5]
ताहि से सुवचन विवेक कर बोलियत,
यू ही आकबाक बक तोडिये न पौन[6]को । — स्वास।[6]

'सुन्दर' समझ के वचन को उचार कर
नाही तर[7] चुप हो पकड बैठ मौन को ॥६॥　　　तो[7]
प्रथम हिये विचार ढीम[1] सा न दीजे डार,　　　पत्थर[1]
ताहि से सुवचन सभार कर बोलिये ।
जाने न कुहेत हेत भावे तैसी कह देत,
कहिये तो तव जब मन माहि तोलिये[2] ॥　　　विचार[2]
सब ही को लागे दु ख कोऊ नहि पावे सुख,
बोल के वृथा ही तासे छाती नहि छोलिये[3] ।　　　दुखद कहना[3]
'सुन्दर' समझ कर कहिये सरस[4] बात,　　　सुन्दर[4]
तव ही तो वदन[5] कपाट गह खोलिये ॥७॥　　　मुख[5]

और तो वचन ऐसे बोलत है पशु जैसे,
तिनके तो बोलबे मे ढग हू न एक है ।
कोऊ रात दिवस वकत हो रहत ऐसे,
जैसी विधि कूप मे वकत मानो भेक[1] है ॥　　　मेडक[1]
विविध प्रकार कर बोलत जगत सब,
घट घट मुख मुख वचन अनेक है ।
'सुन्दर' कहत तासे वचन विचार लेहु,
वचन तो वही जा मे पाइये विवेक है ॥८॥

जैसे हस नीर को तजत है असार जान,
सार जान क्षीर[1] को निराला[2]कर पीजिये ।　　　दूध[1] अलग[2]
जैसे दधि मथत मथत काढ लेत घृत,
और रही यही सब छाछ छाड दीजिये ॥
जैसे मधु मक्षिका सुवास को भ्रमर लेत,
वैसे ही व्यवरि[3]कर भिन्न भिन्न कीजिये ।　　　विचार[3]
'सुन्दर' कहत तातै वचन अनेक भाति,
वचन मे वचन विवेक कर लीजिये ॥९॥

प्रथम ही गुरुदेव मुख से उचार करा,
वे ही तो वचन आय लगे निज हीये हैं ।
तिनका विवेक कर अन्तहकरण माहि,
अति ही अमोल नग भिन्न भिन्न कीये हैं ॥
आप का दरिद्र गया परउपकार हेत,
नगहि निगल के उगल नग दीये हैं ।

'सुन्दर' कहत यह वाणी यूं प्रकट भई,
और कोऊ सुन कर रक जीव जीये हैं ॥१०॥

वचन से दुरि[1] मिले वचन विरुद्ध होय, — दया करके[1]
वचन से राग बढे वचन से दोष जू ।
वचन से ज्वाला[2] उठे वचन शीतल होय, — क्रोध[2]
वचन से मुदित[3] वचन ही से रोष जु ॥ — प्रसन्न[3]
वचन से प्यारा लगे वचन से दूर भगे,
वचन से मुरझाय वचन मे पोष[4] जू । — पोषण[4]
'सुन्दर' कहत यह वचन का भेद ऐसा,
वचन से बन्ध होय वचन से मोष[5] जू ॥११॥ — मोक्ष[6]

वचन से गुरु शिष्य बाप पूत प्यारा होय,
वचन से बहु विधि होत उतपात है ।
वचन से नारी अरु पुरुष सनेह अति,
वचन से दोऊ आप आप मे रिसात[1] है ॥ — क्रोधित[1]
वचन से सब आय राजा के हजूर होहि,
वचन से चाकर हू छोड के परात[2] है । — चला जाता है[2]
'सुन्दर' सुवचन सुनत अति सुख होय,
कुवचन सुनत हि प्रीति घट जात है ॥१२॥

एक तो वचन सुन कर्म ही मे वह जाहि,
करत बहुत विधि स्वर्ग की उमेद[1] है । — आशा[1]
एक है वचन दृढ ईश्वर उपासना के,
तिन से तो सकल ही वासना का छदे[2] है ॥ — नाश[2]
एक है वचन तामे एक ही अखण्ड ब्रह्म,
'सुन्दर' कहत यू बताया अतवदे[3] है । — उपनीद्[3]
वचन अनेक ही प्रकार सब देखियत,
वचन विवेक किये वचन मे भेद है ॥१३॥

वचन से योग करे वचन से यज्ञ करे,
वचन से तप कर देह को दहत[1] है । — जलात है[1]
वजन से बन्धन करत है अनेक विधि,
वचन से त्याग कर वन मे रहत है ॥

वचन ते उपजत गुण गुणते वचन होत है,
वचन ते भांति भांति प्रकट कहत है।
वचन ते जीव भया वचन ते ब्रह्म होय,
'सुन्दर' वचन भेद वेद यूं कहत है ॥१४॥

इति वचन विवेक का अंग १४

अथ निर्गुण उपासना का अंग १५

इन्दव— ब्रह्मा[1] कुलाल[2] रचे बहु भाजन[3] कर्मन के वश मोहि न भावे।
विष्णुहु प्रकट आय नहीं प्रभु[4] काहू को रक्षक काहू नसावे॥
शंकर भूत पिशाचन के पति पानि[5] कपाल लिये बिललावे[6]।
याहि ते 'सुन्दर' तीगुण त्याग तू निर्गुण एक निरंजन ध्यावे ॥१॥
(१) ब्रह्मा[1] कुम्हार[2] शरीर[3] मन[4] हाथ[5] भिखारी जैसा फिरे[6]

कोटिक बात बनाय कहे कहा होत भया सब ही मन रंजन।
आगम स्मृति वेद पुराण बखानत है श्रुति ते लुप अंजन[1]॥ दृष्टी[1]
पानी मे बूडत पानी गहे कत पार पहुंचत है मतिभंजन[2]। नष्टमति[2]
'सुन्दर' तो लग अंधकि जेवरि जो लौं न ध्याय है एक निरंजन ॥२॥

मंजन सो जु मनोमल मंजन सज्जन सो जु कहे गति गुह्यं[1]।
गंजन[2] सो जु इन्द्री गह गंजन रंजन सो जु बुझावे अबुझं[3]॥
मंजन सो जु भरा रस माहि विदुज्जन सो कत हू न अरुझं[4]।
व्यंजन सो जु बटे रुचि 'सुन्दर' अंजन सो जु निरंजन सुझं ॥३॥
(३) गुप्त[1] नाश[2] अबोध[3] उलझे[4]

जा प्रभु से उत्पत्ति भई यह सो प्रभु है उर इष्ट हमारे।
जो प्रभु है सब के शिर ऊपर ता प्रभु को हम हू शिर धारे।
रूप न रेख अलेख अखण्डित भिन्न रहै सब कारज सारे।
नाम निरंजन है तिनका पुनि 'सुन्दर' ता प्रभु के बलिहारे ॥४॥

जो उपजे विनशे गुण धारत सो यह जानहु अंजन माया।
आवे न जाय मरे नहिं जीवत अच्युत एक निरंजन राया[1]॥ राजा[1]
ज्यो तरु तत्त्व रहै रस एक हि आवत जात फिरे यह छाया।
सो परब्रह्म सदा शिर ऊपर सुन्दर ता प्रभु से मन लाया ॥५॥

जो उपजा कुछ आय जहा लग सो सब नाश निरंतर होई।
रूप धरा जु रहै नहिं निश्चल तीन हु लोक गिने कहा कोई॥
राजस तामस सात्विक जो गुण देखत काल ग्रसे पुनि वोई।
आप हि एक रहै जु निरंजर 'सुन्दर' के मन मानत सोई ॥६॥

देवन के शिर देव विराजत ईश्वर के शिर ईश्वर कहिये ।
लालन[1] के शिर लाल निरतन खूबन के शिर खूब[2] सु लहिये ।। प्रिय[1] उत्तम[2]
पाकन के शिर पाक[3] शिरोमणि देख विचार वही दृढ गहिये । पवित्र[3]
सुन्दर' एक सदा शिर ऊपर और कछू हमको नहि चहिये ।।७।।

शेष महेश गणेश जहा लग विष्णु विरचि[1] हु के शिर स्वामी । ब्रह्मा[1]
व्यापक ब्रह्म अखण्ड अनावृत[2] बाहर भीतर अन्तरयामी ।। प्रकट[2]
वोर न छोर अनन्त कहै गुन याहि से 'सुन्दर' है घन[3]नामी । बहुनामी[3]
ऐसे प्रभु जिनके शिर ऊपर क्यो पड है तिन को कहि खामी[4] ।।८।। कमी[4]

इति निर्गुण उपासना का अग १५

अथ पति व्रत का अग १६

इन्द्रव— आनकि ओर निहारत ही जैसे जात पतिव्रत एक व्रती का ।
होत अनादर ऐमिहि भाति जु पीछे फिरे पुनि शूर सती का ।।
नैक हि मे हग्वा[1] होय जात खिसे अध विन्दु[2] ज्यो जोग जती का । लघु[1] वीर्य[2]
राम हृदै से गये जन 'सुन्दर' एक रती विन एक रती का ।।१।।

जो हरि को तज आन उपासत सो मति मद फजीहति[1] होई । बेइज्जती[1]
ज्यो अपने भरतार हि छाड भई विभचारिनि कामिनि कोई ।
'सुन्दर' ताहि न आदर मान फिरे विमुखी अपनी पति[2] खोई । लाज[2]
बूड मरे किन कूप मझार कहा जग जीवत है शठ सोई ।।२।।

एक सही सब के उरअन्तर ता प्रभु को कहि काहिन गावे ।
सकट माहि सहाय करे पुनि सो अपना पति क्यो विसरावे ।।
चार पदारथ और जहा लग आठहु सिद्धि नवै निधि पावे ।
'सुन्दर' छार[1] पडो तिन है मुख जो हरि को तज आन हि ध्यावे ।।३।। धुलि[1]

पूरण काम सदा सुखधाम निरजन राम सिरज्जन हारा ।
सेवक होय रहा सब का नित कुजर कीट हि देत अहारा ।।
भजन दुख दरिद्र निवारन चित करे पुनि साझ सँवारा ।
ऐसे प्रभु तज आन उपासत 'सुन्दर' हो तिन का मुख कारा ।।४।।

होय अनन्य भजै भगवत हि और कछू उर मे नहि राखे ।
देविय देव जहा लग हैं डर के तिन से कहु दीन न भाखैं ।
योग हु यज्ञ व्रतादि क्रिया तिन को नहि तो स्वपने अभिलाखे ।
'सुन्दर' अमृत पान किया तव तो कहि कौन हलाहल चाखे ।।५।।

मनहर—

काहै को फिरत नर भटकत ठौर ठौर,
डागल की दौड देवी देव सब जानिये ।
योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रतादि दान,
तिन हू का फल सोऊ मिथ्या ही बखानिये ।।
सकल उपाय तज एक राम नाम भज,
याहि उपदेश सुन हृदै माहि आनिये[1] ।　　धारे[1]
ता हि से समझ कर 'सुन्दर' विश्वास धर,
और कोऊ कहै कुछ ताकी नहिं मानिये ।।६।।

पति[1] ही से प्रेम होय पति ही से नेम होय,　　राम[1]
पति ही से क्षेम[2] होय पति ही से रत है ।　　रक्षा[2]
पति ही है यज्ञ योग पति ही है रस भोग
पति ही है जप तप पति ही का यत[3] है ।।　　पतीत्व[3]
पति ही है ज्ञान ध्यान पति ही है पुण्य दान,
पति ही तीरथ न्हान पति ही का मत[4] है ।　　धर्म[4]
पति बिन पति[5] नाहि पति बिन गति नाहि,　　लाज[5]
'सुन्दर' सकल विधि एक पति व्रत है ।।७।।

जल का सनेही मीन बिछुरत तजे प्राण,
मणि बिन अहि[1] जैसे जीवत न लहिये ।　　सर्प[1]
स्वाति बून्द के सनेही प्रकट जगत माहि,
एक सीप दूसरा सु चातक[2]हू कहिये ।।　　पपीहा[2]
रवि का सनेही पुनि कमल सरोवर मे,
शशि का सनेही हू चकोर जैसे रहिये[3] ।　　अग्नि आकार[3]
तैसे ही 'सुन्दर' एक प्रभु से सनेह जोड,
और कुछ देखि काहू ओर नहि बहिये[4] ।।८।।　　जावे[4]

इति पतिव्रत का अंग १६

अथ विरहनि उराहने का अंग १७

मनहर

पियहका अदेशा भारी तासे कहू सुन प्यारी,
यारी[1] तोड गये सो तो अजहू न आये हैं ।　　प्रेम[1]
मेरे तो जीवन प्राण निशदिन वही ध्यान,
मुख से न कहू आन नैन झर लाये है ।।
जब से गये बिछोह कल[2]न पडत मोहि,　　चैन[2]
ताते हू पूछत तोहि किन बिरमाये[3] है ।　　बिलमाय[3]
'सुन्दर' विरहनी के सोच सखी[4] बार बार,　　नायक सन[4]
हमको बिसार अब कौन के कहाये हैं ।।१।।

हमको तो रैन दिन शक मन माहि रहै,
उनकी तो बातन मे ठीक[1] हू न पाइये । सत्य[1]
कबहू अदेशा सुन अधिक उछाह होय,
कब हूक रोइ रोइ आसुन बहाइये ।
औरन के रस[2] वश होय रहे प्यारे लाल, प्रेम[2]
आवन की कहि कहि हमको सुनाइये ।
'सुन्दर' कहत ताहि काटिये जु कौन भाति,
जो तो रूख[3] आपने ही हाथ से लगाइये ॥२॥ वृक्ष[3]
मो से कहै औरसी ही वासे कहै औरसी ही,
जा से कहै ताही के प्रतीत[1] कैसे होत है, विश्वास[1]
काहू को समास[2] करे काहू से उदास फिरे । सतुष्ट[2]
काहू से तो रस[3] वश एकमेक पोत[4] है । प्रेम[3] ओतप्रोत[4]
दगाबाजी दुविधा तो मन की न दूर होय,
काहू के अधेरा घर काहू के उदोत[5] है । प्रकाश[5]
'सुन्दर' कहत जाके पीड सो करे पुकार,
जाका दुख दूर गया ताके भई वोत[6] है ॥३॥ शाति[6]
होये[1] और जीये और लीये और दीये और, हृदय[1]
कीये और कौन हू अनूप पाटी पढे हैं ।
मुख और बैन और नैन और सैन और,
तन और मन और जत्र माहि कढे हैं ॥
हाथ और पाव और शीशहू श्रवण और ।
नख शिख रोम रोम कलई मे मढे हैं ।
ऐसी तो कठोरता सुनी न देखी जगत मे,
'सुन्दर' कहत काहू वज्र ही के गढे[2] है ॥४॥ बने[2]
भई हू अति बावरी[1] विरह घेरी बावरी[2] । बावली[1] वायु[2]
चलत ऊचा बावरी[3] परू गा जाय बावरी[4] । श्वास[3] बावडी[4]
फिरत हू उतावरी[5] लगत नही तावरी[6] । उतावली[5] शक्ति[6]
सु वाही[7] को वतावरी[8] चला है जात तावरी[9] । प्रभु[7] सखी[8] दु ख[9]
थके है दोऊ पावरी[10] चढत नहि पावरी[11] । पैर[10] पावडी[11]
पियारा नहि पवारी[12] जहर बाटि[13] पावरी । प्राप्त[12] कटोरी[13]
दौरत नहि नावरी[14] पुकार के सुनावरी[15] । पहुची[14] री सखी[15]
'सुन्दर' कोउ नावरी[16] डूबत राखे नावरी ॥१७॥ केवट[16] नवका[17]

इसमे 'री' शब्द प्राय साधक सत को सखी रूप मे मानकर कहा है, यह ध्यान रहे ।

इति विरहनि उराहने अंग का १७

अथ शबसार का अंग १८

मनहर— भूला फिरे भ्रम से करत कुछ और और।
करत न ताप दूर करत संताप को।
दक्ष[1] भया रहै पुनि दक्ष प्रजापति जैसे। चतुर[1]
देत पर[2] दक्षणा न दक्षणा[3] दे आप को।। अन्य को[2] ज्ञान[3]
'सुन्दर' कहत ऐसे जाने न जुगति कुछ,
और जाप जपे न जपत निज[4] जाप को। निज नाम[4]
बाल भया युवा भया वय[5] वीते वृद्ध भया, अवस्था[5]
वपु[6] रूप होय के विसर गया बाप[7] को ।।१।। शरीर[6] ईश्वर[7]

इन्दव—पान वहै जु पीयूष[1] पिवे नित दान वहै जु दरिद्र हि भाने। अमृत[1]
कान वहै सुनिये यश केशव मान वहै करिये सनमाने।।
तान वहै सुरतान[2] रिझावत जान वहै जगदीश हि जाने। बादशाह[2]
बाण वहै मन वेधत सुन्दर' ज्ञान वहै उपजे न अज्ञाने।।२।।

शूर वहै मनको वश राखत कूर वहै रण माहि लजे हैं।
त्याग वहै अनुराग नहीं कहु भाग वहै मन मोह तजे है।।
तज्ञ[1] वहै निज तत्त्व हि जानत यज्ञ वहै जगदीश जजे[2] है। तत्त्वज्ञ[1] यजन[2]
रक्त[3] वहै हरि से रत सुन्दर' भक्त वहै भगवत भजे है।।३।। अनुरक्त[3]

चाप वहै कसिये रिपु ऊपर दाप[1] वहै दलकार[2] हि मारे। शक्ति[1] ललकार[2]
छाप वहै हरि आप दिई शिर थाप[3] वहै थपि और न धारे।। स्थापना[3]
जाप वहै जपिये अजपा नित खाप[4] वहै निज खाप विचारे। जाति[4]
बाप वहै सबका प्रभु 'सुन्दर' पाप हरे अरु ताप निवारे।।४।।

भौन[1] वहै भय नाहि न जामहिं गौन[2] वह फिर होय न गौना। घर[1] गमन[2]
वौन[3] वहै बमिये विषया रस रौन वहै प्रभु से नहिं रौना।। वमन[3]
मौन वहै जु लिये हरि बोलत लौन वहै सब और अलौन।
सौन[4] वह गुरु सत मिले जब 'सुन्दर' शक रहै नहिं कौना।।५।। सौण[4]

कार[1] वहै अविकार रहै नित सार वहै जु असार हि नाखे। काम[1]
प्रीति वहै जु प्रीतिति धरे उर अनीति वहै जु नीति न भाखे।
तन्त[2] वहै लग अन्त न टूटत सत वहै अपना सत राखे। तार[2]
नाद वहै सुन वाद तजे सब स्वाद वहै रस[3] सुन्दर चाखे।।६।। ब्रह्मानन्द[3]

श्वास वहै जु उश्वास[1] न छाडत नाश वहै फिर होय नशा। कुंभक[1]
पास[2] वहै सत पास लगे जम-पास कटे प्रभु के नित पासा।। फासी[2]

बास वहै गृह बास तजे वनबास नही तिहिं ठाहर[3] बासा । समाधि[3]
दास वहै जु उदास[4] रहै हरिदास सदा कहि सुन्दरदासा' ॥७॥ विरक्त[4]

श्रोत्र वह श्रुति सार[1] सुने तिन नैन[2] वहै निज रूप निहारे । ब्रह्म का[1] ज्ञान[2]
नाक वहै हरिनाक[3]हि राखत जीभ वहै जगदीश उचारे ॥ भजन की टेक[3]

हाथ वहै करिये हरि का कृत[4] पाव वहै प्रभु के पथ[5] धारै । भक्ति[4] मार्ग[5]
शीश वहै कर श्याम समर्पण 'सुन्दर' यू सब कारज सारै ॥८॥

सोवत[1] सोवत सोइ गया शठ रोवत[2] रोवत कै बर रोया ।
गोवत गोवत गोइ[3] धरा धन खोवत खोवत तै सब खोया[4] ॥

जोवत[5] जोवत बीत गयेदिन बोवत बोवत ले विष बोया[6] ।
'सुन्दर' सुन्दरराम भजा नहिं ढोवत ढोवत बोझ[7] हि ढोया ॥९॥

(९) अज्ञान निन्द्रा मे[1] विषयो के लिये[2] छिपाकर[3] जीवन[4] देखते देखते[5] विषय रूप विष ही[6] व्यर्थ ही भार[7]

देखत देखत देखत मारग[1] बूझत बूझत बूझत आया ।
सूझत सूझत बूझ पडी सब गावत गावत गोविन्द गाया ॥
सोधत सोधत शुद्ध[2] भया पुनि तावत तावत कचन ताया ।
जागत जागत जाग पडा जब सुन्दर सुन्दर सुन्दर पाया ॥१०॥

साधन मार्ग मे आया[1] सुवर्ण तपाने से शुद्ध होता है,

इति शब्द सार का अग १८

अथ शूरातन का अग १९

मनहर— सुनत नगारे चोट विगसे[1] कमल मुख, खिले[1]
अधिक उछाह फूला माइ हू न तन मे ।
फिरे जब साग[2] तब कोऊ नहिं धीर धरे, बरछी[2]
कायर कपायमान होत देख मन मे ॥

टूटके पतग जैसे पडत पावक माहि,
ऐसे टूट पड़े वहु सावत[3] के गन[4] मे । वीर[3] गण[4]

मार घममाण कर 'सुन्दर' जुहारे[5] स्वामि[6], नमस्कार[5]
सोई शूरवीर रूप रहै जाय रन मे ॥१॥

सत शूर कामादि से युद्ध मे विजय प्राप्त करके फिर परमात्मा[6] को प्रणाम करके निर्भय हो ।

हाथ मे गहा है खग[1] मारवे एक पग, ज्ञान खडग[1]
तनमन आपना समरपन कीना है[2] ॥ हरि के[2]

आगे कर मीच को पडा है डाक रण बीच,
टूक टूक होय के भगाय दल[2] दीना है ॥ कामादिका[2]
खाय लौन स्वामि का हरामखोर कैसे होय,
नामजाद[3] जगत मे जीता पन तीन[4] है । प्रसिद्ध[3] तीनो[4]
'सुन्दर' कहत ऐसा कोऊ एक शूरवीर,
शीश[5] को उतार के सुयश जाय लीना है ॥२॥ अहकार[5]

पाव रोप रहै रण माहि रजपूत कोऊ,
हय[1] गय[2] गाजत जुडत जहा दल है । घोडा[1] हाथी[2]
वाजत भुझार[3] सहनाई सिधू राग पुनि, रण वाजे[3]
सुनत ही कायर की छूट जात कल[4] है ॥ सुख[4]
झलकत वरछी[5] तरछी तरवार[6] वहै, वैराग्य[5] ज्ञान[6]
मार मार करत पडत खलभल[7] है । आसुर गुणो मे[7]
ऐसे युद्ध मे अडिग 'सुन्दर' सुभट सोई
घर माहि शूरमा कहावत सकल है ॥३॥

अशन वसन वहु भूषण सकल अग,
सम्पति विविधि भाति भरा सब घर है ।
श्रवण नगारा सुन छिनक मे छोड जात ।
ऐसे नहि जाने कुछ आगे मोहि मर[1] है ॥ मरण[1]
मन मे उछाह रण माहि टूक टूक होय,
निरभै निशक वाके रच हू न डर है ॥
'सुन्दर' कहत कोऊ देह का महत्व नाहि,
शूरमा के देखियत शीश[2] विन धर है ॥४॥ सत शूर के आपा[2]

जूझवे का चाव जाके ताक ताक करे घाव[1], कामादि के[1]
आगे धरे पाव फिर पीछे न सभार है ।
हाथ लीये हथियार तीक्षण लगाई धार[2], विचार रूप[2]
वार नहि लागे सव पशुन[3] प्रहार है ॥ शत्रु[3] कामादि
ओट नहि राखे कुछ लोट पोट होय जाय,
चोट नहि चूके शीश रिपु का उतार है ।
'सुन्दर' कहत ताहि नैक नहि सोच पोच[4], तुच्छ[4]
ऐसा शूरवीर धीर मीर[5] जाय मर है ॥५॥ नेता[5]
अधिक आजानु[1] वाहु मन मे उछाह कीये, गोडोतक[1]
दीये गज-गाह[2] मुख वरसत नूर है, वखतर[2]

काढै जब करवाल[3] वाल सब ठाडे होय, तलवार[3]
अति ही विकराल पुनि देखत करूर है ।।
नैक न उश्वास लेत फोज मे फिटाइ[4] देत । हटान[4]
खेत नहि छाडे मार करे चकचूर है ।
'मुन्दर' कहत ता की कीरति प्रसिद्ध होय,
सोई शूरवीर धीर स्वामि के हजूर है ।।६।।

ज्ञान का कवच अग काहू से न होय भग,
टोप शीश झलकत परम विवेक है ।। तेज[1] घाडा[2]
तीखे ताजी असवार लीये समसेर[3] सार[4], तलवार[3] सार लोहे की[4]
आगे ही को पाव धरे भागणे[5] की टेक है ।। न भागने की[5]
छूटत वन्दूक वाण बीचौ[6] जहा घमसाण, बीच मे[6]
देखके पिशुन[7] दल मारत अनेक है । कामादि[7]
सुन्दर' कहत लोक माहि ताका जै जै कार,
ऐसा सूरवीर कोऊ कोटिन मे एक है ।।७।।

शूरवीर रिपु का नमूना[1] देख चोट करे, ठाठ[1]
मारे तव ताक कर तलवार तीर से ।
साधु आठो याम बैठा मन ही से युद्ध करे ।
जाके मुख माथा नहि देखिये शरीर से ।।
शूरवीर भूमि पर दौड करे दूर लगे,
साधु शून्य[1] को पकड राखे धर धीर से । मन[1]
'सुन्दर' कहत तहा काहू के न पाव टिके,
साधु का सग्राम है अधिक शूरवीर से ।।८।।

खैच करडी कमाण[1] ज्ञान का लगावे वाण, धनुष[1]
मारा महा वली मन जग जिन राना[2] है । हैरान किया[2]
ताके अगिवाणी[2] पच[3] योधा हू कतल कीय, आज्ञाकारी[2] ज्ञानेइन्द्रिय[3]
और रहा पहा सव अरि हल भाना[5] है ।। नाश किया[5]
ऐसा कोऊ सुभट जगत मे न देखियत,
जाके आगे कालहू भी कप के पराना[6] है । भोगा है[5]
'सुन्दर' कहत ताकी शोभा तिहू लोक माहि,
साधु सा न शूरवीर कोऊ हम जाना है ।।९।।
काम सा प्रवल महा जीते जिन तीनो लोक,
सो तो एक लाधु के विचार आगे हारा है ।

क्रोध सा कराल[1] जाके देखत न धीर धरे, — भयानक[1]
सोउ साधु क्षमा के हथ्यार[2] से विदारा[3] है ।। — हथियार[2] नाश किया[3]
लोभ सा सुभट साधु तोष[4] से गिराइ दिया, — संतोष[4]
मोह सा नृपति साधु ज्ञान से प्रहारा[5] है । — मारा है[5]
'सुन्दर' कहत ऐसा साधु कोऊ शूरवीर,
ताकि ताकि सब हि पिशुन[6] दल मारा ।।१०।। — कामादि[6]

मारे काम क्रोध जिन लोभ मोह पीस डारे,
इन्द्री हू कतल कर किया रजपूता है ।
मारा मद मत्त मन मारा अहंकार मीर[1], — प्रधान[1]
मारे मद मच्छर हु ऐसा रण रूता[2] है ।। — रूपने वाला[2]
मारी आशा तृष्णा सोऊ पापिनि सापिनी दोऊ,
सब को प्रहार निज पद ही पहुत्ता[3] है । — पहूँचा[3]
'सुन्दर' कहत ऐसा साधु कोऊ शूरवीर,
वैरी सब मार के निश्चिन्त होय सूता है ।।११।।

किया जिन मन हाथ[1] इन्द्रिन को सब साथ, — वश[1]
घेर घेर आपने ही नाथ से लगाये हैं ।
और हू अनेक वैरी मारे सब युद्ध कर,
काम क्रोध लोभ मोह खोद[2] के बहाये ।। — हटाये[2]
किये हैं संग्राम जिन दिये है भगाइ दल,
ऐसे महा सुभट सु ग्रन्थन मे गाये हैं ।
'सुन्दर' कहत और शूर यू ही खप गये,
साधु शूरवीर वे ही जगत मे आये[3] है ।।१२।। — सफल हुये[3]

महामत्त हाथी मन राखा है पकड जिन,
अति ही प्रचण्ड जामे बहुत गुमान है ।
काम क्रोध लोभ मोह बाधे चारो[1] पाव पुनि, — मन के[1]
छूटने न पावे नैक प्राण पीलवाने[2] है ।। — महावत[2]
कब हू जो करे जोर सावधान साझ भोर,
सदा एक हाथ मे अकुस गुरु ज्ञान है ।
'सुन्दर' कहत और काहू ने वश[3] होय, — मन[3]
ऐसा कौन शूरवीर साधु के समान है ।।१३।।

इति शूरातन का अंग १९

शारवा त्रिगुन त्रिधा भई
सत रज तम प्रसरत
शब्द स्पर्श जु रूप रस
गंध सहित मिलि पुष्ट
पंच प्रशारवा जानि यो
उप-शारवा सु अनंत
मन बुधि चित अहंकार
अंतहकरन चतुष्ट
अवनि नीर पावक पवन
व्योम सहित मिलि पंच
इन चौवीस हु तत्व कौ
सुख दुख ताकै फल भये
इनहीं कौ विसतार है
जे कछु सकल प्रपंच
वृक्ष अनूपम एक
नाना भाँति अनेक
श्रोत्र त्वचा दृग नासिका
जिव्हा है तिन माँहि
तामै दो पक्षी बसाहि
सदा समीप रहाँहि
ज्ञान सु इंद्रिय पंच ये
भिन्न भिन्न बरता हि
एक भषै फल वृक्ष के
एक कछू नाहि चाहि
वाक्य पाणि अरु चरन पुनि
गुदा उपस्थ जु नाम
जीवातम परमातमा
ये दो पक्षी जान
कर्म सु इंद्रिय पंच ये
अपने अपने काम
सुंदर फल तरु के तजे
एक समान
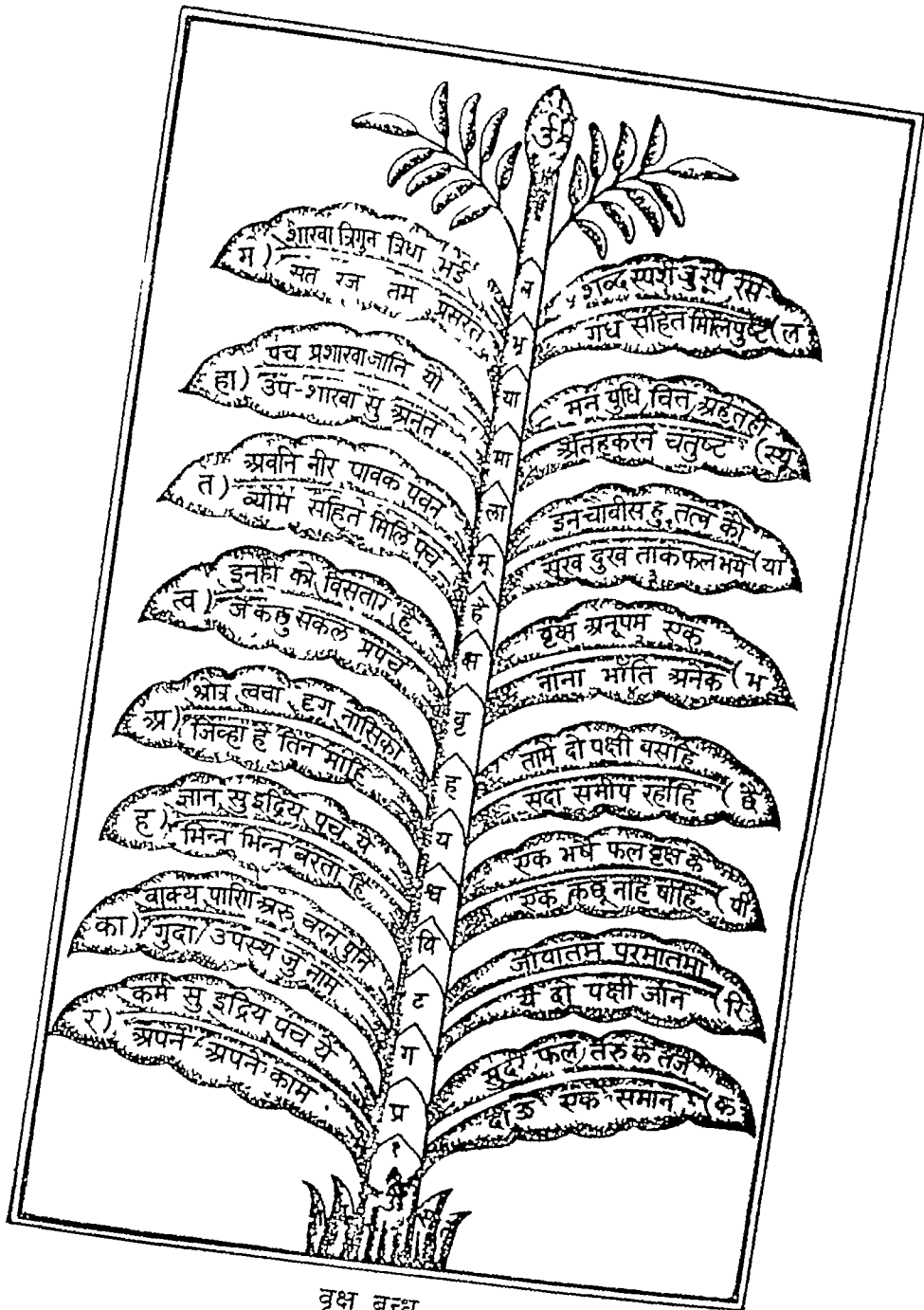
वृक्ष बन्ध

वृक्ष बन्ध (२)

प्रकट विश्व यह वृक्ष है मूला माया मूल ।
महातत्व अहकार करि पीछै भया स्थूल ।। १ ।।
शाखा त्रिगुन त्रिधा भई मत रज तम प्रसरन्त ।
पच प्रशाखा जानियौ उप शाखा सु अनन्त ।। २ ।।
अवनि नीर पावक पवन व्योम महित मिलि पच ।
इनही को विसतार जे कछु सकल प्रपच ।। ३ ।।
श्रोत्र त्वचा दृग नासिका जिह्वा है तिन माहि ।
ज्ञान सु इन्द्रिय पच ये भिन्न भिन्न वरताहि ।। ४ ।।
वाक्य पाणि अरु चरण पुनि गुदा उपस्थ जु नाम ।
कर्म सु इन्द्रिय पच ये अपने अपने काम ।। ५ ।।
शब्द स्पर्श जु रूप रस गध सहित मिलि पुष्ट ।
मन बुधि चित्त अह तहा अतहकरन चतुष्ट ।। ६ ।।
इन चौबीस हु तत्व को वृक्ष अनूपम एक ।
सुख दुख ताके फल भये नाना भाति अनेक ।। ७ ।।
तामे दो पक्षी बसहि सदा समीप रहाहि ।
एक भषे फल वृक्ष के एक कछू नहि षाहि ।। ८ ।।
जीवातम परमातमा ये दो पक्षी जान ।
सुन्दर फल तरु के तजै दोऊ एक समान ।।९।।१०वा।।

पढने की विधि

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हू शूद्र मलेछ चण्डाल हि पार लघावै[2] ।　　पार करे[2]
'सुन्दर' बार कछू नहिं लागत या नर देह अभै पद पावै ॥८॥
ज्यो हम खाहि पिवे अरु ओढहि तैमेहि ये सब लोग बखाने[1] ।　　मतो के लिय[1]
ज्यो जल मे शशि के प्रतिबिम्ब हि आप समा जल जन्तु प्रवाने ॥
ज्यो खग छाह धरा पर दीसत 'सुन्दर' पक्षि उडे असमाने।
त्यो शठ देहन के कृत देखत सतन की गति क्यो कोउ जाने ॥९॥
जो खपरा[1] कर ले घर डोलत मागत भीखहि तो नहि लाजे ।
जो सुख सेज पटबर[2] अबर[3] लावत चन्दन तो अति राजे[4] ॥
जो कोउ आय कहै मुख से कुछ जानत ताहि बयार[5] हि बाजे ।
'सुन्दर' सशय दूर भया सब जो कुछ साधु करे सोइ छाजे[6] ॥१०॥

(१०) खप्पर[1] रेशमी[2] वस्त्र[3] शोभादे[4] वायु[5] शोभादे[6]

कोउक निंदत कोउक वदत कोउक आयकै देत है भक्षन[1] ।　　भोजन[1]
कोउक आय लगावत चन्दन कोउक डारत धूरि ततक्षन[2] ॥　　उसी क्षण[2]
कोउ कहै यह मूरख दीसत कोउ कहै यह आहि विचक्षन[3] ।　　चतुर[3]
'सुन्दर' काहू से राग न द्वेष सु ये सब जान हु साधु के लक्षन ॥११॥
तात मिले पुनि मात मिले सुत भ्राता मिले युवती सुखदाई ।
राज मिले गज बाज[1] मिले सब साज मिले मन बछित पाई ॥　　घोडा[1]
लोक मिले सुरलोक मिले विधि लोक मिले वइकुण्ठ हु जाई ।
'सुन्दर' और मिले सब ही सुख दुर्लभ सत समागम भाई ॥१२॥

मनहर—
देह हू भये से कहा इन्द्र हू भये से कहा,
विधि हू के लोक से बहुर आइयतु[1] है ।　　आता है[1]
मानुष भये से कहा भूपति भये कहा,
द्विजहू भये मे कहा पार जाइयतु[2] है ॥　　जाता है[2]
पशु हू भये से कहा पक्षी हू भये से कहा,
पन्नग[3] भये से कहो क्यो अधाइयतु[4] है ।　　नाग[3] तृप्त[4]
छूटवे को सुन्दर' उपाय एक साधु सग,
जिन की कृपा से अति सुख पाइयतु[5] हैं ॥१३॥　　ब्रह्मानद पाता है[5]

इन्द्रानी श्रृ गार कर चन्दन लगाया अग,
वाहि देख इन्द्र अति काम वश भया है ।
शूकरी हू कर्दम[1] के चहले[2] मे लोट कर,　　कीचड[1] स्थान[2]
आगे जाय शूकर[3] का मन हर लिया है ॥　　सुवर[3]
जैसा सुख शूकर का तैसा सुख मघवा[4] का,　　इन्द्र[4]
तैसा सुख नर पशु पक्षीन को दिया है ।

'सुन्दर' कहत जाके भया ब्रह्मानन्द सुख,
सोई साधु जगत मे जन्म जीत गया है ॥१४॥

धूलि जैसा धन जाके शूलि से ससार सुख,
भूलि जैसा भाग्य देखे अत की सी यारी[1] है। मुरदे की सी प्रीति[1]
पाप जैसी प्रभुताई शाप[2] जैसा सनमान, स्राप[2]
बडाई हू बीछनी सी नागनी[3] सी नारी है॥ भोग दृष्टि से[2]
अग्नि जैसा इन्द्र लोक विघ्न[3] जैसा विधि लोक, मुक्ति इच्छुक को[3]
कीरति कलक जैसी सिद्धि सीट[4] डारी है। त्याग दी[4]
वासना न कोउ वाकी ऐसी मति सदा जाकी,
'सुन्दर' कहत ताहि वन्दना हमारी है॥१५॥

काम हीन क्रोध जाके लोभ ही न मोह ताके,
मद ही न मच्छर[1] न कोउ न विकारा है। मत्सर = ईर्षा[1]
दुख ही न सुख माने पाप ही न पुन्य जाने,
हरष न शोक आने[2] देह ही से न्यारा है॥ हृदय मे[1]
निन्दा न प्रशसा करे राग हीन दोष धरे,
लेन ही न देन जाके कुछ न पसारा है।
'सुन्दर' कहत ताकी अगम अगाध गति,
ऐसा कोउ साधु सो तो रामजी का प्यारा है॥१६॥

आठो याम[1] यम नेम आठो याम रहै प्रेम, पहर[1]
आठो याम योग यज्ञ किया बहु दान जू।
आठो याम जप तप आठो याम लिया व्रत,
आठो याम तीरथ मे करत है न्हान जू॥
आठो याम पूजा विधि आठो याम आरती हू,
आठो याम दडवत समरण[2] ध्यान जू। स्मरण[2]
'सुन्दर' कहत तिन किया सब आठो याम,
सोई साधु जाके उर[3] एक भगवान जू॥१७॥ हृदय मे[3]

जैसे आरसी[1] का मैल काटत सिकलकर[2], दर्पण[1] सिकलीगर[2]
मुख मे न फेर कोऊ वहै वाका[3] पोत[4] है। मुखका[3] पूर्व सा रूप[4]
जमे वैद्य नैन मे सलाका मेलि शुद्ध करे,
पटल[5] गये से तहा ज्यो की त्यो ही जोत[6] है॥ रोग[5] ज्योत[6]
जैसे वायु बादल वखेर के उडाय देत,
रवि तो आकाश माहि सदा ही उदोत है।

'सुन्दर' कहत भ्रम क्षण मे विलाय जात,
साधु ही के सग से स्वरूप ज्ञान होत है ॥१८॥

पहले दर्पण फोलाद के बनते थे उन पर मोरचा = मैल आ जाता था उसको सिक्लीगर साफ करते थे। यही १८ वे मनहर प्रथम पाद मे बताया है।

मृतक दादूर[1] जीव सकल जिवाये जिन, — वर्षा से मेंढक[1]
बरषत[2] वाणी मुख मेघ की सी धार को। — नर वाणी से[2]
देत उपदेश कोऊ स्वारथ न लव लेश[3], — किंचित[3]
निशि दिन करत है ब्रह्म ही विचार को॥
और हू सन्देहन[4] मिटावत निमेष माहिं, — सशयो को[4]
सूरज मिटावत है जैसे अन्धकार को।
'सुन्दर' कहत हस[5] वासी सुख[6]सागर के, — परम हस सत[5] ब्रह्म[6]
सतजन आये हैं सु पर उपकारको ॥१९॥

हीरा ही न लाल हीन पारस न चिन्तामणि,
और हू अनेक नग कहो कहा कीजिये।
कामधेनु सुरतरु चन्दन नदी समूद्र,
नौका हू जहाज वैठ कबहूक छीजिये[1]॥ — नाश[1]
पृथ्वी अप[2] तेज[3] वायु व्योम लो सकल जड, — जल[2] अग्नि[3]
चन्द सूर शीतल तपत गुण लीजिये।
'सुन्दर' विचार हम सोधि सब देखे लोक,
सन्तन के सम कहो और कहा दीजिये ॥२०॥

जिन तन मन प्राण दीना सब मेरे हेत[1], — लिये[1]
और हू ममत्व बुद्धि आपनी उठाई[2] है। — हृदय से[2]
जागत हू सोवत हू गावत है मेरे गुण,
मेरा ही भजन ध्यान दूसरी न काई[3] है॥ — कोई[3] बात
तिनके मैं पीछे लगा फिरत हो निशिदिन,
'सुन्दर' कहत मेरी उन से बडाई।
वे है मेरे प्रिय मैं हौ उनके आधीन सदा,
सन्तन की महिमा तो श्रीमुख[4] सुनाई है ॥२१॥ — भगवान ने[4]

प्रथम सु यश लेत शील हू सतोष लेत,
क्षमा दया धर्म लेत पाप से डरत हैं।
इन्द्रिन को घेर[1] लेत मनहू को फेर[2] लेत, — जीतते[1] हरि की ओर[2]
योग की युगति लेत ध्यान ले धरत[3] हैं॥ — हृदय मे[3]

गुरु का वचन लेत हरि जी का नाम लेत,
आतामा को सोध[4] लेत भौ जल[5] तरत हैं। खोज[4] विषय[5]
'सुन्दर' कहत जग[6] सन्त कुछ लेत नाहि,
सन्त जन निश दिन लबो ही करत है ।।२२।।

६ जगत के लोग कहते सत कुछ नही लेते उनका कहना ठीक नही, सत तो निश दिन लेते ही रहते हैं।

साचा उपदेश देत भली भली सीख देत,
समता सु बुद्धि देत कुमति हरत है।
मारग दिखाय देत भाव हू भगति देत,
प्रेम की प्रतीति देत अभरा[1] भरत है।। विना भरा[1]
ज्ञान देत ध्यान देत आतमा विचार देत,
ब्रह्म को वताय देत ब्रह्म मे चरत[2] है। विचरत[2]
'सुन्दर' कहत जग[3] सन्त कुछ देत नाहि,
सन्त जन निश दिन देवो ही करत है ।।२३।।

३ जगत के लोग कहते हैं सत कुछ नही देते यह उनका कथन उचित नही है सत तो सदा २३ मे कथित सब देते ही रहते हैं।

जगत व्यवहार सब देखत है ऊपर का,
अन्तहकरण की न नैक[1] पहचान है। किंचित भी[1]
छाजन[2] के भोजन के हलन चलन कुछ, वस्त्र[2]
और कोऊ क्रिया कै तो सोइबा[3]वखान है।। सोना[3]
आपने ही गुणन आरोपत[4] अज्ञानी नर, लगाकर[4]
'सुन्दर' कहत तातें निन्दा ही को नाठ[5] है। करते[5]
भाव मे तो अन्तर है रात अरु दिन का सा,
साधु की परीक्षा कोऊ कैसे कर जान है ।।२४।।

कूप मे का मेंडुका तो कूप को सराहत[1] है, वडाई करता है[1]
राजहस से कहै किताक तेरा सर है।
मसका[2] कहत मेरी सरभर[3] कौन उडे, मच्छर[2] बराबर[3]
मेरे आगे गरुड की कितीयक जर[4] है।। जड[4]
गुबरेडा[5] गोली को लुढाइ[6] कर माने मोद, मल की गोलीको[5] गुडाकर[6]
मधुप[7] को निन्दत सुगन्ध जाका घर है। भवरा[7]
आपनी न जाने गति सन्तन का नाम धरे,
'सुन्दर' कहत देखो ऐसा मूढ नर है ।।२५।।

कोऊ साधु भजनीक होता लय लीन अति,
कबहू प्रारब्ध कर्म धका आय दिया है।
जैसे कोऊ मारग मे चलते आखुट[1] पडे, टोकर खाकर[1]
फेरि कर उठे तब वही पन्थ लिया ॥
जैसे चन्द्रमा की पुनि कला क्षीण होय गई,
'सुन्दर' सकल लोक[2] द्वितीया को नया है। कहै[2]
देव का देवातन[3] गया तो कहा भया वीर, देवपना[3]
पीतल[4] का मोल सो तो नाहि कुछ गया है ॥२६॥

[4]जैसे पीतल का देवता बना रखा हो फिर उसे देवता न माने तो पीतल का मूल्य तो उसका नही गया।

वही दगाबाज वही कुष्टी जु कलक भरा,
वही महा पापी वाके नख शिख कीच है।
वही गुरु द्रोही गो ब्राह्मण को हननहार[1], मारने वाला[1]
वही आतमा का घाती हिसा वाकै बीच है ॥
वही अघ[2] का समुद्र वही अघ का पहाड, पाप[2]
'सुन्दर' कहत वाकी बुरी भाति मीच है।
वही है मलेछ वही चाण्डाल बुरे से बुरा,
सन्तन की निन्दा करे सो तो महा नीच है ॥२७॥

पड है वज्राग[1] ताके ऊपर आचानचक, वज्र सम अग्नि[1]
धूलि उड जाय कहु ठौहर न पाय है।
पीछे कोऊ युग महा नरक मे पडे जाय,
ऊपर से यम हू की मार वहु खाय है ॥
ताके पीछे भूत प्रेत थावर[1] जगम[2] योनि, वृक्षादि[1] पशुआदि[2]
सहेगा सकट तब पीछे पछताय है।
'सुन्दर' कहत और भुगते अनन्त दुख,
सन्तन को निन्दे[3]ताका सत्यानाश जाय है ॥२८॥ निन्दा करे[3]

वाहि के भगति भाव उपज हैं अनायास[1], परिश्रम बिनाही[1]
जाकी मति सन्तन से सदा अनुरागी है।
अति सुख पावे ताके दुख सब दूर होय,
और हू काहू की जिन निन्दा मुख[2] त्यागी है ॥ मुख से[2]
ससार की पासि काट पाय है परम पद,
सतसग ही मे जाके ऐसी मति जागी[3] है। उत्पन्न हुई[3]

'सुन्दर' कहत ताका तुरत कल्याण होय,
सन्तन के गुण गहै सोई बडभागी है ।।२९।।
योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रतादि दान,
साधन सकल नहिं याकी सरभरे[1] है । बराबर[1]
और देवी देवता उपासना अनेक भाति,
शक सब दूर कर तिन से न डरे है ।।
सब ही के शिर पर पाव दे मुकत होय,
'सुन्दर' कहत सो तो जनमे न मरे है ।
मन वच काय कर अन्तर[2]न राखे कुछ, कपट[2]
सतन की सेवा करे सोई निसतरे[3] है ।।३०।। मुक्त होता है[3]

इति साधु का अग २०

अथ भक्ति ज्ञान मिश्रित का अग २१

इन्दव—बैठत रामहि ऊठत रामहि बोलत रामहि राम रहा है ।
जीमत राम हि पीवत राम हि धोमत[1]राम हि राम गहा है ।। बीच मे[1]
जागत रामहि सोवत रामहि जोवत[2]रामहि राम लहा है । देखते[2]
देत हु रामहि लेतहु रामहि 'सुन्दर' राम हि राम कहा है ।।१।।

श्रोत्र हु राम हि नेत्र हु राम हि वक्त्र[1]हु राम हि राम हि गाजे[2] । मुख[1] बोल[2]
शीश हु राम हि हाथ हु राम हि पाव हु राम हि राम हि साजे[2] । माथ[2]
पेट हु राम हि पीठ हु राम हि रोम हु राम हि राम हि बाजे[3] । ध्वनि करे[3]
अन्तर राम निरन्तर राम हि 'सुन्दर' राम हि राम विराजे ।।२।।

भूमि हु राम हि आप[1]हु राम हि तेज[2]हु राम हि वायु हु रामै । जल[1] अग्नि[2]
व्योम हु राम हि चन्द हु राम हि सूर हु राम हि शीत व[3] घामै ।। और[3]
आदि हु राम हि अन्त हु राम हि मध्य हु राम हि पु स[4] न वामै[5] । पुरुष[4] स्त्री[5]
आज हु राम हि कालिहु राम हि 'सुन्दर' राम हि म्हामहि[6]थामै ।।३।।
हमारे[6] तुम्हारे[6] सब मे ही आत्म रूप से राम है ।

देख हु राम अदेख[1]हु राम हि लेख हु राम अलेखहु[2] रामै ।
एक हु राम अनेक हु राम हि शेष[3] हु राम अशेष[4] तामै ।।
मौन हु राम अमौन हु राम हि गौन[5] हु राम ही भौन[6] हु ठामै[7] ।
बाहर राम हि भीतर राम हि सुन्दर' राम हि है जग जामै[8] ।।४।।
(४) न दीखे[1] लिखा न जावे[2] वाकी[3] सपूर्ण[4] गमन[5] भवन[6] स्थान[7] जिसमे[8]

दूर हु राम नजीक हु राम हि देश हु राम प्रदेश हु रामै ।
पूरब राम हि पश्चिम राम हि दक्षिण राम हि उत्तर धामै ।।

आगे हु राम हि पीछे हु राम हि व्यापक राम हि हैं वन ग्रामैं ।।
'सुन्दर' राम दशो दिश पूरण स्वर्ग हु राम पताल हु तामैं ।।५।।
आप हु राम उपावत राम हि भजन[1] राम सवारन[2] रामैं ।
दृष्टि हु राम अदृष्टि हु राम हि इष्ट हु राम करे सब कामैं ।।
वर्णहु[3] राम अवर्ण हु रामहि रक्त न पीत न श्वेत न श्यामैं ।
शून्य[4] हु राम अशून्य[5] हु राम हि 'सुन्दर' राम हि नाम अनामैं[6] ।।६।।
(६) नाश[1] बनावे[2] रग[3] निराकार[4] व्यापक[5] अनाम[6]

अथ विपर्यय शब्द का अग २२

वीरसवईया—श्रवन हु देख सुने पुनि नैनहु, जिह्वा सू घ नासिका बोल ।
गुदा खाय इन्द्रिय जल पीवे, बिन ही हाथ सुमेर हि तोल ।।
ऊचे पाय मू ड नीचे को, विचरत तीन लोक मे डोल ।
'सुन्दरदास' कहै सुन ज्ञानी, भली भाति या अर्थ हि खोल ।।१।।

जिसमे शब्द तो विपरीत अर्थ वाले प्रतीत हो किन्तु विचार से अर्थ सुन्दर हो ऐसे शब्दो के प्रसग को ही विपर्यय शब्द का अग कहा है—

श्रवण हु देख—अन्त करण की वृत्ति रूप श्रवणो से शब्दार्थ का विचार करके उन मे स्थिति अर्थ का निश्चय करना ही, श्रवणो से देखना है ।

सुने पुनि नैन हु—और अन्त करण की विचार वृत्ति रूप नेत्र से कार्य अकार्य का निर्णय करना ही नैनो से सुनना है ।

जिह्वा सू घ—अन्त करण की वृत्ति रूप जिह्वा से राम नाम रटने का जो आनन्द है वह मधुरादि षट रसो से विलक्षण है उसका स्वाद लेने वाली वृत्ति हृदय कमल की विषय वासना रहित स्थिति की सुगध को सू घती है अर्थात् अनुभव करती है, यही जिह्वा का सू घना है ।

नासिका बोल—नासिका से श्वासोश्वास के साथ ॐ ध्वनि करना ही नासिका से बोलना है । इसे ही सगर्भ प्राणायाम भी कहते हैं ।

गुदाखाय—गुदा स्थान से अपान वायु को ऊचे खेंचकर मूलाधार चक्र मे स्थिर करना ही गुदा से खाना है । अथवा वस्ति क्रिया से जल आदि को गुदा द्वार से ऊपर खेंच कर चढाना ही गुदा से खाना है ।

इन्द्री जल पीवे—भजनादि साधन और सयमता मे मूत्रेन्द्री के विकारो को जीतना ही इन्द्री का जल पीना है । अथवा वज्रोली मुद्रा से मूत्रेन्द्री से जल खेंचना ही इन्द्री का जल पीना है ।

बिनही हाथ सुमेरु हि तोल—स्थूल शरीर के हाथो बिना ही विवेक विचार से जीवत्व अहकार को तोलना=समझना कि जितने दु.ख होते हैं

वे सब एक अहकार मे ही होते हैं। अहकार हीन आत्म स्थिति मे कोई भी दु ख नही होता। ऐसा समझना ही विना हाथो से सुमेरु को तोलना है।

ऊंचे पाइ मूंड नीचे को—शीर्षासन मे पैर ऊपर को और मस्तक नीचे ही होता है इसी से ऊपर पैर मस्तक नीचे को कहा है। अथवा ब्रह्मरूप देश मे जाने योग्य ज्ञान, वैराग्य रूप पैर ऊचे=अति श्रेष्ट होते हैं तब अहकार रूप शिर नीचे अर्थात् अति कम हो जाता है। अथवा ऊचे विचारो और साधना से सर्व से ऊचे परब्रह्म को 'पाइ' प्राप्त करके निर्द्वन्द्व होता है तब सब के मस्तक उस के आगे नीचे हो जाते हैं अर्थात् देवादि सब उसे मस्तक नमाकर प्रणाम करते हैं।

विचरत तीन लोक मे डोल—जब ऊचे पाइ मूड नीचे के अर्थ के समान स्थिति हो जाती है तब वह महात्मा नारदजी के समान तीनो लोको मे रोक टोक रहित इच्छानुसार विचरता है उससे किसी को भी सकोच आदि नही होते।

'सुन्दरदास' कहै सुन ज्ञानी, भली भाति या अर्थ हि खोला ॥१॥

परमपरा से सतो से सुनते आये हैं कि एक अवधू नामक साधु ने सम्पूर्ण दादूवाणी अपने हाथ से लिखी और लिखते समय दादू शब्द के स्थान मे सब ठोर अवधू लिख दिया। उसको जो उस के पास जाता था उसे सुनाकर कहता था यह मेरी रचित वाणी है, कोई दादू वाणी पढा हुआ सुनकर कहता ये तो दादू वाणी है तब वह कहता नही मेरी रचित है। यह बात सुन्दरदासजी के पास भी पहुच गई तब सुन्दरदासजी उसके पास गये उन को भी सुनाकर कहा यह मेरी वाणी हैं, उनने कहा यह तो ज्ञानी सत दादूजी की है। उसने कहा मैं भी ज्ञानी हू। तब उक्त सवइया रचके सुनाकर कहा तुम ज्ञानी हो तो भली भाति इसका अर्थ खोल कर सुनाओ। उसके कुछ भी समझ मे नही आया तब उस से वह दादूवाणी छीन लाये, उसमे अवधू शब्द कही भूल मे रह गया सो अब भी दादूवाणी मे कही मिल जाता है उसका अर्थ सत अब अवधूत करते हैं। उक्त प्रकार उक्त सवइया रचा गया था, यह मुझे दादूवाणी पढाते समय जब अवधू शब्द आया तो पढाने वाले रामदासजी दूबल धनिया वृद्ध सत जी ने सुनाया था, सो परंपरा की रक्षा के लिये यहा लिखना उचित समझकर लिखा गया है।

अन्धा तीन लोक को देखे, बहिरा सुने बहुत विधि नाद।
नकटा वास कमल की लेवे गूगा करे बहुत सवाद॥

टूटा पकड उठावे पर्वत, पगुल करे नृत्य अहलाद।
जो कोउ याका अर्थ विचारे 'सुन्दर' सोई पावे स्वाद ॥२॥

अन्धा तीन लोक को देखे—मैं आत्मा हू इस निश्चय से अहता और ममता रूप दो नेत्रो से रहित आन्तरदृष्टि ज्ञानी सत जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिरूप तीनो लोको को ब्रह्म स्वरूप ही देखे, यही अन्धे का तीन लोको को देखना है। अथवा सामारी व्यवहारिक दृष्टि से रहित ज्ञानी स्वर्गादिक तीनो लोको को असार जान कर उनमे व्यापक ब्रह्म को ही देखे, सोई अधा का तीनो लोको का देखना है।

बहिरा सुने बहुत विधि नाद- सासारिक वाह्य वाद विवाद से रहित निश्चल मन आन्तरवृत्ति रूप श्रवण से दश प्रकार का अनाहत नाद=शब्द सुने सोई वहिरे का वहुत विधि नाद सुनना है। अथवा बाहिर के कानो से बिना ही ध्यान और सविकल्प समाधि मे वहुत प्रकार के शब्द सुनना ही बहिरे का बहुत विधि नाद सुनना है।

नकटा बास कमल की लेवे- लोकलाज, कुल की कानि रूप नाक मे रहित निशक ज्ञानी रूप नकटा ब्रह्म कमल की ब्रह्मानन्द रूप बास लेता है= प्राप्त करता है।

गूंगा करे बहुत संवाद—मिथ्या जगत के सवन्धी वचनो को नही बोलने वाला और उपनिषद् आदि के द्वारा बहुत प्रकार से ब्रह्म का निरूपण करना रूप सवाद करने वाला ज्ञानी ही यहा गूगा कहा गया है।

टूटा पकड़ उठावे पर्वत—जगत सबन्धी कायक वाचिक, मानसिक व्यर्थ क्रिया रूप हाथो से रहित ज्ञानी रूप टूटा अपने परामार्थ ज्ञान विचार से जिज्ञासुओ के हृदय से पाप रूप पर्वत को उठावे अर्थात् नष्ट करे, यही टूटा का पर्वत उठाना है।

पगुल करे नृत्य अहलाद—प्राय चलना रजो गुण आदि गुणो से ही होता है। अत: गुणो के विकार और चपलता रूप चरणो की शक्ति से रहित पागुला अर्थात् गुणातीत सत बुद्धि वृत्ति के ब्रह्म विचार रूप नृत्य से अहलाद=अत्यन्त आनन्द को प्राप्त करता है, यही यहा पगुल का नृत्य करना है।

जो कोउ याका अर्थ विचारे, 'सुन्दर' सोई पावे स्वाद ॥२॥

सुन्दरदास जी कहते है जो कोई जिज्ञासु इस सवइया का अर्थ अपनी शुद्ध बुद्धि से विचारेगा वह इस का विचार रूप स्वाद=आनन्द प्राप्त करके जीवन्मुक्त होकर धरातल पर निशक विचरता हुआ प्रारब्ध समाप्ति पर देह को त्यागकर ब्रह्म मे लीन हो जायगा।

कु जर को कीडी गिल बैठी, सिंह हि खाय अघना स्याल ।
मछली अग्नि माहि सुख पाया, जल मे हुती बहुत बेहाल ।।
पगु चढा पर्वत के ऊपर, मृतक हि देख डराना काल ।
जाको अनुभव होय सु जाने, 'सुन्दर' ऐसा उलटा ख्याल ।।३।।

कु जर को कीड़ी गिल बैठी—मदोन्मत्त हाथी के समान कामरूप हाथी है, उसको वस्तु विचार (जिन नर नारी को परस्पर देखने से काम मन मे प्रकट होता है वे नर, नारी के शरीर तो विचार करने से गधी-मास, रक्त मल, मूत्र आदि वस्तुओ से बने हैं उनमे सुन्दरता भ्रम से भासती है।) ऐसा वस्तु विचार करना रूप बुद्धि वृत्ति कीड़ी है। इस विचार रूप वैराग्य से काम को जीत लेती है। यही कीडी का हाथी को निगलना है।

सिंह हि खाय अघना स्याल—क्रोध रूप सिंह को सतोष से तृप्त क्षमा से प्रबल हृदय ने क्रोध को नष्ट कर दिया। अथवा बहुत बलवान जन्म-मरण रूप भय को देने वाला और ससार मे जकड कर रखने वाला सशय रूप सिंह है। पहले कर्माधीन अति कायर स्याल=गीदड के समान जीव था। अब गुरु, सत, शास्त्र, उपदेश, भजन ध्यानादि रूप पुरुषार्थ कर आत्मज्ञान को प्राप्त करके प्रबल हो गया, तब जीव रूप स्याल सशय सिंह को खाकर परम तृप्ति को प्राप्त हो गया। सबलको निबल ने जीता यही आश्चर्य और विपर्यय है।

मछली अग्नि माहि सुख पाया—बुद्धि रूप मछली विषयाशा रूप जल मे बहुत दुख पाती रही किन्तु अब ज्ञान रूप अग्नि मे आकर बहुत सुख अर्थात ब्रह्मानन्द प्राप्त किया है।

जल मे हुती बहुत बेहाल - जल की बूद से उत्पन्न शरीर तथा विषय जल मे और उसके विकारो से बहुत बेहाल=दुखी थी, सो अब सर्व दुखो और सचित कर्मों का दाहक ब्रह्मज्ञानाग्नि को प्राप्त करके अत्यधिक ब्रह्मानन्द को प्राप्त किया है।

पगु चढा पर्वत के ऊपर—चलना हिलना आदि क्रिया कामना से होती है, जिसको स्वर्गादि लोको मे तथा इस लोक मे गमन और आगम की कामना नही है, वही निश्चल बुद्धि वैराग्यवान् मुमुक्षु पगु ही अति ऊचे अहकार रूप पर्वत पर चढा अर्थात् अहकारको जीत कर स्वरूप आत्मा मे स्थित हुआ है।

मृतक हि देख डराना काल - जैसे मृतक शरीर को सुख, दुख, राग-द्वेषादि द्वन्द्व नही व्यापते, वैसे ही जीवित को भी नही व्यापे ऐसा सत ही

मृतक है, उसे ही जीवितमृतक और जीवन्मुक्त भी कहते हैं। उसको देखकर काल भी डरता है। वह ब्रह्मज्ञानी होने से ब्रह्मरूप है। श्रुति भी कहती है—"परमात्मा के भय से मृत्यु दौडता है।" शका इस विपर्यय वाणी का अर्थ कौन जाने, समाधान"
जाको अनुभव होय सु जाने, सुन्दर ऐसा उलटा-ख्याल ॥३॥

जिसको अनुभव होगा वह अज्ञानी जनो की दृष्टि मे विपरीत और आश्चर्य जनक उलटे ख्याल (शब्दो) के विषय को यथार्थ रूप से जानेगा।

बुंद हि माहि समुद्र समाना, राई माहि समाना मेर।
पानी माहिं तु विका बूडी, पाहन तिरत न लागी वेर॥
तीन लोक मे भया तमासा, सूरज किया सकल अधेर।
मूरख होय सु अर्थहि पावे, 'सुन्दर' कहै शब्द मे फेर॥

बुंद हि मांहि समुद्र समाना—जल बूंद रूप काया मे व्यापक ब्रह्म-रूप समुद्र समाया अथवा भ्राति ज्ञान से भिन्न प्रतीत होने वाले जीवरूप बूंद मे ज्ञान होने पर मैं ब्रह्म हू ऐसी भावनरूप से ब्रह्मरूप समुद्र समाया= एक भाव को प्राप्त हो गया।

राई माँहि समाना मेर—अति सूक्ष्म भक्ति रूप राईमे सकल्प विकल रूप महान विस्तार वाला मन रूप मेर=पर्वत सर्व सकल्पादि को त्यागकर पराभक्ति मे विलीन हो गया। अथवा गुरुज्ञान द्वारा प्राप्त मैं ब्रह्म हू ऐसी सूक्ष्म वृत्ति रूप राई मे शरीर शिखर वाला अज्ञान रूप मेरु समाना, निश्चय रूप से अभाव को प्राप्त हो गया।

पानी माहि तुंबिका बूडी—जो बुद्धि रूप तु विका पहले विषय रूप जल पर तैरती थी वही अब प्रभु प्रेम रूप जल मे बूड=डूब गई अर्थात् निमग्न हो गई। अथवा नाना विकारो से युक्त महान् कडवी काया रूप तु विका सत्सगादि द्वारा परम शुद्ध होने से रोम रोम मे प्रभु प्रेम का प्रवाह चलने लगा, इससे प्रभु प्रेम मे डूब गई अर्थात् निमग्न हो गई।

पाहन तिरत न लगी वेर—अभक्त का हृदय अति कठोर पाहन=पत्थर के समान होता है किन्तु सत्सगादि द्वारा हृदय शुद्ध होकर प्रभु प्रेम प्राप्त होने पर कोमलता आकर कठोरता से तिरने मे कुछ भी वेर=वार नही लगी।

तीन लोक मे भया तमासा—तीनो लोको मे एक वडा तमासा= आश्चार्य हुआ कि।

सूरज किया सकल अंधेर—ज्ञान रूप सूर्य ने सब का अभाव रूप निश्चय किया वही अधेरा है। जब 'अह ब्रह्मास्मि' निश्चय रूप तत्त्व ज्ञान होता है तब सर्व जगत का अभाव होकर एक ब्रह्मरूप ही प्रतीत होता है, वह ज्ञान रूप ही है अत. भिन्न कुछ भी नही रहता।

मूरख होय सु अर्थ हि पावे—ज्ञानी ससार व्यवहार से विमुख ही होता है, इस से सासारिक व्यवहार मे मूर्ख ही होगा। इस से ज्ञानी रूप मूर्ख ही उक्त अर्थ को प्राप्त करेगा अन्य नही। 'सुन्दर' कहै शब्द मे फेर ॥४॥ सुन्दरदासजी कहते हैं उक्त सवइया के शब्दो मे ही फेर है अर्थ मे नही है।

मछली बुगला को गह खाया, मूसे खाया कालासाप।
सूवे पकड बिलइया खाई, ताके मुये गया सताप ॥
बेटी अपनी मा गह खाई, बेटे अपना खाय बाप।
'सुन्दर' कहै सुनहु रे सतहु, तिनको कोउ न लागा पाप ॥५॥

मछली बुगला को गह खाया—निष्काम उपासना युक्त शुद्ध बुद्धि रूप मछली ने अपने को विक्षेप देने वाले दभ रूप बगले को दभ रहित विचार बल से पकड कर खाया अर्थात् दभ को हृदय से सर्वथा हटा दिया।

मूसे खाया काला साप—पाप रूप वस्त्रो को कतरने वाले शुद्ध मन रूप मूसा ने शुद्ध विचार रूप बल से अपने विरोधी सशय रूप सर्प को खाया अर्थात नष्ट किया।

सूवे पकड़ बिलइया खाई—जिसके विवेक रूप चू च है, शम और दम दो पैर हैं, उपरति और तितिक्षादो पाख है, श्रद्धा और समाधान दो नेत्र हैं, वैराग्य रूप पेट है, मुमुक्षुता रूप पू छ है, ऐसे अन्त.करण रूप सूवे ने इस लोक और परलोक की इच्छा रूप बिलाई अपने बोध बल से पकड के खाई अर्थात् हृदय से सर्वथा हटा दी।

ताके मुये गया संताप—उक्त बिलाई के मरने से ज्ञान के प्रति बन्धक ससार के सर्व क्लेश रूप सताप नष्ट हो गये। इच्छा=आशा से रहित के सुख दुख समान ही हो जाते हैं।

बेटी अपनी मां गह खाई—सासारिक वासना रहित बुद्धि रूप बेटी ने अपने को उत्पन्न करने वाली माया रूप मा को ब्रह्म विचार द्वारा पकड कर खाई अर्थात् हृदय से हटा दिया। अथवा अन्त करण वृत्ति रूप परिणाम को प्राप्त हुई अविद्या उससे ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति होती है इससे अविद्या रूप मा को ब्रह्मविद्या रूप बेटी ने खाई अर्थात् ज्ञान बल से पकड़ कर नाश किया।

बेटे अपना खाया बाप—जिस सूक्ष्म शरीर से ज्ञान उत्पन्न होता है उसी सूक्ष्म शरीर रूप वाप को ज्ञान रूप वेटे ने खाया अर्थात् नष्ट किया। ज्ञान होने पर स्थूल शरीर के साथ सूक्ष्म शरीर भी नष्ट हो जाता है, यह शास्त्र मे प्रसिद्ध है। अथवा निर्विकल्प अभ्यास से मन का निग्रह होता है, उस से मन की अनन्त वासना नष्ट होती है, ऐसे वासना क्षय रूप ज्ञान रूप वेटे ने मन रूप अपने बाप को खाया अर्थात् मन का सासारिक मनन नष्ट कर दिया। ज्ञान मन से ही होता है।

'सुन्दर' कहै सुनहु रे सत हु, तिन को कोउ न लागा पाप ।।५।।

सुन्दरदासजी कहते—हैं हे सतो ! मछली ने बगला खाया, मूसे ने काला साप खाया, सूवे ने विलाई खाई, वेटी ने अपनी माता खाई और वेटे ने अपना वाप खाया तो भी उन खाने मालो को कोई पाप नही लगा। उक्त सवइया का अर्थ विचार ने से आनन्दरूप पुन्य ही होता है।

देव माहि से देवल प्रकटा, देवल माहि से प्रकटा देव।
शिष्य गुरु हि उपदेशन लागा, राजा करे रक की सेव।।
वध्या पुत्र पगु इक जाया, ताको घर खोवन की टेव।
'सुन्दर' कहै सु पण्डित ज्ञाता, जो कोउ याका जाने भेव ।।६।।

देव माहि से देवल प्रकटा—ईश्वररूप देव मे से ही ससार व शरीर रूप देवल (मंदिर) प्रकटा अर्थात मैं एक से बहुत हो जाऊ इस ईश्वर वचन से उक्त देवल प्रकट हुआ।

देवल मांहि से प्रकटा देव—ससार व शरीर रूप देवल मे से ही गुरु, शास्त्र, सतो के उपदेश से अन्त करण मे आत्मा साक्षत रूप देव प्रकट हुआ और ससार मे व्यापक रूप से प्रतीति रूप से ब्रह्म प्रकट हुआ।

शिष्य गुरु हि उपदेशन लागा—अन्त करण सहित चेतन जीव रूप शिष्य अज्ञान काल मे मन रूप गुरु की शिक्षा मे चलता था किन्तु आत्मज्ञान होने पर उक्त जीव रूप शिष्य मन रूप गुरु को उपदेश करने लगा अर्थात् सयम से मन को चलाने लगा विषयो से हटा कर आत्म चिन्तन कराने लगा।

राजा करे रंक की सेव—रजोगुण प्रधान मन रूप राजा, अज्ञान काल मे अपने स्वरूप ज्ञान रूप धन से हीन जो जीव रूप रक उसको उक्त राजा कर्मो मे लगाता है। फिर जब गुरु उपदेश से ज्ञान हो जाता है, तब वह रजोगुण प्रधान मन रूप राजा आत्मा की सेवा करने लगता है, उक्त प्रकार कर्मों मे न लगकर ब्रह्म चिन्तन रूप सेवा ही करने लगता है।

वंध्या पुत्र पगु इक जाया—सर्व गुण विकारो की उत्पत्ति रहित परम निर्मल बुद्धि रूप वंध्या ने आसुर और राजस गुण रूप पैरो से रहित पगु एक रस रहने वाला ज्ञान रूप पुत्र उत्पन्न किया ।

ताको घर खोवन की टेव—जिस शरीर रूप घर मे उत्पन्न हुआ है, उस शरीर रूप घर को खोने की उसकी आदत ही है अर्थात् ब्रह्म ज्ञान होने के पश्चात् शरीर पुन नही होता ।

'सुन्दर' कहै सु पण्डित ज्ञाता, जो कोउ याको जाने भेव ।।६।।

सुन्दरदासजी कहते हैं—जो कोई इसका अभिप्राय जाने सोई अच्छा ज्ञाता पण्डित है ।

कमल माहिं से पानी उपजा, पानी मे से उपजा सूर ।
सूर माहि शीतलता उपजी, शीतलता मे सुख भरपूर ।।
ता सुख का क्षय होय न कबहू, सदा एक रस निकट न दूर ।
'सुन्दर' कहै सत्य यह यू ही, या मे रती न जानहु कूर ।।७।।

कमल माहि से पानी उपजा—सत्सगादि साधनो से युक्त शुद्ध हृदय कमल मे से परमात्मा की प्रेमाभक्ति रूप पानी उत्पन्न हुआ ।

पानी मे से उपजा सूर—प्रभु की प्रेमाभक्ति रूप पानी से सर्वथा अज्ञान का नाशक ज्ञान रूप सूर्य उत्पन्न हुआ । सत सिद्धात मे प्रभु भक्ति ज्ञान की जनक है ।

सूर माहि शीतलता उपजी—ज्ञान रूप सूर्य से कार्य सहित अविद्या का नाश रूप शीतलता उत्पन्न हुई । अविद्या नाश से पहले पूर्ण शीतलता = शाति नही होती है ।

शीतलता मे सुख भरपूर—उक्त शीलता से परिपूर्ण ब्रह्मानन्द रूप सुख की प्राप्ति होती है । फिर दुख का भान होता ही नही है और हो तो ब्रह्मानन्द प्राप्त नही हुवा है ।

ता सुख का क्षय होय न कबहू सदा एक रस निकट न दूर—उस नित्य निरतिशय ब्रह्मानन्दरुप सुख का नाश कभी भी नही होता । ब्रह्म सुख सदा एक रस रहता है सर्व काल अपना आप है, इससे निकट और दूर नही कहा जा सकता, देश काल के अन्तराय से हीन है ।

'सुन्दर' कहै सत्य यह यू ही, या मे रती न जानहु कूर ।।७।।

सुन्दरदासजी कहते हैं—यह वार्ता यू ही है, उक्त रीति से सत्य है, इसमे रच मात्र भी असत्य नही है ।

हस चढा ब्रह्मा के ऊपर, गरुड चढा पुनि हरि की पीठि ।
बैल चढा है शिव के ऊपर, सो हम देखा अपनी दीठि ।।

देव चढा पाती के ऊपर, जरख चढा डाइनि पर नीठि ।
'सुन्दर' एक अचभा हुवा, पानी माही जले अगीठि ।।७।।

हंस चढा ब्रह्मा के ऊपर—रजोगुण रूप ब्रह्मा के ऊपर, सतो गुण प्रधान मन चढा, अर्थात् रजोगुण को जीत लिया, सतो गुण से रजोगुण जीता ही जाता है ।

गरुड चढ़ा पुनि हरि की पीठि—निर्गुण स्थिति को प्राप्त मन रूप गरुड ने सतोगुण रूप हरि को जीत लिया, निर्गुण स्थिति मे ही सतो गुण जीता जाता है ।

बैल चढा है शिव के ऊपर—रजो गुण प्रधान मन ही तमोगुण रूप शिव पर चढा, तमोगुण को जीत लिया, यह हमने साधन काल मे तमोगुण को रजोगुण से, रजोगुण को सतोगुण से और सतोगुण को निर्गुण स्थिति से जीता था यह विवेक दृष्टि से देखा था सो ही कहते हैं ।

सो हम देखा अपनी दीठि—साधन काल मे हमने स्वय विवेक दृष्टि से देखा था, यह सत्य है ।

देव चढा पाती के ऊपर—दिव्य स्वरूप आत्मा देव पर अज्ञानकाल मे देहादि सघात रूप पाती जैसे तूलसी बील पत्रादि देव को ढक लेते हैं वैसे ही देहादि सघात ने आत्मदेव को ढक रखा था किन्तु ज्ञानकाल मे उक्त पत्तियो से ऊपर आत्मदेव वैसे दीखता है जैसे बील पत्र हटाने से शिव लिग फिर तो आत्मदेव सर्व व्यापक रूप से भासने लगता है ।

जरख चढा डाइनि पर नीठि--परम सन्तोष को प्राप्त मनरूप जरख नाना प्रकार की आशारूप डाकिनी पर चढा अर्थात् सन्तोष और ज्ञान से सब आशाये जीत ली ।

'सुन्दर' एक अचम्भा हुआ, पानी माही जले अगीठि ।।८।।

सुन्दरदासजी कहते हैं—उक्त प्रकार साधनो से एक आश्चर्य हुआ कि पानी की बूद से उत्पन्न शरीर के शीलत अन्त करण मे शुभाशुभ कर्मों के फल का दाहक और ब्रह्मानन्द का प्रकाशक ब्रह्मज्ञान रूप अग्नि जलने लगा ।

कपडा धोबी को गह धोवे, माटी बपुडी घडे कुम्हार ।
सुई विचारी दरजि हिं सीवे, सोना तावे पकड सुनार ।।
लकडी बढई को गह छीले, खाल सु बैठी धवे लुहार ।
'सुन्दरदास' कहै सो ज्ञानी, जो कोऊ याका करे विचार ।।९।।

कपडा धोबी को गह धोवे—काया ही कपडा है, काया का शुभ कर्म सत्सग भजन से निग्रह करके मनरूप धोबी को निर्मल करना ही धोना है। अथवा चिदाभास सहित मनरूप कपडा को अज्ञान काल मे पुण्यरूप धोवी पाप रूप मल को दूर करने के लिये धोता था किन्तु ज्ञान होने पर पुण्य रूप धोबी को पकड कर चिदाभास सहित मन उसका सकामता रूप मल धो कर मैं अकर्ता, असगहू इस शुद्ध निश्चय से पाप पुण्य से निर्लेप रहना ही धोना है।

माटी बपुडो घड़े कुम्हार—मनन और प्राणायाम अभ्यास रूप माटी, मनरूप कुम्हार को घडती है, मनकी सब सकल्प विकल्प क्रियायें, प्राण क्रिया से ही होती है वही मन का घडना है। अथवा-आत्मा के सन्मुख वृत्ति रूप माटी को अज्ञान काल मे वाह्य मनरूप कुम्हार अनात्माकार वाह्य वृत्तियो के रूप मे घडता था किंतु ज्ञानकाल मे वह बपुरी स्वरूपाकार होकर मनरूप कुम्हार को अनात्म पदार्थों से हटाकर आत्माकार करना रूप घडती है अर्थात् करती है।

सुई विचारी दरजि हि सींवे—अति तीक्षण वुद्धि वृत्ति रूप सुई जीव की शक्ति से अपने कार्य मे प्रवृत्त होती है, वही विचारी = विचार प्रधान होकर अपने प्रेरक जीवरूप दरजी को ब्रह्म के साथ एकता करना रूप मे सीती है।

अथवा इसका सीधा अर्थ—विचार प्रधान सुरती को जीव ब्रह्म मे लगाकर अपनी और ब्रह्म की भेद रूप दरज को सीता है।

सोना तावे पकड़ सुनार—कामना रूप दोष से रहित अति निर्मल ब्रह्म स्मरण रूप सोना, मनरूप सुनार को पकड कर = निग्रह कर जैसे घृत को तपाते हैं, वैसे मनरूप सुनार को स्मरण साधन से तपाकर शुद्ध करता है।

लकडी बढई को गह छीले—ब्रह्म मे बुद्धि वृत्ति को लय करना ही लकडी है, वह लकडी कर्म रूप खाती को सकाम भावना को छीले अर्थात दूर करे।

खाल सुबैठी धवे लुहार—प्राणायाम युक्त बुद्धि वृत्ति ही खाल=लुहार की धौंकनी है, प्रणाम के अभ्यास मे प्रवृत्त करने वाला मन ही लुहार है उक्त लुहार को उक्त धौकनी वैठी = स्थित होकर धवै=वश करे। प्राणायाम से मन वश होता है, यह अति प्रसिद्ध ही है।

'सुन्दरदास' कहै सो ज्ञानी, जो कोउ याका करे विचार ॥९॥

सुन्दरदासजी कहते हैं कि जो कोई इस विपर्यय कथन के सिद्धात रूप कथन का अर्थ यथार्थ रूप मे विचार कर निश्चय करे वही पुरुष वास्तव मे ज्ञानी है।

जा घर माहि् वहुत सुख पाया, ता घर माहि् वसे अव कौन ।
लागी सबै मिठाई खारी, मीठा लागा एक वह् लौन ।।
पर्वत उडे रुई थिर वैठी, ऐसा कोउक वाजा पौन ।
'सुन्दर' कहै न माने कोई, तातै पकड बैठ मुख मौन ।।१०।।

जा घर माहि् वहुत सुख पाया ता, घर माहि वसे अव कौन—अज्ञान काल मे जिस शरीर रूप घर मे इन्द्रियो के विषय रूप वहुत सुख प्राप्त किये थे किंतु अव ज्ञान होने पर इस शरीर रूप घर मे एकता भाव से युक्त होकर कौन विवेकी सुखमान कर वसेगा अर्थात् नही वसेगा ।

लागी सबै मिठाई खारी, मीठा लागा एक वह् लौन—अज्ञानकाल मे इस लोक तथा परलोक स्वर्गादि के विषय सुख रूप मिठाई थी, वह् ज्ञान होने पर सब खारी लगी । आदि अज्ञान दशा मे ब्रह्म चिन्तन लौन के समान लगता था किंतु आत्मज्ञान होने पर वह् एक ब्रह्म रूप लौन ही मीठा लगा ।

पर्वत उडे रुई थिर बैठो, ऐसा कोउक बाजा पौन— ऐसा कोई आश्चर्य जनक ज्ञान रूप पौन=वायु चला जिससे अज्ञान युक्त अहकार रूप पर्वत अन्त करण से उड गया अर्थात् अन्त करण मे नही रहा और अज्ञानकाल मे बुद्धि वृत्ति रूप रुई वहिमुख हो नाना विषयो के आकर होना रूप से उडती थी, वह ज्ञानकाल मे नम्रता युक्त अन्तर्मु ख वृत्ति रूप रुई स्थिर होकर बैठ गई=उडना मिट गया । **'सुन्दर' कहै न माने कोई तातं पकड बैठ मुख मौन** ।।१०।। सुन्दरदासजी कहते है —इस आश्चर्य जनक वात को अज्ञानी तो कोई भी नही मानेगा इससे अनाधिकारियो के आगे तो मुख से मौन धारण करके ही रहना ठीक है ।

रजनी माहि् दिवस हम देखा, दिवस माहिं हम देखी राति ।
तेल भरा सपूरण तामे, दीपक जले जले नहि् वाति ।।
पुरुष एक पानी मे प्रकटा, ता निगुरा (निगुणा) की कैसी जाति ।
'सुन्दर' सोई लहै अर्थ को, जो नित करे पराई ताति ।।११।।

सासारिक वृत्तियो का अभाव निर्वृत्ति रूप रात्रि मे हम ने परम प्रकाशमान ज्ञान रूप दिन देखा और सासारिक प्रवृत्ति धर्म रूप दिन मे हमने अज्ञान रूप रात्रि देखी । सम्पूर्ण विश्व मे व्यापक रूप से परिपूर्ण ब्रह्म ही तेल है, अविद्या उपहित चेतन साक्षी दीपक है, उसका माया और अविद्या के कार्य को प्रकाशित करना ही जलना है, माया जड होने से परप्रकाश्य है सो ही वत्ती है, यह वत्ती जलती नही है अर्थात् माया का नाश नही है क्योकि सामान्य चेतन माया का विरोधी नही है ।।

पुरुष एक पानी मे प्रकटा, ता निगुरा की कैसी जाति—विक्षेप रहित शात अन्त करण की एकाग्र अन्तर्मुख वृत्ति मे प्रभु प्रेम ही पानी है। उक्त पानी मे सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित एक सर्व विश्व रूप पुर मे रहने वाला पुरुष अस्ति भाति, प्रिय रूप से ब्रह्म ही प्रकट हुआ, पहले अज्ञान कृत आवरण से ढका था सो गुरु सत्शास्त्र की कृपा से अपरोक्ष रूप से अनुभव मे आया। उस निगुरा गुरु रहित कारण ब्रह्म का कोई गुरु नही है वही सब का गुरु है अथवा निगुणा पाठान्तर भी मिलता है, उससे भी निगुणा गुणातीत की तथा निगुरा की जाति कैसी होसकती है अर्थात् नही होती। जाति तो गुणो से उत्पन्न साकर की ही होती है।

'सुन्दर' सोई लहै अर्थ को, जो नित करे पराई ताति ॥११॥

सुन्दरदासजी कहते है उक्त सवइया का अर्थ वही प्राप्त करेगा जो अपने से भिन्न अनात्म ससार की ताति=निन्दा नित्य करेगा। कैसे करेगा—सब प्रपच मिथ्या है ऐसे करेगा।

उनया मेघ घटा चहु दिश से, विर्षन लागा अखण्डित धार।
बूडा मेरु नदी सब सूकी, झड लागा निश दिन इकतार ॥
कासा पडा बीजली ऊपर, कीया सर्व कुटम्ब सहार।
'सुन्दर' अर्थ अनूप याका, पण्डित होय सु करे विचार ॥१२॥

उनया मेघ घटा चहुँ दिश मे, वर्षन लागा अखण्डित धार—ब्रह्मानन्द समुद्र मे निमग्न हुआ, जगत मे विचरने वाला ज्ञानी ही मेघ है, सो आनन्द रूप से उनया=उमगा=भरा है, उसकी स्वरूपाकार वृत्ति ही बादल की घटा है, वह अन्त करण की चार वृत्तियो रूप चारो दिशाओ छा कर अखण्ड आनन्द रूप जल की धारा जिज्ञासुओ रूप पृथ्वी पर वर्षा रहा है अर्थात् व्यापक ब्रह्म का अनुभव करा रहा है।

बूडा मेरु नदी सब सूकी—उक्त ब्रह्मानन्द रूप जल मे अति ऊचा सासारिक अहकार रूप मेरु=पर्वत बूडा=डूब गया=नष्ट हो गया। बाह्य विषयाकार मन की वृत्तिया रूप सब नदिया सूख गई=विषयो की वासना रूप जल से रहित हो गई यही सूखना है। उक्त ब्रह्मानन्द रूप जल की वर्षा का झड रात्रि दिन इकसार बराबर लगा अर्थात् निरन्तर ब्रह्मानन्द अनुभव होने लगा यही झड का लगना है।

कांसा पडा बीजली ऊपर, कीया सर्ब कुटम्ब संहार—कासी पात्र पर जैसे बिजली पडती है, वैसे ही ज्ञान होने पर वैराग्य रूप कासा सूक्ष्म राजसी तमासी भाव वाली चचल बुद्धि रूप बिजली पर पडा

ग्रौर उसके राजस तामस लोभादि ग्रासुर मपदा रूप सब कुटम्ब का नाश कर दिया। **सुन्दर ग्रर्थ ग्रनूपम याका पडित होय सु करे विचार-**

सुन्दरदाजी कहते हैं—उक्त सवइया का ग्रर्थ सर्वश्रेष्ठ होने से उपमा रहित है, इससे स्वरूपाकार बुद्धि वाला ज्ञानी पण्डित ही इसका ग्रर्थ विचारेगा, ग्रन्य नही।

> वाडी माही माली निपजा, हाली माही निपजा खेत।
> हस हि उलट श्याम रग लागा, भ्रमर, उलट कर हूवा सेत॥
> शशिहर उलट राहु को ग्रासा, सूर उलट कर ग्रासा केत।
> 'सुन्दर' सुगरा को तज भागा, निगुरा सेती वाधा हेत॥१३॥

वाडी मांही माली निपजा—ससार मे ग्रज्ञान दशा मे जीव बनकर जन्मादि दुखो को भोग रहा था, ज्ञान होने पर वही मसार वाडी मे उसका रक्षक परमात्मा रूप माली निपजा=प्रतीत होने लगा। हाल-माही निपजाखेत-ग्रज्ञान दशा मे मन रूप हल से शुभाशुभ कर्म रूप बीज को बोने के लिये प्रवृत्ति रूपखेती करने वाला क्षेत्रज्ञ साक्षी चेतन ही हाली है, उससे शरीर रूप खेत मे सुख दु खादि उत्पन्न होना ही खेती निपजना है।

हस उलट श्याम रंग लागा—जीव हस ग्रज्ञान काल मे माया रूप श्वेत रग का होता हैं, किन्तु ज्ञान काल मे गुरु सतादि के उपदेश से बदल कर उसके श्याम=परमात्मा का प्रेम रूप रग लग गया। भ्रमर उलट कर हूवा सेत—पहले काम, कर्म, मल विक्षेप रूप श्यामता से युक्त मन रूप भ्रमर था किन्तु ग्रब निष्कामकर्म ग्रौर उपासना द्वारा श्यामता को त्याग कर शुद्धता एकाग्रता रूप श्वेतता को प्राप्त हो गया है।

शशिहर उलट राहु को ग्रासा—ज्ञान प्रकाश युत मन ही शशिहर=चन्द्रमा है उसने ग्रपने को तेज हीन करता तामसादिगुण रूप राहु को ग्रसा=उसका ग्रभाव किया। सूर उलट कर ग्रासा केत-सदा प्रकाशमान ज्ञानरूप सूर्य ने कर्म कामना रूप केत=केतु को ग्रासा=हृदय मे हटा दिया। केवल ज्ञान प्रकाश ही रहा।

'सुन्दर' सुगरा को तज भागा, निगुरा सेती वांधा हेत—जो ग्रन्य के ग्राधीन वर्ते ऐसे सुगरा ससार को त्याग कर भागा=ग्रत्यन्त विचार करके निगुरा जिससे ऊपर कोई भी नही है, उस ब्रह्म के साथ ही हेत=स्नेह वाधा ग्रर्थात् लगाया।

> ग्रग्नि मथन कर लकडी काढी, सो वह लकडी प्राण ग्रधार।
> पानी मथ कर घीव निकारा, सो घृत खाइये बार बार॥

दूध दही की इच्छा भागी, जाको मथत सकल ससार ।
'सुन्दर' अब तो भये सुखारे, चिंता रही न एक लगार ॥१४॥

अग्नि मथन कर लकडी काढी—हरि विरह रूप अग्नि है, उसको अति अधिक बढाना ही मथना है, उससे ब्रह्म मे वृत्ति का लय करना रूप लकडी निकाली = सिद्ध की, सो वह लकडी प्राण अधार—वह वृत्ति ब्रह्मरूप होने से प्राणो का=जीव का आधार रूप अधिष्ठान है ।

पानी मथ कर घीव निकारा—परमात्मा मे परम प्रेम होना ही पानी है, उससे अन्त करण को द्रवीभूत करना ही मथना है, उसमे से मनन द्वारा उत्पन्न हुआ ज्ञान ही घृत है, उस ज्ञान रूप वृत्ति को वारवार ब्रह्मस्वरूप मे रखना ही खाना है ।

दूध दही की इच्छा भागी जाको मथन सकल ससार—शुभ कर्म ही दूध है, उन कर्मो से उत्पन्न विषय सुख ही दही है। उस विषय सुख भोग रूप दही को सब ससार के प्राणी मथते हैं अर्थात् सुख प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्न करते हैं। सुन्दरदासजी कहते है अब हम तो निष्काम होकर सुखी हुये है । कामना प्राप्ति आदि की चिन्ता हमारे मे किंचित मात्र भी नही रही है ।

पत्र माहि झोली गह राखे, योगी भिक्षा मागन जाइ ।
जागे जगत सोव ही गोरख, ऐसा शब्द सुनावे आइ ॥
भिक्षा फुरे बहुत कर ताको, सो वह भिक्षा चेलहि खाइ ।
'सुन्दर योगी युग युग जीवे, ता अवधू की दूर बलाइ ॥१५॥

पत्र माहि झोली गह राखे, योगी भिक्षा मांगन जाइ—अन्त करण सहित आत्म रूप ज्ञानी जीव योगी है, बुद्धि रूप झोली है, उसको पकड = एकाग्र करके अन्तर्मुख रखता है। निजानन्द ही भिक्षा है, विचार रूप पैरो से मागने जाता है अर्थात् स्वरूपाकार होता है ।

जागे जगत सोव ही गोरख, ऐसा शब्द सुनावे आइ—जीवो का समूह रूप जगत जागता है अर्थात् प्रवृत्ति मार्ग के कर्तव्य कर्म करने मे अति सावधान रहना ही जागना है। गो=इन्द्रियो को अपने आधीन रखने वाला गोरख योगी है, सो जगत की प्रवृत्ति रूप कर्तव्य कर्म से रहित होकर असग ब्रह्म रूप हो रहता है और शब्दानुविद्ध सविकल्पसमाधि मे आकर 'अह ब्रह्मास्मि' ऐसा शब्द सुनाता है ।

भिक्षा फुरे बहुत कर ताको, सो वह भिक्षा चेलहि खाइ-अखण्ड ब्रह्माकार अन्त करण की वृत्ति की **स्थिति** (निर्विकल्प समाधि) ही भिक्षा है। वह भिक्षा उक्त योगी को बहुत फुरे=प्राप्त होती है अर्थात् निर्विकल्प समाधि

अधिक रहती है। वह भिक्षा चेलहि=चेलों को खाती है, इन्द्रियों की विषयाकार वृत्ति रूप चेलो को खाती है=नष्ट करती है, यही खाना है।

'सुन्दर' योगी युगयुग जीवे ता अवधू की दूर बलाइ—सुन्दरदासजी कहते है-ऐसा योगी युग युग अर्थात् भूत, भविष्यत, वर्तमान तीनो कालो मे अविनाशी ब्रह्म रूप होकर स्थित रहता है। उस ब्रह्मरूप योगी की वलाइ= जन्मादि अनर्थ रूप आधि व्याधि दूर हो जाती है।

निर्दय होय तिरे पशु घातक, दयावंत बूडे भव माँहि।
लोभी लगे सबन को प्यारा, निर्लोभी को ठाहर नाहि॥
मिथ्यावादी मिले ब्रह्म को, सत्य कहैं ते जमपुर जाँहि।
'सुन्दर' धूप माँहि शीतलता, जलत रहैं जे बैठे छाँहि॥१६॥

निर्दय होय तेरे पशुघातक—अडिग मनवाला शूरवीर दया रहित होकर विषय रूप चारा चरने वाली इन्द्रिय वृत्तिसमूह पशुओ का घातक उनको जीतने वाला निर्दय हो सोई भव सागर से तैरता है।

दयावंत बूडे भव माँहि—इन्द्रियों को विषयासक्ति से विषय भोग देकर उनकी पालना करने वाला दयालु ससार सागर मे डूबता है।

लोभी लगे सबन को प्यारा—भजन ब्रह्मविचारादि का अति लोभी हो तो ही अति दुखादि विघ्न आने पर भी उनको न त्यागे ऐसा लोभी ही सबको प्यारा लगता है।

निर्लोभी को ठाहर नाँहि- जिसके मन मे भजन ब्रह्मविचारादि को दृढता से हृदय मे रखने का लोभ नही है, उसको परमात्मा के स्वरूप मे ठाहर=स्थान नही मिलता है।

मिथ्या वादी मिले ब्रह्म को—जो माया और माया के कार्य स्थूल, सूक्ष्म ससार को वारवार मिथ्या कहने वाला वादी ही ब्रह्म को प्राप्त होता है, अन्य नही।

सत्य कहैं ते जमपुर जाँहि—और माया तथा उसके कार्य ससार को सत्य कहते हैं, वे असत पदार्थों की प्राप्ति के लिये पाप कर्म करके यमपुर मे जाकर नरकादि दुखो को भोगते हैं।

'सुन्दर' धूप माँहि शीतलता—ज्ञान रूप धूप=प्रकाश मे शीतलता रूप शांति है।

जलत रहैं जे बैठे छाँहि—जो अविद्या के अधेरे रूप छाया मे बैठे हैं वे त्रिताप से जलते ही रहते हैं।

माइ बाप तज धी उमदानी, हरषत चली खसम के पास।
बहू विचारी बड वखतावर, जाके कहे चलत है सास॥

भाई खरा भला हितकारी, सब कुटम्ब का कीया नास ।
ऐसी विधि घर बसा हमारा, कह समझावे सुन्दरदास ।।१७।।

माइ बाप तज०—माया की ममता ही माता है, सूक्ष्म शरीर बाप है, शरीर के सुखो का अध्यास उक्त सब को त्याग कर सूक्ष्म शरीर के अन्त -करण से उत्पन्न धी=शुद्ध बुद्धि उमदानी=मस्त हो हर्षित होकर पालन करने वाले परमात्मा रूप खसम=पति के पास चली अर्थात् उसी मे लीन हो गई ।

बहू विचारी०—विवेक रहित बुद्धि ही सास=सासू है, विवेक उससे उत्पन्न होता है, इसमे वह विवेक की माता है । विवेक युक्त बुद्धि वृत्ति ही विवेक की बहू=पत्नी है, वह विचारी=विचार तथा शाति वाली है और पूर्वोक्त सासू का कहा नही मानती है किंतु उसके कहने मे सासू चलती है वख्तावर=स्वाधीन है, अर्थात् विवेक युक्त बुद्धि वृत्ति मे अविवेकता प्रवेश नही करती, यही सासू का कहना न करना है । और बहू के कहने मे सासू चलती है अर्थात् ब्रह्म-स्वरूप मे लीन होती है ।

भाई खरा०—पूर्वोक्त विवेक को सहायता देने वाला तत्त्वज्ञान ही भाई है, वह खरा=निश्चित भला है, मुक्ति प्रदान करने वाला होने से हितकारी है, उससे अविद्या और उसका कार्य बुद्धि और बुद्धि वृत्ति और देहादि सब कुटम्ब का नाश=बाध हुआ है ।

सुन्दरदासजी समझा कर कहते हैं—इस प्रकार हमारा स्वस्वरूप घर बसा है=सत्य ब्रह्म रूप से शेष रहा है ।

परधन हरे करे परनिन्दा, पर धी को राखे घर माहि ।
मास खाय मदिरा पुनि पीवे, ताहि मुक्ति का सशय नाहि ।।
अकर्म गहै कर्म सब त्यागे, ताकी सगति पाप नशाहि ।
ऐसी कहैं सु सत कहावे, 'सुन्दर' और उपज मर जाहि ।।१८।।

पर धन हरे—पर=अपने से भिन्न विवेकी सत उनका ज्ञान धन सत्सग कर के हरे और हृदय मे धारण करे । करे पर निन्दा=आत्मा से पर=भिन्न अनात्मक देहादि की नाशवान्, जड मलीन है, ऐसे निन्दा करे, तब उनकी आसक्ति हृदय मे नही रहती ।

परधी को राखे घर मांहि—पर अपने से भिन्न ज्ञानी सत्पुरुषो की ब्रह्माकार धी=बुद्धि वृत्ति को अपने हृदय रूप घर मे दृढता से सदा राखे, अनात्माकार न होने दे ।

मांस खाय--अनात्म पदार्थों की ममता रूप मास खाय=नष्ट करे।

मदिरा पुनि पीवे - और मोह रूप मदिरा को पीवे=हृदय मे मोह नहीं होने दे यही पीना है।

ताहि मुक्ति का सशय नाहि—उक्त प्रकार पुरुपार्थ करने वाले पुरुष की मुक्ति होने मे कोई सशय नही रहता, वह तो मुक्ति रूप ही होता है।

अकर्म गहै कर्म सब त्यागे—अकर्म ब्रह्म को आत्म रूप से ग्रहण करते है और जन्मादि दु खो के हेतु सकाम कर्म सब त्याग देते है। ताकी सगति पाप नशाहि है—उन सतजी की सगति करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

ऐसी कहैं सु सत कहावे—उक्त सवइया मे कहा है, ऐसी ही कथा कहते है वे ही ज्ञानी पुरुष सत शास्त्रादि सर्वजनो के द्वारा सत कहे जाते हैं।

सुन्दर' और उपज मर जाहि—सुन्दरदासजी कहते हैं और अज्ञानी तो वरम्बार जन्मते मरते है।

बढई चरखा भला सभारा, फिरने लागा नीकी भाति।
वहू सास को कहि समझावे, तू मेरे ढिग वैठि काति॥
नन्हा तार न टूटे कबहू, पूनो घटे दिवस नहि राति।
'सुन्दर' विधि से बुने जुलाहा, खासा निपजे ऊची जाति॥१९॥

बढई चरखा०—सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ईश्वर रूप बढई=खाती ने सब शरीरो से श्रेष्ठ ममुष्य शरीर रूप चरखा भला सवारा=बहुत अच्छा बनाया। यह मनुष्य शरीर शुभ कर्मो तथा सत्सगादि से ज्ञान के साधनो मे प्रवृत्त हुआ और नीकी भाति=भली प्रकार ज्ञान साधनो मे फिरने लगा=अभ्यास करने लगा। उस अभ्यास से बुद्धि ने विवेक उत्पन्न किया, विवेक का अद्वैत श्रुति से सम्बन्ध होने से श्रुति विचार वृत्ति विवेक की बहू है, वह समझा कर बुद्धि रूप सासू को कहती है तू मेरे ढिग=पास वैठ कर कात=लक्ष्य मे स्थित रह कर स्वरूपानुसधान रूप स्मरण कर उस नन्हा=सूक्ष्म स्मरण का तार=प्रवाह कभी भी टूटना नही चाहिये, स्वरूपाकार वृत्ति रूप पूनो रात-दिन घटनी नही चाहिये, सदा एकरस रहनी चाहिये।

'सुन्दर' विधि से०-सुन्दरदासजी कहते है—श्रवणादि ज्ञान साधनो मे जीव जुलाहा स्वरूप साक्षात्कार रूप कपडा बूनता है, तब खासा ऊची जात=सर्व अनर्थ की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति रूप सुन्दर मुक्ति होती है।

घर घर फिरे कुमारी कन्या, जने जने से करती सग।
वैश्या सु तो भई पतिवरता, एक पुरुष के लागी अग॥

वृक्ष बन्ध

वृक्षबन्ध (१)

मनहर छन्द

एक ही विटप विश्व ज्यौ को त्यौ ही देखियत
अति ही सघन ताके पत्र फल फूल है।
आगिले झरत पात नये नये होत जात
ऐसे याही तरु कौ अनादि काल मूल है ॥
दस चारि लोक लौ प्रसरि जहा तहा रह्यो
अध पुनि ऊरध सूक्षम अरु थूल है।
कोऊ तौ कहत सत्य कोऊ तौ कहै असत्य
सुन्दर सकल मन ही कौ भ्रम भूल है ॥१॥

पढने की विधि

इस वृक्ष वध के छन्द को वृक्ष के तने की जड के ऊपर ए अक्षर मे प्रारभ करना चाहिये। ए अक्षर पर १ का अङ्क नीचे को लगा हुआ है। ऊपर पढते जाय त्र तक पढै, फिर बाई ओर को **फ** अक्षर से पत्तो मे पढै। प्रथम चरण है मे पूरा करै जहा पूर्ण-विराम का विन्दु लगा है। प्रत्येक चरण के आदि के अक्षर के नीचे १-२-३-४ के अङ्क और अत के अक्षर पर पूर्ण विराम के विन्दु (फुलस्टाप) लगा दिये गये हैं जिससे पडने मे सुविधा रहै। पत्तो के अक्षरो के पढने मे यह सावधानी रक्खी जाय कि टहनी के (पढने मे) सबमे पिछले पत्ते के अक्षर को पास की दूसरी टहनी के निकट वाले पत्ते के अक्षर से मिला कर पढें। पत्तो के अक्षरो का क्रम लगातार कवि महात्मा ने ऐसा ही रखा है। दूसरा चरण छठे पत्ते के **आ** अक्षर से पढकर ३७ वे पत्ते (पाँचवी टहनी के ५ वे) मे पूरा करे। इस ही प्रकार ३ रे चरण को **द** से प्रारम्भ करके आठवी टहनी के ९ नवें अक्षर मे पूर्ण करै। और चौथे चरण को उक्त टहनी के आगे ९ वी टहनी के प्रथम अक्षर **को** से प्रारम्भ करके १२ वी टहनो के अतिम पत्ते के अक्षर मे पूर्ण करे। चतुर रचनाकार ने टहनियो के पत्तो की गणना दोनो ओर के प्रथम तीन की (प्रथम कीट और आगे के दो २ की ७-७) २२-२२। और पिछले तीन की ९-९ यो २७ रक्खी है। यो तने को २६+दोनो ओर ९८=१२४ है। इस युक्ति से चरणान्त अक्षर, वाम पार्श्व मे टहनी के अन्त के पत्ते मे और दाहिने मे तने के पास के ऊपर के प्रथम पत्ते मे आया है कही भी मध्य मे नही आया है। इससे छन्द के पढने और दर्श मे सुन्दरता आ गई है।

कलियुग माही सतयुग थापा, पापी उदै धर्म का भग ।
'सुन्दर' कहै सु अर्थ हि पावे, जोनी के करतजे अनग ॥२०॥

घर घर फिरे कुमारी कन्या—सतगुरू के उपदेश रहित जिज्ञासु की कच्ची बुद्धि ही कुमारी कन्या है, घर-घर वह अनेक सत्सग सभाये रूप घरो मे फिरती है । जने जने से करती सग-नाना मत मतातरो मे लगती है ।

वैश्या सो तो भई पतिवरता०—नाना पदार्थों मे विचरने वाली व्यभिचारणो बुद्धि वेश्या थी वही एक परमात्मा रूप पुरुष के स्वरूप चिन्तन रूप अग मे लग कर पतिव्रता हो गई ।

कलियुग मांही०—रजोगुण, तमोगुण वृत्ति रूप मलीनता धम वाला मन ही कलियुग है, उसमे सत्सग द्वारा विवेक, वैराग्य, क्षमा, धैर्य आदि श्रेष्ठ वृत्तियो ने सतयुग की स्थापना की, उस सतयुग मे इन्द्रियो को मारने वाले=जीतने वाले पापियो का उदै=भाग्योदय हुआ, वे सदा सुखी रहने लगे ।

धर्म का भग—इन्द्रियो की पालना करना रूप धर्म का भग=नाश हुआ ।

सुन्दर कहै०—सुन्दरदास कहते हैं इस सबइया का अर्थ वही प्राप्त करेगा जो मन वच कर्म से भली प्रकार काम को जीत कर निष्काम होगा ।

विप्र रसोई करने लागा, चौका भीतर बैठा आइ ।
लकडी माही चूल्हा दीया, रोटी ऊपर तवा चढाइ ॥
खिचडी माही हँडिया राधी, सालन आक धतूरा खाइ ।
'सुन्दर' जीमत अति सुख पाया, अबके भोजन किया अघाइ ॥२१॥

शुद्ध अन्त करण वाला जीव ही ब्राह्मण है, वह साधन रूप रसोई करने लागा तब विवेकादि चार साधन रूप चौका आकर उसके भीतर बैठ गया=साधन सम्पन्न हुआ । नाना प्रकार के कर्म रूप लकडियो मे ब्रह्म का उपदेश रूप चूल्हा दिया, उसकी ज्ञान रूप अग्नि से कर्म रूप सब लकडिया जल गई । प्रारब्ध कर्म भोग रूप रोटी के ऊपर, मैं अकर्ता, अभोक्ता हू यह निश्चय ही तवा है । प्रारब्ध कर्म शरीर के हैं, उन की चिन्ता मुझे नही है, यही चढाना है । वैराग्य रूप जल, बोध रूप चावल, उपराम रूप मू ग यही खिचडी है । भोगो मे दीनता, सत्यतादि धर्म युक्त समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म प्रपच रूप माया ही हडिया है उसका बाध करना ही राधना है । अनेक राग द्वेषादि दुर्वासना ही आक, धतूरा है,

उनका सालन=शाक बनाकर खाय=उनको जीत कर उनका अभाव करना ही खाना है ।

सुन्दरदासजी कहते हैं—कार्य सहित अज्ञान की निवृत्ति रूप रसोई, वासना की निवृत्ति रूप शाक से जीमत=जीमते हुये अत्यन्त ब्रह्मानन्द सुख प्राप्त किया । अब के=मनुष्य शरीर मे गुरु श्रुति, सत आदि की कृपा से जीवन्मुक्ति का अद्भुत आनन्द रूप भोजन तृप्त होकर किया है, ऐसा पहले नही किया था ।

बैल उलट नाइक को लादा, वस्तु माहि भर गौनि अपार ।
भली भाति का सौदा कीया, आय दिसत या ससार ।।
नाइकनी पुनि हरषत डोले, मोहि मिला नीका भरतार ।
पूजी जाय माह को सौपी, सुन्दर' शिर से उतरा भार ।।२२।।

अन्त करण सहित चेतन जीव ही बैल है, क्यो ? =कर्ता, भोक्ता, रागद्वेषादि अन्त करण के धर्म वैसे ही प्राण, इन्द्रिय, देह के धर्म रूप भार अज्ञानकाल मे ढोता है, उसने अज्ञान दशा मे जो नाइक=मुखिया मन है उसको लादा=विवेक को प्राप्त करके कर्ता आदि का भार मन पर पटक दिया=यही लादना है । इस प्रकार निरभिमानी शुद्ध जीव ने परमात्मा के भाव रूप वस्तु मे अपार शम दमादि गौनि=गुण भरे और ससार रूप देशातर मे मनुष्य शरीर पाकर भली भाति का सौदा किया= परमात्मा मे भाव भक्ति करना रूप अच्छा व्यापार किया । फिर दृढ निश्चय रूप बुद्धि वृत्ति रूप नाइकनी उक्त व्यापार से हर्षित होकर डोले=शुभ कर्मों मे प्रवृत्त होती है और कहती है मुझे अतिश्रेष्ठ शुद्ध मन रूप भरतार अच्छा मिला है । फिर प्रभु की शरण जाकर तन मन प्राणादि सर्व पूँजी परमात्मा को सौपी=समर्पण करदी, सुन्दरदासजी कहते—हैं तब शिर से जन्म मरण कर्म फल सुख दु ख, शोक, चिन्तादि सर्व भार उतर गया ।

बणिक एक वनिजी को आया, पडे तावडा भारी भैठि ।
भली वस्तु कुछ लीनी दीनी, खैच गठिडिया बाधी ऐठि ।।
सौदा किया चला पुनि घर को, लेखा किया बडीतल बैठि ।
'सुन्दर' साह खुशी अति हूवा, बैल गया पूजी मे पैठि ।।२३।।

एक जीव रूप बणिक=व्यापारी ससार रूप देश मे सुकृत भक्ति आदि वनिजी=व्यापार करने को आया किन्तु ससार मे काम क्रोधादि तावडा (धूप) भारी भैठि=बहुत पडता है । शुभ कर्मों को करने का समय ही नही मिलता है, तो भी भली वस्तु रूप राम नाम चिन्तन का लाभ लिया और

शुभ उपदेशादि कुछ दिया । उक्त प्रकार शुभ उपदेश और रामभक्ति रूप वस्तुओ को दृढ निश्चय रूप से खैंच कर वाधी और हृदय मे रख ली । उक्त प्रकार भजन, ध्यानादिक व्यापार करके परमात्मा रूप घर को चला और अति विस्तार वाली बुद्धि रूप बड वृक्ष के तले बैठ कर विचार रूप लेखा=हिसाव किया=भगवान् मे चित्त को लगाया ।

सुन्दरदासजी कहते हैं—जब पबु=शरीर रूप बैल परमेश्वर रूप पूँजी मे पैठा=प्रवेश कर गया=समर्पण हो गया तब जीव रूप साहूकार को अति हर्ष हुआ=परमेश्वर के समर्पण होने पर जन्मादि ससार की प्राप्ति नही होती ।

पहराइत घर मुसा साहका, रक्षा करने लागा चोर ।
कोतवाल काठा कर वाधा, छूटे नही साझ अरु भोर ।।
राजा गाव छोडकर भागा, हूवा सकल जगत मे शोर ।
परजा सुखी भई नगरी मे, 'सुन्दर' कोई जुलम न जोर ।।२४।।

पहराइत०—काम क्रोधादि पहरा देने वालो ने ही जीव रूप साहूकार के हृदय घर का दैवि गुणा और ज्ञान धन मुसा=चुराने लगे तब अनेक जन्मो के पापो को चुराने वाला ईश्वर नाम रूप चोर दैवि गुण और ज्ञान की रक्षा करने लगा और अज्ञान दशा के मन रूप कोतवाल को सयम द्वारा दृढता से ईश्वर चिन्तन मे वाध दिया, अब ईश्वर चिन्तन से साय-काल, प्रात काल, आदि किसी भी समय मे नही छूट सकता=विकारो मे नही जा सकता, उक्त स्थिति होने पर रजोगुण रूप राजा हृदय ग्राम को छोडकर भागा=हृदय को त्याग गया । विकरो से रहित ऐसे ईश्वर भक्त का यश रूप शोर का विस्तार सव जगत मे हो जाता है फिर उसकी हृदय रूप नगरी मे दैवि गुण रूप प्रजा सुख से वसती है । न किसी पर कोई जुलम करता है और केवल दैवि गुण होने से किसी गुण का किसी अन्य गुण पर जोर भी नही होता है, परम शाति रहती है ।

राजा फिरे विपति का मारा, घर घर टुकडा मागे भीख ।
पाय पयादा निशि दिन डोले, घोडा चाल सके नहि बीख ।।
आक अरड की लकडी चू से, छाडे बहुत रस भरे ईख ।
'सुन्दर' कोउ जगत मे विरला, या मूरख को लावे सीख ।।२५।।

राज फिरे०—चेतन के प्रतिबिम्व युक्त मन रूप राजा अनेक आशा तृष्णादि विपत्ति का मारा इन्द्रिय रूप घरो में फिरता है और किंचित विषय सुख रूप टुकडा की भिक्षा मागता है ।

पांय पायदा॰—शुभ अशुभ मनोभाव रूप दो पैरो से विविधि प्रकार की वृत्ति रूप गति से स्वप्न रूप रात्रि और जाग्रत रूप दिन मे पयादा= स्थूल शरीर रूप घोडे की सहायता बिना ही सकल्प विकल्प करना रूप में डोले=फिरता है। स्थूल शरीर रूप घोडा निष्फल मनोरथो से वीख= एक पग भी नही चल सकता।

आक अरंड को॰—नाना मनोरथो से उत्पन्न वासना फलदाता नही होने से आक अरड की लकडी के समान हैं, मनोराज्य करना ही उनका चूंसना है।

छाड़े बहुत॰—ईश्वर भक्ति ज्ञानादिक परम सुख रूप रस से भरे हुये ईष=गन्ना के समान है, उनको त्यागता है। सुन्दरदासजी कहते हैं— इस जगत में ऐसा कोई बिरला ही सत्पुरुष होता है, जो अशुद्ध मन और चचल मन वाले को निष्काम कर्म से मन शुद्ध और ईश्वर उपासना से मन की चचलता हटा कर ज्ञान मार्ग मे लाने की शिक्षा देकर अद्वेत स्थिति मे लाकर ब्रह्म का साक्षात्कार करावे।

पानी जले पुकारे निश दिन, ताको अग्नि बुझावे आइ।
हू शीतल तू तप्त भया क्यो, बारम्बार कहै समझाइ॥
मेरी लपट तोहि जो लागे, तो तू भी शीतल हो जाइ।
कबहूं जलन फेरि नहि उपजे, 'सुन्दर' सुख में रहै समाइ॥२६॥

पानो जले॰—प्रभु के सामान्य प्रेम युक्त अन्त करण पानी है, वह राम विरह से जलता है=सतप्त होता है और रात दिन दर्शन के लिये राम को पुकारता=प्रार्थना करता है, तब ज्ञान रूप अग्नि अन्त करण में आकर स्वरूप ज्ञान से विरह रूप जलन बुझाता है=मिटाता है और कहता है मेरी उत्पत्ति तेरे से ही हुई है फिर भी मैं तो शीतल, शात हू, तू कैसे सतप्त हुआ है यही बात बारम्बार कह कर कहता है फिर भी यदि मेरी लपट=ससार मिथ्या है ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण और सत्य है। सशय विपर्यय रहित ब्रह्म ही तेरा स्वरुप है, ऐसा ज्ञान होना ही ज्ञानाग्नि की लपट है। उक्त लपट तेरे लग जाय तो तू भी शीतल हो जायगा और फिर जलन कभी भी नही उत्पन्न होगी। सुन्दरदासजी कहते हैं-तू स्वरूप सुख मे समा जायगा। ज्ञान होने के पश्चात् अन्त करण की ब्रह्माकार वृत्ति ही रहती है, विरह तथा त्रिताप से जलन होने का प्रसग ही नही आता है।

खसम पडा जोरू के पीछे, कहा न माने भौडी राड।
जिततित फिरे भटकती यू ही, तैं तो किये जगत मे भाड॥

मांस खाय--अनात्म पदार्थों की ममता रूप मास खाय=नष्ट करे।
मदिरा पुनि पीवे - और मोह रूप मदिरा को पीवे=हृदय मे मोह नहीं होने दे यही पीना है।

ताहि मुक्ति का संशय नांहि—उक्त प्रकार पुरुषार्थ करने वाले पुरुष की मुक्ति होने मे कोई सशय नही रहता, वह तो मुक्ति रूप हो होता है।
अकर्म गहै कर्म सब त्यागे—अकर्म ब्रह्म को आत्म रूप से ग्रहण करते हैं और जन्मादि दु खो के हेतु सकाम कर्म सब त्याग देते है। ताकी सगति पाप नशांहि है—उन सतजी की सगति करने से सब पाप नष्ट हो जाते है।
ऐसी कहै सु सत कहावे—उक्त सवइया मे कहा है, ऐसी ही कथा कहते है वे ही ज्ञानी पुरुष सत शास्त्रादि सर्वजनो के द्वारा सत कहे जाते हैं।
'सुन्दर' और उपज मर जांहि—सुन्दरदासजी कहते है और अज्ञानी तो वरम्बार जन्मते मरते हैं।

बढई चरखा भला सभारा, फिरने लागा नीकी भाति।
वहू सास को कहि समझावे, तू मेरे ढिग बैठि काति॥
नन्हा तार न टूटे कबहू, पूनो घटे दिवस नहिं राति।
'सुन्दर' विधि से बुने जुलाहा, खासा निपजे ऊची जाति॥१९॥

बढई चरखा०—सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ईश्वर रूप बढई=खाती ने सब शरीरो से श्रेष्ठ ममुष्य शरीर रूप चरखा भला सवारा=बहुत अच्छा बनाया। यह मनुष्य शरीर शुभ कर्मो तथा सत्सगादि से ज्ञान के साधनो मे प्रवृत्त हुआ और नीकी भाति=भली प्रकार ज्ञान साधनो मे फिरने लगा=अभ्यास करने लगा। उम अभ्यास से बुद्धि ने विवेक उत्पन्न किया, विवेक का अद्वैत श्रुति से सम्बन्ध होने से श्रुति विचार वृत्ति विवेक की वहू है, वह समझा कर बुद्धि रूप सासू को कहती है तू मेरे ढिग=पास बैठ कर कात=लक्ष्य मे स्थित रह कर स्वरूपानुसधान रूप स्मरण कर उस नन्हा=सूक्ष्म स्मरण का तार=प्रवाह कभी भी टूटना नही चाहिये, स्वरूपाकार वृत्ति रूप पूनी रात-दिन घटनी नही चाहिये, सदा एकरस रहनी चाहिये।

'सुन्दर' विधि से०-सुन्दरदासजी कहते हैं—श्रवणादि ज्ञान साधनो से जीव जुलाहा स्वरूप साक्षात्कार रूप कपडा बूनता है, तब खासा ऊची जात=सर्व अनर्थ की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति रूप सुन्दर मुक्ति होती है।

घर घर फिरे कुमारी कन्या, जने जने से करती सग।
वैश्या सु तो भई पतिवरता, एक पुरुष के लागी अग॥

वृक्ष वन्ध
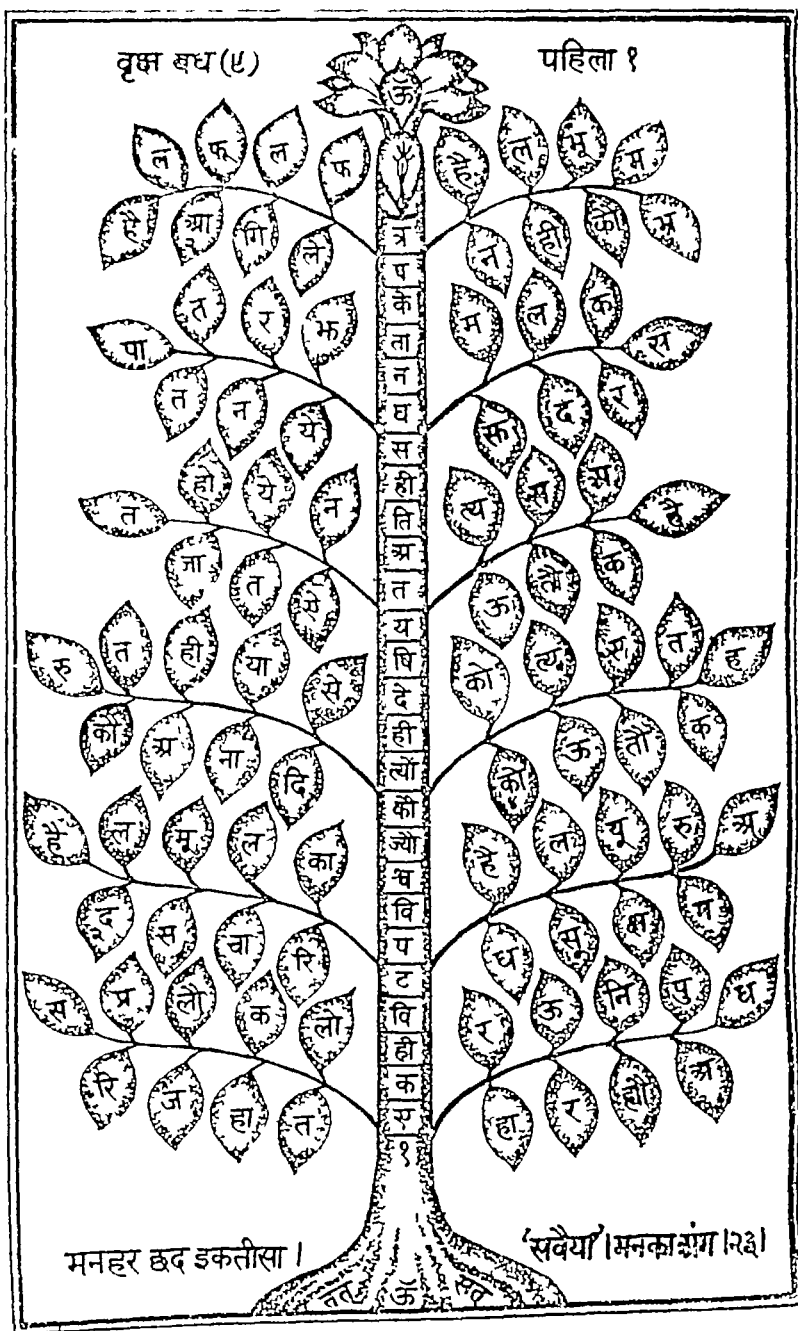
वृक्षबन्ध (१)

मनहर छन्द

एक ही विटप विश्व ज्यौं कौ त्यौं ही देखियत
अति ही सघन ताके पत्र फल फूल है।
आगिले झरत पात नये नये होत जात
ऐसे याही तरु कौ अनादि काल मूल है॥
दस चारि लोक लौं प्रसरि जहा तहा रह्यौ
अध पुनि ऊरध सूक्षम अरु थूल है।
कोऊ तौ कहत सत्य कोऊ तौ कहै असत्य
सुन्दर सकल मन ही कौ भ्रम भूल है॥१॥

पढने की विधि

इस वृक्ष बध के छन्द को वृक्ष के तने की जड के ऊपर ए अक्षर से प्रारभ करना चाहिये। ए अक्षर पर १ का अङ्क नीचे को लगा हुआ है। ऊपर पढते जाय त्र तक पढें, फिर बाईं ओर को फ अक्षर से पत्तो मे पढें। प्रथम चरण है मे पूरा करें जहा पूर्ण-विराम का विन्दु लगा है। प्रत्येक चरण के आदि के अक्षर के नीचे १-२-३-४ के अङ्क और अत के अक्षर पर पूर्ण विराम के विन्दु (फुलस्टाप) लगा दिये गये है जिससे पढने मे सुविधा रहै। पत्तो के अक्षरो के पढने मे यह सावधानी रक्खी जाय कि टहनी के (पढने मे) सबसे पिछले पत्ते के अक्षर को पास की दूसरी टहनी के निकट वाले पत्ते के अक्षर से मिला कर पढें। पत्तो के अक्षरो का क्रम लगातार कवि महात्मा ने ऐसा ही रखा है। दूसरा चरण छठे पत्ते के आ अक्षर से पढकर ३७ वे पत्ते (पाँचवी टहनी के ५ वे) मे पूरा करे। इस ही प्रकार ३ रे चरण को द से प्रारम्भ करके आठवी टहनी के ९ नवे अक्षर मे पूर्ण करें। और चौथे चरण को उक्त टहनी के आगे ९ वी टहनी के प्रथम अक्षर को से प्रारम्भ करके १२ वी टहनी के अतिम पत्ते के अक्षर मे पूर्ण करे। चतुर रचनाकार ने टहनियो के पत्तो की गणना दोनो ओर के प्रथम तीन की (प्रथम कीट और आगे के दो २ की ७-७) २२-२२। और पिछले तीन की ९-९ यो २७ रक्खी है। यो तने की २६+दोनो ओर ९८=१२४ हैं। इस युक्ति से चरणान्त अक्षर, वाम पार्श्व मे टहनी के अन्त के पत्ते मे और दाहिने मे तने के पास के ऊपर के प्रथम पत्ते मे आया है कही भी मध्य मे नही आया है। इससे छन्द के पढने और दर्श मे सुन्दरता आ गई है।

कलियुग माही सतयुग थापा, पापी उदै धर्म का भग ।
'सुन्दर' कहै सु अर्थ हि पावे, जोनी के करतजे अनग ।।२०।।

घर घर फिरे कुमारी कन्या—सतगुरू के उपदेश रहित जिज्ञासु की कच्ची बुद्धि ही कुमारी कन्या है, घर-घर वह अनेक सत्सग सभाये रूप घरो मे फिरती है । जने जने से करती सग-नाना मत मतातरो मे लगती है ।

वेश्या सो तो भई पतिवरता०—नाना पदार्थो मे विचरने वाली व्यभिचारणी बुद्धि वेश्या थी वही एक परमात्मा रूप पुरुष के स्वरूप चिन्तन रूप अग मे लग कर पतिव्रता हो गई ।

कलियुग माही०—रजोगुण तमोगुण वृत्ति रूप मलीनता धम वाला मन ही कलियुग है, उसमे सत्सग द्वारा विवेक, वैराग्य, क्षमा, धैर्य आदि श्रेष्ठ वृत्तियो ने सतयुग की स्थापना की, उस सतयुग मे इन्द्रियो को मारने वाले=जीतने वाले पापियो का उदै=भाग्योदय हुआ, वे सदा सुखी रहने लगे ।

धर्म का भंग—इन्द्रियो की पालना करना रूप धर्म का भंग=नाश हुआ ।

सुन्दर कहै०—सुन्दरदास कहते हैं इस सबइया का अर्थ वही प्राप्त करेगा जो मन वच कर्म से भली प्रकार काम को जीत कर निष्काम होगा ।

विप्र रसोई करने लागा, चौका भीतर बैठा आइ ।
लकडी माही चूल्हा दीया, रोटी ऊपर तवा चढाइ ।।
खिचडी माही हँडिया राधी, सालन आक धतूरा खाइ ।
'सुन्दर' जीमत अति सुख पाया, अबके भोजन किया अघाइ ।।२१।।

शुद्ध अन्त करण वाला जीव ही ब्राह्मण है, वह साधन रूप रसोई करने लागा तब विवेकादि चार साधन रूप चौका आकर उसके भीतर बैठ गया=साधन सम्पन्न हुआ । नाना प्रकार के कर्म रूप लकडियो मे ब्रह्म का उपदेश रूप चूल्हा दिया, उसकी ज्ञान रूप अग्नि से कर्म रूप सब लकडिया जल गई । प्रारब्ध कर्म भोग रूप रोटी के ऊपर, मैं अकर्ता, अभोक्ता हू यह निश्चय ही तवा है । प्रारब्ध कर्म शरीर के हैं, उन की चिन्ता मुझे नही है, यही चढाना है । वैराग्य रूप जल, बोध रूप चावल, उपराम रूप मू ग यही खिचडी है । भोगो मे दीनता, सत्यतादि धर्म युक्त समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म प्रपच रूप माया ही हडिया है उसका बाध करना ही राधना है । अनेक राग द्वेषादि दुर्वासना ही आक, धतूरा है,

उनका सालन=शाक बनाकर खाय=उनको जीत कर उनका अभाव करना ही खाना है ।

सुन्दरदासजी कहते है—कार्य सहित अज्ञान की निवृत्ति रूप रसोई, बासना की निवृत्ति रूप शाक से जीमत=जीमते हुये अत्यन्त ब्रह्मनन्द सुख प्राप्त किया । अब के=मनुष्य शरीर मे गुरु श्रुति, सत आदि की कृपा से जीवन्मुक्ति का अद्भुत आनन्द रूप भोजन तृप्त होकर किया है, ऐसा पहले नही किया था ।

बैल उलट नाइक को लादा, वस्तु माहि भर गौनि अपार ।
भली भाति का सौदा कीया, आय दिसत या ससार ॥
नाइकनी पुनि हरषत डोले, मोहि मिला नीका भरतार ।
पूजी जाय साह को सौपी, सुन्दर' शिर से उतरा भार ॥२२॥

अन्त करण सहित चेतन जीव ही बैल है, क्यो ? =कर्ता, भोक्ता, रागद्वेषादि अन्त करण के धर्म वैसे ही प्राण, इन्द्रिय, देह के धर्म रूप भार अज्ञानकाल मे ढोता है, उसने अज्ञान दशा मे जो नाइक=मुखिया मन है उसको लादा=विवेक को प्राप्त करके कर्ता आदि का भार मन पर पटक दिया=यही लादना है । इस प्रकार निरभिमानी शुद्ध जीव ने परमात्मा के भाव रूप वस्तु मे अपार शम दमादि गौनि=गुण भरे और ससार रूप देशातर मे मनुष्य शरीर पाकर भली भाति का सौदा किया= परमात्मा मे भाव भक्ति करना रूप अच्छा व्यापार किया। फिर दृढ निश्चय रूप बुद्धि वृत्ति रूप नाइकनी उक्त व्यापार से हर्षित होकर डोले=शुभ कर्मो मे प्रवृत्त होती है और कहती है मुझे अतिश्रेष्ठ शुद्ध मन रूप भरतार अच्छा मिला है । फिर प्रभु की शरण जाकर तन मन प्राणादि सर्व पूँजी परमात्मा को सौपी=समर्पण करदी, सुन्दरदासजी कहते—है तब शिर से जन्म मरण कर्म फल सुख दु ख, शोक, चिन्तादि सर्व भार उतर गया ।

बणिक एक बनिजी को आया, पडे तावडा भारी भैठि ।
भली वस्तु कुछ लीनी दीनी, खैंच गठिडिया बाधी ऐठि ॥
सौदा किया चला पुनि घर को, लेखा किया बडीतल बैठि ।
'सुन्दर' साह खुशी अति हूवा, बैल गया पूजी मे पैठि ॥२३॥

एक जीव-रूप बणिक=व्यापारी ससार रूप देश मे सुकृत भक्ति आदि बनिजी=व्यापार करने को आया किन्तु ससार मे काम क्रोधादि तावडा (धूप) भारी भैठि=बहुत पडता है । शुभ कर्मों को करने का समय ही नही मिलता है, तो भी भली वस्तु रूप राम नाम चिन्तन का लाभ लिया और

शुभ उपदेशादि कुछ दिया। उक्त प्रकार शुभ उपदेश और रामभक्ति रूप वस्तुओ को दृढ निश्चय रूप से खैच कर बाधी और हृदय मे रख ली। उक्त प्रकार भजन, ध्यानादिक व्यापार करके परमात्मा रूप घर को चला और अति विस्तार वाली बुद्धि रूप बड वृक्ष के तले बैठ कर विचार रूप लेखा=हिसाब किया=भगवान् मे चित्त को लगाया।

सुन्दरदासजी कहते हैं—जब पबु=शरीर रूप बैल परमेश्वर रूप पूँजी मे पैठा=प्रवेश कर गया=समर्पण हो गया तब जीव रूप साहूकार को अति हर्ष हुआ=परमेश्वर के समर्पण होने पर जन्मादि संसार की प्राप्ति नही होती।

पहराइत घर मुसा साहका, रक्षा करने लागा चोर।
कोतवाल काठा कर बाधा, छूटे नही साझ अरु भोर॥
राजा गाव छोडकर भागा, हूवा सकल जगत मे शोर।
परजा सुखी भई नगरी मे, 'सुन्दर' कोई जुलम न जोर॥२४॥

पहराइत०—काम क्रोधादि पहरा देने वालो ने ही जीव रूप साहूकार के हृदय घर का दैवि गुणा और ज्ञान धन मुसा=चुराने लगे तब अनेक जन्मो के पापो को चुराने वाला ईश्वर नाम रूप चोर दैवि गुण और ज्ञान की रक्षा करने लगा और अज्ञान दशा के मन रूप कोतवाल को सयम द्वारा दृढ़ता से ईश्वर चिन्तन मे बाध दिया, अब ईश्वर चिन्तन से साय-काल, प्रात काल, आदि किसी भी समय मे नही छूट सकता=विकारो मे नही जा सकता, उक्त स्थिति होने पर रजोगुण रूप राजा हृदय ग्राम को छोडकर भागा=हृदय को त्याग गया। विकरो से रहित ऐसे ईश्वर भक्त का यश रूप शोर का विस्तार सब जगत मे हो जाता है फिर उसकी हृदय रूप नगरी मे दैवि गुण रूप प्रजा सुख से बसती है। न किसी पर कोई जुलम करता है और केवल दैवि गुण होने से किसी गुण का किसी अन्य गुण पर जोर भी नही होता है, परम शाति रहती है।

राजा फिरे विपति का मारा, घर घर टुकडा मागे भीख।
पाय पयादा निशि दिन डोले, घोडा चाल सके नहिं बीख॥
आक अरड की लकडी चू से, छाडे बहुत रस भरे ईख।
'सुन्दर' कोउ जगत में विरला, या मूरख को लावे सीख॥२५॥

राज फिरे०—चेतन के प्रतिबिम्ब युक्त मन रूप राजा अनेक आशा तृष्णादि विपत्ति का मारा इन्द्रिय रूप घरो में फिरता है और किंचित विषय सुख रूप टुकडा की भिक्षा मागता है।

पांय पायदा०—शुभ अशुभ मनोभाव रूप दो पैरो से विविधि प्रकार की वृत्ति रूप गति से स्वप्न रूप रात्रि और जाग्रत रूप दिन में पयादा= स्थूल शरीर रूप घोडे की सहायता बिना ही सकल्प विकल्प करना रूप मे डोले=फिरता है। स्थूल शरीर रूप घोडा निष्फल मनोरथो से वीख= एक पग भी नही चल सकता।

आक अरंड को०—नाना मनोरथो से उत्पन्न वासना फलदाता नही होने से आक अरड की लकडी के समान हैं, मनोराज्य करना ही उनका चूंसना है।

छाड़े बहुत०—ईश्वर भक्ति ज्ञानादिक परम सुख रूप रस से भरे हुये ईप=गन्ना के समान है, उनको त्यागता है। सुन्दरदासजी कहते हैं— इस जगत में ऐसा कोई बिरला ही सत्पुरुष होता है, जो अशुद्ध मन और चचल मन वाले को निष्काम कर्म से मन शुद्ध और ईश्वर उपासना से मन की चचलता हटा कर ज्ञान मार्ग मे लाने की शिक्षा देकर अद्वेत स्थिति मे लाकर ब्रह्म का साक्षात्कार करावे।

पानी जले पुकारे निश दिन, ताको अग्नि बुझावे आइ।
हू शीतल तू तप्त भया क्यो, वारम्बार कहै समझाइ ।।
मेरी लपट तोहि जो लागे, तो तू भी शीतल हो जाइ।
कबहूं जलन फेरि नहिं उपजे, 'सुन्दर' सुख मे रहै समाइ ।।२६।।

पानो जले०—प्रभु के सामान्य प्रेम युक्त अन्त करण पानी है, वह राम विरह से जलता है=मतप्त होता है और रात दिन दर्शन के लिये राम को पुकारता=प्रार्थना करता है, तब ज्ञान रूप अग्नि अन्त करण मे आकर स्वरूप ज्ञान से विरह रूप जलन बुझाता है=मिटाता है और कहता है मेरी उत्पत्ति तेरे से ही हुई है फिर भी मैं तो शीतल, शात हू, तू कैसे ससप्त हुआ है यही बात वारम्बार कह कर कहता है फिर भी यदि मेरी लपट=ससार मिथ्या है ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण और सत्य है। सशय विपर्यय रहित ब्रह्म ही तेरा स्वरुप है, ऐसा ज्ञान होना ही ज्ञानाग्नि की लपट है। उक्त लपट तेरे लग जाय तो तू भी शोतल हो जायगा और फिर जलन कभी भी नही उत्पन्न होगी। सुन्दरदासजी कहते हैं-तू स्वरूप सुख मे समा जायगा। ज्ञान होने के पश्चात् अन्त करण की ब्रह्माकार वृत्ति ही रहती है, विरह तथा त्रिताप से जलन होने का प्रसग ही नही आता है।

खसम पडा जोरू के पीछे, कहा न माने भौडी राड।
जितितित फिरे भटकती यू ही, तैं तो किये जगत मे भाड ।।

तोहू भूख न भागी तेरी, तूं गिल बैठी सारो माड।
'सुन्दर' कहै सीख सुन मेरी, अब तूं घर घर फिरबा छाड ।।२७।।

खसम पडा०—अन्त:करण सहित जीवरूप खसम=पति आशा, तृष्णा युक्त बुद्धि रूप जोरू=स्त्री ने शुभाशुभ कर्मो से चौरासी लाख योनियो मे भटकाकर अनन्त दु ख दिये। जब मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ, उसमे सत्सगादि से बुद्धि रूप स्त्री कुछ फिरी तब जीव रूप खसम उसके पीछे पडा=तू ने मेरे को वहुत दुःख दिये हैं, अव मुझ से ऐसे दु:ख सहन नही होते। अत अब तू ज्ञान मे प्रवृत्त होकर वासनाओ का त्याग कर इत्यादि वचनो से वहुत समझाता है किन्तु वासना के वश हुई। भौंडी=भ्रष्ट राड कहना नही मानती=ज्ञान मे प्रवृत्त नही होती। जिततित=इधर-उधर विषयो मे ही यू ही=व्यर्थ ही भटकती फिरती है, कहना नहीं मानती तब जीव क्रोधित होकर कहता है—तूने तो मुझ को भाड=फजीहत किया है, मेरी परिपूर्णता रूप प्रतिष्ठा, अद्वैत रूप नाम, अखडानन्द रूप धन आदि को खो दिया है। ऐसी मेरी महानता रूप माड=ब्रह्माण्ड को गिल=खाकर बैठी है, तो भी तेरी तृष्णा रूप भूख न भागी=नही मिटी है। तू ने ब्रह्म से जीव तो बना दिया अब क्या पत्थर बनावेगी ? सुन्दरदासजी कहते हैं—हे बुद्धि ! अव तो मेरी सीख=शिक्षा सुन के इस मनुष्य जन्म मे ज्ञान को प्राप्त करके नाना विषय रूप घरो में अथवा नाना योनि रूप घरों मे फिरना छोड दे। ज्ञान होने पर विषय वासना के अभाव से जन्म मरणादि ससार भ्रमण नही होता। यह श्रुति सिद्ध है।

पथी माहिं पथ चलि आया, सो वह पथ लखा नहिं जाय।
वाही पथ चला उठ पथी, निर्भय देश पहूचा आय ।।
तहा दुकाल पडे तहिं कवहू, सदा सुभिक्ष रहा ठहराय।
'सुन्दर' दुखी न कोऊ दीसे, अक्षय सुख मे रहै समाय ।।२८।।

मोक्ष रूप देश के ज्ञान मार्ग मे चलने वाला मुमुक्षु जीव ही पथी है, उसी ज्ञान रूप पथ=मार्ग से चल आया=गुरु, शास्त्र, साधन द्वारा अन्त.करण की अन्तिम वृत्ति रूप से चल=आया=प्राप्त हुआ। सो वह पथ लखा नहिं जाय=ज्ञानी की गति रूप पथ सूक्ष्म होने से देखा नही जाता। उक्त मुमुक्षु रूप पथी अज्ञान से उठकर उसी ज्ञान मार्ग मे चला=ज्ञानी होकर विचरने लगा। विचरते विचरते कर्मो का क्षय होने पर विदेह मुक्ति रूप निर्भय देश मे पहुँच गया=ब्रह्म से एक हो गया। वहा जन्म मरणादि दुकाल नही पडता, वहा तो सदा आनन्दरूप सुभिक्ष=सुकाल ही रहता है। सुन्दरदासजी कहते हैं—उस विदेह मोक्ष मे कोई भी दु.ख नही दीखता क्यो ?

जो ज्ञान द्वारा विदेह मुक्ति को प्राप्त होते हैं वे सर्व उपाधियों से रहित ब्रह्मरूप होकर ही स्थित रहते हैं। वह अक्षय सुख रूप है उसमें दुःख का लेश भी नही है, वहा तो ब्रह्म स्वरूप सुख मे ही समा कर रहते हैं।

एक अहेरी वन मे आया, खेलन लागा भली शिकार।
कर मे धनुष कमर मे तरकस, सावज घेरे बारम्बार ॥
मारा सिंह व्याघ्र पुनि मारा, मारी बहुरि मृगन की डार।
ऐसे सकल मार घर लाया, 'सुन्दर' राजहिं किया जुहार ॥२९॥

एक अहेरी०—उत्तम संस्कार युक्त अधिकारी ही अहेरी=शिकारी है, संसार वन मे आया=कर्म वश नर तन को प्राप्त किया, उस शिकारी ने अन्त करण की वृत्ति रूप हाथ मे गुरु द्वारा श्रवण किये हुये महावाक्य का अर्थ रूप धनुष धारण करके अनेक युक्ति और विचार रूप बाण अन्त करण तरकस=भाथा मे भरकर हृदय रूप कमर मे बाधा और श्रवणादि सहकारियो द्वारा सावज=मारने योग्य शिकार को बारम्बार घेरा=रोका, ज्ञान रूप तलवार से मूला अज्ञान रूप सिंह को मारा क्रोध रूप व्याघ्र को क्षमा के बाण से मारा फिर मारने योग्य अन्य सर्व आसुर गुण तथा इन्द्रियो को मारा=जीत लिया ऐसे मुक्ति मे बाधक सबको जीत कर घर लाया=हृदय मे लाकर सबको अन्तर्निष्ठ किया फिर ब्रह्मरूप राजा को जुहार=प्रणाम करके उसी मे मिल गया। उक्त प्रकार प्रपंच बाध निश्चय से मुक्त होता है।

शुक के वचन अमृत मय ऐसे, कोकिल धार रहैं मन माहिं।
सारो सुने भागवत कबहू, सारस तो ऊपावे नाहि ॥
हंस चुगे मुक्ताफल अर्थहिं, 'सुन्दर' मान सरोवर न्हाहि।
काक कवीश्वर विषई जेते, ते सब दौड करहिं जाहि ॥३०॥

इस ३० नं० के सवइया मे विपर्यय नही है, हीरा वेधि अलकार है इस के अक्षरो मे अर्थ भी सिद्ध होता है और पक्षियो के नाम भी निकलते हैं। शुक=सूवा पक्षी भी है और शुक समान कवि होता है, वह श्रद्धावान होने से जितना गुरुमुख से पढा है उतना ही ग्रहण करके कथन करता है। कोकिल पक्षी के समान कवि होता है, वह पक्षपात से रहित होने से अधिक की अपेक्षा भी नही करेगा और किसी की उपेक्षा भी नहीं करेगा, सुना है वही मन मे धारण करेगा। सारो=मैना के समान कवि होता है वह रहस्य का अभिलाषी होने से सुनते ही उसमे लीन हो जायगा। सारस पक्षी के समान कवि होता है, वह ज्ञानी होने से भली प्रकार ग्रहण करके भीतर की वासना से रहित रहेगा। हंस के समान कवि होता है, वह

मुमुक्षु होने से विवेक बुद्धि से सारासार का विचार करेगा। काक के समान कवि होता है, वह विषयी होने से नारी के नख-शिख शृगार को ही ग्रहण करेगा और कथन उसी का करेगा। उक्त प्रकार पक्षियो के नाम तथा उनके समान ही कवियो का निर्देश उक्त अर्थ मे मिलता है।

भागवतत् अलंकार—भागवत मे शुकदेवजी के वचन अमृत रूप मे है किन्तु कलियुग मे कोई विरला ही मन मे धारणा करके रहेगा। कभी सारा भागवत सुने तो भी उसके हृदय मे भागवत् के सार के सहित भाव उत्पन्न नही होता। सत=हस तो भागवत के एकादश स्कध रूप मानसरोवर मे विचार रूप स्नान करके, उसमे महावाक्यो के अर्थरूप मोतियो को चुगता है। जितने विषयी कवीश्वर है, वे तो सब नारी के शरीर रूप करक=अस्थि पजर, नख, शिख पर ही जाते है, शृगार का ही कथन करते है। उक्त प्रकार उक्त सवइये मे सामान्य अर्थ निकलता है। विशेष विज्ञजन स्वयं विचार करे।

नष्ट होहि द्विज भ्रष्ट क्रिया कर, कष्ट किये नहि पावे ठौर।
महिमा सकल गई तिन केरी, रहत पगन तल सब शिर मौर॥
जित तित फिरेहि नही कुछ आदर तिन को कोऊ न घाले कौर।
'सुन्दरदास' कहे समझावे, ऐसी कोऊ करो मत और॥३१॥

जीव रूप द्विज=ब्राह्मण=अपने स्वरूप के विस्मरण रूप भ्रष्ट क्रिया करके नष्ट होता है=सर्वाधिष्ठान पने को छोड़ कर ससारी=जीव भाव को प्राप्त होता है, यही भ्रष्ट होना है, सो पीछे बहिरग साधनो का कष्ट सहा ने पर स्वरूप रूप ठौर=स्थान नही प्राप्त होता।

महिमा सकल गई तिन केरी—जीव रूप ब्राह्मण की ब्रह्म रूप होना रूप महिमा सब चली गई, ब्रह्मरूप सब का शिरमौर था सो पगनतल=सर्व देवादि के चरणो के नीचे दीन हुआ स्थित रहता है और जिततित=चौरासी लाख योनियों रूप पराये=पचभूतो के रचित घरो मे फिरता है किन्तु स्वरूप स्थिति जन्य स्वतन्त्रता रूप कुछ भी आदर नही मिलता और तिनको कोई उक्त देवादि भी स्वकर्म रूप श्रम बिना एक कौर=ग्रास भी खाना नही देते है। सुन्दरदासजी कहते है—ऐसी=स्वरूप विस्मरण रूप भ्रष्ट क्रिया और कोई पुरुष भी न करे किन्तु विचारादि द्वारा जैसे बने सदा स्वरूप मे रत रहे—

शास्त्र वेद पुराण पढे किन, पुनि व्याकरन पढे जे कोइ।
सध्या करे नही षट कर्महि, गुरु मुख ज्ञान विचारे सोइ॥

राखि काम तब ही बन आवे, मन मे सब तज राखे दोइ ।
'सुन्दरदास' कहै सुन पडित, राम नाम बिन मुक्त न होइ ।।३२।।

शास्त्र-साख्य, योग न्याय, वैशेषिक, मीमासा और वेदान्त-ये षट शास्त्र । वेद-ऋग, यजु साम और अथर्वण ये चार वेद । पुराण—ब्रह्म, पद्म, वैष्णव, शैव, भागवत्, नारदीय, मार्कंडेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लंग, वाराह, स्कध, वामन, कौर्म्य, मात्स्य, गारुड और ब्रह्माण्ड, ये १८ पुराणों को क्यों न पढें अर्थात् पढे और पाणिनी आदि नव व्याकरण उनको भी जो कोई पढे । सध्या करे और स्नाना, जप, होम आदि त्रिकाल सध्या करे षट कर्म-दान देना, लेना, पढना, पढाना, यज्ञ करना कराना । तीन गुणों का और वही काल का विचार भी करे । श्रेष्ठ काम तो तब ही बनता है, जब सब प्रपच को त्याग कर दो अक्षर 'राम' मन मे सदा चिन्तन रूप से धारण करे । सुन्दरदासजी कहते हैं—हे पडित ! सुन सब कुछ करने पर भी ब्रह्म रूप राम का सदा चिन्तन स्वरूप अखण्ड वृत्ति बिना मुक्ति नही होती ।

इति विपर्यय शब्द का अग २२

अथ अपने भाव का अग २३

इन्दव— एकहि आपन भाव जहा तहँ बुद्धि के योग से विभ्रम[1] भासे ।
जो यह कूर तो कूर वहा पुनि याके खिजे से वहा पुनि खासे[2] ।।
जो यह साधु तो साधु वहा पुनि याके हँसे से वहा पुनि हासे[3] ।
जैसा ही आप करे मूख 'सुन्दर' तैसा ही दर्पण माहि प्रकासे ।।१।।

भ्राति १ खिजना २ हँसता ३ जैसा अपना मुख होता है वैसा ही दर्पन मे दीखता है । वैसे ही जैसा अपने मन मे भाव होता है वैसा ही दूसरे के मन मे दिखता है

मनहर— जैसे श्वान काच के सदन[1] मध्य देखि और,　　मकान[1]
भूक भूक मरत करत अभिमान जू ।
जैसे गज फटिक शिला से अरि[2] तोरे दत,　　अन्यगज[2]
जैसे सिह कूप माहि उझक[3] भुलान जू ।।　　उछला[3]
जैसे कोऊ फेरी खात फिरत जगत देखे,
तैसे ही 'सुन्दर' सब तेरा ही अज्ञान जू ।
आप ही का भ्रम सो तो दूसरा दिखाई देत,
आपको विचारे कोऊ दूसरा न आन जू ।।२।।
नीच ऊच बुरा भला सज्जन दुर्जन पुनि,
पण्डित मूरख शत्रु मित्र रक राव है ।

मान अपमान पुन्य पाप सुख दुख दोऊ,
स्वरग नरक बंध मोक्ष हू का चाव[1] है ।। अभिलाषा[1]
देवता असुर भूत प्रेत कीट कुञ्जर[2] हू, हाथी[2]
पशु अरु पक्षी श्वान शूकर[3] बिलाव है । सूअर[3]
'सुन्दर' कहत यह एक ही अनेक रूप
जोई कुछ देखिये सो अपना ही भाव है ।।३।।

याही[1] के जगत काम याही के जगत क्रोध, इसके ही[1]
याही के जगत[2] लोभ याही मोह माता है । उत्पन्न[2]
याका[3] याही बैरी होत याका याही मित्र होत, इसका[3]
याको याही सुख देत याही दुख दाता है ।।
याही ब्रह्मा याही रुद्र याही विष्णु देखियत,
याही देव दैत्य यक्ष सकल सघाता[4] है । समुदाय[4]
याही का प्रभाव सो तो याही को दिखाई देत,
'सुन्दर' कहत याही आतमा विख्यात है ।।४।।

याही का तो भाव याके शक[1] उपजावत है, शका[1]
याही का तो भाव याहि नि शक करत है ।
याही का तो भाव याके भूत प्रेत होय लागे,
याही का तो भाव याकी कुमति हरत है ।।
याही का तो भाव याको वायु का बघूरा करे,
याही का तो भाव याहि थिर के धरत है ।
याही का तो भाव याको धार मे बहाय देत,
'सुन्दर' याही का भाव याहिं ले तरत है ।।५।।

आप ही का भाव सो तो आपको प्रकट होत,
आप ही आरोप[1] कर आप मन लाया है । खडा करके[1]
देवी अन्य देव कोउ भाव से उपासे ताहि,
कहै मैं तो पुत्र धन इन ही से पाया है ।।
जैसे श्वान हाड को चचोर[2] कर माने मोद, चूस कर[2]
आप ही का मुख फोड लोहू चाट खाया है ।
तैसे ही 'सुन्दर' यह आप ही चेतन आहि[3], है[3]
आपने अज्ञान कर और से बधाया है ।।६।।

इन्दव—नीचे से नीचे रु ऊचे से ऊपर आगे से आगे है पीछे से पीछो ।
दूर से दूर नजीक से नीरे[1] हि आडे से आडा है तीछे से तीछो[2] ।। नजीक[1] टेडा[2]

बाहर भीतर-भीतर बाहर ज्यो कोउ जाने त्योही कर ईछे[3] । देखा[3]
जैसा ही आपना भाव है 'सुन्दर' तैसा हि है दृग खोलि के वीशे[4] ॥७॥ जाना[4]
आपने भाव से सूर सा दीसत आपने भाव से चन्द्र सा भासे ।
आपने भाव मे तार अनन्त जु आपने भाव से विद्युलता से ॥
आपने भाव से नूर है तेज है आपने भाव से जोति प्रकासे ।
तैसा हि ताहि दिखावत 'सुन्दर' जैसा हि होत है जाहि का आसे[1] । ८॥ आशय[1]
आपने भाव से सेवक साहिब आपने भाव सबै कोउ ध्यावै ।
आपने भाव से अन्य उपासत आपने भाव से भक्तहु गावै ॥
आपने भाव से दुष्ट सघारत[2] आपने भाव से बाहर आवै । नष्ट करे[2]
जैसा हि आपना भाव है 'सुन्दर' ताहि को तैसा हि होय दिखावै ॥९॥
आपने भाव से दूर बतावत आपने भाव नजीक बखाना ।
आपने भाव से दूध[1] पिवाया जु आपने भाव से वीठला[2] जाना ॥
आपने भाव से चार[3] भुजापुनि आपने भाव से सीघसा माना ।
'सुन्दर' आपने भाव का कारण, आपहि पूरण ब्रह्म पिछाना ॥१०॥
नामदेवने[1] नामदेवने[2] दादू के शिष्य चतुर्भुज[3] रत्नावती ने सिंह रूप जाना[4]
आपने भाव से होय उदास जु आपने भाव से प्रेम से रोवे ।
आपने भाव मिला पुनि जानत आपने भाव से अन्तर जोवे ॥
आपने भाव रहै नित जागत आपने भाव समाधि मे सोवे ।
'सुन्दर' जैसा हि भाव है आपना तैसा हि आप तहाँ तहँ होवे ॥११॥
आपन भाव से भूल पडा भ्रम देह स्वरूप भया अभिमानी ।
आपने भाव से चचलता अति आपने भाव से बुद्धि थिरानी ॥
आपने भाव से आप विसारत आपने भाव से आतम ज्ञानी ।
'सुन्दर' जैसाहि भाव है आपन तैसा हि होय गया यह प्रानी ॥१२॥

इति अपने भाव का अग २३

अथ स्वरूप विस्मरण का अग २४

इन्दव—जाघट की उनहार है जैसि हि ता घट चेतन तैसा हि दीसे ।
हाथो की देह मे हाथी सा मानत चींटि की देह मे चींटि करी[1] से ॥ जैसा[1]
सिंह की देह मे सिंह सा मानत कीस की देह मे मानत कीसे[2] । वानर[2]
जैसि उपाधि भई जहँ 'सुन्दर' तैसा हि होय रहा नख सीसे ॥१॥
जैसि हि पावक काठ के योग से काठ सा होय रहा इक ठौरा ।
दारघ काठ मे दीरघ लागत चौडे से काठ लागत चौरा ॥
आपन रूप प्रकाश करे जब जालि करे तब और का औरा ।
तैसे हि 'सुन्दर' चेतन आप सु आपको नाहि स जानत बौरा[3] ॥२॥ बावरा[3]

मनहर— अजर अमर अविगत[1] अविनाशी अज, — बिना जाना[1]
कहत सकल जन श्रुति अवगाहे[2] से । — अथाह व विचार[2]
निर्गुण निर्मल अति शुद्ध निरबन्ध नित,
ऐसे हू कहत और ग्रन्थन के थाहे[3] से ।। — पतालगाने से[3]
व्यापक अखण्ड एकरस परिपूरण है,
'सुन्दर' सकल रम रहा ब्रह्म ताहे से ।
सहज सदा उदोत याही से अचम्भा होत,
आपही को आप भूल गया सो तो काहे से[1] ।।३।। — किस हेतु से[1]

जैसे मीन मास को निगल जात लोभ लाग,
लोह का कटक नहिं जानत उमाहे[1] से । — उत्साह से[1]
जैसे कपि गागरि मे मूठी बाध राखे शठ,
छाड नहीं देत मो तो स्वाद ही के वाहे[2] से ।। — बहकाये[2]
जैसे वक नालियर[3] चू च मार लटकत,
'सुन्दर' सहत दुख देखि याही लोह[4] से । — लाभ[4]
देह का सयोग पाय इन्द्रिन के वश पडा,
आप ही को आप भूल गया सुख चाहे से ।।४।।

(४) कच्चे नारेल[3] मे बगला चू च मार कर उसका पानी पीता हैं और देर तक पीते रहने से उस की चू च चिपक जाती है झट का मार कर निकालता है पैर छूट कर लटक जाता है और मर जाता है ।

इन्द्रव—ज्यो कोउ मद्य पिये अति छाकत नाहि कछू सुधि हे भ्रम ऐसा ।
ज्यो कोउ खाय रहै ठग मूरि हि जाने नही कुछ कारण तैसा ।।
ज्यो कोउ बालक शंक उपावत कप उठे अरु मानत भैसा[1] । — भय जैसा[1]
तैसि हि 'सुन्दर' आपको भूल सु देख हु चेतन मानत कैसा ।।५।।
ज्यो कोउ कूप मे झाकि अलापत वैसी हि भाति सु कूप अलापै[1] । — आवाज[1]
ज्यो जल हालत है लगि पौन कहै भ्रम से प्रति बिवहि कापै ।।
देह के प्राण के जे मन के कृत मानत है सब मोहि को व्यापै ।
'सुन्दर' पेच पडा अति सै कर भूल गया भ्रम से भ्रम आपै ।।६।।
ज्यो द्विज कोउक छाडि महातम[1] शूद्र भया कर आपको माना । — महात्म्य[1]
ज्यो कोउ भूपति सोवत सेज मु रक भया सुपने महि जाना ।।
ज्यो कोउ रूप की राशि अतित कुरूप कहै भ्रम भैचक[2] आना । — अचभा[2]
तैसे हि 'सुन्दर' देह सा होकर या भ्रम आपहि आप भुलाना ।।७।।
एक हि व्यापक वस्तु निरन्तर विश्व नही यह ब्रह्म विलासे ।
ज्यों नट मन्त्रन से दिठ[1] बाधत है कुछ और हि और हि भासे ।। — दृष्टि[1]

ज्यो रजनी महि बूझ पडे नहि जो लग सूरज नांहि प्रकासै ।
त्यो यह आपहि आप न जानत 'सुन्दर' हो रहा सुन्दरदासै ।।८।।

मनहर— इन्द्रिन को प्रेरि पुनि इन्द्रिन के पीछे पडा,
आपनी अविद्या कर आप तन गहा है ।
जोई जोई देह को शकट कुछ पडे आय,
सोई सोई माने आप याते दुख सहा है ।।
भ्रमत भ्रमत कहु भ्रम का न आवे वोर[1],
चिरकाल वीता पै स्वरूप को न लहा है ।
'सुन्दर' कहत देखो भ्रम की प्रवलताई,
भूतन मे भूत मिल भूत सा हो रहा है ।।९।।

जैसे शुक नलिका न छोड देत चुगल[1] से,
जाने काहू औरे मोहि वाध लटकाया है ।
जैसे कपि गुजन का ढेर कर माने आग,
आगे धर तापे कुछ शीत न गमाया है ।।
जैसे कोऊ दिशा भूल जात हुता पूरव को,
उलट अपूठा फेरि पच्छिम को आया है ।
तैसे हि 'सुन्दर' सव आप ही को भ्रम भया,
आप ही को भूल कर आप ही वधाया ।।१०।।

जैसे कोऊ कामिनी के हिये पर चूसे वाल,
सुपने मे कहै मेरा पुत्र काहू हया[1] है ।
जैसे कोऊ पुरुष के कण्ठ विषै[2] हुती मणि,
ढूढत फिरत कुछ ऐसा भ्रम भया है ।।
जैसे कोऊ वायु कर वावरा बकत डोले,
और की और ही कहै सुधि भूल गया है ।
तैसे ही 'सुन्दर' निज रूप को विसार देत,
ऐसा भ्रम आप ही को आप कर लया है ।।११।।

दीन हीन छीन सा हो जात छिन छिन मांहि,
देह के सयोग पराधीन सो रहत है ।
शीत लगे घाम लगे भूख लगे प्यास लगे,
शोक मोह मान अति खेद को लहत है ।।
अन्ध भया पगु भया मूक हो वधिर[1] भया,
ऐसा मान मान भ्रम नदी मे वहत है ।

अन्त[1]

पजे से[1]

हरा[1]
मे[2]

वहरा[1]

'सुन्दर' अधिक मोहि याही से अचम्भा आहि[२], है[२]
भूल के स्वरूप को अनाथ सो कहत है ॥१२॥

जैसे कोऊ सुपने मे कहै मैं तो ऊट भया,
जागि कर देखे वहै मनुष स्वरूप है।
जैसे कोऊ राजा पुनि सोइ के भिखारी होय,
आख उघरे से महा भूपति का भूप है ॥
जैसे कोऊ भैचक[1] सा कहै मेरा शिर कहा, चकित[1]
भैचक गये से जाने शिर तो तद्रूप है।
तैसे ही 'सुन्दर' यह भ्रम कर भूला आप,
भ्रम के गये से यह आतमा अनूप है ॥१३॥

जैसे काहू पोसती[1] की पाग पडी भूमि पर, अफीमची[1]
हाथ ले के कहै एक पाग मैं तो पाई है।
जैसे शेख चिल्ली[1] हू मनोरथन किया घर,
कहै मेरा घर गया गागरि गिराई है ॥
जैसे काहू भूत लगा बकत है आक बाक,
सुधि सब दूर भई औरै मति आई है।
तैसे हि 'सुन्दर' यह भ्रम कर भूला आप,
भ्रम के गये से यह आतमा सदाई है ॥१४॥

(१४) एक शेखचिल्ली को एक ने चार पैसे मे घृत की गागरि लेकर चलने को कहा वह चला और मनोरथो का घर बना लिया। उसका बेटा रोटी के लिये बुलाने आया तो उसनेजोर से गरदन हिलाई, गागरि गिर कर फूट गई। घृत वाले ने कहा गागरि नष्ट करदी उसने कहा मेरा तो घर ही नष्ट होग या। यही दृष्टात इसमे है।

आप ही चेतन्य यह इन्द्रिनि चेतन्य कर,
आप ही मगन होय आनन्द बढाया है।
जैसे नर शीत काल सोवत निहाली[1] वोढि, रजाई[1]
आप ही तपत कर आप सुख पाया है ॥
जैसे बाल लकडी का घोडा कर ढाकि चढे,
आप असवार होय आप ही कुदाया है।
तैसे ही 'सुन्दर' यह जड का सयोग पाय,
पर सुख मान मान आप ही भुलाया है ॥१५॥

कहू भूला कामरत कहू भूला साधि जत,
कहूँ भूला गृह मध्य कहू वन वासी है।

कहू भूला नीच जान कहूं भूला ऊच मान,
कहू भूला मोह बाध कहू तो उदासी है ॥
कहू भूला मौन धर कहूं बकवाद कर,
कहू भूला मक्के जाय कहूं भूला कासी है ।
'सुन्दर' कहत अहकार ही से भूला आप,
एक आवे रोज अरु दूजे वडी हांसी है ॥१६॥

मैं बहुत सुख पाया मैं बहुत दुख पाया,
मैं अनन्त पुन्य कीये मेरे पोते[1] पाप है । — जमा[1]
मैं कुलीन विद्यावन्त पडित प्रवीरा महा,
मैं तो मूढ अकुलीन हीन मेरा बाप है ॥
मैं हू राजा मेरी आन फिरे चहु चक्क माहि,
मैं तो रक द्रव्य हीन मोहि तो सन्ताप है ।
'सुन्दर' कहत अहकार ही से जीव भया,
अहकार गये यह एक ब्रह्म आप है ॥१७॥

देह ही सु पुष्ट लगे देह ही दुवला लगे,
देह ही को शीत लगे देह ही को तावरा[1] । — धूप[1]
देह ही को तीर लगे देह को तुपक[2] लगे, — बन्दूक[2]
देह को कृपाण लगे देह ही को घावरा[3] ॥ — घाव[3]
देह ही सुरूप लगे देह ही कुरूप लगे,
देह हो योवन लगे देह वृद्ध डावरा[4] । — लडका[4]
देह ही से बाधि हेत[5] आप विषै[6] मान लेत, — प्रेम[5] मैं[6]
'सुन्दर' कहत ऐसा बुद्धि हीन बावरा ॥१८॥

इन्दव—आप हि चेतन ब्रह्म अखण्डित सो भ्रम से कुछ अन्य परेखै[1] । — जाच[1]
ढू ढत ताहि फिरे जित ही तित साधत योग बनावत भेखै[2] ॥ — भेष[2]
और हु कष्ट करे अतिसै कर प्रत्यक[3] आतम तत्त्व न पेखै । — अन्तर[3]
'सुन्दर' भूल गया निज रूपहि है कर ककण दर्पण देखै ॥१९॥

सूत्र[1] गले महि मेल भया द्विज ब्राह्मण होकर ब्रह्म न जाना । — जनेऊ[1]
क्षत्रिय होकर क्षत्र[2] धरा शिर है[3]गय[4] पैदल से मन माना ॥ — छत्र[2] घोडा[3] हाथी[4]
वैश्य भया बपु की वय देखत झू ठ प्रपच वणिज्य हि ठाना ।
शूद्र भया मिल शूद्र शरीर हि 'सुन्दर' आप नही पहिचाना ॥२०॥

ज्यो रवि को रवि ढू ढत है कहु तप्त मिले तनशीत गवाऊ[1] । — मिटाऊ[1]
ज्यो शशि को शशि चाहत है पुनि शीतल होकर तप्त बुझाऊ ॥

श्रोत्र दिक[1] त्वक वायु लोचन प्रकाश रवि, दिशा[1]
नासिका अश्वनी[2] जिह्वा बरुण बखानिये। अश्वनी कुमार[2]
वाक अग्नि हस्त इन्द्र चरण उपेन्द्र[3] बल, विष्णु[3]
मेढ़[4] प्रजापति[5] गुदा मित्र[6] हू को ठानिये ।। मूत्रेन्द्री[4] ब्रह्मा[5] यम[6]
मन चन्द्र बुद्धि विधि चित्त वासुदेव आहि,
अहंकार रुद्र का प्रभाव कर मानिये।
जाकी सत्ता पाय सब देवता प्रकाशत है,
'सुन्दर' सु आतमा हि न्यारा कर जानिये ।।२।।

इन्दव—श्रोत्र सुने दृग देखत हैं रसना रस घ्राण सुगन्ध पियारा।
कोमलता त्वक जानत है पुनि बोलत है मुख शब्द उचारा।।
पाणि गहै पद गौन करे मल मूत्र तजे उभये अध द्वारा।
जाके प्रकाश प्रकाशत हैं सब 'सुन्दर' सोइ रहै घट न्यारा ।३।।

(3) मे इन्द्रियो के विषय बताकर आत्मा निर्लेप कहा है।

बुद्धि भ्रमे मन चित्त भ्रमे अहंकार भ्रमे कहा जानत नाही।
श्रोत्र भ्रमे त्वक घ्राण भ्रमे रसना दृग देख दशो दिश जाही।।
वाक भ्रमे कर पाद भ्रमे गुदद्वार उपस्थ भ्रमे कहु काही।
तेरे भ्रमाये भ्रमे सब ही गुण 'सुन्दर' तू क्यो भ्रमे इन माही।।४।।
बुद्धि का बुद्धि रु चित्त का चित्त अहं का अहं मन का मन वोई।
नैन का नैन है बैन का बैन है कान का कान त्वचा त्वक होई।।
घ्राण का घ्राण है जीभ का जीभ है हाथ का हाथ पगो पग दोई।
शीश का शीश है प्राण का प्राण है जीव का जीव है 'सुन्दर' सोई।।५।।

मनहर प्रश्न—कैसे के जगत यह रचा है जगत गुरु,
मो से कहो प्रथम ही कौन तत्त्वक कीना है।
प्रकृति कि पुरुष कि महतत्व अहंकार,
किधौ[1] उपजाये सत रज तम तीना है।। क्या[1]
किधौं व्योम वायु तेज आप[2] कै अवनि कीन, जल[2]
किधौं पंच विषय पसार कर लीना है।
किधौ दश इन्द्री किधौ अन्तहकरण कीन,
'सुन्दर' कहत किधौं सकल विहीना है।।६।।

उत्तर—ब्रह्म से पुरुष अरु प्रकृति प्रकट भई,
प्रकृति से महतत्त्व पुनि अहंकार है।
अहंकार हू से तीन गुण सत्व रज तम,
तमहू से महाभूत विषय पसार है।।

रज हू से इन्द्री दश पृथक पृथक भई,
सत्व हू से मन आदि देवता विचार है।
ऐसे अनुक्रम कर शिष्य से कहत गुरु,
'सुन्दर' सकल यह मिथ्या भ्रम जार[1] है ।।७।। जाल[1]

प्रश्न— मेरा रूप भूमि है कि मेरा रूप आप[1] है कि, जल[1]
मेरा रूप तेज[2] है कि मेरा रूप पौन[3] है। अग्नि[2] वायु[3]
मेरा रूप व्योम[4] है कि मेरा रूप इन्द्री है कि, आकाश[4]
अन्तहकरण है कि बैठा है कि गौन[5] है ।। गमन[5]
मेरा रूप निगुण कि अहकार महतत्त्व,
प्रकृति पुरुष किधौ[2] बोले है कि मौन है। क्या[2]
मेरा रूप थूल[3] है कि शून्य आहि[4] मेरा रूप, स्थूल[3] है[4]
सुन्दर' पूछत गुरु मेरा रूप कौन है ।।८।।

उत्तर— तू तो कुछ भूमि नाहि आप तेज वायु नाहि,
व्योम पच विषै नाहि सो तो भ्रम कूप है।
तू तो कुछ इन्द्री अर अन्तहकरण नाहि,
तीनो गुण हू तू नाहि सोऊ छाह धूप है ।।
तू तो अहकार नाहि पुनि महतत्त्व नाहि,
प्रकृति पुरुष नाहि तू तो सु अनूप है।
'सुन्दर' विचार ऐसे शिष्य से कहत गुरु,
नाहि नाहि करते रहै सो तेरा रूप ।।९।।

तेरा तो स्वरूप है अनूप चिदानन्दघन,
देह तो मलीन जड या विवेक कीजिये।
तू तो निहसग निराकार अविनाशी अज,
देह तो विनाशवत ताहि नहि धीजिये ।।
तू तो षट ऊरमी रहित सदा एकरस,
देह के विकार सब देह शिर दीजिये।
'सुन्दर' कहत यू विचार आप भिन्न जान,
पर की उपाधि कहा आप खैच लीजिये ।।१०।।

देह ही नरक रूप दुख का न वार पार,
देह ही जु स्वर्ग रूप झूठा सुख माना है।
देह ही को वन्ध मोक्ष देह ही अप्रोक्ष प्रोक्ष[1], अप्रत्यक्ष[1]
देह ही के क्रिया कर्म शुभाशुभ ठाना है ।।

देह ही मे और देह खुशी हो विलास करे,
ताहि को समझ विन आतमा बखाना है।
दोऊ देह से अलिप्त दोऊ का प्रकाशक है,
'सुन्दर' चेतन्य रूप न्यारा कर जाना है ॥११॥
देह हिले देह चले देह ही से देह मिले,
देह खाय देह पीवे देह ही भरत है।
देह ही हिमाले गले देह ही पावक जले,
देह रण माहि झूझे देह ही परत है॥
देह ही अनेक कर्म करत विविध भाति,
चुम्बक की सत्ता पाय लोह ज्यो फिरत है।
आतमा चेतन्य रूप व्यापक साक्षी अनूप,
'सुन्दर' कहत सो तो जन्मे न मरत है ॥१२॥
देह को न देह कुछ देह का ममत्व छाड,
देह तो दमामा[1] दीये देह देह जात है। 　नगारे की चाट[1]
घट तो घटत घडी घडी घट[2] नाश होत, 　शरीर[2]
घट के गये[3] से घट की न फेरि बात है॥ 　मरे[3]
पिंड पिंड माहि पुनि पिंड को उपावत है,
पिंड पिंड खात पुनि पिंड ही का पात[4] है। 　नाश[4]
'सुन्दर' न होय जासे सुन्दर कहत जग,
सुन्दर चेतन्य रूप 'सुन्दर' विख्यात है ॥१३॥

(१३) देह को न देह=कुछ भी मत दे 　देह देह=एक देह से दूसरे देह मे। पिंड पिंड=दो शरीर मिलकर फिर पिंड को गर्भ मे। पिंड पिंड खात=एक शरीर को दूसरा शरीर खाता है।

प्रश्नोत्तर— देह यह किनका है? देह पञ्च भूतन का,
पंच भूत कौन से है? तामसाहकार से।
अहकार कौन से है? जाको महतत्त्व कहै,
महतत्त्व कौन से है? प्रकृति मझार[1] से॥ 　मे[1]
प्रकृति हू कौन है? पुरुष है जाका नाम
पुरुष सो कौन से है? ब्रह्म निराधार मे।
ब्रह्म अब जाना हम जाना है तो निश्चै कर,
निश्चै हम किया है तो चुप मुख द्वार से ॥१४॥
एक घट माहि तो सुगन्ध जल भर राखा,
एक घट माहि तो दुर्गन्ध जल भरा है।

एक घट माहिं पुनि गगोदक[1] राखा आन, गंगाजल[1]
एक घट माहि आन मदिरा हूं करा[2] है ।। भरा है[2]
एक घृत एक तेल एक माहि लघुनीति[3], मूत्र[3]
सब ही मे सविता[4] का प्रतिविम्ब परा है । सूर्य[4]
तैसे हि 'सुन्दर' ऊच नीच मध्य एक ब्रह्म,
देह भेद देख भिन्न-भिन्न नाम धरा है ।।१५।।

भूमि परे अप[1] अप हू के परे[2] पावक है, जल[1] श्रेष्ठ[2]
पावक के परे पुनि वायु हू वहत है ।
वायु परे व्योम व्योम हू के परे इन्द्री दश,
इन्द्रिन के परे अन्त करण रहत है ।।
अन्तहकरण परे तीनो गुण अहकार,
अहकार परे महतत्त्व को लहत[3] है । लेते हैं[3]
महतत्त्व परे मूल माया माया परे ब्रह्म,
ताहि से परातपर 'सुन्दर' कहत है ।।१६।।

भूमि तो विलीन गन्ध गन्ध हू विलीन आप[1], जल[1]
आप हू विलीन रस रस तेज खात है ।
तेज रूप रूप वायु वायु हू सपर्श लीन,
सो सपर्श व्योम शब्द तम हि विलात है ।।
इन्द्रीदश रज मन देवता विलीन सत्व,
तीन गुण अह महतत्त्व गिल जात है ।
महतत्त्व प्रकृति प्रकृति हू पुरुष लीन,
'सुन्दर' पुरुष जाय ब्रह्म मे समात है ।।१७।।

(१७) मे जो जिससे उत्पन्न हुआ उसे उसी मे मिलाया है और देहादिक का प्रकाश ब्रह्म को कहा है । अन्त मे एक ब्रह्म की रहता है ।

आतमा अचल शुद्ध एक रस रहै सदा,
देह व्यवहारन मे देह ही सो जानिये ।
जैसे शशि मण्डल अभग नहिं भग होय,
कला आवे जाहि घट वढ सो बखानिये ।।
जैसे द्रुम सुस्थिर नदी के तट देखियत,
नदी के प्रवाह माहि चलता सा मानिये ।
तैसे आतमा अतीत देह का प्रकाशक है,
'सुन्दर' कहत यू विचार भ्रम भानिये ।।१८।।

आतमा शरीर दोउ एकमेक देखियत,
जब लग अन्तहकरण मे अज्ञान है।
जैसे अन्धियारी रैन घर मे अन्धेरा होय,
आखन का तेज ज्यो का त्यो ही विद्यमान है ।।
यदपि अन्धेरे माहि नैन को न सूझे कुछ,
तदपि अन्धेरे से अलिपत बखान है ।
'सुन्दर' कहत तोलो एक मेक जानत है,
जोलो नहि प्रकट प्रकाश ज्ञान भान[1] है ।।१९।। सूर्य[1]

देह जड देवल[1] मे आतमा चेतन्य देव, देवालय[1]
याहि को समझकर यासे मन लाइये ।
देवल[2] को विनशत वार नहि लागे कुछ, शरीर[2]
देव तो सदा अभग देवल मे पाइये ।।
देव की शकति कर देवल की पूजा होय,
भोजन विविध भाति भोग हू लगाइये ।
देवल से न्यारा देव देवल मे देखियत,
'सुन्दर' विराजमान और कहा जाइये ।।२०।।

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और,
चित्त सा न चन्दन सनेह सा न सेहरा[1] । मुकुट[1]
हृदै सा न आसन सहज[2] सा न सिहासन, सहजावस्था[2]
भाव सी न सौज[3] और शून्य सा न गेहरा[4] ।। सामग्री[3] घर[4]
शील सा सनान नाहि ध्यान सा न धूप और,
ज्ञान सा न दीपक अज्ञान तम के हरा ।
मन सी न माला कोऊ सोह सा न जाप और,
आतमा सा देव नाहि देह सा देहरा[5] ।।२१।। मन्दिर[5]

श्वासो श्वास रात दिन सोह सोह होय जाप,
याहि माला बार बार दिढ[1] के धरत है । दृढ[1]
देह परे इन्द्री परे अन्तहकरण परे,
एक ही अखण्ड जाप ताप को हरत है ।।
काठ की रुद्राक्ष की रु सूत हू की माला और,
इन के फिराये कौन कारज सरत है ।
'सुन्दर' कहत ताते आतमा चेतन रूप,
आपका भजन सो तो आप ही करत है ।।२२।।

क्षीर[1] नीर मिल दोउ एकठे ही होय रहे, — दूध[1]
नीर छाडि हस जैसे क्षीर को गहत है।
कचन में और धातु मिल कर वान[2] परा, — वैसा ही बने[2]
शुद्ध कर कचन सुनार ज्यो लहत है।।
पावक हू दारू[3] मध्य दारू ही सा होय रहा, — लकडी[3]
मथि कर काढे वाही दारू को दहत है।
तैसे ही सुन्दर' मिला आतमा अनातमा जू,
भिन्न भिन्न करिये सो तो साख्य कहत है।।२३।।

अन्न-मय कोश सो तो पिड है प्रकट यह,
प्राण-मय कोश पच वायु हू वखानिये।
मनो-मय कोश पच कर्म इन्द्रिय प्रसिद्ध,
पच ज्ञान इन्द्रिय विज्ञान कोश जानिये।।
जाग्रत स्वपन विषै कहिये चत्वार कोश,
सुषुप्ति माहि कोश आनन्दमय मानिये।
पच कोश आत्मा को जीव नाम कहियत है,
सुन्दर' शकर भाष्य साक्ष्य[1] यह आनिये।।२४।। — साक्षी[1]

जाग्रत अवस्था जैसे सदन[1] मे बैठियत, — घर[1]
ताहा कुछ होय ताहि भली भाति देखिये।
स्वपन अवस्था जैसे वोवरे[2] मे बैठे जाय, — मट्टी की कोठली[2]
रहै[3] रहै वहा हु की वस्तु सव लेखिये।। — शनैशनै[3]
सुपुपति भौहरे मे बैठे से न सूझ पडे,
महा अध घोर तहा कुछव न पेखिये।
व्योम अनसूत[4] घर वोवरे भौंहरे माहि, — विद्यमान है[4]
'सुन्दर' साक्षी स्वरूप तुरिया विशेखिये।।२५।।

जाग्रत के विषै जीव नैनन मे देखियत,
विविधि व्यवहार सव इन्द्रिनि गहत है।
स्वपने हू माहि पुनि वैसे ही व्यवहार होत,
नैनन से आय कर कठ मे रहत है।।
सुपुपति हृदै मे विलीन होय जात जव,
जाग्रत स्वपन की तो सुधि न लहत है।
तीन हू अवस्था का साक्षी जव जाने आप,
तुरिया स्वरूप वह 'सुन्दर' कहत है।।२६।।

इन्द्रव—जाग्रत रूप लिये सब तत्त्वन इन्द्रिय द्वार करे व्यवहारा ।
स्वप्न शरीर भ्रमे नव तत्त्व का मानत है सुख दु ख अपारा ।।
लीन सबे गुण होत सुषोपति जाने नही कुछ घोर अन्धारा ।
तीनो का साक्षि रहै तुरियातत[1] 'सुन्दर' सोइ स्वरूप हमारा ।।२७।। तीत[1]
भूमि से सूक्षम आपको जानहु आपसे सूक्षम तेज का अगा ।
तेज से सूक्षम वायु वहै नित वायु से सूक्षम व्योम उतगा[2] ।। श्रेष्ठ[2]
व्योम मे सूक्षम है गुण तीन तिन्हू से अह महतत्त्व प्रसगा ।
ताहु से सूक्षम मूल प्रकृति जु मूल से 'सुन्दर' ब्रह्म अभगा ।।२८।।
ब्रह्म निरन्तर व्यापक अग्नि अरूप अखण्डित है सब माही ।
ईश्वर पावक राशि प्रचड जु सग उपाधि लिये वरताही ।।
जीव अनन्त मसाल चिराक सु दीप पतग अनेक दिखाही ।
'सुन्दर' द्वैत उपाधि मिटे जब ईश्वर जीव जुदे कुछ नाही ।।२९।।

(२९) मे उपाधि से भेद बताया है बिना उपाधि एक ही है

ज्यो नर पावक लोह तपावत पावक लोह मिल सु दिखा ही ।
चोट अनेक पडे घनकी शिर लोह वधे कुछ पावक नाही ।।
पावक लोन भया अपने घर शीतल लोह भया तव ताही ।
त्यो यह आतम देह निरन्तर 'सुन्दर' भिन्न रहै मिल माही ।।३०।।
आतम चेतन शुद्ध निरन्तर भिन्न रहै कहु लिप्त न होई ।
है जड चेतन अन्तहकर्ण जु शुद्ध अशुद्ध लिये गुण दोई ।।
देह अशुद्ध मलीन महा जड हाल न चाल सके पुनि वोई[1] । वह[1]
'सुन्दर' तीन विभाग किये विन भूल पडे भ्रम मे सव कोई ।।३१।।

मवइया—ब्रह्म अरूप अरूपी पावक, व्यापक जुगल[1] न दीसत रग ।
देह दार[2] से प्रकट देखियत, अन्त करण अग्नि द्वय अग ।। लकडी[2]
तेज प्रकाश कल्पना तो लग, जो लग रहै उपाधि प्रसग ।
जह के तहा लीन पुनि होई, 'सुन्दर' दोऊ सदा अभग ।।३२।।
देह सराव[1] तेल पुनि मारुत, बाती अन्त करण विचार । दीपक[1]
प्रकट जोति यह चेतन दीसे, जासे भया सकल उजियार ।।
व्यापक अग्नि मथन कर जोये, दीपक वहुत भाति विस्तार ।
'सुन्दर' अद्‌भुत रचना तेरी, तू ही एक अनेक प्रकार ।।३३।।
तिल मे तेल दूध मे घृत है, दार माहि पावक पहचान ।
पुहप माहि ज्यो प्रकट वासना, इक्षु माहि रस कहत वखान ।।
पोसत माहि अफीम निरन्तर, वनस्पती मे शहद प्रवान ।
'सुन्दर' भिन्न मिला पुनि दीसत, देह माहि यू आतम जान ।।३४।।

जाग्रत स्वप्न सुषोपति तीनो, अन्त करण अवस्था पावे ।
प्राण चले जाग्रत अरु स्वपने सुषुपति मे पुनि अह निशि धावे ।।
प्राण गये से रहै न कोऊ, सकल देखते थाट[1] विलावे । शरीर[1]
'सुन्दर' आतम तत्त्व निरन्तर, सो तो कतहूँ जायन आवे ।।३५।।
पन्द्रह तत्त्व स्थूल कुम्भ मे, सूक्षम लिग भरा ज्यो तोय[1] । जल[1]
वहा जीव वहा आभा[2] दीसे, ब्रह्म इन्दु प्रतिबि बे दोय ।। कान्ति[2]
घट फूटे जल गया विलै हो, अन्तहकरण कहै नहि कोय ।
तव प्रतिबिव मिले शशि बिबहि, 'सुन्दर' जीव ब्रह्ममय होय ।।३६।।

मनहर— जैसे व्योम कुम्भ के वाहिर अरु भीतर हू,
कोऊ नर कुम्भ को हजार कोस ले गया ।
ज्यो ही व्योम[1] इहा त्यो ही वहा पुनि है अखड, आकाश[1]
इहा न विछोह न तो वहा मिलाप है भया ।।
कुम्भ तो नया न पुराणा होय के विनश जाय,
व्योम तो न हो पुराणा न तो कुछ हो नया ।
तैसे ही 'सुन्दर' देह आवे रहै नाश होय,
आतमा अचल अविनाशी है अनामया[2] ।।३७।। अविकार[2]

देह के सयोग ही से शीत लगे घाम लगे,
देह के सयोग ही से क्षुधा तृषा पौन[1] को । वायु[1]
देह के सयोग ही से कटुक मधुर स्वाद,
देह के सयोग कहै खाटा खारा लौन को ।।
देह के सयोग कहै मुख से अनेक वात,
देह के सयोग ही पकड रहै मौन को ।
'सुन्दर' देह के सग सुख माने दुख माने,
देह का सयोग गया सुख दुख कौन को ।।३८।।
आपकी प्रशसा सुन आप ही खुमाल[1] होय, प्रसन्न[1]
आप ही की निन्दा सुन आप मुरझाय है ।
आप ही को सुख मान आप सुख पावत है,
आप ही को दुख मान आप दुख पाय है ।।
आप ही की रक्षा करे आप ही का घात करे,
आप ही हत्यारा होय गगा जाय न्हाय है ।
'सुन्दर' कहत ऐसे देह ही को आप मान,
निज रूप भूल के करत हाय हाय है ।।३९।।

इति साख्य का अंग २५

अथ विचार का अंग २६

मनहर—प्रथम श्रवण कर चित्त सु एकाग्र धर,
गुरु सन्त आगम कहैं सु उर धारिये ।
द्वितिय मनन बारम्बार हो विचार देख,
जोई कुछ सुने ताहि फेरि के सभारिये ।।
त्रितिय ताहि प्रकार निदध्यास नीके करे,
निहसंग[1] विचरत अपनपा[2] तारिये । नि संगा[1] अपने को[2]
सो साक्षातकार याही साधन करत होय,
'सुन्दर' कहत द्वैत बुद्धि को निवारिये ।।१।।

देखे तो विचार कर सुने तो विचार कर,
बोले तो विचार कर करे तो विचार है ।
खाय तो विचार कर पीवे तो विचार कर,
सोवे तो विचार कर तो ही तो उबार[1] है ।। उद्धार[1]
बैठे तो विचार कर उठे तो विचार कर,
चले तो विचार कर सोई मत सार है ।
देय तो विचार कर लेय तो विचार कर,
'सुन्दर' विचार कर याही निरधार[1] है ।।२।। निर्णय[1]

एक ही विचार कर सुख दुख सम माने,
एक ही विचार कर मल सब धोय है ।
एक ही विचार कर ससार समुद्र तिरे,
एक ही विचार कर पारगत होय है ।।
एक ही विचार कर बुद्धि नाना भाव तजे,
एक ही विचार कर दूसरा न कोय है ।
एक ही विचार कर 'सुन्दर' सदेह मिटे,
एक ही विचार कर एक ब्रह्म जोय है ।।३।।

इन्द्रव—रूप का नाश भया कुछ देखत रूप तो रूप हि माहि समावे ।
रूप के मध्य अरूप अखडित सो तो कहू कुछ जाय न आवे ।।
बीच अज्ञान भया नवतत्त्व[1] का वेद पुराण सबै कोउ गावे ।
सोउ विचार करे जब 'सुन्दर' सोधत ताहि कहू नहि पावे ।।४।।
[1]पंच महा भूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ।
भूमि सु तो नहि गंध को छाडत नीर सु तो रस से नहि न्यारा ।
तेज सु तो मिल रूप रहा पुनि वायु सपर्श सदा सु पियारा ।।
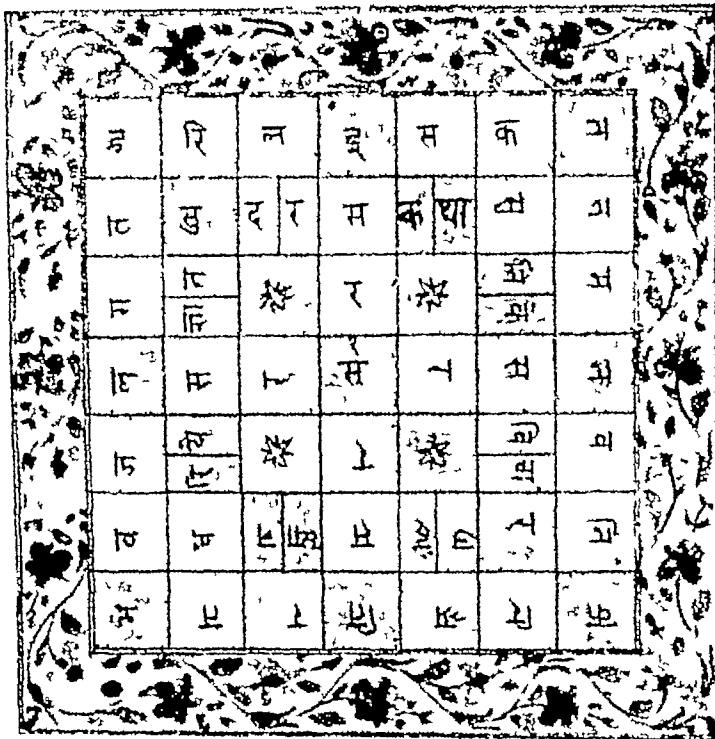
जीन पोश बध ।

उल्लाला छद । सरस इस्क तन मन सरस । सरस नवनि करि अति सरस ।
सरस तिरत भव जल सरस । सरस लगति हरि लइ सरस ।
सरस कथा सुनि के सरस । सरस बिचार उहै सरस ।
सरस ध्यान धरिये सरस । सरस ज्ञान सुन्दर सरस ।।८।।

इस के पढने की विधी

मध्य के 'स' अक्षर से जिस पर १ का अक है, 'सरस' शब्द ऊपर को पढते हुए दाहिनी ओर को 'मन' शब्द को पढकर अदर 'सरस' मे प्रथम चरण पूर्ण करै । फिर उस ही 'सरस' से दूसरा चरण प्रारभ करै उलटे पढते हुए, दाहिनी पार्श्व के शेष विभाग को पढते हुए, 'अति' शब्द को पढकर 'सरस' शब्द पर अदर दूसरे चरण को पूर्ण करै । इसही प्रकार तीसरे, चौथे चरणो को पढै । दूसरे छन्द को भी अदर के उसही 'स' अक्षर से प्रारभ कर 'सरस' शब्द को पढकर अदर के पार्श्व के शब्दो को पढते हुए उस 'सरस' शब्द मे प्रथम चरण को पूरा करै । दूसरे चरण को उसही 'सरस' को उलटा पढते हुए अदर के पार्श्व के शेष टुकडे को पढते हुए 'सरस' शब्द मे पूरा करै । इसही प्रकार तीसरे चौथे चरणो को 'सरस' शब्द से प्रारम्भ करके अदर के पार्श्व के शब्दो को पढते हुए 'सरस' शब्द ही मे पूर्ण करै ।

व्योम रु शब्द जुदे नहिं होत सु ऐसे हिं अन्तःकरण विचारा ।
ये नव तत्त्व मिले इन तत्त्वन 'सुन्दर' भिन्न स्वरूप हमारा ।।५।।

क्षीण सु पुष्ट शरीर का धर्म जु शीत हु ऊष्ण जरा मृति ठाने ।
भूख तृषा गुण प्राण को व्यापत शोक रु मोह उमै मन आने ।।
बुद्धि विचार करे निश बासर चित्त चित्तै सु अह अभिमाने ।
सर्व का प्रेरक सर्व का साक्षि सु 'सुन्दर' आपको न्यारा ही जाने ।।६।।

एक हि कूप के नीर से सींचत ईक्ष अफीम हि अब अनारा ।
होत वही जल स्वाद अनेकन मिष्ट कटूक खटा अरु खारा ।।
त्यौ हि उपाधि सयोग से आतम दीसत आहि मिला सो विकारा ।
काढ लिये जु विचार विवस्वत[1] 'सुन्दर' शुद्ध स्वरूप है न्यारा ।।७।। सूर्य[1]

रूप परा का न जान पडे कुछ ऊठत है जिहिं मूल से छानी ।
नाभि विषै मिल सप्त स्वरन्न पुरुष सयोग पश्यन्ति बखानी ।।
नाद सयोग हृदै पुनि कठ जु मध्यमा याहि विचार से जानी ।
अक्षर भेद लिये मुख द्वार सु बोलत 'सुन्दर' वैखरी वानी ।।८।।

ज्यो कोउ रोग भया नर के घट वैद्य कहै यह वायु विकारा ।
कोउ कहै ग्रह आय लगे सब पुन्य किये कुछ होय उबारा ।।
कोउ कहै इहिं चूक पडी कुछ देवन दोष किया निरधारा[1] । निर्णय[1]
तैसे हिं 'सुन्दर' तन्त्रन के मत भिन्न हिं भिन्न कहैं जु विचारा ।।९।।

जे विषयी तम पूरि रहे तिन को रजनी महि बादर छाया ।
कोउ मुमुक्षु किये गुरुदेव तिन्है भय युक्त जु शब्द सुनाया ।।
बादल दूर भये उन्ह के पुनि तारन से रजु सर्प दिखाया ।
'सुन्दर' सूर प्रकाशत ही भ्रम दूर भया रजु का रजु पाया ।।१०।।

कर्म शुभाशुभ की रजनी पुनि अर्द्ध तमोमय अर्द्ध उजारी ।
भक्ति सु तो यह है अरुणोदय अत निशा दिन सन्धि विचारी ।।
ज्ञान सु भान सदोदित[1] बासर[2] वेद पुराण कहैं जु पुकारी । नित्यउदय[1] दिन[2]
'सुन्दर' तीन प्रभाव बखानत यू निहचै[3] समुझे विधि सारी ।।११।। निश्चय[3]

मनहर— देह ही को आप मान देह ही सा होय रहा,
जडता अज्ञान तम शूद्र सोई जानिये ।
इन्द्रिनि के व्यापारन अत्यन्त निपुन बुद्धि,
तमो रज दुहु कर वैश्य हू प्रमानिये ।।
अन्तहकरण माहि अहकार बुद्धि जाके,
रजो गुण वर्द्धमान क्षत्री पहचानिये ।

सत्य गुण बुद्धि एक आतमा विचार जाके,
'सुन्दर' कहत वह ब्राह्मण बखानिये ॥१२॥

आतमा के विषै[1] देह आय कर नाश होय, में[1]
आतमा अखण्ड सदा एक ही रहत है।
जैसे साप कचुकी को लिये रहै कोऊ दिन,
जीरण उतार कर नूतन गहत है॥
जैसे द्रुम[2] हू के पत्र फूल फल आय होत, वृक्ष[2]
तिन के गये से द्रुम ओरहु लहत है।
जैसे व्योम माहि अभ्र होय के विलाय जात,
ऐसा सो[3] विचार कुछ 'सुन्दर' कहत है ॥१३॥ आत्मा, देह[3]

खडी की डली से अक लिख के विचारयत,
लिखत लिखत वह डली घिस जात है।
लेख समझा है जब समझ पडी है तब,
जोई कुछ सही भया सोई ठहरात है॥
दार[1] ही से दार मथि पावक प्रकट भया, अरणी लकडी[1]
वह दार जाल पुनि पावक[2] समात है। अग्नि[2]
तैसे ही 'सुन्दर' बुद्धि ब्रह्म का विचार कर,
करत करत वह बुद्धि हू विलात है ॥१४॥

आप को समझ देख आप ही सकल माहि,
आप ही मे सकल जगत देखियत है।
जैसे व्योम व्यापक अखण्ड परिपूरण है,
बादल अनेक नाना रूप लेखियत है॥
जैसे भूमि घट जल तरग पावक दीप,
वायु मे बघूरा यू ही विश्व रेखियत[1] है। रेखाक्ति[1]
ऐसे ही विचारत विचार हू विलीन होय,
सुन्दर ही 'सुन्दर' रहत पेखियत है ॥१५॥

देह ही सयोग पाय जीव ऐसा नाम भया,
घट के सयोग घटाकाश ज्यो कहाया है।
ईश्वर हू सकल विराट मे विराजमान,
मठ के सयोग मठाकाश नाम पाया है॥
महाकाश माहि सब घट मठ देखियत,
बाहिर भीतर एक गगन समाया है।

तैसे ही 'सुन्दर' ब्रह्म ईश्वर अनेक जीव,
त्रिविधि उपाधि भेद ग्रन्थन मे गाया है ॥१६॥

प्रश्न— देह दुख पावे किधौं इन्द्री दुख पावे किधौं[1],
प्राण दुख पावे जल लहै न अहार को ।
मन दुख पावे किधौं बुद्धि दुख पावे किधौं,
चित्त दुख पावे किधौं दुख अहकार को ॥
गुण दुख पावे किधौं सूत्र[1] दुख पावे किधौं,
प्रकृति दुख पावे कि पुरुष अधार को ।
'सुन्दर' पूछत कुछ जान न पडत तातें,
कौन दुख पावे गुरु कहो या विचार को ॥१७॥

क्या[1]

जीव[1]

उत्तर— देह को तो दुख नाहि देह पचभूतन की,
इन्द्रिन को दुख नाहि दुख नाही प्रान को ।
मन हू को दुख नाहि बुद्धि हू को दुख नाहि,
चित्त हू को दुख नाहि नाहि अभिमान को ॥
गुणन को दुख नाहि सूत्र हू को दुख नाहि,
प्रकृति को दुख नाहि दुख न पुमान को ।
'सुन्दर' विचार ऐसे शिष्य से कहत गुरु,
दुख एक देखियत बीच के अज्ञान को ॥१८॥

पृथवी भाजन अग कनक कटक पुनि,
जल हू तरग दोऊ देखि के वखानिये ।
कारण कारज ये तो प्रकट ही थूल रूप,
ताही से नजर माहि देख कर आनिये ॥
पावक पवन व्योम ये तो नहि देखियत,
दीपक वघूरा अभ्र प्रत्यक्ष प्रमानिये ।
आतमा अरूप अति सूक्षम से सूक्षम है,
'सुन्दर' कारण तातै देह में न जानिये ॥१९॥

जैन मत वहै जिनराज को न भूल जाय,
दान तप शील साँची भावना से तरिये ।
मन वच काय शुद्ध सबसे दयालु रहै,
दोष बुद्धि दूर कर दया उर धरिये ॥
जोध नाम तव जव मन का निरोध होय,
बोध को विचार सोध आतमा का करिये ।

ज्योतिषी कहावे तो तू ज्योति का प्रकाशकर,
अन्तहकरण अन्धकार को निवारिये ।
आगमी कहावे त्तो तू अगम ठौर को जान,
'सुन्दर' कहत याही अनुभव धारिये ।।२४।।

ब्राह्मण कहावे तो तू आप ही को ब्रह्म जान,
अति ही पवित्र सुख सागर मे न्हाइये ।
क्षत्री तूं कहावे तो तू प्रजा प्रतिपाल कर,
शीश पर एक ज्ञान छत्र को फिराइये ।।
वैश्य तू कहावे तो तू एक ही व्यापार जान,
आतमा का लाभ होय अनायास पाइये ।
शूद्र तूं कहावे तो तूं शुद्र देह त्याग कर,
'सुन्दर' कहत निज रूप मे समाइये ।।२५।।

ब्रह्मचारी होय तो तू वेद को विचार देख,
ताही को समझ जोई कहा वेद अत[1] है । उपनिषद्[1]
गृही तूं कहावे तो तूं सुमति त्रिया को व्याहि,
जाके ज्ञान पुत्र होय वही भाग्यवत है ।।
वानप्रस्थ होय तो तू काया वनवास कर,
कर्म कद मूल खाहि फल हू अनन्त है ।
सन्यासी कहावे तो तू तीनो लोक न्यास[2] कर, त्याग[2]
'सुन्दर' परमहस होय या सिघत है ।।२६।।

रामानन्दी होय तो तू तुच्छानन्द त्याग कर,
राम नाम भज रामानन्द ही को ध्याइये ।
निंवादती[1] होय तो तू कामना कटुक त्याग, निंबार्की[1]
अमृत का पान कर अधिक अघाइ[2]ये ।। तृप्त[2]
मध्वाचारी होय तो तू मधुर मत को विचार,
मधुर मधुर धुनि हृदै मध्य गाइये ।
विष्णु स्वामी होय तो तू व्यापक विष्णु को जान,
'सुन्दर' विष्णु को भज विष्णु मे समाइये ।।२७।।

देह और देखिये तो देह पच भूतन की,
ब्रह्मा अरु कीट लग देह ही प्रधान है ।

प्राण ओर देखये तो प्राण सब ही का एक,
क्षुधा पुनि तृषा दोऊ व्यापत समान है ।।
मन ओर देखिये तो मन का स्वभाव एक,
सकल्प विकल्प कर सदा ही अज्ञान है ।
आतमा विचार किये आतमा ही दीसे एक,
'सुन्दर' कहत कोऊ दूसरा न आन है ।।२८।।

इति विचार का अग २६

अथ ब्रह्म नि कलक का अग २७

मनहर—
एक कोऊ दाता गाइ ब्राह्मण को देत दान,
एक कोउ दया हीन मारत निशक है ।
एक कोऊ तपस्वी तपस्या माहि सावधान,
एक कोऊ कामी क्रीडै कामिनी के अक है ।।
एक कोऊ रूपवत अधिक विराजमान,
एक कोऊ कोढी कोढ चूवत करक है ।
आरसी मे प्रतिबिंब सब ही का देखियत,
'सुन्दर' कहत ऐसे ब्रह्म नि कलक है ।।१।।

रवि के प्रकाश से प्रकाश होत नेत्रन को,
सब कोऊ शुभाशुभ कर्म को करत है ।
कोऊ यज्ञ दान जप तप यम नेम व्रत,
कोऊ इन्द्री वश कर ध्यान को धरत है ।।
कोऊ परदारा परधन को तकत जाय,
कोऊ हिसा कर के उदर को भरत है ।
'सुन्दर' कहत ब्रह्म साक्षी रूप एक रस,
वाही मे उपज कर वाही मे मरत है ।।२।।

जैसे जल जन्तु जल ही मे उतपन्न हो हि,
जल ही मे विचरत जल के आधार हैं ।
जल ही मे क्रीडत विविध व्यवहार होत,
काम क्रोध लोभ मोह जल मे सहार है ।।
जल कौन लागे कुछ जीवन के राग द्वेष,
उन ही के क्रिया कर्म उन ही की लार है ।
तैसे ही 'सुन्दर' यह ब्रह्म मे जगत सब,
ब्रह्म कौन लागे कुछ जगत विकार है ।।३।।

स्वेदज जरायुज अण्डज उदभिज पुनि,
चार खानि तिन के चौरासी लक्ष जत हैं।
जलचर थलचर व्योमचर भिन्न भिन्न,
देह पच भूतन की उपज खपत है।।
शीत घाम पवन गगन मे चलत आप,
गगन अलिप्त जामे मेघ हू अनन्त है।
तैसे ही 'सुन्दर' यह सृष्टि एक ब्रह्म माहि
ब्रह्म निकलक सदा जानत महत[1] है ।।४।। महान सत[1]

इति ब्रह्म निकलक का अग २७

अथ आत्मानुभव का अग २८

इन्दव-है दिल मे दिलदार[1] सही अखिया उलटी कर ताहि चितइये[2]। प्यारा[1] देखिये[2]
आब[3] मे खाक[4] मे वाद[5] मे आतस[6] जान मे सुन्दर जान जनइये ।।
नूर मे नूर है तेज मे तेज है ज्योति मे ज्योति मिले मिल जइये ।
क्या कहिये कहते न वने कुछ जो कहिये कहते ही लजइये ।।१।।
पानी[3] पृथ्वी[4] वायु[5] अग्नि[6]

जासे कहू सब मे वह एक तो सो कहै कैसा है आखि दिखइये ।
जो कहू रूप न रेख तिसे कुछ तो सब झूठ कै माने कहइये[1] ।। कहते हैं[1]
जो कहू सुन्दर नैनन माझ तो नैनहू बैन गये पुनि हइये[2] । रहता है[2]
क्या कहिये कहते न बने कुछ जो कहिये कहते ही लजइये ।।२।।

होत विनोद जु तो अभिअन्तर सो सुख आप मे आप ही पइये[1] । पाता है[1]
बाहिर को उमगा पुनि आवत कठ से सुन्दर फेरि पठइये[2] ।। उलटा जाता[2]
स्वाद निवेरे निवेरा[3] न जात मनो गुड गूगे हि ज्यो नित खइये । नही हटता[3]
क्या कहिये कहते न वने कुछ जो कहिये कहते ही लजइये ।।३।।

व्योम सा[1] सोम्य[2] अनत अखडित आदि न अन्तसु मध्य कहा है । जैसा[1] शात[2]
को परिमान करे परिपूरण द्वैत अद्वैत कछू न जहा है ।।
कारण कारज भेद नही कुछ आप मे आपहि आप तहा है ।
सुन्दर दीसत सुन्दर माहि सु सुन्दरता कहि कौन वहा है ।।४।।

प्रश्नोत्तर-एक कि दोइ न एक न दोइ वही[1] कि इही[2] न वही न इहा है । वहा[1] यहा[2]
शून्य[3] कि थूल न शून्य न थूल जही कि तही न जही न तही है ।। सूक्ष्म[3]
मूल कि डाल न मूल न डाल वही[4] कि मही[5] न वही न मही है । बाहर[4] माही[5]
जीव कि ब्रह्म न जीव न ब्रह्म तो है कि नही कुछ है न नही है ।।५।।

एक कहू तो अनेक सा[1] दीसत एक अनेक नही कुछ ऐसा । जैसा[1]
आदि कहू तिहि अन्त हूं आवत आदि न अन्त न मध्य सु कैसा ।।
गोपि[2] कहू तो अगोपिक कहा अह गोपि अगोपि न ऊभा न बैसा[3] । गुप्त[2] बैठा[3]
जोइ कहूं सोइ है नहिं 'सुन्दर' है तो सही परि जैसे का तैसा ।।६।।

मनहर— एक कै[1] कहै जो कोऊ एक ही प्रकाशत है, पर[1]
दोष कै कहै जो कोऊ दूसरा हू देखिये ।
अनेक कहै जो कोऊ अनेक आभासे[2] ताहि, प्रतीत[2]
जाके जैसा भाव ताको वैसा ही विशेखिये[3] ।। विशेषकर[3]
वचन विलास कोऊ कैसे ही बखान कहो,
व्योम[4] माहि चित्र कहू कैसे कर लेखिये । आकाश[4]
अनुभव किये एक दोय न अनेक कुछ,
'सुन्दर' कहत ज्यो है त्यो हि ताहि पेखिये ।।७।।

वचन ही वेद विधि वचन ही शास्त्र पुनि,
वचन ही स्मृति अरु वचन पुरान जू ।
वचन ही और ग्रन्थ वचन ही व्याकरण,
वचन ही काव्य छन्द नाटक बखान जू ।।
वचन ही समकृत वचन ही पराकृत[1], प्राकृत[1]
वचन ही भाषा सब जगत मे जान जू ।
वचन के परे है सु वचन मे आवे नाहि,
'सुन्दर' कहत वह अनुभौ[2] प्रमान जू ।।८।। अनुभव[2]

इन्द्री नहि जान सके अल्प ज्ञान इन्द्रीन का,
प्राण हू न जान सके श्वास आवे जाइ है ।
मन हू न जान सके सकल्प विकल्प करे,
बुद्धि हू न जान सके सुना सो बताइ है ।।
चित्त अहकार पुनि एऊ नहिं जान सके,
शब्द हू न जान सके अनुमान पाइ है ।
'सुन्दर' कहत ताहि कोऊ नहिं जान सके,
दीवा कर देखिये सु ऐसी नहिं लाइ[1] है ।।९।। महा अग्नि[1]

इन्दव—श्रोत्र न जानत चक्षु न जानत जानत नाहि जु सू घत घ्राने ।
ताहि सपर्श तुचा न सके पुनि जानत नाहि सु जीभ बखाने ।।

ना मन जानत बुद्धि न जानत चित्त अहं कहि क्यों पहिचाने ।
शब्द हु 'सुन्दर' जान सके नहिं आतम आप को आप ही जाने ।।१०।।

सूर के तेज से सूरज दीसत चन्द के तेज से चन्द उजासे[1] । प्रकाशे[1]
तारे के तेज से तारे हु दीसत विज्जुल तेज से विज्जु चकासे[2] ।। चमके[2]
दीप के तेज से दीपक दीसत हीरे के तेजसे हीरा हु भासे[3] । प्रतीत हो[3]
तैसे हि 'सुन्दर' आतम जान हु आपके तेज से आप प्रकासे ।।११।।

कोऊ कहै यह सृष्टि स्वभाव से कोऊ कहै यह कर्म से सृष्टि ।
कोऊ कहै यह काल उपावत कोउ कहै यह ईश्वर तिष्टी[1] ।। स्थापित की[1]
कोउ कहै यह ऐसे हि होत है क्योंकर मानिये बात अनिष्टी[2] । अस्वाभाविक[2]
'सुन्दर' एक किये अनुभौ बिन जान सके नहिं बाहिज[3] दृष्टि ।।१२।। बाह्य[3]

कोउ तो मोक्ष अकाश बतावत को कह मोक्ष पताल के माही ।
कोउ तो मोक्ष कहै पृथवी पर कोउ कहै कहु और कहा ही ।।
कोउ बतावत मोक्ष शिला पर को कह मोक्ष मिटे परछाही ।
'सुन्दर' आतम के अनुभौ बिन और कहू कोउ मोक्ष हि नाही ।।१३।।

मूये से मोक्ष कहैं सब पंडित मूये से मोक्ष कहै पुनि जैना ।
मूये से मोक्ष कहै ऋषि तापस मूये से मोक्ष कहैं शिव सैना[1] ।। सकेत[1]
मूये से मोक्ष मलेछ कहैं तेउ धोखे हि धोखे बखावत बैना ।
'सुन्दर' आतम का अनुभौ सोइ जीवत मोक्ष सदा सुख चैना ।।१४।।

जाग्रत तो नहिं मेरे विषै[1] कुछ स्वप्न सु तो नहिं मेरे विषै है । मे[1]
नाहिं सुषोपति मेरे विषै पुनि विश्व हु तैजस प्राज्ञ पषै[2] है ।। पक्ष[2]
मेरे विषै तुरिया नहिं दीसत याहि से मेरा स्वरूप अखै[3] है । अक्षय[3]
दूर से दूर परे से परे अति 'सुन्दर' कोउ न मोहि लखै है[4] ।।१५।। देखे[4]

मनहर— कोउ तो कहत ब्रह्म नाभि के कमल मध्य,
कोउ तो कहत ब्रह्म हृदै मे प्रकाश है ।
कोउ तो कहत कंठ नासिका के अग्रभाग,
कोउ तो कहत ब्रह्म भृकुटी मे बास है ।।
कोउ तो कहत ब्रह्म दशवें द्वार के बीच,
कोउ तो कहत भौंर[1] गुफा मे निवास है । भ्रमर[1]
पिंड मे ब्रह्मांड मे निरंतर विराजे ब्रह्म,
'सुन्दर' अखंड जैसे व्यापक आकाश है ।।१६।।
पांव जिन गहा सो तो कहत है ऊखलसा,
पूंछ जिन गही तिन लाव[1] सा सुनाया है ।

सूंड जिन गही तिन दगला[2] की बाह कहा,
दन्त जिन गहा तिन मूसल दिखाया है ।।
कान जिन गहा तिन सूप[3] सा बनाय कहा,
पीठ जिन गही तिन बिटोरा[4] वताया है ।
जैसा है सो तैसा ताहि 'सुन्दर' सम्राखा जाने,
आधरो ने हाथी देख झगडा मचाया है ।।१७।।

मारवाड के थली प्रदेश मे कही हाथी को लेकर जा रहे थे । वे लोग एक ग्राम मे ठहरे तो सब हाथी को देखने गये । उसग्राम ६ अधे भी थे उन्होने कहा हमको भी हाथी दिखाओ । लोगो ने कहा तुम बिन आंखें कैसे देखोगे ? अधो ने कहा—हम हाथो से देख लेते हैं । तब उन को ले गये । जिसने पैर के हाथ लगाया उसने समझ लिया हाथी ऊखल जैसा होता है । पूछ के हाथ लगाया था उसने बैलो से कूप सीचने के मोटें रस्से[1] जैसा । जिसने सूड पकडी थी उसने अगरखा[2] की बाह के जैसा । दात के हाथ लगा उसने मूसल जैसा । कान के हाथ लगाया उसने छाजला[3] जैमा । जिसने पीठ पर हाथ लगाया था उसने बिटोरा[4] (गोबर की छापडियो को रखकर उन पर छत बना देते हैं उसे बिटोरा कहते हैं ।) समझ लिया । फिर छओ मिले तो हाथी कैसा था यह प्रसग चला तब जिसने जिस अग के हाथ लगाया था वैसे ही बताया, मत भेद से परस्पर झगडा हो गया और लाठी चलगई । ऐसे ही छ शास्त्रो मे मत भेद है जिस शास्त्र कार ने जैसा जाना वैसा लिखा सो आगे देखें ।

न्याय शास्त्र कहत है प्रकट ईश्वर वाद,
मीमासिक शास्त्र मेहि कर्म वाद कहा है ।
वैशेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध,
पातजलि शास्त्र माहि योग वाद लहा है ।।
साख्य शास्त्र माहि पुनि प्रकृति पुरुष वाद,
वेदात शास्त्र तिनहि ब्रह्मवाद गहा है ।
सुन्दर कहत षट शास्त्र माहि भया वाद,
जाके अनुभव ज्ञान वाद मे न बहा है ।।१८।।

प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म ऐसे ऋग्वेद कहत,
अहब्रह्म अस्मि इति युयुर्वेद यू कहै ।
तत्त्वमसि इति सामवेद यू बखानत है,
अयमात्मा हि ब्रह्म वेद अथर्वन लहै ।।
एक एक वचन मे तीन पद है प्रसिद्ध,
तिन का विचार कर अर्थ तत्त्व को गहै ।

चार वेद भिन्न भिन्न सब का सिद्धांत एक,
'सुन्दर' समझ कर चुपचाप हो रहै ॥१९॥

इन्द्रिन का भोग जब चाहै तब आय रहै,
नाशवत तातें तुच्छानन्द यू सुनाया है।
देवलोक इन्द्रलोक विधिलोक शिवलोक,
वैकुण्ठ के सुख लौं गणिता[1]नन्द गाया है॥
अक्षय अखण्ड एकरस परिपूरण है,
ताही तें पूरणानन्द अनुभौ से पाया है।
याही के अन्तरभूत आनन्द जहा लौं और,
'सुन्दर' समुद्र माहि सर्व जल आया है॥२०॥

संख्या में[1]

एक तो माया विलास[1] जगत प्रपच यह,
चारि खानि भेद पाय द्वैत भास रहा है।
दूसरा विषै विलास इन्द्रिनि के विषै पच,
शब्द हू सपर्श रूप रस गंध गहा है॥
तीजा वायक विलास सो तो सब वेद माहि,
वरण के जहा लग वचन से कहा है।
चौथा ब्रह्म का विलास तिहु का अभाव जहा,
'सुन्दर' कहत वह अनुभौ से लहा है॥२१॥

सुख[1]

जीवत ही देवलोक जीवत ही इन्द्रलोक,
जीवत ही जन तप सत्य लोक आया है।
जीवत ही विधिलोक जीवत ही शिवलोक,
जीवत वैकुण्ठ लोक जो अकुंठ[1] गाया है॥
जीवत ही मोक्ष शिला जीवत ही भिस्ति[2] माहि,
जीवत ही निकट परमपद पाया है।
आतमा का अनुभव जिनको जीवत भया,
'सुन्दर' कहत तिन सशय मिटाया है॥२२॥

अकुंठित[1]
स्वर्ग[2]

इच्छा ही न प्रकृति न महतत्त्व अहकार,
त्रिगुण न व्योम आदि शवदादि कोइ है।
श्रवणादि वचनादि देवता न मन आदि,
सूक्षम न थूल पुनि एक ही न दोइ है॥
स्वेदज न अण्डज जरायुज न उदभिज,
पशु ही न पक्षी ही न पुरुष ही न जोइ[1] है।

नारी[1]

'सुन्दर' कहत ब्रह्म ज्यो का त्यो ही देखियत,
न तो कुछ भया अब है न कुछ होइ है ॥२३॥
क्षिति भ्रम जल भ्रम पावक पवन भ्रम,
व्योम भ्रम तिन का शरीर भ्रम मानिये ।
इन्द्री दश तेऊ भ्रम अन्तहकरण भ्रम,
तिन हू के देवता सो भ्रम से बखानिये ॥
सत्य रज तम भ्रम पुनि अहकार भ्रम,
महतत्त्व प्रकृति पुरुप भ्रम भानिये[1] ।　　नाश करिये[1]
जोइ कुछ कहिये सो 'सुन्दर' सकल भ्रम,
अनुभौ किये से एक आतमा ही जानिये ॥२४॥
भूमि हू विलीन होय आप हू विलीन होय,
तेज हू विलीन होय वायु जो वहत है ।
व्योम हू विलीन होय त्रिगुण विलीन होय,
शब्द हू विलीन होय अह जो कहत है ॥
महतत्त्व लीन होय प्रकृति विलीन होय,
पुरुप विलीन होय देह जो गहत है ।
'सुन्दर' कहत जो जो कहिये सो लीन होय,
आतमा के अनुभव आतमा रहत है ॥२५॥
माया की अपेक्षा ब्रह्म रात्रि की अपेक्षा दिन,
जड की अपेक्षा कर चेतन्य बखानिये ।
अज्ञान अपेक्षा ज्ञान बध की अपेक्षा मोक्ष,
द्वैत की अपेक्षा सो तो अद्वैत प्रमानिये ॥
दुख की अपेक्षा सुख पाप की अपेक्षा पुण्य,
झूठ की अपेक्षा ताहि सत्य कर मानिये ।
'सुन्दर' सकल यह वचन विलास भ्रम,
वचन अवचन रहित सोई जानिये ॥२६॥
आतमा कहत गुरु शुद्ध निरबन्ध नित्य,
सत्य कर माने सो तो शब्द हू प्रमाण है ।
जैसे व्योम व्यापक अखण्ड परिपूरण है,
व्योम उपमा से उपमान सो प्रमाण है ॥
जाकी सत्ता पाय सब इन्द्रिय चेतन्य होय,
याहि अनुमान अनुमान हू प्रमाण है ।

अनुभव जाने तब सकल सन्देह मिटे,
'सुन्दर' कहत यह प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥२७॥

एक घर दोय घर तीन घर चार घर,
पंच घर तजे तब छठा घर पाय है।
एक एक घर के आधार एक एक घर,
एक घर निराधार आप ही दिखाय है॥
सो तो घर साक्षी रूप घर घर मे अनूप,
ताहू पर मध्य कोऊ दिन ठहराय है।
ताके परे साक्षि न असाक्षि न 'सुन्दर' कुछ,
वचन अतीत कहूं आय है न जाय है ॥२८॥

एक तो श्रवण ज्ञान पावक ज्यों देखियत,
माया जल बरसत वेगि बुझ जात है।
एक है मनन ज्ञान बिज्जुल ज्यो घन मध्य,
माया जल बरसत तामे न बुझात है॥
एक निदिध्यास ज्ञान बडवा अनल सम,
प्रगट समुद्र माहि माया जल खात है
आतमानुभव ज्ञान प्रलय अगनि जैसे,
'सुन्दर' कहत द्वैत प्रपंच विलात है ॥२९॥

चकमक ठोके से चमतकार[1] होत कुछ,
ऐसा है श्रवण ज्ञान तब ही लौं जानिये।
फफे[2] मन लागे जब प्रकटे पावक ज्ञान,
निकसत जाय वह मनन बखानिये॥
वर्धमान भये काठ कर्मन जरावत है,
यह निदिध्यास ज्ञान ग्रन्थन मे गानिये॥
सकल प्रपंच यह पावक के समाय जात,
'सुन्दर' कहत वह अनुभौ प्रमानिये ॥३०॥

(३०) चकमक पत्थर से मारते हैं, तब अग्नि चमकती है[1] ऐसा श्रवण ज्ञान है। [2] [illegible] जो [illegible] में धागों का समूह रहता है, उसका अगला भाग [illegible] होता है, उस में वह चमकने वाला अग्नि कण लगता है तब [illegible] होता है वैसा मनन ज्ञान है।

[illegible] को जलाता है वैसा निदिध्यासन ज्ञान है। काठ जला कर [illegible] है, वैसा अनुभव ज्ञान है।

भोजन की बात सुन[1] मन मे मुदित होत, श्रवण ज्ञान[1]
मुख मे न पड़े जोलों मेलिये न ग्रास है।
सकल सामग्री आन पाक को करन लगा,
मनन करत कब जीऊं[2] यह आश है॥ जीमूं[2]
पाक जब भया तब भोजन करन बैठा,
मुख मे मेलत जाय वही निदिध्यास है।
भोजन पूरण कर तृपत भया है जब,
'सुन्दर' साक्षातकार अनुभौ प्रकाश है॥३१॥
श्रवण करत जब सब से उदास होय,
चित्त एकाग्र सु आन गुरु मुख सुनिये।
बैठ के एकात ठौर अन्तहकरण माहि,
मनन करत फेरि वही ज्ञान गुनिये[1]॥ विचारिये[1]
ब्रह्म का परोक्ष जन[2] कहत है अह ब्रह्म, ज्ञानीजन[2]
सोह साह होय सदा निदिध्यास धुनिये[3]। तल्लीन हो[3]
यही अनुभव यही कहिये साक्षातकार,
'सुन्दर' पाले से गल पानी होय मुनिये[4]॥३२॥ मानिये[4]
जब ही जिज्ञासा होय चित्त एक ठौर आन,
मृग ज्यों सुनत नाद श्रवण सो कहिये।
जैसे स्वाति बुन्द हू को चातक रटत पुनि,
ऐसे ही मनन करे कब बून्द लहिये॥
जैसे रात्रि हू चकोर चन्द्रमा का धरे ध्यान,
ऐसे जान निदिध्यास दृढ कर गहिये।
'सुन्दर' साक्षातकार कीट जैसे होय भृग,
वही अनुभव वही स्वस्वरूप रहिये[1]॥३३॥ रहता है[1]
काहू को पूछत रक धन कैसे पाइयत,
कान देके सुनत श्रवण सोई जानिये।
उन कहा धन हम देखा है फलानी[1] ठौर, अमुक[1]
मनन करत भया कब घर आनिये॥
फेरि जब कहा धन गडा तेरे घर माहि,
खोदन लगा है तब निदिध्यास ठानिये।
धन निकसा है जब दरिद्र गया है तब,
'सुन्दर' साक्षातकार नृपति बखानिये॥३४॥

इति आत्मानुभव का अग २८

अथ ज्ञानी का अंग २९

इन्दव – जाके हृदै महि ज्ञान प्रकाशत ताका स्वभाव रहै नहि छाना ।
नैन मे बैन मे सैन मे जानिये उठत बैठत है अलसाना ।।
ज्यो कुछ भक्ष किये उदगारत कैसे हु राखि सके न अघाना ।
'सुन्दरदास' प्रसिद्ध दिखावत धान का खेत पयार[1] से जाना ।।१।। पलाल[1]
ज्ञान प्रकाश भया जिनके उर वे घट क्योहि[1] छिपे न रहैंगे । कैसे भी[1]
भोडल माहि दुरे नहि दीपक यद्यपि वे मुख मौन गहैंगे ।।
ज्यो घनसार[2] हि गोप्य छिपावत तोहि सुगन्धि सु तज्ञ लहैगे । कपूर[2]
'सुन्दर' और कहा कोउ जानत बूठे[3] की वात वटाऊ कहैंगे ।।२।। वर्ष की[3]
वालत चालत बैठत ऊठत पीवत खात सु सूघत स्वासै ।
ऊपर तो व्यवहार करे सव भीतर स्वप्न समान सा[1] भासै ।। जैसा[1]
लेकर तीर पताल को साधत मारत है पुनि फेरि अकासै ।
'सुन्दर' देह क्रिया सब देखत कोउ न पावत ज्ञानी का आसै[2] ।।३।। आशय[2]
बैठे तो बैठे चले तो चले पुनि पीछे तो पीछे हि आगे तो आगे ।
बोले तो बोले न बोले तो मौन हि सोवे तो सोवे रु जागे तो जागे ।।
खाय तो खाय नही तो नही जु गहे तो गहे अरु त्यागे तो त्यागे ।
'सुन्दर' ज्ञानी की ऐसी दसा यह जाने नहि कुछ राग विरागे ।।४।।
देखत है पै कछू नहि देखत बोलत है नहि बोल बखाने ।
सूंघत है नहि सूघत घ्राण सुने सब है न सुने यह माने ।।
भक्ष करे अरु नाहि भखे कुछ भेटत है नहि भेटत प्राने ।
लेत है देत है देत न लेत है 'सुन्दर' ज्ञानी की ज्ञानी ही जाने ।।५।।
काज अकाज भला न बुरा कुछ उत्तम मध्यम दृष्टि न आवे ।
कायक वाचक मानस कर्म सु आप विषै न तिन्है ठहरावे ।।
हू कर हू न किया न करू अब यू मन इन्द्रिन को बरतावे ।
दीसत है व्यवहार विषै नित 'सुन्दर' ज्ञानी की कोउ न पावे ।।६।।
देखत ब्रह्म सुने पुनि ब्रह्म हि बोलत सोउ ब्रह्म हि वानी ।
भूमि हु नीर हु तेज हु वायु हु व्योम हु ब्रह्म जहा लग प्रानी ।।
आदि हु अन्त हु मध्य हु ब्रह्म हि है सब ब्रह्म यही मति ठानी[1] । करी[1]
'सुन्दर' ज्ञे अरु ज्ञान हु ब्रह्म सु आप हु ब्रह्म हि जानत ज्ञानी ।।७।।
ऊठत केवल बैठत केवल बोलत केवल वात कही है ।
जागत केवल सोवत केवल जोवत केवल दृष्टि लही है ।।
भूत हु केवल भावि हु केवल वर्त्तत केवल ब्रह्म सही है ।
है सब ही अध ऊरध केवल 'सुन्दर' केवल ज्ञान वही है ।।८।।

केवल ज्ञान भया जिनके उर ते अध ऊरध लोक न जाही ।
व्यापक ब्रह्म अखण्ड निरतर वा विन और कहू कुछ नाही ।।
ज्यो घट नाश भये घट व्योम सु लीन भया पुनि है नभ माही ।
त्यो मुनि मुक्ति जहा वपु छाडत 'सुन्दर' मोक्ष शिला कहु काही ।।९।।
आदि हुतो नहि अन्तर है नहि मध्य शरीर भया भ्रम कूप ।
भासत है कुछ और का और हि ज्यो रजु मे अहि[1]सीप सुरूप[2] ।।　　सर्प[1] चादी[2]
देख मरीचि[3]उठा विच विभ्रम[4]जानत नाहि वहै रवि धूप । मृगतृष्णा[3]जल का[4]
'सुन्दर' ज्ञान प्रकाश भया जब एक अण्डित ब्रह्म अनूप ।।१०।।

मनहर—　जा ही के विवेक ज्ञान ताहि के कुसल भई,
जाही वोर जाय वाको वाहि वोर सुख है ।
जैसे कोउ पाइन पैजार को चढाय लेत,
ताको तो न कोउ काटे खोभरे[1] दुख है ।।　　कील[1]
भावे कोऊ निन्दा करे भावे तो प्रशसा करे,
वो[2] तो देखे आरसी मे आपना ही मुख है ।　　वह[2]
देह का व्यौहार सब मिथ्या कर जानत है,
'सुन्दर' कहत एक आतमा की रुख[3] है ।।११।।　　चेष्टा[3]

अन्तहकरण जाके तमगुण छाय रहा
जडता अज्ञान वाके आलस भै[1] त्रास है ।　　भय[1]
रज गुण का प्रभाव अन्तहकरण जाके,
विविधि करम वाके कामना का वास है ।।
सत्व गुण अन्तहकरण जाके देखियत,
क्रिया कर शुद्ध वाके भक्ति का निवास है ।
त्रिगुण अतीत साक्षी तुरिया स्वरूप जान,
'सुन्दर' कहत वाके ज्ञान का प्रकाश है ।।१२।।

तमोगुणी बुद्धि सो तो तवा के समान जैसे,
ताके मध्य सूरज की रच हू न जोति है ।
रजो गुणी बुद्धि जैसे आरसी का औंधा वोर,
ताके मध्य सूरज का कुछक उदोत है ।।
सतोगुणी बुद्धि जैसे आरसी की सूधी वोर,
ताके मध्य प्रतिबिम्ब सूरज का पोत[1] है । ओत प्रोत = पूर्ण[1]
त्रिगुण अतीत जैसे प्रतिविम्व मिटजात,
'सुन्दर' कहत एक सूरज ही होत है ।।१३।।

सब से उदास होय काढ मन भिन्न करे,
ताका नाम कहियत[1] परम वैराग है ।
अन्तहकरण हू की वासना निवर्त्त होहि,
ताको मुनि कहत हैं वही बडा त्याग है ।।
चित्त एक ईश्वर से नैंक हू न न्यारा होय,
वही भक्ति कहियत वही प्रेम माग[1] है ।
आप ब्रह्म जगत को एक कर जाने जब,
'सुन्दर' कहत वह ज्ञान भ्रम भाग है ।।१४।।

कहते हैं[1]

मार्ग[1]

कोऊ नृप फूलन की सेज पर सूता आप,
जब लग जागा तो लौं अति सुख माना है ।
नीद जब आई तब वाही को स्वपन भया,
जाय पडा नरक के कुड मे यू जाना है ।।
अति दुख पावे पर निकसा न क्योहि[1] जाय,
जाग जब पडा तब स्वपन वखाना है ।
यह झूठ वह झूठ जाग्रत स्वपन दोऊ,
'सुन्दर' कहत ज्ञानी सब भ्रम भाना है ।।१५।।

कैसे भी[1]

स्वपने मे राजा होय स्वपने मे रक होय,
स्वपने मे सुख दुख सत्य कर जाने हैं ।
स्वपने मे बुद्धि हीन मूढ समझे न कुछ,
स्वपने (मे) पण्डित बहु ग्रन्थन वखाने हैं ।।
स्वपने मे कामी होय इन्द्रिन के वश पडा,
स्वपने मे यती होय अहकार आने हैं ।
स्वपने से जागा जब समझ पडी है तब,
'सुन्दर' कहत सब मिथ्या कर माने हैं ।।१६।।

विधि न निषेध कुछ भेद न अभेद पुनि,
क्रिया सो करत दीसे यू ही नितप्रति है ।
काहू को निकट राखे काहू को तो दूर भाषे,
काहू से नेडे न दूर ऐसी जाकी मति है ।।
राग ही न द्वेष कोऊ शोक न उछाह दोऊ,
ऐसी विधि रहै कहु रति न विरति है ।
बाहिर व्यौहार ठाने मन मे स्वपन जाने,
'सुन्दर' ज्ञानी की कुछ अदभुत गति है ।।१७।।

कामी है न जती है न सूम है न सती है न,
राजा है न रंक है न तन है न मन है।
सोवे है न जागे है न पीछे है न आगे है न
गहे है न त्यागे है न घर है न वन है॥
थिर है न डोले है न मौन है न बोले है न,
बधे है न खुले है न स्वामी है न जन है।
वैसा कोऊ होय जब वाकी गति जाने तब,
'सुन्दर' कहत ज्ञानी शुद्ध ज्ञानघन है॥१८॥

सुनत श्रवण मुख बोलत वचन घ्राण,
सूंघत फूलन रूप देखत दृगन है।
त्वक सपर्सन रस रसना ग्रमन कर,
गहत अशन अरु चलत पगन है॥
करत गमन पुनि बैठत भवन सेज,
सोवत रवन तन ओढत नगन है।
जो जो कुछ व्यवहार जानत सकल भ्रम,
'सुन्दर' कहत ज्ञानी गगन[1] मगन है॥१९॥　　ब्रह्म मे[1]

कर्म न विकर्म करे भाव न अभाव धरे,
शुभ हू अशुभ परे याते निधरक है।
वसती न शून्य जाके पाप हो न पुन्य ताके,
अधिक न न्यून वाके स्वर्ग न नरक है॥
सुख दुख सम दोऊ नीच ही न ऊच कोऊ,
ऐसी विधि रहै सोउ मिला न फरक[2] है।　　अलग[2]
एक ही न दोय जाने वन्ध मोक्ष भ्रम माने,
'सुन्दर' कहत ज्ञानी ज्ञान मे गरक[1] है॥२०॥　　निमग्न[1]

अज्ञानी को दुख का समूह जग जानियत,
ज्ञानी को जगत सब आनन्द स्वरूप है।
नैन हीन को तो घर वाहिर न सूझै कुछ,
जहा जहा जायत तहा तहा अन्ध कूप है॥
जाके चक्षु है प्रकाश अंधकार भया नाश,
वाको जहा रहै तहा सूरज की धूप है।
'सुन्दर' अज्ञानी ज्ञानी अन्तर बहुत आहि,
वाके सदा रात वाके दिवस अनूप है॥२१॥

ज्ञानी और अज्ञानी की क्रिया सब एक सी ही,
अज्ञ आशा और ज्ञानी आश न निराश है।
अज्ञ जोई जोई करे अहकार बुद्धि धरे,
ज्ञानी अहकार बिन करत उदास है।।
अज्ञ सुख दुख दोऊ आप विषै मान लेत,
ज्ञानी सुख दुख को न जाने मेरे पास है।
अज्ञ को जगत यह सकल सन्ताप करे,
'सुन्दर' ज्ञानी को सब ब्रह्म का विलास है ।।२२।।

ज्ञानी लोक मग्रह को करत व्यौहार विधि,
अन्तहकरण मे स्वपन की सी दौर है।
देत उपदेश नाना भाति के वचन कहि,
सब कोउ जानत सकल शिर मौर है।।
हलन चलन पुनि देह से करावत है,
ज्ञान मे गरक नित लिये निज ठौर है।
'सुन्दर' कहत जैसे दन्त गजराज मुख,
खाइवे के और ही दिखायवे के और हैं ।।२३।।

इन्द्रिन का ज्ञान जाके सो तो पशु के समान,
देह अभिमान खान पान ही से लीन है।
अन्तहकरण ज्ञान कुछक विचार जाके,
मनुप व्यौहर शुभ कर्मन आधीन है।।
आतमा विचार ज्ञान जाके निश वासर है,
सोई साधु सकल ही बात मे प्रवीन है।
एक परमातमा का ज्ञान अनुभव जाके,
'सुन्दर' कहत वह ज्ञानी भ्रम छीन है ।।२४।।

जा ही ठौर रवि का उदोत भया ता ही ठौर,
अधकार भाग गया गृह वन बास से।
न तो कुछ वन से उलट आवे घर माहि,
न तो वन चल जाय कनक अवास[1] से।।
जैसे पखी पाख टूट जाही ठौर पडा आय,
ता ही ठौर गिर रहा उडबे की आश से।
'सुन्दर' कहत मिट जाय सब दौड धूप,
धोखा न रहत कोऊ ज्ञान के प्रकाश से ।।२५।।

निवास[1]

जैसे काहू देश जाय भाषा कहै औरसी ही,
समझै न कोऊ वाते कहै का कहन है ।
कोऊ दिन रहू कर बोली सीखे उन ही की,
फेरि समझावे तब सब को लहन[1] है ॥ — ग्रहण करे[1]
तैसे ज्ञान कहैते सुनत विपरीत लागे,
आप आपना ही मत सब को गहत है ।
उन ही के मत कर 'सुन्दर' कहत ज्ञान,
तब ही तो ज्ञान ठहराइ के रहत हैं ॥२६॥

एक ज्ञानी कर्मन मे ततपर देखियत,
भक्ति का प्रभाव नाहि ज्ञान मे गरक[1] है । — मग्न[1]
एक ज्ञानी भकति का अत्यन्त प्रभाव लीये,
ज्ञान माहि निश्चै कर कर्म से तरक[2] है ॥ — त्याग[2]
एक ज्ञानी ज्ञान ही मे ज्ञान का उचार करे,
भक्ति अरु कर्म इन दुहु से फरक[3] है । — अलग[3]
कर्म भक्ति ज्ञान तीनो वेद मे बखान कहै,
'सुन्दर' बताया गुरु ताही मे तरक[4] है ॥२७॥ — तत्पर[4]

जैसे पखी पवन मे चलत अवनि[1] आय, — पृथ्वी[1]
तैसे ज्ञानी देह कर कर्मन करत हैं ।
जैसे पखी चु चकर चुगत अहार पुनि,
तैसे ज्ञानी उर मे उपासना धरत है ॥
जैसे पखी पवन मे उडत गगन माहि,
तैसे ज्ञानी ज्ञान कर ब्रह्म मे चरत है ।
'सुन्दर' कहत ज्ञानी तीनो भाति देखियत,
ऐसी विधि जाने सब संशय हरत है ॥२८॥

इन्दव—एक क्रिया कर किंपि निपावत[1] आदि रु अन्त ममत्व बधा है । — उत्पन्न करे[1]
एक क्रिया कर पाक करे जब भोजन लौं कुछ अन्न रधा है ॥
एक क्रिया मल त्यागत है लघु नीति[2] करे कहु नाहि कधा है । — मूत्र त्याग[2]
त्यो यह जान क्रिया अरु संग्रह 'सुन्दर' तीन प्रकार सधा है ॥२९॥

दोय जने मिल चौपड खेलत सारि धरै पुनि ढारत पासा ।
जीतत है सु खुसी मन मे अति हारत है सु भरे जु उसासा[1] ॥ — ऊंचे श्वास[1]
एक जना दुहु वोर ही खेलत हार न जीत करे जु तमासा ।
तैसे अज्ञानी के द्वैत भया भ्रम 'सुन्दर' ज्ञानी के एक प्रकाश ॥३०॥

गवइया – जीव नरेश अविद्या निद्रा, सुख सज्या सोया कर हेत ।
कर्म खवास पुटपरी[1] लाई, तातें वहु विधि भया अचेत ॥　पग दवाना[1]
भक्ति प्रधान जगाया कर गह, आलस भरा जभाई लेत ।
'सुन्दर' अब निद्रा वश नाही ज्ञान जागरन सदा सचेत ॥३१॥

ज्ञानी कर्म करे नाना विधि, अहकार या तन का खोवे ।
कर्मन का फल कछू न वछे, अन्तहकरण वासना धोवे ॥
ज्यो कोई खेती को जोते, लेकर बीज भू न कर बोवे ।
'सुन्दर' कहै सुनो दृष्टान्त हि, नागा न्हाय सु कहा निचोवे ॥३२॥

इति ज्ञानी का अग २९

अथ निर सशय का अग ३०

मनहर— भावे[1] देह छूट जाहु काशी माहि गगा तट,　चाहे[1]
भावे दह छूट जाहु क्षेत्र मगहर[2] मे ।　मगध देश[2]
भावे देह छूट चाहु विप्र के सदन मध्य,
भावे देह छूट जाहु श्वपच[3] के घर मे ॥　चाडाल[3]
भावे देह छूटो देश आरज[4] अनारज मे,　आर्य[4]
भावे देह छूट जाहु वन मे नगर मे ।
'सुन्दर' ज्ञानी के कुछ सशै नहि रहा कोइ
स्वरग नरक सव भाज गया भरमे[1] ॥१॥　भ्रम[1]

भावे देह छूट चाहु आज ही पलक माहि,
भावे देह रहो चिरकाल युग अन्त जू ।
भावे देह छूट जाहु ग्रीषम पावस रितु,
सरद सिसिर शीत छूटत वसन्त जू ॥
भावे दक्षणायन हू भावे उत्तरायन हू,
भावे देह सर्प सिह विज्जुली हनन्त जू ।
'सुन्दर' कहत एक आतमा अखण्ड जान,
याहि भाति निरसंशै भये सव मन्त जू ॥२॥

इन्दव—कै यह देह धरो वन पर्वत कै यह देह नदी में वहो जू ।
कै यह देह धरो धरती महिं कै यह देह कृशान[1] दहो जू ॥　अग्नि[1]
कै यह देह निरादर निंदहु कै यह देह सराहि[2]कहो जू ।　प्रसशा[2]
'सुन्दर' सशय दूर भया सव कै यह देह चलो कि रहो जू ॥३॥

कै यह देह सदा सुख सम्पत्ति कै यह देह विपत्ति पडो जू ।
कै यह देह निरोग रहो नित कै यह देहु हि रोग चरो[1] जू ॥　खावे[1]

कै यह देह हुताशन[2] पैठहु[3] कै[4] यह देह हिमारे गरो जू । अग्नि[2] पडे[3] वा[4]
'सुन्दर' सशय दूर भया सब कै यह देह जिबोकि मरो जू ।।४।।

इति निर सशय का अग ३०

अथ प्रेम परा ज्ञान ज्ञानी का अग ३१

इन्दव—प्रीति की रीति नही कुछ राखत जाति न पाति नही कुल गारा[1] । गौरव[1]
प्रेम के नेम कहू नहि दीसत लाज न कानि लगा सब खारा ।।
लीन भया हरि से अभिअन्तर आठ हु याम रहै मतवारा ।
'सुन्दर' कोउ न जान सके यह गोकुल गाव का पैडा[2] ही न्यारा ।। १ ।। मार्ग[2]=रीति

गोकुल गांव की रीति प्रेम और ज्ञान से मिली जुली है अर्थात् ज्ञान और प्रेम मे भेद गोकुल गाव वालो को नही दीखता था अन्य प्रेम और ज्ञान मार्ग को भिन्न-भिन्न मानते हैं ।

ज्ञान दिया गुरुदेव कृपा कर दूर किया भ्रम खोल किवारा ।
और क्रिया कहि कौन करे अब चित्त लगा परब्रह्म पियारा ।।
पाव बिना चल कै तहि ठाहर पगु भया मन मित्त हमारा ।
'सुन्दर' कोउ न जान सके यह गोकुल गाव का पैडा हि न्यारा ।।२।।
एक अखडित ज्यो नभ व्यापक वाहिर भीतर है इकसारा ।
दृष्टि न मुष्टि न रूप न रेख न सेत न पीत न रक्त न कारा ।।
चक्रित होय रहै अनुभौ बिन जोलग नाहि सु ज्ञान उजारा ।
'सुन्दर' कोउ न जान सके यह गोकुल गाव का पैडा हि न्यारा ।।३।।
द्वन्द्व बिना बिचरे वसुधा पर जा घट आतम ज्ञान अपारा ।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न राग न द्वेष न म्हारा न थारा ।।
योग न भोग न त्याग न सग्रह देह दशा न ढका न उघारा ।
'सुन्दर' कोउ न जान सके यह गोकुल गाव का पैडा हि न्यारा ।।४।।
लक्ष अलक्ष अदक्ष न दक्ष न पक्ष अपक्ष न तूल[1] न भारा[2] । हलका[1] भारी[2]
झूठ न साच अवाच न वाच न कचन काच न दीन उदारा ।।
जान अजान न मान अमान न शान[3] गुमान न जीत न हारा । प्रतिष्ठा[3]
'सुन्दर' कोउ न जान सके यह गोकुल गाव का पैडा हि न्यारा ।।५।।

इति प्रेम परा ज्ञान ज्ञानी का अग ३१

अथ अद्वैष ज्ञान का अग ३२ प्रश्नोत्तर—

इन्दव—हो तुम कौन ? हू ब्रह्म अखडित, देह मे क्यो ? आजन है तेरे ।
बोलत कैसे के ? हू नहि बोलत, जानिये कैसे ? नहि देह के नेरे ।।
दूर करो भ्रम ? निश्चय धारि, कहो गुरुदेव ? कहू नित टेरे ।
हो तुम ऐसे हि ? तू पुनि ऐसा हि, दोय भये ? नहि द्वैत है मेरे ।।१।।

भ्रम यह कौन को है ? भ्रम ही को भ्रम भया,
भ्रम ही को भ्रम कैसे ? तू न जाने कब ही ।
कैसे कर जानू प्रभु गुरु कहै निश्चै धर,
निश्चय मैं धारा अब एक ब्रह्म तब ही ।।९।।

ब्रह्म है ठौर का ठौर दूसरा न कोऊ और,
वस्तु का विचार किये वस्तु पहचानिये ।
पच तत्त्व तीन गुण विस्तरे विविधि भाति,
नाम रूप जहा लग मिथ्या माया मानिये ।।
शेषनाग आदि दे के वैकुण्ठ गोलोक पुनि,
वचन विलास सब भेद भ्रम भानिये[1] । नष्ट करिये[1]
न तो कोउ उरझा न सुरझा कहो सो कौन,
'सुन्दर' सकल यह ऊवावाई[2] जानिये ।।१०।। मिथ्या[2]

ऊवावाई की कथा पृष्ट ८३ मे बावनी ग्रन्थ के १५ वे छन्द के नीचे देखें ।

प्रथम हि देह मे से बाहिर को चौक पडा,
इन्द्रिय व्यौपार सुख सत्य कर जाना है ।
कौन हू सयोग पाय सद्गुरु से भेट भई,
उन उपदेश देके भीतर को आना[1] है ।। अन्तरमुख किया[1]
भीतर के आवत हि बुद्धि का प्रकाश भया,
हू कौन देह कौन जगत किन माना है ।
'सुन्दर' विचारत यू उपजा अद्वैत ज्ञान,
आप को अखण्ड ब्रह्म एक पहचाना है ।।११।।

हूमात-सकल ससार विस्तार कर बरनिया, स्वर्ग पाताल मृति[1]पूरि भ्रम रहा है ।
एक से गिनत गिन जाइये सौ लगे, फेरि कर एक का एक ही गहा है ।।
यह नहिं यह नहिं यह नहिं यह नहिं, रहै अवशेष सो वेद हू कहा है ।
'सुन्दर' सही सो विचार के अपनपा[2], आप मे आप को आप ही लहा है ।।।१२।।

(१२) मृत्यु लोक[1] अपने को[2] प्राप्त किया है

एक तू, दोय तू, तीन तू, चार तू पच तू तत्त्व मे जगत कीया ।
नाम अरु रूप हो बहुत विधि विस्तारा, तुम बिना और कोऊ नाहि बीया[1] ।।
राव तू रक तू दानि तू दीन तू, दोय कर मेलि तै दीया लीया ।
सकल यह सृष्टि तुम माहि उपजै खपे, कहत 'सुन्दर' बडा विपुल हीया[2] ।।१३।।

(१३) दूसरा[1] हृदय[2]

मनहर—तो ही मे जगत यह तू ही है, जगत माहि,
तो मे और जगत मे भिन्नता कहा रही।
भूमि ही से भाजन अनेक भाति नाम रूप,
भाजन विचार देखे वहै एक है मही ॥
जल से तरग भई फेन बुदबुदा अनेक,
सोऊ तो विचारे एक वहै जल है सही।
महा पुरुप जेते है सब का सिद्धान्त एक,
'सुन्दर खल्विद[1] ब्रह्म अन्त वेद[2] है कही ॥१४॥

(१४) "सर्वं खल्विद ब्रह्म" यह सब सृष्टि ब्रह्म रूप ही है। यह श्रुति है। उपनिषद्[2]

जैसे ईक्षु रस की मिठाई भाति भाति भई,
फेरि कर गाले ईक्षुरस हि लहत है।
जैसे घृत थोज[1] के डला सा बन्ध जात पुनि, जमकर[1]
फेरि पिघले से वह घृत ही रहत है ॥
जैसे पानी जम के पाषण हू सा देखियत,
सो पापण फेरि कर पानी हो बहत है।
तैसे हि 'सुन्दर' यह जगत है ब्रह्ममय,
ब्रह्म सो जगतमय वेद यूं कहत है ॥१५॥

जैसे काठ कोरि तामे पूतरी बनाय राखी,
जो विचार देखिये तो वहै एक दार[1] है। काठ[1]
जैसे माला सूत ही की मनिका हू सूत ही के,
भीतर हू पोया पुनि सूत ही का तार है ॥
जैसे एक समुद्र के जल ही का लौण भया,
सोऊ तो विचारे पुनि वहै जल खार है।
तैसे हि 'सुन्दर' यह जगत सु ब्रह्ममय,
ब्रह्म सो जगतमय याहि निराधार[2] है ॥१६॥ निर्णय[1]

जैसे एक लोह हथ्यार नाना विधि कीये,
आदि अन्त मध्य एक लोह ही प्रवानिये।
जैसे एक कचन के भूषण अनेक भये,
आदि अन्त मध्य एक कचन ही जानिये ॥
जैसे एक मैंन[1] के सवारे नर हाथी हय, मोम[1]
आदि अन्त मध्य एक मैंन ही बखानिये।

तैसे ही 'सुन्दर' यह जगत सु ब्रह्ममय,
ब्रह्म सो जगतमय निश्चै कर मानिये ।।१७।।

ब्रह्म मे जगत यह ऐसी विधि देखियत,
जैसी विधि देखियत पूलरी[2] महीर[1] मे । मट्ठा[1] मक्खन की टली[2]
जैसी विधि गिलम[3] दुलीचे[4] मे अनेक भाति, वेलवूटे[3] गलीचा[4]
जैसी विधि देखियत चूनरी हू चीर मे ।।
जैसी विधि कागरे हु कोट पर देखियत,
जैसी विधि देखियत बुदबुदा नीर मे ।
'सुन्दर' कहत लीक हाथ पर देखियत,
जैसी विधि देखियत शीतला शरीर मे ।।१८।।

ब्रह्म अरु माया जैसे शिव अरु शक्ति पुनि,
पुरुष प्रकृति दोउ कर के सुनाये हैं ।
पति अरु पतनी ईश्वर अरु ईश्वरी हू,
नारायण लक्षमी द्वै वचन कहाये है ।।
जैसे कोऊ अर्धनारी नाटेश्वर[1] रूप धरे, शिव मूर्ति[1]
एक बीज ही से दोय दाल नाम पाये हैं ।
तैसे ही 'सुन्दर' वस्तु ज्यो है त्यो ही एकरस,
उभय प्रकार होय आप ही दिखाये है ।।१९।।

इन्दव—ब्रह्म निरीह[1] निरायम निर्गुण नित्य निरजन और न भासै । चेष्टाहीन[1]
ब्रह्म अखडित है अध ऊधर बाहिर भीतर ब्रह्म प्रकासै ।।
ब्रह्महि सूक्षम थूल जहा लग ब्रह्महि साहिब ब्रह्महि दासै ।
'सुन्दर' और कछू मत जान हु ब्रह्म हि देखत ब्रह्म तमासै ।।२०।।

ब्रह्म हि माहि विराजत ब्रह्म हि ब्रह्म विना जनि और हि जानो ।
ब्रह्म हि कु जर[1] कीट हु ब्रह्म हि ब्रह्म हि रक रु ब्रह्म हि रानो[2] ।।हाथी[1] राणा[2]
काल हु ब्रह्म स्वभाव हु ब्रह्म हि कर्म हु जीव हु ब्रह्म बखानो ।
'सुन्दर' ब्रह्म बिना कुछ नाहि सु ब्रह्म हि जान सबै भ्रम भानो[3] ।। नाश करो[3]

आदि हुता सोइ अत रहै पुनि मध्य कहा कुछ और कहावे ।
कारण कारज नाम धरे युग कारज कारण माहि समावे ।।
कारज देख भया विच विभ्रम कारण देख विभ्रम्म विलावे ।
'सुन्दर' या निहचै अभिअन्तर द्वैत गये फिर द्वैत न आवे ।।२२।।

मनहर— द्वैत कर देखे जब द्वैत ही दिखाई देत,
एक कर देखे तब वह एक अग है ।

सूरज को देखे जब सूरज प्रकाशि रहा,
किरण को देखे तो किरण नाना रग है ।।
भ्रम जब भया तब माया ऐसा नाम धरा,
भ्रम के गये से एक ब्रह्म सरबग है ।
'सुन्दर' कहत याकी दृष्टि ही का फेर भया,
ब्रह्म अरु माया के तो माथे नहि शृ ग है ।।२३।।

श्रोत्र कुछ और नाहि नेत्र कुछ और नाहि,
नासा कुछ और नाहि रसना न और है ।
त्वक कुछ और नाहि वाक कुछ और नाहि,
हाथ कुछ और नाहि पावन की दौर है ।।
मन कुछ और नाहि बुद्धि कुछ और नाहि,
चित्त कुछ और नाहि अहकार तोर[1] है । और[1]
'सुन्दर' कहत एक ब्रह्म बिन और नाहि,
आप ही मे आप व्याप रहा सब ठौर है ।।२४।।

इन्दव—व्याप्य न व्यापक व्याप हु व्यापक आतम एक अखण्डित जानो ।
ज्यो पृथवी नहि व्याप्य न व्यापक भाजन व्याप्य हु व्यापक मानो ।।
कचन व्याप्य न व्यापक दीसत भूषण व्याप्य हु व्यापक ठानो ।
'सुन्दर' कारण व्याप्य न व्यापक कारज व्याप्य हु व्यापक आनो ।।२५।।

इति अद्वैत ज्ञान का अग ३२

अथ जगन्मिथ्या का अक ३३

मनहर— किया न विचार कुछ भनक पडी है कान,
धाड आई सुन के डरप विष खाया है ।
जैसे कोऊ अनछता[1] ऐसे ही बुलाइयत, बिना हुआ[1]
बार बीत गई पर कोऊ नहि आया है ।।
वेद हि बरण के जगत तरु ठाढा[1] किया, खडा[1]
अत पुनि वेद जडमूल से उठाया है ।
तैसे ही 'सुन्दर' याका कोऊ एक पावे भेद,
जगत का नाम सुन जगत भुलाया है ।।१।।

ऐसा ही अज्ञान कोऊ आय के प्रकट भया,
दिव्य दृष्टि दुरि[1] गई देखे चम दृष्टि को । छिप[1]
जैसे एक आरसी[1] सदा ही हाथ माहि रहै, दर्पण[1]
सामे[2] हू न देखे फेरि फेरि देखे पृष्टि को ।। समाने[2]

जैसे एक व्योम पुनि बादल सो छाय रहा,
व्योम नहि देखत देखत बहु वृष्टि को।
तैसे एक ब्रह्म ही विराजमान 'सुन्दर' है,
ब्रह्म को न देखे कोऊ देखे सब सृष्टि को ॥२॥

अनछता जगत अज्ञान में प्रकट भया,
जैसे कोऊ बालक बैताल[1] देख डरा है। निज छाया का भूत[1]
जैसे कोऊ सपने में दाबा है अधारे[2] आप, छाती पर हाथ[2]
मुख से न आवे बोल ऐसा दुख परा है॥
जैसे अविचारी रैन जेवरी न जाने ताहि,
आप ही से साप मान भय अति करा है।
तैसे ही 'सुन्दर' एक ज्ञान के प्रकाश बिन,
आप दुख पाय पाय आप पच मरा है ॥३॥

मृत्तिका समाय रही भाजन के रूप माहि
मृत्तिका का नाम मिट भाजन ही गहा है।
कनक समाय त्यों ही होय रहा आभूषण,
कनक न कहे कोऊ आभूषण कहा है॥
बीज हू समाय कर वृक्ष होय रहा पुनि,
वृक्ष ही को देखियत बीज नहीं लहा है।
'सुन्दर' कहत यह यूं ही कर जाना सब,
ब्रह्म ही जगत होय ब्रह्म दूरि रहा है ॥४॥

रहत है देह माहि जीव आय मिल रहा,
कहा देह कहा जीव वृथा चौंकि[1] परा है। डरा[1]
बूडबे के डर से तिरन का उपाय करे,
ऐसे नहि जाने यह मृगजल भरा है॥
जेवरी को सांप जैसे सीप चिपै[2] रूपा[3] जान, मे॰[2] चांदी[3]
और का और ही देख यूं ही भ्रम करा है।
'सुन्दर' कहत यह एक ही अखण्ड ब्रह्म,
ताही को पलट के जगत नाम धरा है ॥५॥

इति जगन्मिथ्या का अंग ३३

अथ आश्चर्य का अंग ३४

मनहर— वेद का विचार सोई सुन के सन्तन मुख,
आप हू विचार कर सोई धारियत है।

योग की युकति जान जग से उदास होय,
शून्य[1] मे समाधि लाइ मन मारियत है ।। एकान्त मे[1]
ऐसे ऐसे करत करत केते दिन बीते,
'सुन्दर' कहन अजहू विचारियत है ।
काला ही न पीला न तो ताता ही न सीला कुछ,
हाथ न पडत तातें हाथ झाडयत है ।।१।।

मन का अगम अति वचन थकित होत,
बुद्धि हू विचार कर बहु क्षीडियत[1] है । क्षीण होती है[1]
श्रवण न सुने जाहि नैन हू न देखे ताहि,
रसना का रस सरबस छीडियत[2] है ।। बिखरता है[2]
त्वक का सपर्श नाहि घ्राण का न विषै होय,
पगन हू कर जित तित हीडियत[3] है । फिरना[3]
'सुन्दर' कहत अति सूक्षम स्वरूप कुछ,
हाथ न पडत तातें हाथ मीडियत[4] हो ।।२।। मलता है[4]

गुफा को सवारि तहा आसन हु मारि कर,
प्राण हू को धारि धारि नाक सीटियत[1] है । निकालना[1]
इन्द्रिन को घेर कर मन हू को फेरिकर,
त्रिकुटी मे हेरि हेरि हिया छीटियत[2] है ।। शुद्ध करना[2]
सब छटकाइ पुनि शून्य[3] मे समाय[4] तहा, एकान्त मे[3] जाय[4]
समाधि लगाय कर आँख मीटियत[5] है । बन्ध करना[5]
'सुन्दर' कहत हम और हू किये उपाय,
हाथ न पडत ताते हाथ पीटियत[6] है ।।३।। हाथ पर हाथ मारना[6]

बोले ही न मौन धरै बैठे ही न गौन करे,
जागे ही न सोवे सो तो दूर ही न नीरा[1] है । पास[1]
आवे ही न जाय न तो थिर अकुलाइ पुनि,
भूखा ही न खाय कुछ ताता ही न सीरा[2] है ।। शीतल[2]
लेत ही न देत कुछ हेत न कुहेत पुनि,
श्याम ही न श्वेत सो तो राता ही न पीरा[3] है । पीला[3]
दूबरा[4] न मोटा कुछ लाबा ही न छोटा ताते, दुबला[4]
'सुन्दर' कहै सु कहा काच ही न हीरा है ।।४।।

भूमि ही न आप न तो तेज ही न ही ताप न तो,
वायु हू न व्योम न तो पच का पसारा है ।

हाथ ही न पाव न तो नैन वैन भात न तो,
रंक ही न राव न तो वृद्ध ही न बारा[1] है ।। बालक[1]
पिंड ही न प्राण न तो जान न ग्रजान न तो,
बन्ध निरवान न तो हरवा[2] न भारा है। हलका[2]
द्वैत न ग्रद्वैत न तो भीत[3] न ग्रभीत तातै, डरा[3]
'सुन्दर' कहा न जाय मिला ही न न्यारा है ।।५।।

इन्दव—पाप न पुन्य न थूल न शून्य न बोल न मौन न सोवे न जागे ।
एक न दोय पुरूष न जोइ[1] कहै कहा कोइ न पीछे न ग्रागे ।। स्त्री[1]
वृद्ध न बाल न कर्म न काल न ह्रस्व विशाल न जूझे[2] न भागे । युद्ध करे[2]
बन्ध न मोक्ष ग्रप्रोक्ष[3] न प्रोक्ष[4] न 'सुन्दर' है न ग्रसुन्दर लागे ।।६।। प्रत्यक्ष[3] ग्रप्रत्यक्ष[4]

तत्त्व ग्रतत्त्व कहा नहिं जात जु शून्य ग्रशून्य उरे न परे है ।
जोति ग्रजोति न जान सके कोउ ग्रादि न ग्रन्त जिवे न मरे है ।।
रूप ग्ररूप कछू नहिं दीसत भेद ग्रभेद करे न हरे है ।
शुद्ध ग्रशुद्ध कहै पुनि कौन जु 'सुन्दर' वाले न मौन धरे है ।।७।।

खोजत खोजत खोज रहे ग्ररु खोजत है पुनि खाज है ग्राने[1] । ग्रन्य[1]
गावत गावत गाइ गये वहु गावत हैं ग्ररु गाइ है गाने ।।
देखत देखत देख थके सव दीसे नही कहु ठौर ठिकाने ।
वूझत वूझत वूझ के 'सुन्दर' हेरत हेरत हेरि हिराने[2] ।।८।। हैरान[2]

पिंड मे है पर पिंड लिये नहिं पिंड परे पुनि त्यो हि रहावे[1] । रहता है[1]
श्रोत मे है पर श्रोत सुने नहिं दृष्टि मे हे पर दृष्टि न ग्रावे ।।
बुद्धि मे है पर बुद्धि न जानत चित्त मे है पर चित्त न पावे,
शब्द मे है पर शब्द थका कहि शब्द हू 'सुन्दर' दूर बतावे ।।९।।

भूमि हु तैसे हि ग्राप हु तैसे हि तेज हु तैसे हि तैसे हि पौना[1] । पवन[1]
व्योम हु तैसे हि ग्राहि ग्रखण्डित तैसे हि ब्रह्म रहा भर भौना[2] ।। भवन[2]
देह सयोग वियोग भया जव ग्राया सु कौन गया तव कौना ।
जो कहिये तो कहै न बने कुछ 'सुन्दर' जान गही मुख मौना ।।१०।।

एक हि ब्रह्म रहा भरपूर तो दूसर कौन वतावनहारा ।
जो कोउ जीव करे जु प्रमान तो जीव कहा कुछ ब्रह्म से न्यारा ।।
जो कहै जीव भया जगदीश से तो रवि माहि कहा क्या अधारा ।
'सुन्दर' मौन गही यह जान के कौन हु भाति न होत निधारा[1] ।।११।। निर्णय[1]
जो हम खोज करै ग्रभिग्रन्तर तो वह खोज उरै हि विलावे ।
जो हम वाहिर को उठ दौरत तो कछु वाहर हाथ न ग्रावे ।।

जो हम काहु को पूछत है पुनि सोउ अगाध अगाध बतावे ।
ताहि तें कोउ न जान सके तिहिं 'सुन्दर' कौनसि ठौर रहावे ।।१२।।

नैन न बैन न सैन न आश न वास न श्वास न प्यास न याते ।
शीत न घाम न ठोर न ठाम न पुंस न वाम न बाप न माते[1] ।। माता[1]
रूप न रेख न शेष अशेष न श्वेत न पीत न श्याम न तातें[2] । इससे[2]
'सुन्दर' मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बातें ।।१३।।

वेद थके कहि तन्त्र थके कहि ग्रन्थ थके निश बासर गातें ।
शेष थके शिव इन्द्र थके पुनि खोज किया बहुभांति विधातें[1] ।। ब्रह्मा[1]
पीर थके अरु मीर[1] थके पुनि धीर थके बहु बोल गिराते । सय्यद[1]
'सुन्दर' मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बाते ।।१४।।

योगि थके कहि जैन थके ऋषि तापस थाकि रहे फल खातें ।
न्यासि[1] थके वनवासी थके जु उदासि थके बहु फेर फिराते ।।
शेख[2] मसाइक[3] और उलाइक[4](मलायक)थाकि रहे मन मे मुसकाते[5] ।
'सुन्दर' मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बाते ।।१५।।

(१५) सन्यासी[1] मुसलमान धर्म के ज्ञाता[2] बहुत से शेष[3] फरिश्ते[4] प्रसन्न होते है[5] परन्तु ब्रह्म आश्चर्य रूप होने से वाणी से कोई भी उसका कथन किसी भी प्रकार नही कर सके यही इस अंग का तात्पर्य वाणी है ।

इति आश्चर्य का अंग ३४

इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित सवैया (सुन्दर विलास)ग्रन्थ समाप्त सर्वंहद ५६३

अथ साखी ग्रन्थ ४०

अथ गुरु देव का अंग १

दोहा— दादू सद्गुरु बन्दिये, सो मेरे शिर मौर ।
'सुन्दर' वहिया जात था, पकड लगाया ठौर[1] ।।१।। निरजनराम मे[1]

दादू सद्गुरु वन्दिये, मन क्रम[2] बिसवा बीस । कर्म[2]
'सुन्दर' तिनके चरण दो, सदा रहो मम शीश ।।२।।

दादू सद्गुरु वन्दिये[1], सब सुख आनन्द मूल । प्रणाम[1]
'सुन्दर' पद रज परसते, निकस गई सब शूल[2] ।।३।। पीडा[3]

दादू सद्गुरु वन्दिये, सकल सुखन की राशि ।
'सुन्दर' पद रज परसते, दुःख हो गये नाशि ।।४।।

दादू सद्गुरु वन्दिये, सकल शिरोमणि राइ[1] । राजा[1]
बार बार कर जोड के, सुन्दर बलिबलि जाइ ।।५।।

'सुन्दर' सद्‌गुरु वन्दिये, नमस्कार प्रणपत्ति[1] । दडवत[1]
विघ्न विलै हो जात है, मन वच क्रम[2] कर सत्य ॥६॥ कर्म[2]
'सुन्दर' सद्‌गुरु वन्दिये, सोई वन्दन जोग ।
औषधि शब्द पिवाइ कर, दूर किया मव रोग[1] ॥७॥ मन के विकार[1]
'सुन्दर' सद्‌गुरु वन्दिये, गहिये दृढ कर पाव ।
मस्तक हस्त लगाय जिन, किये रक से राव ॥८॥
'सुन्दर' सद्‌गुरु वन्दिये, जिन के गुण नहिं छेह[1] । अन्त[1]
श्रवन हु शब्द सुनाय कर, दूर किये सन्देह ॥९॥
'सुन्दर' सदगुरु वन्दिये, निर्मल ज्ञान स्वरूप ।
नैनन मे अजन किया, देखा तत्त्व अनूप ॥१०॥
'सुन्दर' सद्‌गुरु आपतें किया अनुग्रह आय ।
मोह निशा मे सोवते, हम को लिया जगाय ॥११॥
'सुन्दर' सत्‌गुर आपतें, गहे शीश के बाल ।
बूडत जगत समुद्र मे, काढि लिया ततकाल ॥१२॥
'सुन्दर' सद्‌गुरु आपते, मुक्त किये गृह कूप ।
कर्म कालिमा[1] दूर कर, कीये शुद्ध स्वरूप ॥१३॥ अज्ञान[1]
'सुन्दर' सद्‌गुरु आपते बन्धन काटे सर्व ।
मुक्त भये ससार मे, विचरत हैं निहगर्व[1] ॥१४॥ गर्व रहित[1]
'सुन्दर' सद्‌गुरु आपतें, अलख खजीना[1] खोल । खजाना[1]
दुख दरिद्र जाते रहे, दीया रत्न[1] अमोल ॥१५॥ ज्ञान[1]
सद्‌गुरु आया महर कर, 'सुन्दर' पाया पूरि[1] । पूरा[1]
शब्द सुनाया आपना, भरम उडाया दूरि ॥१६॥
'सुन्दर' सद्‌गुरु महर[1] कर, निकट बताया राम । दया[1]
जहा तहा भटकत फिरै, काहे को बेकाम ॥१७॥
शक न आनें जगत की, सद्‌गुरु शब्द विचार ।
'सुन्दर' हरिरस सो पिवे, मेल्है शीश[1] उतार ॥१८॥ अहकार[1]
सद्‌गुरु शब्द सुनायकर, दीया ज्ञान विचार ।
'सुन्दर' सूर[1] प्रकाशिया, मेटा सब अन्धियार ॥१९॥ ज्ञान[1]
सद्‌गुरु कही मरम की, हिरदै बैसी[1] आय । बैठी[1]
रीति सकल ससार की, 'सुन्दर' दिई बहाय ॥२०॥
'सुन्दर' सद्‌गुरु सो मिला, जो दुर्ल्लभ जग माहि ।
प्रभू कृपा से पाइये, नहिं तो पइये नाहि ॥२१॥

चौकी बन्ध

चौपइया

या पासै आप रहै अविनाशी देशि विचारहु काया ।
या काहु न जाना जगत भुलाना मोहै मोटी माया ।।
या माटी माहै हीरा निकस्या सतगुरु षोज लषाया ।
या षाल लपेटचा सुन्दर दीसै याही पासै पाया ।।५।।

इनके पढ़ने की विधि

इस चित्रकाव्य के चित्र के गर्भ मे या अक्षर से प्रारम्भ करके दाहिनी ओर पढै । ओर से अक्षर फिर दाहिनी ओर पढते हुए चौकी के प्रथम पागे मे सी अक्षर मे चरणार्ध या यति को उच्चारण करके आगे पार्श्व के देषि आदि शब्दो को पढ कर हु अक्षर को पढ अदर काया शब्द पर प्रथम चरण पूर्ण करैं । फिर उसही या अक्षर से काहु मे होकर मोटी माया तक अदर आ पढै । यहा दूसरा चरण पूरा हुआ आगे इसही प्रकार उसही या अक्षर से शेष दोनो चरणो को पढ कर सुन्दर दीसै याही पासै पाया । यहा समाप्त कर दे । चारो चरणो के चरणार्धों मे चार अक्षर पागो मे है ।

'सुन्दर' सद्गुरु तो मिले, जो हरि देहि सुहाग[1] । सौभाग्य[1]
मनसा वाचा कर्मना, प्रकटे पूरण भाग ।।२२।।
'सुन्दर' सद्गुरु सारिखा, उपकारी नहि कोइ ।
देखे तीनो लोक मे, सरिभरि[1] कछू न होय ।।२३।। बराबर[1]
'सुन्दर' सद्गुरु पलक मे, मुक्त करत नहि बार ।
जीव बुद्धि जाती रहै, प्रकटे ब्रह्म विचार ।।२४।।
'सुन्दर' सद्गुरु पलक मे, दूर करै अज्ञान ।
मन वच कर्म जिज्ञासु हो, शब्द सुने जो कान ।।२५।।

'सुन्दर' सद्गुरु के मिले, भाजि गई सब भूख ।
अमृत पान कराय के, भरी अधूरी कूख[1] ।।२६।। आश रूप कोल[1]
'सुन्दर' सद्गुरु जब मिला, पडदा दिया उठाइ[1] । हटाय[1]
ब्रह्म घोंट[1] माही सकल, जग चित्राम दिखाय ।। २७।। ब्रह्म रसकी[1]
'सुन्दर' सद्गुरु सारिखा, कोऊ नही उदार ।
ज्ञान खजीना खोलिया, सदा अटूट भडार ।।२८।।

वेद नृपति की बदि मे, आय पडे सब लोइ[1] । लोग[1]
निगहवान[2] पडित भये, क्यो कर निकसे कोइ ।।२९।। रक्षक[2]
सद्गुरु आता नृपति के, बेडी काटै आय ।
निगहवान देखत रहै, 'सुन्दर' देहि छुडाय ।।३०।।

'सुन्दर' सद्गुरु शब्द का, व्यौरि[1] बताया भेद । भली भाति[1]
सुरझाया भ्रम जाल से, उरझाया था वेद ।।३१।।
वेद माहि सब भेद है, जाने विरला कोइ ।
'सुन्दर' सो सद्गुरु बिना, निरवारा[1] नहि होइ ।।३२।। छूटकारा[1]
'सुन्दर' सद्गुरु यू कहा, शब्द सकल का मूल ।
सुरझे एक विचार से, उरझे शब्द स्थूल ।।३३।।
'सुन्दर' ताला शब्द का, सद्गुरु खोला आय ।
भिन्न भिन्न समझाय कर, दीया अर्थ बताय ।।३४।।
गोरख धन्धा वेद है, वचन कडी बहु भाति । उलझी हुई कडिया
'सुन्दर' उरझा जगत सब, वर्णाश्रम की पाति ।।३५।।

क्रिया कर्म बहु विधि कहे, वेद वचन विस्तार ।
'सुन्दर' समझे कौन विधि, उरझ रहा ससार ।।३६।।
कर्मकाड के वचन सुन, आटी पड़ी अनेक ।
'सुन्दर' सुने उपासना, तब कुछ होय विवेक ।।३७।।

'सुन्दर' सद्गुरु जब मिले, पेच बतावे आय ।
भिन्न भिन्न कर अर्थ को, आटी दे सुरझाय ।।३८।।
अन्तवेद के वचन से, उपजे ज्ञान अनूप ।
'सुन्दर' आटी सुरझ के, तब हो ब्रह्म स्वरूप ।।३९।।
गोरख धन्धा लोह मे, कडी लोह ता माहि ।
'सुन्दर' जाने ब्रह्म मे, ब्रह्म जगत दो नाहि ।।४०।।
'सुन्दर' सद्गुरु शब्द से, सारे सब विधि काज ।
अपना कर निर्वाहिया, वाह गहे की लाज ।।४१।।
'सुन्दर' सद्गुरु शब्द से, दीया तत्त्व बताय ।
सोवत जागा स्वप्न से, भ्रम सब गया बिलाय ।।४२।।
'सुन्दर' जागे भाग शिर, सद्गुरु भये दयाल ।
दूर किया विष मत्र से, थकत भया मन व्याल[1] ।।४३।। सर्प[1]
'सुन्दर' सद्गुरु उमग[1] के, दीनी मौज अनूप । हर्षित[1]
जीवदशा से पलट के, किये ज्ञान स्वरूप ।।४४।।
'सुन्दर' सद्गुरु श्रम विना, दूर किया सन्ताप ।
शीतलता हृदये भई, ब्रह्म विराजे आप ।।४५।।
परमातम से आतमा, जुदे रहे बहु काल ।
'सुन्दर' मेला कर दिया, सद्गुरु मिले दलाल ।।४६।।
परमातम अरु आतमा, उपजा यह अविवेक ।
'सुन्दर' भ्रम से दोय थे, सद्गुरु कीये एक ।।४७।।
हम जाना था आप मे, दूर परे है कोइ ।
सुन्दर' जब सद्गुरु मिला, सोह सोह होइ ।।४८।।
स्वय ब्रह्म सद्गुरु सदा, अमी शिष्य बहु सत[1] । साधक सत[1]
दान दिया उपदेश जिन, दूर किया भ्रम हत ।।४९।। नाश[2]
राग द्वेष उपजे नही, द्वैत भाव को त्याग ।
मनसा वाचा कर्मना, 'सुन्दर' यह वैराग ।।५०।।
सदा अखण्डित एक रस, सोह मोह होइ ।
'सुन्दर' याही भक्ति है, बूझे[1] विरला कोइ ।।५१।। समझे[1]
अह भाव मिट जात है, तासे कहिये ज्ञान ।
वचन तहा पहुचे नही, 'सुन्दर' सो विज्ञान ।।५२।।
पट शत[1]सहस्र इकीस है, मनका[2] स्वासो स्वास । सौ[1] मणिया[2]
माला फेरे रात दिन, सोह 'सुन्दरदास' ।।५३।।

ज्ञान तिलक शोहे सदा, भक्ति दिई गुरु छाप ।
व्यापक विष्णु उपासना, 'सुन्दर' अजपा जाप ॥५४॥
'सुन्दर' सूता[1] जीव है, जागा ब्रह्म स्वरूप । अज्ञान नींद में[1]
जागन सोवन से परे सद्गुरु कहा अनूप[2] ॥५५॥ निजरूप[2]
'सुन्दर' समझे एक है, अन समझे को द्वैत[1] । द्वैत[1]
उभय रहित सद्गुरु कहै, सो है वचातीत[2] ॥५६॥ वचन से परे[2]
बोलत बोलत चुप भया, देखत मूंदे नैन ।
'सुन्दर' पावे एक को, यह सद्गुरु की सैन ॥५७॥
मूरख[1] पावे अर्थ को, पण्डित पावे नाहि । ससार से विमुख[1]
'सुन्दर' उलटी बात यह, है सद्गुरु के माहि ॥५८॥
जो कोउ विद्या देत है, सो विद्या गुरु होइ ।
जीव ब्रह्म मेला करे, 'सुन्दर' सद्गुरु सोइ ॥५९॥
गुरु शिष्य हिं उपदेश दे, यह गुरु शिष व्यवहार ।
शब्द सुनत सशय मिटे, 'सुन्दर' सद्गुरु सार ॥६०॥
'सुन्दर' गुरु सु रसाइनी, बहु विधि करे उपाय ।
सद्गुरु पारस परस से, लोह हेम[1] हो जाय ॥६१॥ सोना[1]
'सुन्दर' ससकति[1]दार[2] से, गुरु मथ काढे आग । उपाय[1] अरणी[2]
सद्गुरु चकमक ठोकतें, तुरन्त उठे कफ[3]जाग ॥६२॥ सूत्र के धागे में[3]
'सुन्दर' गुरु जल खोद के, नित उठ सीचे खेत ।
सद्गुरु वरषे इन्द्र ज्यो, पलक माहि सरसेत[1] ॥६३॥ तालाव सहित[1]
'सुन्दर' गुरु दीपक किये, घर मे का तम जाय ।
सद्गुरु सूर प्रकाश से, सबहि अधेर विलाय ॥६४॥
'सुन्दर' शिष जिज्ञासु हो, सनमुख देखे दृष्टि ।
सद्गुरु हृदय उमग कर, करै अमी[1] की वृष्टि ॥६५॥ ज्ञानामृत[1]
'सुन्दर' शिष जिज्ञासु हो, शब्द गहै मन लाय ।
तासे सद्गुरु तुरत ही, ज्ञान कहै समझाय ॥६६॥
'सुन्दर' शिष जिज्ञासु है, निश्चय आव नाहि ।
तो सद्गुरु कहबो करो, ज्ञान न उपजे माहि ॥६७॥
'सुन्दर' शिष जिज्ञासु है, पर जो बुद्धि न होइ ।
तो सद्गुरु क्यो पचमरे, शब्द गहै नहि कोइ ॥६८॥
जन 'सुन्दर' निश्चय बिना, क्यो कर उपजे ज्ञान ।
सद्गुरु दोष न दीजिये, शिष्य मूढ मति जान ॥६९॥

'सुन्दर' सद्‌गुरु प्रकट है, तिनका आशय गूढ ।
जो कृत देखे देह के, सो क्यो पावे[1] मूढ ॥७०॥   ज्ञान[1]

'सुन्दर' सद्‌गुरु प्रकट है, बोलै अमृत बैन ॥
सूरज को देखे नही, मूद रहै जो नैन ॥७१॥

'सुन्दर' सद्‌गुरु प्रकट है, जिन के ब्रह्म विचार ।
मूरख औगुण काढिले, देख देह व्यवहार ॥७२॥

सद्‌गुरु शुद्ध रूप है, शिप देखे गुण देह ।
'सुन्दर' कारज क्यो सरे[1], कैसे बधे सनेह ॥७३॥   सिद्ध हो[1]

'सुन्दर' सद्‌गुरु ब्रह्ममय, पर शिपकी चम दृष्टि ।
सूधी वोर न देख ही, देखे दर्पण पृष्टि ॥७४॥

'सुन्दर' सद्‌गुरु क्यो द्रसे[1], शिष की दृष्टि मलीन ।   दीखे[1]
देखत है सब देह कृत[2], खान पान से लीन ॥७५॥   काम[2]

'सुन्दर' सूक्षम दृष्टि हो, तब सद्‌गुरु दरसाइ ।
देखे देह स्थूल को, यू शिप गोता खाइ ॥७६॥

सद्‌गुरु ही से पाइये, राम मिलन की बाट ।
'सुन्दर' सब को कहत है, कौडा[1] बिना न हाट ॥७७॥   धन[1]

सद्‌गुरु जाहि कृपा करे, सो जाने सब भेव[1] ।   रहस्य[1]
'सुन्दर' क्यो कर पाइये, एक[2] बिना गुरुदेव ॥७८॥   ब्रह्म[2]

'सुन्दर' सद्‌गुरु प्रकट है, जिन के हृदय प्रकाश ।
वे अलिप्त है देह से, ज्यो अलिप्त आकाश ॥७९॥

दूध माहि ज्यो जल मिले, रगत मे ज्यो नीर ।
सद्‌गुरु हंस[1] जुदा करे, 'सुन्दर' पानी क्षीर[2] ॥८०॥ दूध[2] सूर्य, हंस[1]

'सुन्दर' सद्‌गुरु के मिले, संशय हूवा छिन्न ।
यू निश्चय कर जानिया, देह आतमा भिन्न ॥८१॥

'सुन्दर' काढे सोधि[1] कर, सद्‌गुरु सोनी होइ ।   [illegible][1]
शिप सुवर्ण निर्मल करे, टाका[2] रहै न कोइ ॥८२॥   [illegible][2]

'सुन्दर' सद्‌गुरु वैद्य ज्यो, परउपकार करेइ ।
जैसा ही रोगी मिले, तैसी औषधि देइ ॥८३॥

सद्‌गुरु देखे नाडि को, दूर करे सब व्याधि ।
'सुन्दर' ताको छोड दे, जाके रोग असाधि ॥८४॥

सद्‌गुरु साहगजेन्द्र[1] है, सुन्दर वस्तु अपार । [illegible][1]
जोई आवे लेन को, ताको तुरत तयार ॥८५॥

अथ सुमरन का अंग २

दोहा— 'सुन्दर' सद्गुरु यूं कहा, सकल शिरोमणि नाम ।
ताको निशदिन सुमरिये, सुख सागर सुख धाम ॥१॥
राम नाम श्रवणो सुना, रसना किया उचार ।
'सुन्दर' पीछे सुरति से, हृदय प्रकट रकार ॥२॥
नाम निरंतर लीजिये, अन्तर पड़े न कोइ ।
'सुन्दर' सुमरन सुरति से, अन्तर[1] हरि हरि होइ ॥३॥ भीतर[1]
हृदये मे हरि सुमरिये, अन्तरयामी राय ।
'सुन्दर' नीके यत्न से, अपना वित्त छिपाय ॥४॥
काहू को न दिखाइये, राम नाम सी[1] वस्त । जैसी[1]
'सुन्दर' बहुत कलाप[1] कर, आई नेरे हस्त ॥५॥ पुण्य समूह से[1]
एक हाथ हीरा चढा[1] ताका, मोल न तोल । आया[1]
घर घर डोले बेचता, 'सुन्दर' याही भोल[2] ॥६॥ भूल[2]
राम नाम रटो करे, निश दिन सुरति[1] लगाय । वृत्ति[1]
सुन्दर' चाले गाव जिहि, तहा पहूचे जाय ॥७॥
राम नाम सतन धरा, राम मिलन के काज ।
'सुन्दर' पल मे पार हो बैठे नाम जहाज॥८॥
राम नाम तिहु[1] लोक मे, भवसार की नाव । तीनो[1]
सद्गुरु खेवट वाह दे, 'सुन्दर' वेगा आव ॥९॥
राम नाम विन लेन को, और वस्तु कहि कौन ।
'सुन्दर' जप तप दान व्रत, लागे खारे लौंन ॥१०॥
राम नाम मिश्री पिये, दूर जाहिं सब रोग ।
'सुन्दर' औषधि कटुक सब, जप तप साधन योग ॥११॥
नाम लिया तिन सब किया, 'सुन्दर' जप तप नेम ।
तीरथ अटन[1] सनान व्रत, तुला बैठ दत्त हेम[2] ॥१२॥ भ्रमण[1] सोना[2]
नाम बराबर तोलिया, तुले न कोऊ धर्म ।
'सुन्दर' ऐसे नाम का, लहे न मूरख मर्म[1] ॥१३॥ रहस्य[1]
राम भजन परिश्रम बिना, करिये सहज स्वभाइ ।
'सुन्दर' कष्ट कलेश तज, मन की प्रीति लगाइ ॥१४॥
सब सुख हरि के भजन मे, कष्ट कलेश न कोइ ।
'सुन्दर' देखे कष्ट को, जगत खुसी तब हो ॥१५॥
'सुन्दर' सब ही संत मिल, सार लिया हरि नाम ।
तक्र तजी घृत काढिके, और क्रिया किहि काम ॥१६॥

राम नाम पीयूष[1] तज, विष पीवें मतिहीन । अमृत[1]
'सुन्दर' डोलें भटकते, जन जन आगे दीन ॥१७॥
राम नाम को छोडि के, और भजें ते मूढ ।
'सुन्द्रर' दुख पावे सदा, जन्म जन्म वे हूढ[1] ॥१८॥ हठी[1]
राम नाम हीरा तजे, कंकर पकडे हाथ ।
'सुन्दर' कबहु न कीजिये, उन मूर्खन का साथ ॥१९॥
राम नाम[1] भोजन करे, राम नाम जल पान । स्मरण साथ[1]
राम नाम से मिल रहै, 'सुन्दर' राम समान ॥२०॥
राम नाम सोवत कहै, जागे हरि हरि होइ ।
'सुन्दर' बोलत ब्रह्म मुख, ब्रह्म सरीखा[1] सोइ ॥२१॥ जैसा[1]
बैठत बनमाली कहै, ऊठत अविगत नाथ ।
चलते चिन्तामणि जपे, 'सुन्दर' सुमिरन साथ ॥२२॥
नारायण से नेह अति; सन्मुख सिरजनहार ।
परब्रह्म से प्रीतडी, 'सुन्दर' सुमिरन सार ॥२३॥
राम नाम से रत भया' हर्षत हरि के नाम ।
गलित भया गोविन्द से, 'सुन्दर' आठो याम ॥२४॥
लीन[1] भया विचरत फिरे, छीन भया गुण देह । स्मरण मे[1]
हीन भयी सब कल्पना, 'सुन्दर' सुमिरत येह ॥२५॥
भजन करत भय भागिया, सुमिरन भागा सोच ।
जाप करत जौरा[1] टला, 'सुन्दर' साची लोच[2] ॥२६॥ यमदूत[1] वृत्ति[2]
'सुन्दर' महिमा नाम की, क्यो कर बरनी जाय ।
शेष सहस मुख कहत हैं, सो भी पार न पाय ॥२७॥
'सुन्दर' महिमा नाम की, कहत न आवे अन्त ।
शिव सनकादिक मुनि जना, थकित भये सब सन्त ॥२८॥
राम भजन जाके हृदै, ताको टोटा कौन ।
मूरतिवती लक्षमी, 'सुन्दर' वाके भौन ॥२९॥
राम नाम जाके हृदय, 'सुन्दर' वदहि देव ।
पहल[1] डिगावे आयके, पीछे लागें सेव ॥३०॥ पहले[1]
राम नाम जाके हृदय, ताके कौन अनाथ[1] । पने की भावना[1]
अष्ट सिद्धि नव निधि सदा, 'सुन्दर' वाके साथ ॥३१॥
राम नाम जाके[1] हृदय, जगत खुसी सब होत । उस को देखकर[1]
'सुन्दर' निन्दा करत जे, तेई करै डण्डोत ॥३२॥

राम नाम जाके हृदय, ताहि नवैं सब कोइ ।
ज्यों राजा की त्रास मे, सुन्दर' अति डर होइ ।।३३।।
'सुन्दर' भजिये राम को, तजिये माया मोह ।
पारस के परसे बिना, दिन दिन छीजे[1] लोह ।।३४।। काट से[1]

'सुन्दर' हरि के भजन से, सत भये सब पार ।
भवसागर नव का बिना, बूडत है ससार ।।३५।।
'सुन्दर' हरि के भजन से, निमल अतहकर्ण ।
सब ही का अधिकार है, उधरैं चारों वर्ण ।।३६।।

'सुन्दर' भजन सब हि करहु, नारायण निरपेछ[1] । निर्पेक्ष[1]
प्रीति परमगुरु लेत हैं, अतिज हो कि मलेछ, ।।३७।।

प्रीति सहित जे हरि भजे, तब हरि होहि प्रसन्न ।
'सुन्दर' स्वाद न प्रीति बिन, भूख बिना ज्यों अन्न ।।३८।।

'सुन्दर' हरि प्यारा लगा, सोवत जागा जन्न ।
प्रीति तजी ससार से, न्यारा कीया मन्न ।।३९।।
राम भजन से रामजी, मुदित होत मन माहि ।
'सुन्दर' जाके प्रीति अति, ताको छाडे नाहि ।।४०।।

राम भजन राम हि मिले, तामे फेर न सार ।
'सुन्दर' भजे सनेह से, वाको मिलत न वार[1] ।।४१।। देर[1]
एक भजन तन से करे, एक भजन मन होइ ।
'सुन्दर' तन मन के परे, भजन अखण्डित सोइ ।।४२।।

भजत भजत हो जात है, जाहि भजे सो रूप ।
फेरि भजन की रुचि है, 'सुन्दर' भजन अनूप ।।४३।।
'सुन्दर' भज भगवत को, उधरे सत अनेक ।
सही कसोटी[1] शीश पर, तजी न अपनी टेक ।।४४।। कष्ट[1]
भजन किये भगवंत वश, डोलैं जन की लार ।
'सुन्दर' जैसे गाय का, बच्छा से अति प्यार ।।४५।।
'सुन्दर' जन हरि को भजे, हरि जनके आधीन ।
पुत्र न जीवे मात बिन, माता सुत से लीन ।।४६।।
राम नाम शकर कहा, गौरी को उपदेश ।
'सुन्दर' ताही राम को, सदा जपत हैं शेष ।।४७।।
राम नाम नारद कहा, सोई ध्रुव के ध्यान ।

राम नाम रकै[1] भजा, भजा त्रिलोचन राम । राका ने[1]
नामदेव भज राम को, 'सुन्दर' सारे[2] काम ।।४९।। सिद्ध किये[2]

राम हि भजा कबीर जी, राम भजा रैदास ।
सोझा पीपा राम भज, 'सुन्दर' हृदय प्रकाश ।।५०।।

सद्गुरु दादू राम भज, सदा रहे लैलीन[1] । वृत्ति से राम मे[1]
'सुन्दर' याही समझ कै, राम भजन हित[1] कीन ।।५१।। प्रेम[1]

'सुन्दर' सुरति समेट के, सुमिरन से लैलीन ।
मन वच क्रम[1] कर होत है, हरि ताके आधीन ।।५२।। कर्म[1]

सुमिरन से सशय मिटे, सुमिरन मे आनन्द ।
'सुन्दर' सुमिरन के किये, भाग जाहि दुख द्वन्द्व ।।५३।।

सुमिरन से श्रीपति मिले, सुमिरन से सुखसार ।
सुमिरन से परिश्रम बिना, 'सुन्दर' उतरे पार ।।५४।।

सुमिरन ही मे शील है, सुमिरन मे सन्तोष ।
सुमिरन ही से पाइये, 'सुन्दर' जीवन मोष[1] ।।५५।। मोक्ष[1]

जाही का सुमिरन करे, हो ताही का रूप ।
सुमिरन कीये ब्रह्म के, 'सुन्दर' हो चिद्रूप ।।५६।।

इति सुमिरन का अग २

अथ विरह का अग ३

दोहा—मारग जोवे[1] विरहनी, चितवे पिय की वोर । देखे[1]
'सुन्दर' जियरे जक[2] नही, कल न पडत निश भोर ।।१।। शाति[2]

'सुन्दर' विरहनि अति दुखी, पीव मिलन की चाह ।
निश दिन बैठी अनमनी[1], नैनन नीर प्रवाह ।।२।। उदास[1]

'सुन्दर' पिय के कारणे, तलफे[2] बारह मास । तडफे[2]
निशदिन लै लागी रहै, चातक की सी प्यास ।।३।।

'सुन्दर' व्याकुल विरहनी, दीन भई बिललाय ।
दत तिणा[1] लीये कहै, रे पिव आप दिखाय ।।४।। तिनका[1]

विरहै मारी बान भरि, भई और की और ।
वैद्य बिथा पावे नहिं, 'सुन्दर' लगी सु ठौर[1] ।।५।। मन मे[1]

'सुन्दर' विरहनि मर रही, कहू न पइये जीव ।
अमृत पान कराय के, फेरि जिवावे पीव ।।६।।

'सुन्दर' नख शिख पर जले, छिन छिन दाझै देह ।
विरह अग्नि तब ही बुझै, जब वर्षे पिय मेह ।।७।।
विरह बघूरा ले गया, चित्त हि कहूं उडाय ।
'सुन्दर' आवे ठौर तब, पीव मिले जब आय ।।८।।
'सुन्दर' विरहनि दूबरी,[1] विरह देत तन त्रास । दुर्बल[1]
अजा रहै ढिग[2] सिंह के, कहो चढै क्यो मांस ।।९।। पिंजरे के पास[2]
'सुन्दर' विरहनि दुख भरी, कहै दुख भरे वैन ।
पिव का मारग देखते, अलुवा[1] आवत नैन ।।१०।। आंसू[1]

अंग ३ विरह मे स्त्री वाचक शब्द साधक संतो के और पुरुष वाचक परमात्मा के बोधक हैं, यह ध्यान रखना चाहिये ।

'सुन्दर' विरहनि के निकट, आई विरहनि कोड ।
दुखिया ही[1] दुखिया मिली, दहुवन[2] दीना रोइ ।।११।। से[1] दोनों[2]
'सुन्दर' विरहनि वंदि[1] मे, विरह दीनी आय । कैद[1]
हाथ हथकडी तौक[2] गल, क्यो कर निकसा जाय ।।१२।। फासी[2]
'सुन्दर' विरहनि वन्दि मे, निश दिन करे पुकार ।
पीव रहा कहु वैसि[1] के, वन्दि छुडावनहार ।।१३।। बैठ[1]
विरहा विरहनि से कहत, 'सुन्दर' अति अरि भाव ।
जब लग तोहि न पिय मिले, तब लग घालू घाव ।।१४।।
विरहा दुख दाई लगा, मारे ऐंठि मरोरि ।
'सुन्दर' विरहनि क्यो जिवे, सब तन लिया निचोरि ।।१५।।
'सुन्दर' विरहनि को विरह, भूत लगा है आय ।
पीव विना उतरे नही, सब जग पचि पचि जाय ।।१६।।
निश दिन विरहा भूत लग, विरहनि मारी गोड[1] । गोडो से[1]
'सुन्दर' पीय जबै मिले, तब ही भागे छोड ।।१७।।
'सुन्दर' विरहनि अध जली, दु ख कहै मुख रोइ ।
जलबल के भस्मी भई, धु वा न निकसे कोइ ।।१८।।
'सुन्दर' काची विरहनी, मुख से करे पुकार ।
मर माही मठ[1] हो रहै, बोले नही लगार ।।१९।। स्तब्ध[1]
ज्यो ठग मूरी खाय के, मुखहि न बोले बैन ।
टुगर[1] टुगर देखा करे, 'सुन्दर' विरहा ऐंन ।।२०।। टमटम[1]
हाकीबाकी[1] रहि गई, ना कुछ पिवे न खाइ । भौचक[1]
'सुन्दर' विरहनि वह सही, चित्र लिखी रहि जाइ ।।२१।।

राम सनेही तज गये, प्राण हमारा लेइ।
'सुन्दर' विरहनि बापुरी[1], किसहिं संदेशा देइ ।।२२।। दीन[1]
भूख पियास न नींदडी, विरहनि अति बेहाल।
'सुन्दर' प्यारे पीव बिन, क्यों कर निकसे साल[1] ।।२३।। दुःख[1]
बहुतक दिन बिछुरे भये, प्रीतम प्राण अधार।
'सुन्दर' विरहनि दरद से, निश दिन करे पुकार ।।२४।।
'सुन्दर' तलफे विरहनी, विकल तुम्हारे नेह।
नैन स्रवें घन नीर ज्यों, सूकि गई सब देह ।।२५।।
सब कोई रलिया[1] करें, आया सरस वसन्त। क्रीडा[1]
'सुन्दर' विरहनि अनमनी[2], जाके घर नहिं कंत ।।२६।। उदास[2]
घर घर मंगल होत है, बाजहिं ताल मृदंग।
सुन सुन विरहनि परजले, 'सुन्दर' नख शिख अंग ।।२७।।
अपने अपने कंत से, सब मिल खेलहिं फाग।
'सुन्दर' विरहनि देख कर, उसी[1] विरह के नाग ।।२८।। व्यथित[1]
चोवा[1] चन्दन कुमकुमा[2], उडत अबीर[3] गुलाल। सुसुगंध[1] केसर[2] रंगीन चूर्ण[3]
'सुन्दर' विरहनि के हृदय, उठत अग्नि की झाल ।।२९।।
पीय लुभाना सुन सखी, काहू से परदेश।
'सुन्दर' विरहनि यूं कहै, आया नहिं सन्देश ।।३०।।
जा दिन से मोहि तज गये, ता दिन से जक[1] नाहिं। शांति[1]
'सुन्दर' निश दिन विरह की, हूक[2] उठत उर माहिं ।।३१।। दर्द[2]
बार लगाई वल्लभा, विरहनि फिरे उदास।
'सुन्दर' गई बसन्त ऋतु, अब आया चोमास ।।३२।।
दिश दिश से बादल उठे, बोलत चातक मोर।
'सुन्दर' चक्रित विरहनी, चित्त रहै नहिं ठौर ।।३३।।
दामिनि चमके चहु दिशा, बून्द लगत है बाण।
'सुन्दर' व्याकुल विरहनी, रहै कि निकसे प्राण ।।३४।।
एक अन्धेरी रैनि है, दूजे सूना भौन[1]। घर[1]
'सुन्दर' रटै[2] पपीहरा, विरहनि जीवे कौन ।।३५।। पीवपीव[2]
पावस[1] नृप चढ आइया, साजि कटक मम गेह। वर्षा ऋतु[1]
'सुन्दर' विरहनि थरसली[2], कंप उठी सब देह ।।३६।। थरथर[2]
चले हवाई दामिनी, बाजे गरज निसान।
'सुन्दर' विरहनि क्यों जिवे, घर नहिं कंत सुजान ।।३७।।

बादल हस्ती देखिये, 'सुन्दर' पवन तुरंग ।
दादुर मोर पपीहरा, पाइक[1] लीये सग ॥३८॥ पैदल[1]
घेरा गढ दशहू दशा, विरहा अग्नि लगाइ ।
'सुन्दर' ऐसे सकट हि, जो पिय करे सहाइ ॥३९॥
साई तू हो तू करू, क्यों ही दर्श दिखाव ।
'सुन्दर' विरहनि यू कही, ज्यो ही त्यो ही आव ॥४०॥
पीव पीव रसना रटै, नैना तलफे तोहि ।
सु'न्दर' विरहनि अति दुखी, हाय हाय मिल मोहि ॥४१॥
जोवन मेरा जात है, ज्यो अजुली का नीर ।
'सुन्दर' विरहनि बापुरी, क्यो कर बन्धे[1] धीर ॥४२॥ धरे[1]
जिम विधि पीव रिझाइये, सो विधि जानी नाहि ।
जोवन जाय उतावला, 'सुन्दर' यह दुख माहि ॥४३॥
किये सिंगार[1] अनेक मैं, नखशिख भूपण साज । साधन[1]
'सुन्दर' पिय रीझै नही, तो सब कौने काज ॥४४॥
'सुन्दर' विरहनि बहु तपी, महर[1] कछू इक लेहु । दया[1]
अवधि गई सब बीत के, अब तो दर्शन देहु ॥४५॥
'सुन्दर' विरहनि यू कहै, जिन तरसावो मोहि ।
प्राण हमारे जात है, टेरि कहत हौं तोहि ॥४६॥
ढोलन[1] मेरा भावता, वेगि मिलहु मुझै आय । प्यारा[1]
'सुन्दर' व्याकुल विरहनी, तलफि तलफि जिय जाय ॥४७॥
लालन[1] मेरा लाडिला, रूप बहुत तुझ मांहि । प्यारा[1]
'सुन्दर' राखे नैन मे, पलक उघाडे नाहि ॥४८॥
'सुन्दर' विगसे[1] विरहनी, मन मे भया उछाह । खिले[1]
फूल बिछाऊ सेजरी, आज पधारे नाह[2] ॥४९॥ स्वामी[2]
सुन सन्देसा पीय का, मन मे भया अनन्द ।
'सुन्दर' पाया परम सुख, भाजि गये दुख द्वन्द्व ॥५०॥
दया करहु अब रामजी, आवो मेरे भौन[1] । हृदय[1]
'सुन्दर' भागे दु ख सब, विरह जाय कर गौन[2] ॥५१॥ गमन[2]
अब तुम प्रकटहु रामजी, हृदय हमारे आय ।
'सुन्दर' सुख सन्तोप हो, आनन्द अग न माय ॥५२॥

इति विरह का अग ३

अथ बंदगी का अंग ४

दोहा—'सुन्दर' अन्दर[1] पैसि कर, दिल मे गोता मार। भीतर[1]
तो दिल ही मे पाइये, साईं सिरजनहार ॥१॥

'सुन्दर' दिल मे पैसिकर, करे बन्दगी खूब।
तो दिल मे दीदार हो, दूर नही महबूब[1] ॥२॥ प्रिय प्रभु[1]

जिस बन्दे का पाक[1] दिल, सो बदा माकूल[2]। पवित्री[1] योग्य[2]
'सुन्दर' उसकी बन्दगी, सांई करे कबूल[3] ॥३॥ स्वीकार[3]

बन्दा साईं का भया, साईं[1] बन्दे पास। ईश्वर[1]
'सुन्दर' दोऊ मिल रहे, ज्यो फूलो मे वास ॥४॥

हर[1]दम[2]हरदम हक्क[3] तू, लेइ धनी का नाव। प्रत्येक[1] श्वास[2] ईश[3]
'सुन्दर' ऐसी बन्दगी, पहुचावे उस ठाव[4] ॥५॥ हरिधाम[4]

बन्दा[1] आया बन्दगी, सुन साईं का नाम। दास=भक्त[1]
'सुन्दर' खोज न पाइये, ना कहु ठौर न ठाम ॥६॥

उलट[1] करे जो बन्दगी, हरदम अरु हररोज। वृत्ति भीतर[1]
तो दिल ही मे पाइये, 'सुन्दर' उसका खोज ॥७॥

'सुन्दर' बन्दा चुस्त[1] हो, जो पैठे दिल माहि। तत्पर[1]
तो पाये उस ठौर ही, बाहिर पावे नाहि ॥८॥

'सुन्दर' निपट[1] नजीक है, उठे जहा थी[2] श्वास। अति[1] मे[2]
वहा हि गोता मार[3] तू साईं तेरे पास ॥९॥ लगा[3]

सखुन[1] हमारा मानिये, मत खोजे कहु दूर। वचन[1]
साईं सीने[2] बीच है, 'सुन्दर' सदा हजूर ॥१०॥ छाती[2]

'सुन्दर' भूला क्यो फिरे, साईं है तुझ माहि।
एकमेक हो मिल रहा, दूजा कोइ नाहि ॥११॥

'सुन्दर' तुझ ही माहि है, जो तेरा महबूब[1]। प्रिय प्रभु[1]
उस खूबी को जान तू, जिस खूबी मे खूब[2] ॥१२॥ उत्तम[2]

जो बन्दा हाजिर खड़ा, करे धणी का काम।
साईं को भूले नही, 'सुन्दर' आठो याम[1] ॥१३॥ पहर[1]

जो यह उसका हो रहै, तो वह इसका होय।
'सुन्दर' वातो ना मिले, जब लग आपन[1] खोय ॥१४॥ अहंकार[1]

'सुन्दर' बन्दा बन्दगी[1], करे दिवस अरु रात। सेवा=भक्ति[1]
सो बन्दा कहिये सही, और बात की बात ॥१५॥

करे वन्दगी वहुत कर, आपा आणे नाहि ।
'सुन्दर' करी न वन्दगी, यू जाने दिल माहि ॥१६॥
वन्दा आवे हुकम से, हुकम करे तहँ जाय ।
'सुन्दर' उजर करे नही, रहिये रजा खुदाय ॥१७॥
साई वन्दे को कसे[1], धरे वहुत वेहाल । कष्ट दे[1]
दिल मे कुछ आणे नही, 'सुन्दर' रहै खुशाल ॥१८॥
'सुन्दर' वन्दा वन्दगी, सदा रहै इकतार ।
दिल मे और न दूसरा, साई सेती[1] प्यार ॥१९॥ से[1]
मुख सेती वन्दा कहै, दिल मे अति गुमराह[1] । मार्ग भूला[1]
'सुन्दर' सो पावे नही, साई की दरगाह[1] ॥२०॥ दरवार[1]
'सुन्दर' ज्यो मुख से कहै, त्यो ही दिल मे जाप ।
सोई वन्दा सरखरू[1], साई रीझे आप ॥२१॥ तेजस्वी[1]
कै साई की वन्दगी, कै साई का ध्यान ।
'सुन्दर' वन्दा क्यो छिपे, वन्दे सकल जिहान ॥२२॥
वहुत छिपावे आप को, मुझे न जाने कोइ ।
'सुन्दर' छाना क्यो रहै, जग मे जाहर[1] होइ ॥२३॥ प्रकट[1]
औरत सोई सेज पर, वैठा खसम हजूर[1] । पास[1]
'सुन्दर' जाना ख्वाव[2] से, खसम गया कहु दूर ॥२४॥ स्वप्न[2]
तलव[1] करे वहु मिलन को, कव मिलसी मुझ आय । चाह[1]
'सुन्दर' ऐसे ख्वाव मे, तलफ तलफ जिव जाय ॥२५॥
कल न पडत पल एक हू, छाडे श्वास उश्वास ।
'सुन्दर' जागी ख्वाव से, देखे तो पिय पास ॥२६॥
मैं ही अति गाफिल हुई, रही सेज पर सोइ ।
'सुन्दर' पिय जागे सदा, क्यो कर मेला होइ ॥२७॥
'सुन्दर' दिल की सेज पर, औरत है अरवाह[1] । जीवात्मा[1]
इस को जागा चाहिये, साहिव वेपरवाह ॥२८॥
जो जागे[1] सो पिय लहै, सोवे लहिये नाहि । ज्ञान से[1]
'सुन्दर' करिये वन्दगी, तो जागा दिल माहि ॥१९॥
जागि[1] करे जो वन्दगी, सदा हजूरी होइ । ज्ञान से[1]
सुन्दर' कवहु न वीछुरे, साहिव सेवक दोइ ॥३०॥

इति वदगी का अग ४

अथ पति व्रत का अंग ५

दोहा—'सुन्दर' हरि आराध कर, हो देवन न का देव ।
भूल न और मनाइये, सबहि भीति के लेव[1] ।।१।। लेवडा[1]
'सुन्दर' और कछू नही, एक बिना भगवत ।
तासे पतिव्रत राखिये, टेरि कहै सब सन्त ।।२।।
'सुन्दर' और न ध्याइये, एक बिना जगदीश ।
सो शिर ऊपर राखिये, मन क्रम[1] विसवा बीस ।।३।। कर्म[1]
,सुन्दर' कुछ न सगाहिये, एक विना भगवान ।
लच्छत[1] लागे तुरत ही, जबहिं सराहै आन ।।४।। कुलक्षण[1]
'सुन्दर' और सराह[1] से, पतिव्रत लागे खोट । प्रसशा करे[1]
बालु सराये रेणुका,[2] वन्धो न जल की पोट ।।५।। परशुराम की मा[2]
'सुन्दर' जब पति व्रत गया, तब खोई सपतग[1] । मर्यादा[1]
मानहु टीका नील का, विप्र दिया निज अग ।।६।।
'सुन्दर' निज पति व्रत किया, तिन कीन्हे सव धर्म ।
जब हि करे कुछ और क्रत[1], तब ही लागे कर्म ।।७।। काम[1]
'सुन्दर' सव करणी करी, सव हि करी करतूति[1] । क्रियाये[1]
पतिव्रत राखा राम से, तब आई सब सूति[2] ।।८।। अच्छी[2]
पनिव्रत ही मे योग है, पतिव्रत ही मे याग ।
'सुन्दर' पतिव्रत राम से, वही त्याग वैराग ।।९।।
पतिव्रत ही मे यम नियम, पतिव्रत ही मे दान ।
'सुन्दर' पतिव्रत राम से, तीरथ सकल सनान ।।१०।।
पतिव्रत ही मे तप भया, पतिव्रत ही मे मौन ।
'सुन्दर' पतिव्रत राम से, और कष्ट कहि कौन ।।११।।
पतिव्रत ही मे शील है, पतिव्रत मे सन्तोष ।
'सुन्दर' पतिव्रत राम से, वह ही कहिये मोष[1] ।।१२।।
पतिव्रत माहिं क्षमा दया, धीरज सत्य बखान ।
'सुन्दर' पतिव्रत राम से, याही निश्चय आन[1] ।।१३।।
'सुन्दर' पतिव्रता राख तू, सुधर जाय ज्यो[1] बात ।
मुख मे मेल्हे कोर[2] जव, तृप्त होय ।।१
'सुन्दर' रीझै रामजी जाके प ... २ ।
रुलत[1] फिरै ठिक बाहरी, ठौर[2] न ।।१

'सुन्दर' जो विभचारिणी, फरका[1] दीया डारि । पल्ला[1]
लाज शर्म वाके नही, डोले घर घर वारि[2] ॥१६॥ द्वार[2]
विभचारिणि नाकी[1] विना, लाज शर्म कुछ नाहि । इज्जत[1]
काला मुख कीया फिरे, सकल जगत के माहि ॥१७॥
विभचारिणी यू कहत है, मेरा पीव सुजान ।
'सुन्दर' पतिवरता कहै, काटू तेरे कान ॥१८॥
विभचारणि यू कहत है, मेरा पिय अति पाक ।
'सुन्दर' पतिवरता कहै, काटू तेरा नाक ॥१९॥
विभचारिणि यू कहत है, शोभित मेरा कत ।
'सुन्दर' पतिवरता कहै, तोडू तेरे दत ॥२०॥
विभचारिणि यू कहत है, मेरापिय अति रौन[1] । रमणीय[1]
'सुन्दर' पतिवरता कहै, तेरी जिह्वा लीन ॥२१॥
विभचारिणि कहै, देख तू मेरे पिय के वाल ।
'सुन्दर' पतिवरता कहै, तेरे माथे ताल[1] ॥२२॥ थाप[1]
विभचारिणि कहै देख तू, मेरे पिय का गात ।
'सुन्दर' पतिवरता कहै, तेरी छाती लात ॥२३॥
विभचारिणि कहै देखतू, मेरे पिय का द्वार ।
'सुन्दर' पतिवरता कहै, तेरे मुख मे छार ॥२४॥
पतिवरता पति सन्मुखी, 'सुन्दर' लहै सुहाग ।
विभचारिणि विमुखी फिरे, ताके वडे अभाग ॥२५॥
पतिवरता छाडे नही, 'सुन्दर' पति की सेव ।
विभचारिणि अवगुण भरी, पूजे देवी देव ॥२६॥
याचक को याचे कहा, सरे न कोई काम ।
'सुन्दर' याचे एक को, अलख निरजन राम ॥२७॥
सव ही दीसे दालदी, देवी देव अनन्त ।
दारिद्र भजन एक ही, 'सुन्दर' कमला कत ॥२८॥
पतिवरता पति के निकट 'सुन्दर' सदा हजूर ।
विभचारिणि भटकत फिरे, न्याय पडे मुख धूर[1] ॥२९॥ वदनाम हो[1]
पतिवरता देखे नही, आन पुरुष वोर ।
'सुन्दर' वह विभचारिणि, तकत फिरे ज्यो चोर ॥३०॥
पति की आज्ञा मे रहै, सा पतिवरता जानि ।
'सुन्दर' सन्मुख है सदा, निशदिन जोडे पानि[1] ॥३१॥ हाथ[1]

प्रभू बुलावे बोलिये, ऊठ कहै तब ऊठ।
वैठावे तो वैठिये, 'सुन्दर' यूं जी चूंठ[1] ॥३२॥ जी से चिपकी रहे[1]
प्रभू चलावे तव चले, सोइ कहै तब सोइ[1]। सोवे[1]
पहरावे तव पहरिये, 'सुन्दर' पतिव्रत होइ ॥३३॥
दिवस कहै तब दिवस है, रैन कहै तब रैन[1]। रात्रि[1]
'सुन्दर' आज्ञा मे रहै, कवहु न फेरे बैन[1] ॥३४॥ वचन[1]
रीस करे अत्यन्त कर, तो प्रभु प्यारा लाग[1]। लगे[1]
हँस कर निकट बुलाइये, 'सुन्दर' माथे भाग[2] ॥३५॥ भाग्य[2]
'सुन्दर' पतिव्रत राम से, सदा रहै इकतार।
सुख देवे तो अति सुखी, दुख तो सुखी अपार ॥३६॥
रजा[1] राम की शीश पर, आज्ञा मेटे नाहिं। इच्छा[1]
ज्यो राखे त्यो ही रहै, 'सुन्दर' पतिव्रत माहिं ॥३७॥
साहिब मेरा रामजी, 'सुन्दर' खिजमतगार[1]। सेवक[1]
पाव पलोटे प्रीति से, सदा रहै हुसियार ॥३८॥
करे हजूरी बन्दगी, और न कोई काम।
हुकम कहै त्यो ही चले, 'सुन्दर' सदा गुलाम ॥३९॥
पति का वचन लिये रहै, सा पतिवरता नारि।
'सुन्दर' भावे पीव को, आवे नही अवगारि[2] ॥४०॥ अवज्ञा[2]
जो पिय का व्रत ले रहै, कन्त पियारी सोइ।
अन्जन मन्जन दूर कर, 'सुन्दर' सन्मुख होइ ॥४१॥
अपना बल सब छाड दे, सेवे तन मन लाय।
'सुन्दर' तव पिय रीझिकर, राखे कठ लगाय ॥४२॥
प्रीतम मेरा एक तू, 'सुन्दर' और न कोइ।
गुप्त भया किस कारणे, काहि न परकट होइ ॥४३॥
हृदये मेरे तू बसे, रसना तेरा नाम।
रोम रोम मे रमि रहा, 'सुन्दर' सव ही ठाम ॥४४॥
जहँ जहँ भेजै रामजी, तहँ तहँ 'सुन्दर' जाय।
दाणा पाणी देह का, पहले धरा बनाय ॥४५॥
अपना सारा कुछ न नही, डोरी हरि के हाथ।
'सुन्दर' डाले बादरा, वाजीगर के साथ ॥४६॥
ज्यो ही आवे राम मन, 'सुन्दर' त्यो ही धारि।
जो ही भावे पीव को, सोई भावे नारि ॥४७॥

'सुन्दर' प्रभु मुख से कहै, सोई मीठी बात ।
डाल कहै तो डाल ही, पात कहै तो पात ।।४८।।
जो प्रभु को प्यारा लगे, सोई प्यारा मोहि ।
'सुन्दर' ऐसे समझ कर, यू पतिवरता हो हि ।।४९।।
'सुन्दर' प्रभु की चाकरी, हासी खेल न जान ।
पहले मन को हाथ कर, पीछे पतिव्रत ठान ।।५०।।
'सुन्दर' कछू न कीजिये, क्रिया कर्म श्रम ग्रान ।
कर ने को हरि भक्ति है, समझन को है ज्ञान ।।५१।।

इति पतिव्रत का अग ५

ग्रथ उपदेश चितावनी का अग ६

'सुन्दर' मनुषा[1] देह की, महिमा वरणहि साध । मनुष्य[1]
जामे पइये परम गुरु, ग्रविगत[2] देव ग्रगाध ।।१।। ईश्वर[2]
'सुन्दर' मनुषा देह की, महिमा कहिये काहि ।
जाको वन्छे देवता, तू क्यो खोवे ताहि ।।२।।
'सुन्दर' मनुषा देह यह, पाया रतन ग्रमोल ।
कोडी सटै न खोइये, मान हमारा बोल ।।३।।
'सुन्दर' साची कहत है, मत ग्राने कुछ रोस ।
जो तै खोया रतन यह, तो तो ही को दौस ।।४।।
वार बार नहि पाइये, 'सुन्दर' मनुषा देह ।
राम भजन सेवा सुकृत, यह सोदा कर लेह ।।५।।
'सुन्दर' निश्चय ग्रान तू, तोहि कहू कर प्यार ।
मनुष जन्म की मौज यह, होय न बार बार ।।६।।
'सुन्दर' मनुषा देह मे, सारे बन्धन बाढि[1] । काट[1]
ग्राया हाथ शिला तले, काढ सके तो काढि ।।७।।
'सुन्दर' तू भटकत फिरा, स्वर्ग मृत्यु पाताल ।
ग्रव के या नर देह मे, काढि ग्रापना साल[1] ।।८ दु ख[1]
'सुन्दर' कुछ सख्या नही, बहुतक धरे शरीर ।
ग्रव के तू भगवत भज, विलम करे जमि बीर ।।९।।
'सुन्दर' यह नर देह है, सब देहनि का मूल ।
भावे या मे समझ तू, भावे यामे भूल ।।१०।।
'सुन्दर' मनुषा देह धर, भजा नही भगवत ।
तो पशु ज्यो पूरे उदर, शूकर श्वान ग्रनन्त ।।११।।

'सुन्दर' या नर देह अब, खुला मुक्ति का द्वार।
यू ही वृथा न खोइये, तोहि कहा कै बार ॥१२॥
'सुन्दर' साची कहत है, जो माने तो मान।
यही देह अति निद्यहै, यही रतन की खान ॥१३॥
'सुन्दर' मनुषा देह यह, तामे दोय प्रकार।
यातै बूडे जगत मे, यातै उत्तरे पार ॥१४॥
'सुन्दर' वन्धे देह से, तो यह देह निषिद्धि।
जो या की ममता तजे, तो या ही मे सिद्धि ॥१५॥
भूलत काहे बावरे, देख सुरगी देह।
बन्धा फिरे अनादि का, 'सुन्दर' या के नेह ॥१६॥
'सुन्दर' वन्धा देह से, कबहु न छूटा भाज।
और किये सनमध अब, भई कोढ मे खाज ॥१७॥
मात पिता बाधव सकल, सुत दारा से हेत।
'सुन्दर' वन्धा मोहि कर, चेते नही अचेत ॥१८॥
'सुन्दर' स्वारथ से वन्धे, विन स्वारथ को नाहि।
जब स्वारथ पूजे[1] नही, आप आपको जाहि ॥१९॥ पूर्ण[1]
'सुन्दर' अति अज्ञान नर, समझ नाही सु मूर।
तू इन से लागा मरे, ये सब भागे दूर ॥२०॥
'सुन्दर' अति अज्ञान नर, समुझत नही लगार[1]। किंचत[1]
जिन हिं लडावे लाड तू, ते ठोकि है कपार[2] ॥२१॥ कपाल[2]
'सुन्दर' माया मोह तज, भजिये आतमराम।
ये सगी दिन चार के, सुत दारा धन धाम ॥२२॥
'सुन्दर' नदी प्रवाह मे, मिला काठ सयोग।
आप आप को हो गये, त्यो कुटुम्ब सब लोग ॥२३॥
'सुन्दर' बैठे नाव मे, कहू कहू से आय।
पार गये कत हू गये, त्यो कुटम्व सव जाय ॥२४॥
'सुन्दर' पक्षी वृक्ष पर, लिया बसेरा आनि।
रात रहै दिन उठ चले, त्यो कुटम्ब सब जानि ॥२५॥
'सुन्दर' समझ विचार कर, तेरा इन मे कौन।
आप आपको जाहिगे, सुत दारा कर गौन ॥२६॥
'सुन्दर' तूं इन से बन्धा, ये सब तोसे फर्क।
याही बात विचार कर तू, हू दे अब तर्क ॥२७॥

'सुन्दर' नाना योनि मे, जन्म जन्म की भूल ।
सुत दारा माता पिता, सगले याही सूल ॥२८॥
'सुन्दर' माथे बोझ ले, यह तो अति अज्ञान ।
इनका करता और ही, भय भजन भगवान ॥२९॥
'सुन्दर' काहे खैंचि ले, अपने माथे बोझ ।
करता को जाने नही, तू रामा[1] का रोझ ॥३०॥ वन[1]
'सुन्दर' तेरी मति गई, समुझत नही लगार ।
कूकर रथ नीचे चले, हू खेचत हौं भार ॥३१॥
'सुन्दर' यह अवसर भला, भज ले सिरजनहार ।
जैसे ताते लोह को, लेत मिलाय लुहार ॥३२॥
'सुन्दर' अवसर के गये, फिर पछतावा होइ ।
शीतल लोह मिले नही, कूटो पीटो कोइ ॥३३॥
'सुन्दर' यू ही देखते, अवसर बीता जाय ।
अजुली माही नीर ज्यो, किती बार ठहराय ॥३४॥
'सुन्दर' अब तेरी खुसी, बाजी जीत कि हार ।
चौपड का सा खेल है, मनुपा देह विचार ॥३५॥
'सुन्दर' जीते सो सही, डाव विचारे कोइ ।
गाफिल होय सु हार के, चाले सरवस खोय । ३६॥
'सुन्दर याही देह मे, हार जीत का खेल ।
जीते सो जगपति मिले, हारे माया मेल ॥३७॥
'सुन्दर' अब के आपना, टोटा नफा विचार ।
जिन डहकावे जगत मे, मेल्हा हाट पसार ॥३८॥
'सुन्दर' भटका बहुत दिन, अब तू ठौहर आव ।
फेरिन कबहू आय है, यह अवसर यह डाव ॥३९॥
'सुन्दर' दुख न मान तू, तोहि कहू उपदेश ।
अब तो कछूक शम गह, धोले आये केश ॥४०॥
'सुन्दर' बैठा क्यो अबै, उठकर मारग चाल ।
कै कुछ सुकृत कीजिये, कै भगवत सभाल[1] ॥४१॥ स्मरण कर[1]
'सुन्दर' सौदा कीजिये, भली वस्तु कुछ खाट[1] । खरीद[1]
नाना विधि काटागरा[2], उस बनिया[3] की हाट ॥४२॥ सामान[2] ईश्वर[3]
'सुन्दर' विष खल खार तज, ले केशर कर्पूर ।
जो तू हीरा[1] लाल[2] ले, तो तोसे नहि दूर ॥४३॥ हरिनाम[1] भक्ति[2]

'सुन्दर' ठग बाजी जगत, यह निश्चय कर जान ।
पहले बहुत ठगाइया, वही घणा कर मान ।।४४।।
'सुन्दर' ठगा अनेकवर, सावधान अब होह ।
हीरा हरि का नाम ले, छाड विषय सुख लोह ।।४५।।
'सुन्दर' सुख के कारणे, दु ख सहै बहु भाय[1] । प्रकार[1]
को खेती को चाकरी, कोइ बणज को जाय ।।४६।।
पराधीन चाकर रहै, खेती मे सन्ताप ।
टोटा आवे बणज मे, 'सुन्दर' हरिभज आप ।।४७।।
सुख दुख छाया धूप है, सुन्दर' कर्म स्वभाव ।
दिन दो शीतल देखिये, बहुत तप्त मे पाव ।।४८।।
'सुन्दर' सुख की चाह कर, कर्म करे बहु भाँति ।
कर्मन का फल दु ख सहै, तू भुगते दिन रात ।।४९।।
तै नर सुख कीये घनै, दुख भोगये अनन्त ।
अब सुख दुख को पीठ दे, 'सुन्दर' भज भगवत ।।५०।।
दीया[1] की बतिया[2] कहै, दीया किया न जाय ।
दीया करे सनेह[2] कर, दीये ज्योति दिखाय ।।५१।।

इस मे दीया[1] से ज्ञान दीपक तथा तेल का दीपक और दान भी अर्थ होता है । बतियाँ से ज्ञान की बातें, दीपक जलाने की बाते और दान देने की बात । उक्त तीनो होवें, सनेह से तेल, प्रेम और दान देने मे प्रेम हो तब ही, प्रकाश, ज्ञान, दान होता है । यह भाव है ।

दीये[1] से सब देखिये, दीये[2] करो सनेह ।
दीये दशा प्रकाशिये, दीया कर किन लेह ।।५२।।

तेल दीप से वस्तु, ज्ञान से सब मे ब्रह्म उक्त दोनो दीपको मे स्नेह करो तब ही उक्त कार्य होगा । तेल दीपक मे तेल और ज्ञान दीपम प्रेम की आवश्यकता होती है । ज्ञान से परमात्मा को क्यो नही प्राप्त करते । नीचे के ५३, ५४, ५५ मे भी इसी को समझे ।

दीया राखे जतन से, दीये होय प्रकाश ।
दीये पवन लगे अह[1], दीये होय विनाश ।।५३।। अहकार[1]
साई दीया[1] है सही, इसका दीया[2] नाहि । ईश्वर[1] प्रकाश[2]
यह अपना दीया कहै, दीया लखे न माहि ।।५४।।
साई आप दिया किया, दीया माहि सनेह ।
दीये[1] दीये[2] होत है, 'सुन्दर' दीया देह ।।५५।। शिष्य[1] गुरु[2]

इति उपदेश चितावनी का अग ६

राक्षस असुर सब हि डरे, भूत पिशाच अनेक ।
'सुन्दर' डरपे स्वर्ग के, काल भयानक एक ।।३२।।
चन्द सूर तारा डरे, धरती अरु आकाश ।
पाणी पावक पवन पुनि, 'सुन्दर' छाडी आश ।।३३।।
'सुन्दर' डर सुन काल का, कापा सब ब्रह्मण्ड ।
सागर नदी सुमेरु पुनि, सप्त दीप नौ खड ।।३४।।
साधक सिद्ध सब हि डरे, तपी ऋषीश्वर मौन[1] ।　　मौनी[1]
योगी जगम बापुरे, 'सुन्दर' गिनती कौन ।।३५।।
एक रहै करता पुरुष, महाकाल का काल ।
'सुन्दर' वह विनशे नही जाका यह सब ख्याल ।।३६।।
'सुन्दर' उठते बैठते, जागत सोवत काल ।
निर्भय कोइ न रह सके, काल पसारा जाल ।।३७।।
'सुन्दर' खाते पीवते, चलत फिरत डर होइ ।
सब ही को भय काल का, निर्भय नाही कोइ ।।३८।।
'सुन्दर' सुनते देखते, लेते देते त्रास ।
यू ही मुख से बोलते, निकस जात है श्वास ।।३९।।
जगत जोय जो कृत करे, सो भी भय सयुक्त ।
'सुन्दर' निर्भय रामजी, कै कोई जन मुक्त ।।४०।।
'सुन्दर' या ससार से, काहि न निकसत भागि ।
सुख सोवत क्यो बावरे, घर मे लागी आगि[1] ।।४१।।　चिन्तागिन[1]
काम काल त्रैलोक मे, मारे जान सुजान ।
'सुन्दर' ब्रह्मा आदि दे, कीट प्रयत वखान ।।४२।।
क्रोध काल प्रत्यक्ष ही, किया सकल का नाश ।
'सुन्दर' कौरव पाडवा, छपन कोटि[1] परभास[2] ।।४३।।　यादव[1]प्रभास[2]
लोभ काल यू जानिये, भरमावे जग माहि ।
बूडे जाय समुद्र मे, 'सुन्दर' निकसे नाहि ।।४४।।
मोह काल की पासि है, 'सुन्दर' निकसे कौन ।
पिता पुत्र सग जल मुवा, अग्नि लगी जब भौन[1] ।।४५।।　घर मे[1]
जो जो मन मे कल्पना, सो सो कहिये काल ।
'सुन्दर' तू नि कल्प हो, छाड कल्पना जाल ।।४६।।
काल ग्रसे आकार को, जामे सकल उपाधि ।
निराकार निर्लेप है, 'सुन्दर' तहा न व्याधि ।।४७।।

'सुन्दर' काल जहा तहा, जव लग है अज्ञान ।
ममत गया जब देह का, तब व्यापक भगवान ।।४८।।
'सुन्दर' वन्धा देह से, तब तक ग्रासे काल ।
छाड ममत न्यारा भया, रज्जु विषै[1] कत व्याल[2] ।।४९।। मे[1] सर्प[2]
'सुन्दर' काल अखण्ड है, तिमिर रहा ज्यौ छाय ।
ज्ञान भानु प्रकटे जब हिं, दोनो जाहिं विलाय ।।५०।। अज्ञान अधेरा[1]

इति काल चितवानी का अग ७

अथ नारी पुरुष श्लेष का अग ८

दोहा—नारी[1] पुरुष सनेह अति, देखे जीवे मोइ । स्त्री नाडी[1]
'सुन्दर' नारी बीछुडे[2], आप मृतक तब होय ।।१।। नाडी बन्द[2]
नारी[1] बोले आकरी, तव दुख पावे नाह[3] । स्त्री=नाडी[1]पति[3]
'सुन्दर' बोले मधुर मुख, तब सुख सीर प्रवाह ।।२।।
नारी[1] बोले प्यार से तब कुछ पीवे खाय । हाथ की नाडी[1]
जब नारी क्रोध[2] हिं करे, 'सुन्दर' पिय मुरझाय ।।३।। तजे चले[2]
नारी[1] बोले रस लिये, कबहू विरसी बात । नाडी[1]
'सुन्दर' जीवे विरस[2] से, रस से पिय की घात ।।४।। दूपित रस न हो[2]
जाके घर नारी[1] भली, 'सुन्दर' ताके चैन । नाडी[1]
जाके घर मे करकसा[2], कलह करे दिन रैन ।।५।। नारी[2]
नारी[1] चले उतावली, नख शिख लागे भाहि[2] । नाडी[1] आग[2]
'सुन्दर' पटके पीव[3] शिर, दु.ख सुनावे काहि ।।६।। नाडी वाला[3]
नारी[1] घर बैठी रहै, पर घर करे न गौन । नाडी=स्त्री[1]
'सुन्दर' पावै पीव सुख, दोष लगावे कौन ।।७।।
नारी प्यारी पीव को, 'सुन्दर' आठौ याम ।
जब नारी[1] असक्री[2] पडे, तब खर्चे बहुदाम ।।८।। नाडी[1]कमजोर[2]
नारी[1] नीके बोल ही, 'सुन्दर' तब सुख भौन[2] । नाडी[1] शरीर[2]
जब नारी चुप कर रहै, तब पिय पकडै मौन ।।९।।
पुरुष सदा डरपत रहै, 'सुन्दर' डोले साथ ।
नारी[1] छूटे हाथ से, तब कत आवे हाथ ।।१०।। नाडी[1]
नारी निरखे रात दिन, अति गति बाधा मोह ।
'सुन्दर' बार लगे नही, पल मे होय विछोह ।।११।।
नारी मे वल पुरुष का, पुरुष भया वश नारि ।
अपना वल समझे नही, वैठा सर्वस हारि ।।१२।।

नारी[1] जाके हाथ मे, मोई जीवत जान। नाडी[1]
नारी के सग वहि गया, 'सुन्दर' मृतक वखान ॥१३॥
नारी फिरे गली गली[1], ताको लज्जा नाहि। वैद्यो के पास[1]
'सुन्दर' मारा शर्म का, पुरुष घुसा घर-माहि ॥१४॥
नारी डोले भटकती, पुरुष हि नही विश्वास।
मत कहु अटके और से, मोसे होय उदास ॥१५॥
'सुन्दर' पिय की लाडली, नारी[1] से अति नेह। नाडी[1]
जाय दिखावे और को, चूक पुरुष की येह ॥१६॥
सुन्दर' पिय अति वावरा, होकर जाय अनाथ।
नारी[1] अपनी आन के, देय और[2] के हाथ ॥१७॥ नाडी[1]वैद्य[2]
'सुन्दर' पीव कहा करे नारी चचल होय।
न्याय दिखावे और को, जे समझावे कोइ ॥१८॥
छाडा चाहे पीव को, नारी पर घर जाय।
'सुन्दर' चचल चपल अति, तासे कहा वसाय ॥१९॥
समझावन को ल्याइये, भला सयाना कोइ।
तासे बोले आकरी, कै कहु खवर न होइ ॥२०॥
ऐसे वैसे आय के, कहैं वहुत ही बैन।
तिनकी कुछ माने नही, पुरुष हि होय न चैन ॥२१॥
भला सयाना आय के, समझावे वहु भाति।
कुलवती माने कहा, 'सुन्दर' उपजे शान्ति ॥२२॥
'सुन्दर' नारी पुरुष की, प्रीति परस्पर जानि।
तव से सग तजा नही, जब ते पकडा पानि[1] ॥२३॥ हाथ[1]
'सुन्दर' नारी पतिव्रता, तजे न पिय का सग।
पीव चले सह गामिनी, तुरत करे तन भग ॥२४॥
दैव पिछोह करै जवहि, तव कोई वश नाहि।
'सुन्दर' नेह न निर्वहै, आप आप को जाहि ॥२५॥
इन साखी पच्चीस मे, नारी पुरुष प्रसङ्ग।
'सुन्दर' पावे चतुर अति, तीन अर्थ तिन सङ्ग ॥२६॥

जो अति चतुर होगे वे इन उक्त २५ साखियो से तीन अर्थ समझेंगे, अन्य नहीं वे तीन ये हैं—१ नारी पुरुष २ नाडी शरीर, ३ साधक पतिव्रता और परमात्मा।

इति नारी पुरुष श्लेश का अग ८

अथ देहात्मा विछोह का अंग ९

दोहा—'सुन्दर' देह पड़ी रही, निकस गये जब प्रान।
सब कोऊ यूं कहत है, अब ले जाहु मसान ॥१॥
माता पिता लगावते, छाती से सब अंग।
'सुन्दर' निकसा प्राण जब, कोउ न बैठे संग ॥२॥
'सुन्दर' नारी करत थी, पिय से अधिक सनेह।
तिनहूं मन मे भय धरा, मृतक देखकर देह ॥३॥
'सुन्दर', भइया कहत था, मेरी दूजी बांह।
प्राण गये जब निकस के, कोउ न चम्पे[1] छांह ॥४॥ छुवे[1]

'सुन्दर' लोग कुटम्ब सब, रहते सदा हजूर।
प्राण गये लागे कहन, काढो घर से दूर ॥५॥

देह सुरंगी तब लगे, जब लग प्राण समीप।
जीव जोति जाती रही, 'सुन्दर' बदरंग[1] दीप ॥६॥ बुरारंग[1]

चमक दमक सब मिट गई, जीव गया जब आप।
'सुन्दर' खाली कंचुकी, नीकस गया जब साप ॥७॥
श्रवण नैन मुख नासिका ज्यों के त्यों सब द्वार।
'सुन्दर' सो नहिं देखिये, अचल चलावणहार ॥८॥
हँसे न बोले नैक हू, खाय न पीवे देह।
'सुन्दर' अनशन ले रही, जीव गया तज नेह ॥९॥
पाथर से भारी भई, कौन चलावे जाहि।
'सुन्दर' सो कतहू गया, लीये फिरता ताहि ॥१०॥
'सुन्दर' पाणी सींचता, क्यारी-कण के हेत।
चेतन माली चल गया, सूका काया खेत ॥११॥
ज्यों का त्योंही देखिये, सकल देह का ठाट।
'सुन्दर' को जाने नहीं, जीव गया कहिं वाट ॥१२॥
'सुन्दर' देह हले चले, चेतन के संयोग।
चेतन सत्ता चलि गई, कौन करे रस भोग ॥१३॥
हलन चलन सब देह का, चेतन सत्ता होइ।
चेतन सत्ता बाहरी, 'सुन्दर' क्रिया न होइ ॥१४॥
'सुन्दर' देह हले चले, जब तक चेतन लाल।
चेतन किया प्रयान जब, रूस रहे ततकाल ॥१५॥

चम्बक सत्ता कर यथा, लोहा नृत्य कराय ।
'सुन्दर' चम्बक दूर हो, चचलता मिट जाय ॥१६॥
नख शिख देह लगे भली, 'सुन्दर' अधिक स्वरूप ।
चेतन हीरा चल गया, भया अन्धेरा धूप ॥१७॥
'सुन्दर' देह सुहावनी, जब लग चेतन माँहि ।
कोई निकट न आव ही, जब यह चेतन नाँहि ॥१८॥
चेतन के सयोग से, होय देह का तोल ।
चेतन न्यारा हो गया, लहैं न कोडो मोल ॥१९॥
चेतन मिश्री देह तृण, तुलत संग देंहि दाम ।
'सुन्दर' दोउ जुदे भये, तन तृण कोने[1] काम ॥२०॥ किस[1]
चेतन से चेतन भई, अतिगति[1] शोभित देह । अतिगमन[1]
'सुन्दर' चेतन निकसते, भई खेह की खेह ॥२१॥
चेतन ही लीये फिरे, तन को सहज स्वभाव ।
'सुन्दर' चेतन बाहरी, खैलभैल[1] हो जाय ॥२२॥ गडबड[1]
देह जीव यू मिल रहैं, ज्यो पाणी अरु लोन ।
वार न लाई बिछुरते, 'सुन्दर' कीया गोन ॥२३॥
'सुन्दर' आय शरीर मे, जीव किये उतपात ।
निकसि गये या देह की, फेर न बूझो बात ॥२४॥
'सुन्दर' आया कौन दिशि, गया कौनसी वोर ।
यह किनहू जाना नही, भया जगत मे शोर[1] ॥२५॥ कौलाहल[1]

इति देहात्मा विछोह का अग ९

अथ तृष्णा का अग १०

दोहा—पल पल छीजे देह यह, घटत घटत घटि जाय ।
'सुन्दर' तृष्णा ना घटे, दिन दिन नौतम[1] थाय[2] ॥१॥ नवीन[1] हो[2]
बालापन जोवन गया, वृद्ध भये सब कोइ ।
'सुन्दर' जीरण हो गये, तृष्णा नव[1] तन[2] होइ ॥२॥ नवीन[1] तन मे[2]
'सुन्दर' तृष्णा यू वधे, जैसे बाढे आग ।
ज्यो ज्यो नाखे पूसको, त्यो त्यो अधिकी जाग[1] ॥३॥ जगती है[1]
जब दश बीस पचास सौ, सहस्र लाख पुनि कोरि[1] । कोटि[1]
नील पदम सख्या नही, 'सुन्दर' त्यो त्यो थोरि[2] ॥४॥ थोडी[2]
बहुर पृथीपति होन की, इन्द्र ब्रह्म शिव वोक[1] । स्थान[1]
कब देहैं करतार ये 'सुन्दर' तीनो लोक ॥५॥

तृष्णा बहै तरंगिनी[1], तरल तरी नहिं जाय । नदी चंचल[2]
'सुन्दर' तीक्षण धार मे, केते दिये बहाय ।।६।।
'सुन्दर' तृष्णा पकड के, कर्म करावे कोरि ।
पूरी होय न पापिनी, भटकावे चहु वोरि[1] ।।७।। ओर[1]
'सुन्दर' तृष्णा कारणे, जाय समुद्र हि बीच ।
फटे जहाज अचानचक्र, होय अवछी[1] मीच ।।८।। विना इच्छा[1]
'सुन्दर' तृष्णा लेगइ, जहँ वन विषम पहार[1] । पहाड[1]
सिंह व्याघ्र मारे तहा, कै मारे बटपार[2] ।।९।। लूटेरा[2]
'सुन्दर' तृष्णा करत है, सब को बांध गुलाम ।
हुकम कहै त्यों ही चले, गिणे शीत नहिं घाम ।।१०।।
मेघ सहै आंधी सहै, सहै बहुत तन त्रास ।
'सुन्दर' तृष्णा के लिये, करै आपना नाश ।।११।।
'सुन्दर' तृष्णा के लिये, पराधीन हो जाय ।
दुसह वचन निश दिन सहै, यू परहाथ विकाय ।।१२।।
तृष्णा के वश होय के, डोले घर घर द्वार ।
'सुन्दर' आदर मान विन, होत फिरे नर ख्वार ।।१३।।
तृष्णा पेट पसारिया, तृप्ति न क्यों ही होय ।
'सुन्दर' कहते दिन गये, लाज शर्म नहि कोय ।।१४।।
तृष्णा डोले ताकती, स्वर्ग मृत्यु पाताल ।
'सुन्दर' तीनो लोक मे, भरा न एकहु गाल ।।१५।।
तृष्णा डाइण होय के, खाया सब ससार ।
'सुन्दर' सतोषी वचे, जिनके ब्रह्म विचार ।।१६।।
'सुन्दर' तोहि किता कहा, सीख न मानी एक ।
तृष्णा तू छाडे नही, गही आपनी आपनी टेक ।।१७।।
तृष्णा तू वोरी[1] भई, तोको लागी वाइ[2] । बावली[1] वायु[2]
'सुन्दर' रोकी ना रहै, आगे भागी जाय ।।१८।।
'सुन्दर' तृष्णा बहु बधी, धरा बडा अति देह ।
अध ऊरध दशहू दिशा, कहू न तेरा छेह ।।१९।।
'सुन्दर' तृष्णा डाइनी, डाकी लोभ प्रचण्ड ।
दोऊ काढें आंख जब, कांप उठे ब्रह्माण्ड ।।२०।।
'सुन्दर' तृष्णा भाडिनी, लोभ बडा अति भाड ।
जैसा ही रडवा मिला, तैसी मिल गई राड ।।२१।।

'सुन्दर' तृष्णा कोढनी, कोढी लोभ भर्तार।
इनको कबहू न भींटिये[1], कोढ लगे तन ख्वार ॥२२॥ छूईये[1]
'सुन्दर'[1] तृष्णा चूहडी, लोभ चूहडा[1] जानि। भगी[1]
इन के भीटे होते हैं, ऊंचे कुल की हानि ॥२३॥
'सुन्दर' तृष्णा सर्पणी, लोभ सर्प के साथ।
जगत पिटारा माहि सब, तू जनि[1] घाले हाथ ॥२४॥ नहीं[1]
'सुन्दर' तृष्णा है छुरी, लोभ खग[1] की धार। तलवार[1]
इन से आप बचाइये, दोनो मारणहार ॥२५॥

इति तृष्णा का अंग १०

अथ अधीर्य उरांहने का अंग ११

दोहा—देह रचा प्रभु भजन को, 'सुन्दर' नख शिख साज।
एक हमारी बात सुन, पेट दिया किंहि[1] काज ॥१॥ किस[1]
श्रवण दिये यश सुनन को, नैन देखने सन्त।
'सुन्दर' शोभित नासिका, मुख शोभन को दन्त ॥२॥
हाथ पाव हरि कृत्य को, जीभ जपन को नाम।
'सुन्दर' ये तुम मे लगे, पेट दिया किंहि काम ॥३॥
'सुन्दर' किया साज सब, समरथ सिरजनहार।
कौन करी यह रीस तुम, पेट लगाया लार ॥४॥
और ठौर से काढि मन, करिये तुम को भेट।
'सुन्दर' क्यो कर छूटियें, पाप लगाया पेट ॥५॥
कूप भरे वापी भरे, पूरि भरे जल ताल।
'सुन्दर' प्रभु पेट न भरे, कौन किया तुम ख्याल ॥६॥
नदी भरहिं नाला भरहिं, भरहिं सकल ही नाड[1]। छोटा तालाब[1]
'सुन्दर' प्रभु पेट न भरहिं, कौन करा यह खाड ॥७॥
खदक[1] खाम[2] बुखार[3] पुनि बहुर भरहि घर हाट। खाई[1] कीसा[2] बुखारी[3]
'सुन्दर' प्रभु पेट न भरहिं, भरिय हि कोठी माट ॥८॥
चूल्हा भाठी भाड महिं, इन्धन सब जल जाय।
त्यों 'सुन्दर' प्रभु पेट यह, कबहू नही अघाय[1] ॥९॥ तृप्त[1]
बम्बई[1] थलहि समुद्र मे, पानी सकल समात। बबी[1]
त्यो 'सुन्दर' प्रभु पेट यह, रहै खात ही खात ॥१०॥
असुर भूत अरु प्रेत पुनि, राक्षस जिनका नाव।
त्यो 'सुन्दर' प्रभु पेट यह, करे खाव ही खाव ॥११॥

'सुन्दर' प्रभुजी पेट को, चिन्ता दिन अरु रात।
साझ खाय कर सोइये, फिर मागे परभात ॥१२॥
'सुन्दर' प्रभुजी पेट इन, जगत कियो सब ख्वार।
को खेती को चाकरी, कोई वर्नज व्योपार ॥१३॥
'सुन्दर' प्रभुजी पेट इन, जगत किया सब दीन।
अन्न बिना तलफत फिरे, जैसे जल बिन मीन ॥१४॥
'सुन्दर' प्रभुजी पेट वश, भये रंग अरु राव।
राजा राणा छत्रपति, मीर[1] मलिक[2], उमराव ॥१५॥ अमीर[1] मालिक[2]
विद्याधर पण्डित गुणी, दाता शूर सुभट्ट।
'सुन्दर' प्रभुजी पेट इन, सकल किये खटपट्ट ॥१६॥
'सुन्दर' प्रभुजी पेट यह, राखे कछु न मान।
वन में बैठे जाय के, उठ भागे मध्यान ॥१७॥
'सुन्दर' प्रभुजी पेट वश, चौरासी लख जंत।
जल थल के चाहैं सकल, जे आकाश बसन्त ॥१८॥
'सुन्दर' प्रभुजी पेट इन, जगत किया सब भाड।
कोई पंचामृत भखे, कोई पतला मांड ॥१९॥
'सुन्दर' प्रभुजी पेट को[1], बहु विधि करहिं उपाय। भरन के[1]
कौन लगाई व्याधि तुम, मीमन पोवत जाय ॥२०॥
'सुन्दर' प्रभुजी सवन को, पेट भरने की चिन्त।
कोडी कण ढूढत फिरे, माखी रस लैजंत[1] ॥२१॥ ले आती है[1]
'सुन्दर' प्रभुजी पेट वश, देवी देव अपार।
दोष लगावे और को, चाहैं एक अहार ॥२२॥
'सुन्दर' प्रभुजी पेट को, दुधाधारी होइ।
पाखड करहिं अनेक विधि, खाहिं सकल रस गोइ[1] ॥२३॥ छिपकर[1]
'सुन्दर' प्रभुजी पेट को, साधे जाय मसान।
यन्त्र मन्त्र आराधकर, भरहिं पेट अज्ञान ॥२४॥
'सुन्दर' प्रभुजी सब कहा, तुम आगे दुख रोइ।
पेट बिना[1] ही पेट कर, दीनी खलक[2] बिगोइ ॥२५॥

[1] आपके तो पेट नहीं है किन्तु दुनिया के २ पेट लगाकर दुनिया को हैरान कर दिया।

इति अधीर्य उराहने का अंग ११

अथ विश्वास का अंग १२

दोहा— 'सुन्दर, तेरे पेट की, तो को चिन्ता कौन ।
विश्व भरन भगवत है, पकड बैठ तू मौन ।।१।।
'सुन्दर' चिन्ता मत करै, पाव पसारे सोइ[1] ।　　　शयन[1]
पेट किया है जिन प्रभू, ताको चिन्ता होइ ।।२।।
जलचर थलचर व्योमचर, सबका देत अहार ।
'सुन्दर' चिन्ता जनि करे, निशदिन बारम्बार ।।३।।
'सुन्दर' प्रभुजी देत है, पाहन मे पहुचाइ ।
तू अब क्यो भूखा रहे, काहे को बिललाइ ।।४।।
'सुन्दर' धीरज धार तू, गह प्रभु का विश्वास ।
रिजक[1] बनाया रामजी, आवे तेरे पास ।।५।।　　　जीविका[1]
काहे को परिश्रम करे, जनि[1] भटके चहु ओर ।　　　क्यों[1]
घर बैठे ही आय है, 'सुन्दर' साझ कि भोर[1] ।।६।।　　　प्रात[1]
रिजक बनाया रामजी, कापै[1] मेटा जाय ।　　　किससे[1]
'सुन्दर' धीरज धार तू, सहज रहेगा आय ।।७।।
चेंच सवारी जिन प्रभू, चून देइगा आन ।
'सुन्दर' तू विश्वास गह, छाड आपनी बान[1] ।।८।।　　　चिन्ता की[1]
'सुन्दर' दौडे रिजक को, सो तो मूरख होइ ।
यू जाने नहि बावरा, पहुचावे प्रभु सोइ ।।९।।
'सुन्दर' समझ विचार कर, है प्रभु पूरणहार ।
तेरा रिजक न मेट है, जानत क्यो न गवार ।।१०।।
'सुन्दर' निश दिन रिजक को, बाद[1] मरे नर भूर ।　　　व्यर्थ[1]
रिजक दे तुझे रामजी, जहा तहा भरपूर ।।११।।
'सुन्दर' जो मुख मूद के, बैठ रहै एकत ।
आनि खवावे रामजी, पकड उघाडे दन्त ।।१२।।
'सुन्दर' ऐसे रामजी, ताको जानत नाहि ।
पहुचावत है प्राण को, आपहि बैठा माहि ।।१३।।
'सुन्दर' प्रभुजी निकट है, पलपल पोषे प्रान ।
ताको शठ जानत नही, उद्यम ठाने आन[1] ।।१४।।　　　अन्य[1]
'सुन्दर' पशु पक्षी जिते, चून सबन को देत ।
उनके सोदा कौन सा, कहो कौन से खेत ।।१५।।
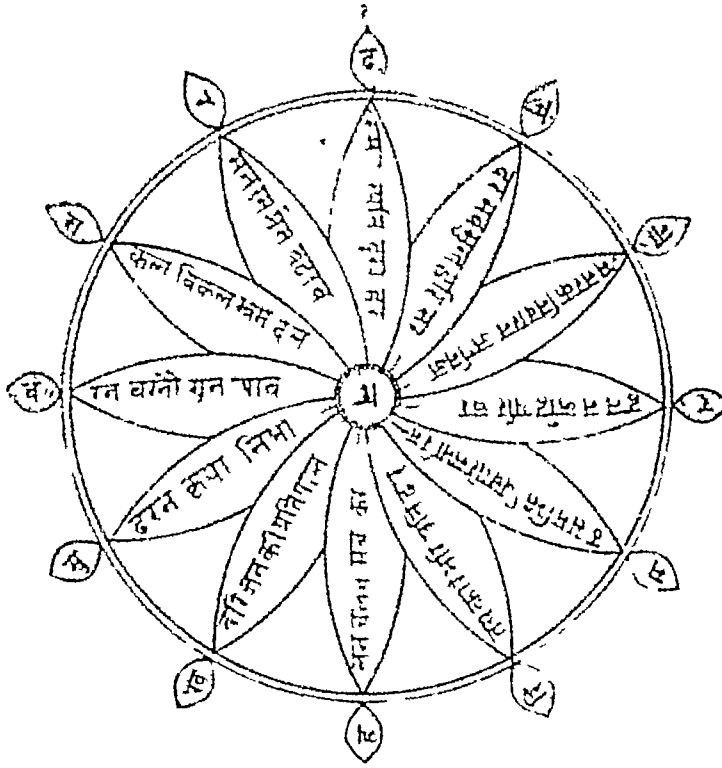
कमल बन्ध

छप्पय

दरसनअति दुख हरन रसन प्रेम बढावन ।
सकल बिकल भ्रम दलन वरन बरनौ गुन पावन ।।
सुढरन कृपा निधान खबरि जन की प्रतिपालन ।
हलन चलन सब करन रितय करि भरि पुनि ढारन ।।
सठ समझि विचारि सँभारि मन रहत न काहे दरि चरन ।
नम नरक निवारन जानि जन सुन्दर सब सुख हरि सरन ।

पढने की विधि

"दरसन" शब्द के 'दकार। पर १ का अङ्क है – वहाँ से प्रारम्भ करके बाँई ओर की पखुडियो के चरणो को पढते जाय । अन्त का चरण 'सुन्दर' वाली पंक्ति मे है ।

यह छप्पय चित्रकाव्य ही मे है, ग्रंथ मे नही है ।

'सुन्दर' अजगर पड रहै, उद्यम करे न कोइ ।
ताको प्रभुजी देत है, तू क्यो आतुर होइ ।।१६।।
'सुन्दर' मच्छ समुद्र मे, सौ योजन विसतार ।
ताहू को भूलै नही, प्रभु पहुचानहार ।।१७।।
'सुन्दर' मनुषा देह मे, धीरज धरत न मूरि[1] । किंचित[1]
हाय हाय करता फिरे, नर तेरे शिर धूरि ।।१८।।
'सुन्दर' सिरजनहार का, क्यो न गहै विश्वास ।
जीव जत पोषे सकल, कोउ न रहत निराश ।।१९।।
'सुन्दर' जाकी सृष्टि यह, ताके टोटा कौन ।
तू प्रभु के विश्वास विन, पडे न हाडी लौन ।।२०।।
'सुन्दर' जिन प्रभु गर्भ मे, बहुत करी प्रतिपाल ।
सो पुनि अजहू करत है, तू साधे धनमाल ।।२१।।
सुन्दर' सब को देत है, चच सवानी[1] चौन । योग्य[1]
तेरे तृष्णा अति वढी, भर भर ल्यावत गौन[2] ।।२२।। वोरी[2]
'सुन्दर' जाको जो रचा, सोई पहुचे आय ।
कीडी को कण देत है, हाथी मणभर खाय ।।२३।।
'सुन्दर' जल की वून्द से, जिन यह रचा शरीर ।
सोई प्रभु याको भरे, तू जनि[1] होय अधीर ।।२४।। क्यो[1]
'सुन्दर' अब विश्वास गह, सदा रहै प्रभु साथ ।
तेरा किया न होत है, सब कुछ हरि के हाथ ।।२५।।

इति विश्वास का अग १२

अथ देह मलिनता गर्व प्रहार का अग १३

दोहा— 'सुन्दर' देह मलीन है, राखा रूप सवार ।
ऊपर से कलई करी, भीतर भरा भगार[1] ।।१।। कचरा[1]
'सुन्दर' देह मलीन है, प्रकट नरक की खानि ।
ऐसी याही भाकसी[1], तामे दीन्हा[2] आनि ।।२।। कैद[1] जीव को[2]
'सुन्दर' देह मलीन अति, बुरी वस्तु का भौन[1] । घर[1]
हाड मास का कोथला[2], भली वस्तु कहि कौन ।।३।। थेला[2]
'सुन्दर' देह मलीन अति, नख शिख भरे विकार ।
रक्त पीप मल मूत्र पुनि, सदा वहै नव द्वार ।।४।।
'सुन्दर' मुख मे हाड सब, नैन नासिका हाड ।
हाथ पाव सब हाड के, क्यो नहि समझत राड[1] ।।५।। मूर्ख गर्व करे[1]

'सुन्दर' पजर हाड का, चाम लपेटा ताहि ।
तामे बैठा फूल के, मो समान को ग्राहि[1] ॥६॥ है[1]
'सुन्दर' न्हावे बहुत ही, बहुत करे ग्राचार ।
देह माहि देखे नही, भरा नरक भण्डार ॥७॥
'सुन्दर' ग्रपरस धोवती, चौके बैठा ग्राय ।
देह मलीन सदा रहै, ताही के सग खाय ॥८॥
'सुन्दर' ऐसी देह मे, शुच्चि कहा क्यो होइ ।
झूठे ही पाखण्ड कर, गर्व करे जनि[1] कोइ ॥९॥ क्यों[1]
'सुन्दर' शुच्च रहै नही; या शरीर के सग ।
न्हावे धोवे बहुत कर, शुद्ध होय नहि अग ॥१०॥
'सुन्दर' कहा पखालिये, ग्रति मलीन यह देह ।
ज्यो ज्यो माटी धोइये, त्यो त्यो प्रकटे खेह ॥११॥
'सुन्दर' मैली देह यह, निर्मल करी न जाइ ।
बहुत भाति कर धोइ तू, ग्रठसठ तीरथ न्हाइ ॥१२॥
'सुन्दर' ब्राह्मण ग्रादि का, ता मे फेर न कोइ ।
शूद्र देह से मिल रहा, क्यो पवित्र ग्रब होइ ॥१३॥
'सुन्दर' गर्व कहा करे, देह महा दुर्गंध ।
ता मे तू फूला फिरे, समझ देख शठ अध ॥१४॥
'सुन्दर' क्यो टेढा चले, बात कहै किन मोहि ।
महा मलीन शरीर यह, लाज न उपजे तोहि ॥१५॥
'सुन्दर' देखे ग्रारसी, टेढी बाधे पाग ।
बैठा ग्राय करक पर, ग्रति गति फूला काग ॥१६॥
'सुन्दर' बहुत बलाय है, पेट पिटारी माहि ।
फूला माय न खाल मे, निरखत चाले छाहि ॥१७॥
'सुन्दर' रज वीरज मिले, महा मलिन ये दोइ ।
जैसा जाका मूल है, तैसा ही फल होइ ॥१८॥
'सुन्दर' मलिन शरीर यह, ताहू मे बहु व्याधि ।
कबहू सुख पावे नही, ग्राठो पहर उपाधि ॥१९॥
'सुन्दर' कबहू फुनसली[1], कबहू फोडा होइ । फुनसी[2]
ऐसी याही देह मे, क्यो सुख पावे कोइ ॥२०॥
कबहू निकसे न्हारवा[1], कबहू निकसे दाद । बाला[1]
'सुन्दर' ऐसी देह यह, कबहू न मिटे विषाद ॥२१॥

'सुन्दर' कबहू ताप हो, कबहू हो शिरवाहि[1] । वायु[1]
कबहू हृदय जलन हो, नख शिख लागे भाहि[2] ॥२२॥ आग[2]
कबहूँ पेट पिरात[1] है, कबहू माथे शूल । पीडा[1]
'सुन्दर' ऐसी देह यह, सकल पाप का मूल ॥२३॥
'सुन्दर' कबहू कान मे, चीस[1] उठे अति दु ख । पीडा[1]
नैन नाक मुख मे विथा, कबहु न पावे सुक्ख ॥२४॥
श्वास चले खासी चले, चले पसुलिया बाव[1] । वायु[1]
'सुन्दर' ऐसी देह मे, दुखी रक अरु राव ॥२५॥

देह मलिनता गर्व प्रहार का अंग १३

अथ दुष्ट का अग १४

दोहा—'सुन्दर' बाते दुष्ट की, कहिये कहा बखान ।
कहे विना ही जानिये, जिती दुष्ट की बान[1] ॥१॥ आदत[1]
अपने दोप न देख ही, परके अवगुण लेत ।
ऐसा दुष्ट स्वभाव है, जन 'सुन्दर' कह देत ॥२॥
'सुन्दर' दुष्ट स्वभाव है, अवगुण देखे आय ।
जैसे कीड़ी महल मे, छिद्र ताकती जाय ॥३॥
सूझत नाही दुष्ट को, पाव तले की आग ।
औरन के शिर पर कहै, 'सुन्दर' वासे भाग ॥४॥
देखी अनदेखी कहै, ऐसा दुष्ट स्वभाव ।
'सुन्दर' निशदिन पड गया, कहिवे ही का चाव ॥५॥
'सुन्दर' कवहु न धीजिये, सरस दुष्ट की बात ।
मुख ऊपर मीठी कहै, मन मे घाले घात ॥६॥
व्याघ्र[1] करै ज्यो लुरखरी[2], कूकर आगे आय । बघेरा[1] छिपे[2]
कूकर देखत ही रहै, बाघ पकड ले जाय ॥७॥
'सुन्दर' काहू दुष्ट को, भूल न धीजहु वीर ।
नीचे आग लगाइ कर, ऊपर छिडके नीर ॥८॥
दुष्ट धिजावे बहुत विधि, आनि नमावे शीश ।
'सुन्दर' कवहु जहर दे मारे विसवा वीस ॥९॥
दुष्ट करे बहु बीनती, होय रहै निज दास ।
'सुन्दर' दाव पडे जवहि, तवहि करे घट नाश ॥१०॥
दुष्ट घाट घडिबो करे, घट मे याही होय ।
'सुन्दर' मेरी पाश मे, आय पड़े जो कोय ॥११॥

बात सुनो जनि[1] दुष्ट की, वहुत मिलावे आनि।   क्यो[1]
'सुन्दर' माने साच कर, सोई मूरख जानि ॥१२॥
दुष्ट बुरी ही करत है, 'सुन्दर' नैक न लाज।
काम विगाडे और का, अपने स्वारथ काज ॥१३॥
पर का काम विगाड दे, अपना होउ न होइ।
यह स्वभाव है दुष्ट का, 'सुन्दर' तजिये वोह[1] ॥१४॥   उसे[1]
घर खोवत है आपना, औरन हू का जाय।
'सुन्दर' दुष्ट स्वभाव यह, दोऊ देत वहाय[1] ॥१५॥   नष्ट[1]
दुर्जन सग न कीजिये, सहिये दु ख अनेक।
'सुन्दर' सब ससार मे, दुष्ट समान न एक ॥१६॥
बीछू काटे दुख नही, सर्प डसे पुनि आय।
'सुन्दर' जो दुख दुष्ट से, सो दुख कहा न जाय ॥१७॥
गज मारे तो नाहिं दुख, सिंह करे तन भग।
'सुन्दर' ऐसा नाहिं दु ख, जैसा दुर्जन सग ॥१८॥
'सुन्दर' जलिये अग्नि मे, जल बूडे नहिं हानि।
पर्वत ही से गिर पडो, दुर्जन भला न जान ॥१९॥
सुन्दर' झपापात ले, करवत धरिये शीश।
वा दुर्जन के सग से, राखि राखि जगदीश ॥२०॥
'सुन्दर' विषहू पीजिये, मरिये खाय अफीम।
दुर्जन सग न कीजिये, गल मरिये पुनि हीम[1] ॥२१।   हिमालय
'सुन्दर दुख सब तोलिये, घाल तराजू माहिं।
जो दुख दुर्जन सग से, ता सम कोई नाहि ॥२२॥
'सुन्दर' दुर्जन सारिखा, दुखदाई नहिं और।
स्वर्ग मृत्यु पाताल हम, देखे सब ही ठौर ॥२३॥
देह जले दुख होत है, ऊपर लागे लौन।
ताहू से[1] दुख दुष्ट का, 'सुन्दर' माने कौन ॥२४॥   अधिक
जो कोउ मारे वाण भर, 'सुन्दर' कुछ दुख नाहिं।
दुर्जन मारे वचन से, सालत[1] है उर माहिं ॥२५॥   पीडा[1]

इति दुष्ट का अग १४

अथ मन का अंग १५

दोहा— मन को राखत हटकि[1]कर, सटकि[2]चहू दिशि जाय।   हटकर[1] शीघ्र[2]
'सुन्दर' लटकि[3]रु लालची, गटकि विषय फल खाय ॥१॥   लपक कर[3]

झटकि[1] तार[2] को तोड दे, भटकत सांझ रु भोर। झटकादे[1] भजन का[2]
पटकि शीश 'सुन्दर' कहै, फटकि[3] जाय ज्यो चोर ॥२॥ शीघ्र[3]
पल ही मे मर[1] जात है, पल मे जीवत सोइ। संकल्प विकल्प हीन[1]
'सुन्दर' पारा मूरछित, बहुर सजीवन होइ ॥३॥
जाते कबहु न जानिये, यूं मन नीकस जाय।
आवत कछू न देखिये, 'सुन्दर' किसी बलाय ॥४॥
घेरे नैक न रहत है, ऐसा मेरा पूत।
पकडे हाथ पडे नही, 'सुन्दर' मनवा भूत ॥५॥
नीति अनीति न देख ही, अति गति मन के[1] बक। काम[1]
'सुन्दर' गुरु की साधु की, नैक[2] न माने शक ॥६॥ किंचित[2]
'सुन्दर' क्यो कर धीजिये, मन का बुरा स्वभाव।
आय बने गुदरे[1] नही, खेले अपना दाव ॥७॥ गुजरे=माने नही[1]
'सुन्दर' या मन सारिखा, अपराधी नहि और।
साख सगाई ना गिने, लखे न ठौर कुठौर ॥८॥
'सुन्दर' मन कामी कुटिल, क्रोधी अधिक अपार।
लोभी तृप्त न होत है, मोह लगा सैवार ॥९॥
'सुन्दर' यह मन अधम है, करै अधम ही कृत्य[1]। काम[1]
चला अधोगति जात है, ऐसी मन की वृत्य[2] ॥१०॥ वृत्ति[2]
'सुन्दर' मन के रिंदगी[1], होय जात सैतान[2]। दुष्टता[1] उदंडी[2]
काम लहरि जागे जबहिं, अपनी गिने न आन[3] ॥११॥ अन्य[3]
ठग विद्या मन के घनी, दगाबाज मन होइ।
'सुन्दर' छल केता करे, जान सके नहि कोइ ॥१२॥
'सुन्दर' यह मन चोरटा, नाखे ताला तोड।
तके पराये द्रव्य को, कब ल्याऊ घर फोड ॥१३॥
सुन्दर' यह मन जार हे, तके पराई नारि।
अपनी टेक तजे नही, भावे गर्दन मारि ॥१४॥
सुन्दर' मन बटपार[1] है, घालै पर की घात। लुटेरा[1]
हाथ पडे छोडे नही, लूट खोस ले जात ॥१५॥
'सुन्दर' मन गाठी कटो, डाले गल मे पासि।
बुरा करत डरपे नही, महा पाप की राशि ॥१६॥
'सुन्दर' यह मन नीच है, करे नीच ही कर्म।
इन इन्द्रिन के वश पडा, गिने न धर्म अधर्म ॥१७॥

'सुन्दर' यह मन भाड है, सदा भडाया[1] देत । — नकल[1]
रूप धरे बहु भाति के, राते पीरे सेत[2] ।।१८।। — श्वेत[2]
'सुन्दर' यह मन डूम है, मागत करे न शक ।
दीन भया याचत फिरे, राजा होय कि रक ।।१९।।
'सुन्दर' यह मन रासिभा[1], दौड विषय को जात । — गधा[1]
गदही[2] के पीछे फिरे, गदही मारे लात ।।२०।। — गधी[2]
'सुन्दर' यह मन श्वान है, भटके घर घर द्वार ।
कहूक पावे जूठ को, कहू पडे बहु मार ।।२१।।
'सुन्दर' यह मन काग है, बुरा भला सब खाय ।
समझाया समझे नही, दौड करक हि जाय ।।२२।।
'सुन्दर' मन मृग रसिक है, नाद सुने जब कान ।
हले चले नहि ठौर से, रहो कि निकासो प्रान ।।२३।।
'सुन्दर' यह मन रूप को, देखत रहै लुभाय ।
ज्यो पतग वश नैन के, जोति देख जल जाय ।।२४।।
'सुन्दर' यह मन भ्रमर है, सूघत रहै सुगन्ध ।
कमल माहि निकसे नही, काल न देखे अन्ध ।।२५।।
'सुन्दर' यह मन मोन है, बन्धे जिह्वा स्वाद ।
फटक काल न सूझ ही, करत फिरे उदमाद[1] ।।२६।। — पागलपन[1]
'सुन्दर' मन गजराज ज्यो, मत्त भया सुध नाहि ।
काम अन्ध जाने नही, पडे खाड के माहि ।।२७।।
'सुन्दर' यह मन करत है, बाजीगर का ख्याल ।
पख परेखा[1] पलक मे, मुवा जिवावत व्याल[2] ।।२८।। — कबूतर[1] सर्प[2]
ज्यो बाजीगर करत है, कागद मे हथफेर[1] । — हथफेरी[1]
'सुन्दर' ऐसे जानिये, मन मे धरन[2] सुमेर ।।२९।। — रखना[2]
'सुन्दर' यह मन भूत है, निशिदिन बकते जाय ।
चिन्ह करे रोवे हँसे, खाते नही अघाय[1] ।।३०।। — तृप्त[1]
सुन्दर' यह मन चपल अति, ज्यो पीपल का पान ।
बार बार चलिबो करे, हाथी का सा कान ।।३१।।
'सुन्दर' यह मन यू फिरे, पानी का सा घेर[1] । — भँवर=चक्कर[1]
वायु बधूरा पुनि ध्वजा, यथा चक्र का फेर ।।३२।।
'सुन्दर' अरहट माल पुनि, चरखा बहुर फिरात ।
धूवा ज्यो मन उठ चले, कापै पकडा जात ।।३३।।

मन वश करने कहत है, मनके वश हो जाहि ।
'सुन्दर' उलटा पेच है, समझ नही घट माहि ।।३४।।

मन को मारत बैठ कर, मन मारे वै अन्ध ।
'सुन्दर' घोडे चढन को, घोडा बैठा कध ।।३५।।

'सुन्दर' करत उपाय बहु, मन नहिं आवे हाथ ।
कोई पीवे पवन को, कोई पीवे काथ[1] ।।३६।। क्वाथ[1]

'सुन्दर' साधन करत है, मन जीतन के काज ।
मन जीते उन सबन को, करे आपना राज ।।३७।।

साधन करहिं अनेक विधि, देहिं देह को दण्ड ।
'सुन्दर' मन भागा फिरे, सप्त द्वीप को खण्ड ।।३८।।

'सुन्दर' आसन मार के, साधि रहे मुख मौन ।
तन को राखे पकड के, मन पकडे कहि कौन ।।३९।।

तन का साधन होत है, मन साधन नाहिं ।
'सुन्दर' बाहर सब करे, मन साधन मन माहिं ।।४०।।

साधन साधत दिन गये, करहिं और की और ।
'सुन्दर' एक विचार बिन, मन नहिं आवे ठौर ।।४१।।

'सुन्दर' यह मन रक हो, कबहू हो मन राव ।
कबहू टेढा हो चले, कबहू सूधे पाव ।।४२।।

'सुन्दर' कबहू हो जती, कबहू कामी जोइ[1] । नारी=देख[1]
मन का यही स्वभाव है, ताता सियरा[2] होइ ।।४३।। शीतल[3]

पाप पुण्य यह मैं किया, स्वर्ग नरक हू[1] जाउ । मैं[1]
'सुन्दर' सब कुछ मान ले, ताही से मन नाउ[2] ।।४४।। नाम[1]

मन ही बडा कपूत है, मन ही महा सपूत ।
'सुन्दर' जो मन थिर रहै, तो मन ही अवधूत।।४५।।

मन ही यह विस्तर रहा, मन ही रूप कुरूप ।
'सुन्दर' यह मन जीव है, मन ही ब्रह्म स्वरूप ।।४६।।

'सुन्दर' मन मन सब कहै, मन जाना नहि जाय ।
जो या मन को जानिये, तो मन मनहिं समाय ।।४७।।

मन का साधन एक है, निशदिन ब्रह्म विचार ।
'सुन्दर' ब्रह्म विचार से, ब्रह्म होत नहिं बार ।।४८।।

देह रूप मन हो रहा, किया देह अभिमान ।
'सुन्दर' समझे आपको, आप होय भगवान ।।४९।।

जब मन देखे जगत को, जगत रूप हो जाय ।
'सुन्दर' देखे ब्रह्म को, तब मन ब्रह्म समाय ।।५०।।

मन ही का भ्रम जगत सब, रज्जु माहि ज्यो साप ।
'सुन्दर' रूपा[1] सीप मे, मृगतृष्णा मे आप[2] ।।५१।। चाँदी[1] जल[2]

जगत विझूका[1] देख कर, मन मृग माने शक ।
'सुन्दर' किया विचार जब, मिथ्या पुरुप करक[2] ।।५२।। नकली नर[2]

१ खेत मे मनुष्य का सा आकार बना कर खडा कर देते हैं उसे मनुष्य मान मृग डर कर भाग जाते हैं, इससे उसी का नाम झूझा वा हिरण विभूका रखा है ।

तब ही लौं मन कहत है, जब लग है अज्ञान ।
'सुन्दर' भागे तिमर सब, उदय होय जब भान[1] ।।५३।। सूर्य[1]

'सुन्दर' परम सुगन्ध से, लिपट रहा निश भोर[1] । प्रात[1]
पुण्डरीक[2] परमातमा, चचरीक[3] मन मोर ।।५४।। कमल[2] भौंरा[3]

'सुन्दर' निकसे कौन विधि, होय रहा लै लीन ।
परमानन्द समुद्र मे, मग्न भया मन मीन[1] ।।५५।। मच्छी[1]

दृष्टि न फेरे नैक हू, नैन लगे गोविन्द ।
'सुन्दर' गति ऐसी भई, मन चकोर ज्यो चन्द ।।५६।।

इत उत कहू न चल सके, थकित भया तिहि ठौर ।
'सुन्दर' जैसे नाद वश, मन मृग विसरा और ।।५७।।

मन का श्लेप– धड[1] तो जाके चार हैं, दो दो सिर है वीस ।
ऐसी बडी बलाय मन, सिर कर ले चालीस ।।५८।।

एक शब्द के दो या अधिक अर्थ हो उसको श्लेष कहते हैं । इस प्रसग मे मन के मण और मन दो अर्थ होते हैं—मण के १०-१० सेर के चार धड कहे है । दश चौक ४० सेर का मण होता है । दो दो सेर के वीस शिर कहे हैं । वीस का दूणा करें तो ४० सिर सेर हो जाते हैं । ४० सेर का मण होता है । मन ऐसी ही बलाय है अर्थात् वश मे आना कठिन है । मन अर्थ-मन के चार धड-सतो गुण, रजो गुण, तमो गुण, मिश्रित गुण ये धड हैं । पाच ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर उक्त सतो गुण आदि पाच चौका २० मन के शिर हो जाते हैं । २० वृत्तियो के सकल्प विकल्प ४० हो जाते हैं, ऐसे मन बढता ही जाता है ।

सिर से द्वै अध सिर करै, सिर सिर चहु चहु पाव ।
ऐसे सिर चालीस है, मन कहिये कि छलाव[1] ॥५९॥

सिर=सेर के दो आधा सेर और सिर=सेर-सेर के चार-चार पाव होते हैं ऐसे सिर=सेर चालीस होते हैं मन की वृत्ति भी बढती है तब मन=मण होता है, इसको मन-मण कहै कि चचल छलिया[1] कहैं ।

सिर जाके चालीस हैं, असी अरध सिर जाहि ।
पाव एक सौ साठ हैं, क्यो कर पकडै ताहि ॥६०॥

सिर=सेर जिस मण के चालीस हैं और ८० अर्ध सिर=आधा सेर हैं तथा एक सौ साठ पाव का एक मण हैं, मन की वृत्ति भी बढती ही है, ऐसे मन और मण को कैसे पकडे, पकडना कठिन है ।

आधे पग हैं तीन सौ, और अधिक पुनि बीस ।
तिनहू से आधे करै, षट शत अरु चालीस ॥६१॥

आधे पग=अधपव्वे ३२० का एक मण होता है । आध पाव से भी आधे करै तो ६४० छटाक का एक मण होता है, मन की वृत्तिया भी व्यवहार मे बढती ही रहती है ।

डेढ हजार रु एक सौ, इतने होहि अगुष्ठ ।
चौसठ सौ अगुल्ी करै, मन से कौन सपुष्टि ॥६२॥

मन=मण के १६०० अगुठे हैं, और ६४०० अगुली होती है । इस मन से अधिक मोटा कौन होगा, अर्थात् कोई भी नही है ।

नख की गिनती को गिने, तनके रोम अनन्त ।
ऐसे मन को वश करे, 'सुन्दर' सो बलवत ॥६३॥

एक पालडे शीश[1] धर, तोले ताके साथ ।
वर चालीसक तौलिये, तब मन आवे हाथ ॥६४॥

अपने आपा[1] को अनेक वार मार दे, तब मन वश होगा । दश धड और वीस शिर को नष्ट करना अर्थात् विचार द्वारा अनेक बार ४० वार तोले तव मन हाथ मे आता है, मण के चालीस सेर पुरे होते हैं और मन सकल्प शून्य होता है ।

पच शीश कर एकठे, धरे तराजू आय ।
आठ बार जो तोलिये, तव मन पकडा जाय ॥६५॥

पाच शीश=पाच-पाच से आठ वार तोले तव ४० सेर का मण होता है । मन अर्थ मे पाच ज्ञानेन्द्रिये योग के आठ अगो मे लगाकर विचार रूप तुला पर तोले तब साधन की परिपाकावस्था मे मन पकडा जाता है ।

धरै एक धड पालडे, तोले बरिया चार ।
थोडे मे वश होय मन, पण्डित लेहु विचार ।।६६।।

धरै एक धड=धडी दश सेर तराजू के पालडे धर कर चार वार तोलो तो दश चौक ४० सेर का मरण हो जाता है, वैसे ही चार अन्तरग साधन करके ज्ञान रूप तुला पर तोलने से = निदिध्यासन करने पर मन वश मे हो जाता है। हे पण्डितो ! तुम भी उक्त प्रकार साधन करके निदिध्यासन द्वारा देखलो, मन वश मे हो जायगा।

एक सेर कुञ्जर हणे, अति गति तामे जोर।
सेर गहे चालीस जिन, मन से बली न और ।।६७।।

एक सेर=शेर=सिंह ही ऐसा वलवान है कि हाथी को मार देता है फिर ४० सेर वाले मन को पकड ले उससे तो अधिक वली अन्य कोई भी नही हो सकता।

इन्द्रि अरु रवि शशि कला, धात मिलावे कोइ ।
'सुन्दर' तोले जुगति से, तब मन पूरा होइ ।।६८।।

ज्ञानेन्द्रिय पाच, रवि १२, शशि कला १६ और शरीर की ७ सात धातु मिलाने से मरण ४० से पूरा होता है, वैसे ही पाच ज्ञानेन्द्रियो के साथ मन की वृत्तिया भी ४० हो जाती हैं।

चौपाई—पाच सात नौ तेरह कहिये, साढे तीन आढाई लहिये ।
सब को जोड एक मन होई, मनके गाये सत्य न कोई ।।६९।।

५ ज्ञानेन्द्रिय, ७ धातु ९ द्वार, पाच प्राण, पाच उपप्राण ३ बुद्धि चित्त, अहकार, ३।। तीन हाथ शरीर की लम्वाई, २।। से खान पान वस्त्र आदि का ग्रहण करें तव इन सव को जोडने से ४० सेर का मण होता है ये सव भी मन से गायन किये जाते हैं। अत इन मे सत्य कोई भी नही है अर्थात् मन रचित प्रपच सव मिथ्याहै, यह भाव है।

ज्ञान कर्म इन्द्री दश जानहु, मन ग्यारहो सु प्रेरक मानहु ।
ग्यारह मे जब एक मिटावे, 'सुन्दर' तव हिं एक ही पावे ।।७०।।

ज्ञानेन्द्रिय पाच, कर्मेन्द्रिय पाच इन दश मे भीतर की मन रूप ग्यारहवी इन्द्रिये भी मिलावें, मन उक्त दश इन्द्रियो का प्रेरक और राजा भी है। इन ११ मे पहले एक को मिटा दे, यही मन का मिटाना है, सुन्दरदासजी कहते है मन मिटेगा तव ही एक अद्वितीय सत्य ब्रह्म को पावेगा ? उक्त मन श्लेष का तात्पर्य मन को मिटा कर ब्रह्म प्राप्त करने मे ही है।

इति मन का १५

अथ चाणक (कडा उपदेश) का अग १६

दोहा—छूटा चाहत जगत से, महा अज्ञ मतिमन्द ।
जोई करे उपाय कुछ, 'सुन्दर' सोई फन्द ॥१॥

योग करे जप तप करे, यज्ञ करे दे दान ।
तीरथ व्रत यम नेम से, 'सुन्दर' हो अभिमान ॥२॥

'सुन्दर' ऊचे पग किये, मन की अहं[1] न जाय । अहङ्कृति[1]
कठिन तपस्या करत है, अधो शीश लटकाय ॥३॥

मेघ सहे सब शीश पर, वर्षा रितु चौमास ।
'सुन्दर' तन को कष्ट अति, मन मे और हि आस ॥४॥

शीतकाल जल मे रहै, करे कामना मूढ ।
'सुन्दर' कष्ट करे इता, ज्ञान न समझे गूढ ॥५॥

उष्ण काल चहु ओर से, दीनी अग्नि जलाय ।
'सुन्दर' शिर पर रवि तपे, कौन लगी यह वाय[1] ॥६॥ वायु[1]

वन वन फिरत उदास हो, कद मूल फल खात ।
'सुन्दर' हरि के नाम विन, सव हि थोथरी[1] बात ॥७॥ थोथी[1]

कूकस कूटहि कण विना, हाथ चढे कुछ नाहिं ।
'सुन्दर' ज्ञान हृदय नही, फिर फिर गोते खाहिं ॥८॥

बैठा आसन मार[1] कर, पकड रहा मुख मौन । लगा[1]
'सुन्दर' सैन बतावते, सिद्धि भया कहि कौन ॥९॥

कोउ करे पय पान को, कौन सिद्धि कहि वीर[1] । भाई[1]
'सुन्दर' बालक वाछरा, ये नित पीवहि क्षीर[2] ॥१०॥ दूध[2]

कोउ होत अलौनिया, खाहिं अलौना नाज ।
'सुन्दर' करहिं प्रपंच वहु, मान बढावन काज ॥११॥

धोवन पीवे वावरे, फासू विरहन जाहिं ।
'सुन्दर' रहैं मलीन अति, समझ नही घट माहिं ॥१२॥

एक लेत है ठौर ही, 'सुन्दर' बैठ अहार ।
दाख छुहारे राइता, भोजन विविधि प्रकार ॥१३॥

कोउक आचारी भये, पाक[1] करे मुख मूद । रसोई[1]
'सुन्दर' या हुन्नर[1] विना, खाय सके नहिं खूद[2] ॥१४॥ कला[1] अन्य की बनाई[2]

कोउ माया देत हैं, तेरे भरे भण्डार ।
'सुन्दर' आप कलाप[1] कर, निठ निठ जुडे अहार ॥१५॥ समूह[1]

कोउक दूध रु पूत दे, कर पर मेल्हि विभूति ।
'सुन्दर' ये पाखण्ड किय, क्यो ही पड़े न सूति[1] ।।१६।।   अच्छा[1]

यन्त्र मन्त्र बहु विधि करे, झाडा बूटी देत ।
'सुन्दर' सब पाखण्ड है, अत पडे शिर रेत ।।१७।।

कोऊ होत रसायनी, बात बनावे आय ।
'सुन्दर' घर मे होय कुछ, सो सब ठग ले जाय ।।१८।।

गल मे पहरी गूदडी, किया सिंह का भेष ।
'सुन्दर' देखत भय भया, बोलत जाना मेष[1] ।।१९।।   भेंड[1]

मेल्हे पाव उठाय के, बक ज्यो माडे ध्यान ।
बैठा गट के माछली, 'सुन्दर' कैसा ज्ञान ।।२०।।

'सुन्दर' जीव दया करे, न्यौता माने नाहिं ।
माया छुवे न हाथ से, परकाला[1] ले जाहि ।।२१।। वस्त्र मे बधा[1]

भेश बनावे बहुत विधि, जटा बधावे शीस ।
माला पहिरे तिलक दे, 'सुन्दर' तजे न रीस[1] ।।२२।।   क्रोध[1]

केश लुचाय[1] न हो जती, कान फडाय न योग ।   उखडाये[1]
'सुन्दर' सिद्धि कहा भई, बादि[2] हँसाये लोग ।।२३।।   व्यर्थ[2]

'सुन्दर' हो टाटम्बरी[1], बहुर दिगम्बर होय । टाट का वस्त्र धारे[1]
पुनि बाघम्बर ओढि के, बाघ भया घर खोय ।।२४।।

रक्त पीत श्वेताबरी, काथ[1] रगे पुनि जैन ।   काथा[1]
'सुन्दर' देखे भेष सब, कहू न देखा चैन ।।२५।।

इति चाणक का अग १६

अथ वचन विवेक का अग १७

'सुन्दर' तब ही बोलिये, समझ हृदय मे पैठ ।
कहिये बात विवेक की, नहिं तो चुप हो बैठ ।।१।।

'सुन्दर' मौन गहे रहै, जान सके नहिं कोइ ।
विन बोलै गुरुवा[1] कहै, बोले हरवा होय ।।२।।   भारी[1]

'सुन्दर' मौन गहे रहै, तब लग भारी तोल ।
मुख बोले से होत है, सब काहू का मोल ।।३।।

'सुन्दर' यू ही बक उठे, बोले नही विचार ।
सब ही को लागे बुरी, देत ढीम साडार ।।४।।

सुन्दर' सुनते होय सुख, तब ही मुख से बोल।
आक बाक वक और की वृथा न छाती छोल ।।५।।
'सुन्दर' वाही[1] वचन है, जा मे कछू विवेक। वही[1]
नातरु मेरा[2] मे पडा, बोलत मानो भेक ।।६।। नहीतो खड्डा[2]
'सुन्दर' वाही बोलवा, जा बोले मे ढग।
नातरु पशु बोले सदा, कौन स्वाद रस रग ।।७।।
घूघू कउवा रासिभा, ये जब बोलें आय।
'सुन्दर' उनका बोलबा, काहू कोन सुहाय ।।८।।
सारो सूवा कोकिला, बोलत वचन रसाल।
'सुन्दर' सब को कान दे, वृद्ध तरुण अरु बाल ।।९।।
'सुन्दर' वचन कुवचन मे, रात दिवस का फेर।
सुवचन सदा प्रकाशमय, कुवचन सदा अन्धेर ।।१०।।
'सुन्दर' सुवचन सुनत ही, शीतल हो सब अग।
कुवचन कानो मे पडे, सुनत होत मन भग ।।११।।
'सुन्दर' सुवचन तक्र से, राखे दूध जमाय।
कुवचन काजी पडत ही, तुरत फाट कर जाय[1] ।।१२।। नष्ठ[1]
'सुन्दर' सुवचन के सुने, उपजे अति आनन्द।
कुवचन कानो मे पडे, सुनत होत दुख द्वन्द्व[1] ।।१३।। क्रोधादि[1]
'सुन्दर' वचन सु त्रिविधि है, एक वचन है फूल।
एक वचन है अश्म[1]सा, एक वचन है शूल ।।१४।। पत्थर[1]
'सुन्दर' वचन सु त्रिविधि है, उत्तम मध्य कनिष्ट।
एक कटुक इक चरपरे, एक वचन अति मिष्ट ।।१५।।
'सुन्दर' जान प्रवीण अति, ताके आगे आइ।
मूरख वचन उचार के, वाणी कहै सुनाइ ।।१६।।
'सुन्दर' घर ताजी[1] बधे, तुरकिन की घुडसाल। घोडे[1]
ताके आगे आय के, टटुवा फेरे बाल ।।१७।।
'सुन्दर' जाके वाफता[1], खासा मलमल ढेर। उत्तम वस्त्र[1]
ताके आगे चौसई,[2] आन धरे वहुतेर ।।१८।। साधारण वस्त्र[2]
'सुन्दर' पचामृत भखे, नित प्रति सहज स्वभाइ।
ताके आगे रावड़ी, काहे को लेजाइ ।।१९।।
सूरज के आगे कहा, करे जीगणा[1] जोति। आग्या[1]
'सुन्दर' हीरा लाल घर, ताहि दिखाये पोति[2] ।।२०।। काच के छोटे मणिये[2]

वाणी में वहु भेद है, 'सुन्दर' विविध प्रकार ।
शब्द ब्रह्म परब्रह्म को, जाने जाननहार ॥२१॥
जा वाणी हरि को[1] लिये, 'सुन्दर' वाही उक्त । हरियश लिये[1]
तुक अरु छन्द सबहि मिले, होय अर्थ सयुक्त ॥२२॥
जा वाणी मे पाइये, भक्ति ज्ञान वैराग ।
'सुन्दर' ताको आदरै, और सकल का त्याग ॥२३॥
जा वाणी हरि गुण विना, सो सुनिये नहिं कान ।
'सुन्दर' जीवन देखिये, कहिये मृतक समान ॥२४॥
रचना करी अनेक विधि, भला वनाया धाम ।
'सुन्दर' मूरति वाहरी, देवल[1] कौने काम ॥२५॥ मूरति विना मदिर[1]

इति वचन विवेक का अंग १७

अथ शूरातन का अग १८

दोहा—'सुन्दर' शूरातन[1] करे, शूरवीर सो जान । वीरपना[1]
चोट नगारे सुनत ही, निकस मडे[2] मैदान ॥१॥ लड़े[2]
'सुन्दर' शूर न गासणा[1], डाक पडे रण माहिं । खाने वाला ही नही[1]
घाव सहै मुख साम हा, पीठ फिरावे नाहिं ॥२॥
पहर साजवा[1] नीसरे, सुन सहनाई तूर । वीर भेष[1]
'सुन्दर' रण मे रुप रहै, तवहिं कहावे शूर ॥३॥
मुख से वैन न उच्चरे, 'सुन्दर' शूर सुजान ।
टूक टूक जब हो पडे, सब को करे बखान ॥४॥
घर मे सव को वाकुडा[1], मारहिं गाल अनेक । वडा वीर[1]
'सुन्दर' रण मे ठाहरे, शूरवीर को एक ।५॥
'सुन्दर' शूरातन विना, बात कहै मुख कोरि[1] । कोटि[1]
शूरातन[2] तब जानिये, जाय देत दल मोरि ॥६॥ वीरता[2]
'सुन्दर' शूरातन कठिन, यह नहिं हासी खेल ।
कमधज[1] कोई रुप रहै, जवहिं होत मुख मेल ॥७॥ विना शिर लडे[1]
'सुन्दर' शूरातन किये, जगत माहि यश होइ ।
शीश समर्पं स्वामि को, शक न आने कोइ ॥८॥
शीश उतारे हाथ कर, शक न आने कोइ ।
ऐसे महँगे मोल का, 'सुन्दर' हरि रस होइ ॥९॥
'सुन्दर' तन मन आपना, आवे प्रभु के काम ।
रण मे से भाजे नही, करे[1] न लौंण हराम ॥१०॥ अपने को[1]

'सुन्दर' दोऊ दल जुडे, अरु बाजे सहनाइ ।
शूरा के मुख श्री चढे, कायर दे फिसकाइ[1] ॥११॥ पीछे रह जावे[1]
'सुन्दर' हय[1] हीसे जहा, गय[2] गाजे चहु फेर । घोडा[1] हाथी[2]
कायर भागे सटकदे[3], शूर अडिग ज्यो मेर ॥१२॥ चुपके ही[3]
'सुन्दर' धरती धडहडे[1], गगन लगे उड धूरि । कापे[1]
शूरवीर धीरज धरे, भाग जाय भकभूरि[2] ॥१३॥ कायर[2]
'सुन्दर' बरछी झलहले[1], छूटे बहु दिशि बाण । चमके[1]
शूरा पडे पतग ज्यो, जहा होय घमसाण[2] ॥१४॥ भयंकर युद्ध[2]
'सुन्दर' बाढाली बहै, होय कडाकड मार ।
शूर वीर सन्मुख रहै, जहा खल वकै[1] सार[2] ॥१५॥ पडे[1] लोहेके शस्त्र[2]
'सुन्दर' देख न थरहरै[1], हहरि[2] न भागे वीर ।
गहर[3] बडे घमसरण मे, कहर[4] धरे को[5] धीर[6] ॥१६॥
कापै[1] डरकर[2] गहरे[3] ऐसे समय[4] कौन[5] धैर्य [6] ।
'सुन्दर' सोई शूरमा, लोट पोट हो जाय ।
ओट कछू राखे नही, चोट मुहे मुह खाय ॥१७॥
'सुन्दर' शूरातन करै, छाडे तन का मोह ।
हवकि[1] थबकि[2] पेलै[3] पिसरा[4], जाय त्रखावे[5] लोह ॥१८॥
फुर्ती से फटकारे[1] कूटकर[2] हटावे[3] शत्रुओ को[4] लोह की तलवार से काटे[5] ।
'सुन्दर' फेरे साग[1] जब, होय जाय विकराल । बरछी[1]
सन्मुख वाहै ताक कर, मारे मीर[2] मुछाल[3] ॥१९॥ सरदार[2] मूछो वाला[3]
'सुन्दर' शोभे शूरमा, मुख पर वर्षे नूर[1] । तेज[1]
फोज फटावे[2] पलक मे, मार करे चकचूर ॥२०॥ फाडदे[2]
'सुन्दर' खैंच कमान को, भर कर[1] मारे बाण । शक्तिभर[1]
जाके लागे ठौर जिहि, लेकर निकसे प्राण ॥२१॥
'सुन्दर' सील सनाह[1] कर, तोष[2] दिया शिर टोप । कवच[1] सतोष[2]
ज्ञान खडग पुनि हाथ ले, कीया मन पर कोप ॥२२॥
'सुन्दर' निश दिन साधु के, मन मारन की मूठ[1] । दाव[1]
मन के आगे भाग कर, कबहु न फेरै पूठ ॥२३॥
मारै सब सग्राम कर, पिसुन[1] हुते[2] घट माहिं । कामदि[1] थे[2]
'सुन्दर' कोऊ शूरमा, साधु बराबर नाहिं ॥२४॥
साधु सुभट अरु शूरमा, 'सुन्दर' कहे बखान ।
कहन सुनन को और सब, यह निश्चय कर जान ॥२५॥
२२ दोहे से २५ दोहे तक मुख्यतं सत शूर का ही परिचय दिया है ।

इति शूरातन का अंग १८

अथ साधु का अंग १९

दोहा—संत समागम कीजिये, तजिये और उपाय।
'सुन्दर' बहुते उद्धरे, सत संगति मे आय ॥१॥
'सुन्दर' या सतसंग मे, भेदाभेद न कोइ।
जोई बैठे नावमे, सो पारगत होइ ॥२॥
'सुन्दर' जो सतसंग मे, बैठे आय वराक[1]। नीच[1]
शीतल और सुगन्ध हो, चन्दन की ढिग ढाक[2] ॥३॥ छोला[2]
'सुन्दर' या सतसंग की, महिमा कहिये कौन।
लोहा पारस को छुवे, कनक होत है रौन[1] ॥४॥ सुन्दर[1]
जन 'सुन्दर' सतसंग मे, नीचहु होत उतंग[1]। ऊंचा[1]
पडे क्षुद्र जल गंग मे, वहै होत पुनि गंग ॥५॥
'सुन्दर' या सतसंग में, शब्दन को औगाह[1]। अवगाहन[1]
गोष्टि ज्ञान सदा चले, जैसे नदी प्रवाह ॥६॥
'सुन्दर जो हरि मिलन की, तो करिये सतसंग।
विना परिश्रम पाइये, अविगत[1] देव अभंग ॥७॥ ब्रह्म[1]
जो आवे सतसंग मे, ताका कारय होइ।
'सुन्दर' सहजै भ्रम मिटे, संशय रहै न कोइ ॥८॥
संतन ही से पाइये, राम मिलन का घाट।
सहजै ही खुल जात है, 'सुन्दर' हृदय कपाट ॥९॥
संत मुक्ति के पौरिया, तिन से करिये प्यार।
कूंची उनके हाथ है, 'सुन्दर' खोलहि द्वार ॥१०॥
'सुन्दर' साधु दयालु है, कहै ज्ञान समझाय।
पात्र विना नहिं ठाहरै, निकस निकस कर जाय ॥११॥
'सुन्दर' साधु सदा कहैं, भक्ति ज्ञान वैराग।
जाके निश्चय ऊपजे, ताके पूरण भाग ॥१२॥
संतन के यह वणिज है, 'सुन्दर' ज्ञान विचार।
गाहक आवे लेन को, ताही के दातार ॥१३॥
संतन के सो[1] वस्तु है, कवहू खूटे नांहि। ज्ञानादि[1]
'सुन्दर' तिनकी हाट से, गाहक ले ले जांहि ॥१४॥
साह रमइया[1] अति वडा, खोले नही कपाट। राम[1]
'सुन्दर' वान्यौटा[2] किया, दीन्ही काया हाट ॥१५॥ छोटा वणिया[2]

अपना कर बैठाइया, कीया बहुत निहाल ।
जो चाहै सो आयल्यो, 'मुन्दर' कोठी वाल ।।१६।।
सुन्दर' आये सतजन, मुक्त करन को जीव ।
सब अज्ञान मिटाय कर, करत जीव से शीव[1] ।।१७।। ब्रह्म[1]
जन 'सुन्दर' सतसग से, पावे सब का भेद ।
वचन अनेक प्रकार के, प्रकट कहे जे वेद ।।१८।।
जन 'सुन्दर' सतसग से, उपजे निर्गुण भक्ति ।
प्रीति लगे परब्रह्म से, सबसे होय विरक्ति ।।१९।।
जन 'सुन्दर' सतसग से, उपजे निर्मल बुद्धि ।
जाने सकल विवेकर, जोव ब्रह्म की शुद्धि[1] ।।२०।। शुद्धावस्था[1]
जन 'मुन्दर' सतसग से, पावे दुर्लभ योग ।
आतम परमातम मिले, दूर होय सब रोग[1] ।।२१।। जन्मादि[1]
जन 'सुन्दर' सतसग से, उपजे अद्वय ज्ञान ।
मुक्ति होय सशय मिटे, पावे पद निर्वान[1] ।।२२।। काल कर्म से हीन[1]
सुन्दर' सब कुछ मिलत है, समये समये आय ।
दुर्लभ या ससार मे, सत समागम थाय[1] ।।२३।। है[1]
मात पिता सब ही मिलै, भइया बन्धु प्रसग ।
'सुन्दर' सुत दारा मिले, दुर्लभ है सतसग ।।२४।।
राज साज सब होत है, मन वाछित हू खाय ।
'सुन्दर' दुर्लभ सतजन, बडे भाग से पाय ।।२५।।
लोक प्रलोक सब हि मिले, देव इन्द्र हू होइ ।
'सुन्दर' दुर्लभ सतजन, क्यो कर पावे कोइ ।।२६।।
ब्रह्मा शिव के लोक लौ, हो बैकुण्ठ हु वास ।
'सुन्दर' और सबै मिले, दुर्लभ हरि के दास ।।२७।।
राग द्वेष सै रहित है, रहित मान अपमान ।
'सुन्दर' ऐसे सतजन, सिरजे श्री भगवान ।।२८।।
काम क्रोध तिनके नही, लोभ मोह पुनि नाहिं ।
'मुन्दर' ऐसे संतजन, दुर्लभ या जग माहिं ।।२९।।
मद मत्सर अहकार की, दीन्ही ठौर उठाय ।
'मुन्दर' ऐसे सतजन, ग्रन्थन कहे सुनाय ।।३०।।
पाप पुण्य दोऊ परे, स्वर्ग नरक से दूर ।
सुन्दर' ऐसे सतजन, हरि के सदा हजूर ।।३१।।

आये हर्ष न ऊपजे, गये शोक नहि होइ।
'सुन्दर' ऐसे सतजन, कोटिन मध्ये कोइ ॥३२॥
कोई आय स्तुती करे, को निन्दा कर जाय।
'सुन्दर' साधु सदा रहैं, सब ही से सम भाय[1] ॥३३॥ भाव[1]
कोऊ तो मूरख कहै, कोऊ चतुर सुजान।
'सुन्दर' साध धरैं नहीं, भली बुरी कुछ कान ॥३४॥
कबहू पचामृत भखैं कबहू भाजी साग।
'सुन्दर' सतन के नहीं, काऊ राग विराग ॥३५॥
सुखदाई शीतल हृदय, देखत शीतल नैन।
'सुन्दर' ऐसे सतजन, बोलत अमृत बैन ॥३६॥
क्षमावत धीरज लिये, सत्य दया सन्तोष।
'सुन्दर' ऐसे सतजन, निर्भय निर्गत रोष ॥३७॥
द्वन्द्व कबू व्यापे नहीं, सुख दुख एक समान।
'सुन्दर' ऐसे सतजन हृदय प्रगट दृट ज्ञान ॥३८॥
घर बन दोऊ सारिखे सब मे रहत उदास।
'सुन्दर' सतन के नहीं, जिवन मरण की आस ॥३९॥
रिद्धि सिद्धि की कामना, कबहू उपजे नाहि।
'सुन्दर' ऐसे सतजन, मुक्त सदा जग माहि ॥४०॥
सुधि माहि बरतैं सदा और न जाने रच[1]। किंचित[1]
'सुन्दर' ऐसे सतजन, जिन के कुछ न प्रपन्च ॥४१॥
सदा रहैं रत राम से, मन मे कोउ न चाह।
'सुन्दर' ऐसे सतजन, सबसे बेपरवाह ॥४२॥
धोवत है ससार सब, गगा माही पाप।
'सुन्दर' सन्तन के चरण, गगा बन्छे[1] आप ॥४३॥ चाहै[1]
ब्रह्मादिक इन्द्रादि पुनि, 'सुन्दर' बन्छ हि देव।
मनसा वाचा कर्मना, कर सन्तन की सेव ॥४४॥
'सुन्दर' कृष्ण प्रकट कहै, मैं धारी यह देह।
सन्तन के पीछे फिरू, शुद्ध करन को येह ॥४५॥
सन्तन की महिमा कही, श्रीपति श्रीमुख गाइ।
तातैं 'सुन्दर' छाड सब, सन्त चरण चित लाइ ॥४६॥
सन्तन की सेवा किये, श्रीपति होहि प्रसन्न।
'सुन्दर' भिन्न न जानिये, हरि अरु हरि के जन्न ॥४७॥

'सुन्दर' हरि जन एक हैं, भिन्न भाव कुछ नाहिं।
सन्तन माही हरि बसे, सन्त बसे हरि माहिं ॥४८॥
सतन की सेवा किये, हरि की सेवा होय।
तातें 'सुन्दर' एक ही, मत कर जानें दोय ॥४९॥
सन्तन की सेवा किये, 'सुन्दर' रीझें आप।
जाका पुत्र लडाइये, अति सुख पावे बाप ॥५०॥
सन्तन को कोउ दुख दे, तब हरि करें सहाइ।
'सुन्दर' गाभैं वाछडा, सुन कर दौडे गाइ ॥५१॥
अठसठ तीरथ जो फिरे, कोटि यज्ञ व्रत दान।
'सुन्दर' दर्शन साधु के, तुले नही कुछ आन ॥५२॥
सन्तन ही का आसरा, सन्तन का आधार।
'सुन्दर' और कछू नही, है सतसगति सार ॥५३॥
पावक जाले नीर को, नीर बुझावे आगि।
'सुन्दर' वैरी परस्पर, सज्जन छूटे भागि ॥५४॥
उलवा मारे काग को, काक सु हने उलूक।
'सुन्दर' वैरी परस्पर, सज्जन हस कहूक[1] ॥५५॥ कही ही है[1]
'सुन्दर' कोऊ साधु की, निन्दा करे सु[1] नीच। सो[1]
चला अधोगति जाय है, पडे नरक के बीच ॥५६॥
'सुन्दर' कोऊ साधु की, निन्दा करे लगार[1]। लगातार[1]
जन्म जन्म दुख पाइ है, ता मे फेर न सार ॥५७॥
'सुन्दर' कोऊ साधु की, निन्दा करे कपूत।
ताको ठौर कहू नही, भ्रमत फिरे ज्यो भूत ॥५८॥
सन्तन की निन्दा किये, भला होय नहि मूल[1]। किंचित भी[1]
'सुन्दर' बार लगे नही, तुरत पडे मुख धूल ॥५९॥
सन्तन की निन्दा करे, ताका बुरा हवाल।
'सुन्दर' वही मलेछ है, वही बडा चण्डाल ॥६०॥

इति साधु का अंग १९

अथ विपर्यय का अग २०

दोहा—'सुन्दर' कहत विचार कर उलटी बात सुनाय।
नीचे को मूंडा[1] करे, तब ऊचे को पाय ॥१॥

अहकार रूप शिर[1] नीचे करे=जीवत्व अहकार से रहित हो तब सबसे ऊचे ब्रह्म पद को प्राप्त हो। यह प्रसिद्ध है। जीवत्व अहकार नष्ट हुये ही ब्रह्म पद प्राप्त होता है। सुन्दरदासजी कहते हैं यह उलटी बात विचारपूर्वक सुनाता हू।

अन्धा तीनो लोक को, 'सुन्दर' देखे नैन।
बहिरा अनहद नाद सुन, अति गति पावे चैन ॥२॥

जिस की सासारिक दृष्टि नही रही ऐसा अन्धा ब्रह्मज्ञान दृष्टि से तीनो लोको को ब्रह्मरूप ही देखता है और जो बाहिर के व्यवहारिक शब्द नही सुनता ऐसा बहिरा आन्तर नाभि के ऊपर होने वाले ॐ रूप हदरहित नाद=शब्द सुन कर अतिगति=अत्यन्त ऊचावस्था को प्राप्त करके चैन=ब्रह्मानन्द प्राप्त करता है।

नकटा लेत सुगन्ध को, यह तो उलटी रीत।
'सुन्दर' नाचे पगुला, गूगा गावे गीत ॥३॥

लोक लाज की टेक रूप नाक जिसके नही है, ऐसा नकटा मनरूप भ्रमर ने ब्रह्म रूप कमल की आनन्द रूप सुगन्ध ग्रहण करता है। यह उलटी रीति कथन मे ही है, अर्थ मे नही है। जिस के तमोगुण रजोगुण रूप पैरो की गति रुक गई है, ऐसा पागुला ध्यान मे परमानन्द प्राप्ति रूप नृत्य करता है। जो वैखरी वाणी से सासारिक बकवाद नही करता। ऐसा गूगा सविकल्प समाधि मे परमात्मा की स्तुति रूप गीत गाता है। यह साधको की अनुभूति है।

कीडी कूजर[1] को गिले, स्याल सिंह को खाय।
'सुन्दर' जल से माछली, दौड अग्नि मे जाय ॥४॥

जिन शरीरो को देख कर काम उत्पन्न होता है, वे शरीर गन्दी वस्तुओ से बने हैं। उनमे से रक्तादि जो हमारे ऊपर कोई फेंके तो हम रुष्ट होते हैं, ऐसा विचार ही वस्तु विचार है, यह विचार ही कीडी रूप है, वह काम रूप हाथी[1] को गिलती है। क्षमा रूप स्याल=गीदड क्रोध रूप सिंह को खाता है अर्थात् नष्ट करता है। सुन्दरदासजी कहते हैं—सासारिक विषय जल मे बुद्धि रूप मच्छी अति दुखी थी, अत वह बुद्धि विचार रूप दौड लगाकर ज्ञान रूप अग्नि मे जाकर सुखी हुई। यह साधको को अनुभूत है।

समद[1] समाना बूंद मे, राई माही मेर[2]।
'सुन्दर' यह उलटी भई, सूर्य किया अन्धेर ॥५॥

जीव रूप बून्द मे ब्रह्म रूप समुद्र[2] समा गया अर्थात् अह ब्रह्म ऐसी अभेद स्थिति हो गई। ब्रह्माकार वृत्ति रूप राई मे अति विशाल ससार रूप पर्वत[2] समागया अर्थात् लय हो गया। सुन्दरदासजी कहते हैं—यह बात उलटी हुई कि ब्रह्म ज्ञान रूप सूर्य उदय होते ही जगत् का अभाव रूप अन्धेरा हो गया।

वृत्ति रूप सुई ब्रह्म के साथ सीती है अर्थात् दोनो को एक करती है। सुन्दरदासजी कहते हैं—इससे अज्ञानियो को आश्चर्य होता है कि जीव ब्रह्म एक कैसे हो सकते हैं।

सोने पकड सुनार को, काढा ताइ[1] कलक।
लकडी छीला बाढई[2], 'सुन्दर' निकसी बक ॥११॥

हरि स्मरण रूप सोना ने मन रूप सुनार को पकड कर अर्थात विषयो मे जाने से रोक कर तथा साधन रूप तपस्या द्वारा तपा[1] कर उसके विकार रूप कलक निकाल कर शुद्ध कर दिया। वृत्ति का ब्रह्म मे लय करना रूप लकडी ने कर्म रूप बढई (खाती) की कामना छील कर निष्काम कर दिया। सुन्दरदासजी कहते हैं—कामना हटने से उसकी विकार रूप वाक निकल गई तब वह कर्म रूप खाती श्रेष्ठ बन गया।

जा घर मे बहुत सुख किये, ता घर लागी आगि।
'सुन्दर' मीठा ना रुचै[1], लौन लिया सब त्यागि ॥१२॥

जिस शरीर रूप घर मे अज्ञान दशा मे बहुत विषय सुख प्राप्त किये थे, उस शरीर मे अब ज्ञानाग्नि लग गई है, उस से शरीर मे आत्म भावना और विषयादि की वासना भस्म हो गई है। अब विषय सुख रूप मिठाई अच्छी[1] नही लगती है पहले ब्रह्म चिन्तन लौंण के समान खारा लगता था, वह ब्रह्म चिन्तन रूप लौंण ही सब को त्याग कर अब ग्रहण किया है अर्थात् ब्रह्म चिन्तन ही करते हैं। ज्ञान होने पर ऐसा ही होता है। यह ज्ञानियो को अनुभूत है।

'सुन्दर' पर्वत उडि गये, रुई रही थिर होइ।
बाव[1]बजा[2]इहि भाति का, क्यो कर[3] माने कोइ ॥१३॥

ज्ञान रूप वायु[1] इस भाति चला[2] जिस से बल, विद्या, गुणादि के सब अहकार रूप पर्वत उड गये और ब्रह्म चिन्तन वृत्ति रूप रुई स्थिर हो गई अर्थात् निरतर ब्रह्म चिन्तन होने लगा, सुन्दरदासजी कहते हैं—इसे अज्ञानी कैसे[3] मानेगा कोई ज्ञानी ही मानेगा।

स्याली खाया गाडरै[1], सुसले[2] खाया स्वान।
'सुन्दर' यह कैसी भई, बधक[3]हि लागा बान ॥१४॥

सात्विक वुद्धि वृत्ति रूप भेड[1] ने मनके विकार रूप भेडिये को मारा अर्थात् नष्ट किया। सन्तोष रूप खरगोश[2] ने लोभ रूप कुत्ते को खाया नष्ट किया। सुन्दरदासजी कहते हैं—यह बात ऐसी हुई कि निर्दोषो को मारने वाले क्रोध रूप व्याध[3] के क्षमा रूप बाण लगा जिसमे वह नष्ट हो गया।

'सुन्दर' माली नीपजा[1], फल अरु फूल समेत।
हाली के कोठा[2] भरे, सूखे बाडी खेत ।।२०।।

सुन्दरदासजी कहते हैं—काया रूप क्षेत्र को जानने वाला क्षेत्रज्ञ रूप माली भक्ति रूप पुष्प और ज्ञान रूप फल के सहित उच्चस्थिति रूप मे प्रकट[1] हुआ, उक्त माली ने मन रूप हाली के अन्त करण रूप घर[2] को विवेक, वैराग्यादि दैवी गुण से भर दिया किन्तु इसकी तृष्णा रूप बाडी और आशा रूप खेत सूख गये अर्थात् आशा, तृष्णा नष्ट हो गई।

भ्रमर सु तो उज्जल[1] भया, हस भया फिर श्याम।
को जाने केते भये, 'सुन्दर' उलटे काम ।।२१।।

विषय पुष्पो पर भ्रमण करने वाला मन रूप भौंरा भक्ति ज्ञानादि से पाप रूप मलीनता को मिटाकर परम शुद्ध[1] हो गया है और जीव रूप हस स्वभाव से ही परम शुद्ध है, सो विषया सक्ति से अपने को पाप रूप काला पन से युक्त मानने लगा वा जीवात्मा के श्याम (भगवान) का प्रेम रूप रग लग गया। सुन्दरदासजी कहते हैं-ऐसे ही कितने ही उलटे काम हो गये हैं, उन सबको कौन जानता है अर्थात् अज्ञानी कोई भी नही जानता।

अग्नि मथन कर नीसरी[1], लकडी सहज स्वभाइ।
पानी मथ घृत काढिया[2], सो घृत सुन्दर खाइ ।।२२।।

विरह रूप अग्नि को मथ कर=अत्यन्त बढाया तब उससे सहज स्वभाव ही परमात्मा मे लीन रहने वाली लय वृत्ति रूप लकडी निकली[1] अथवा ज्ञान रूप अग्नि का मनन रूप मथन करने से ब्रह्म मे लय होने वाली लय वृत्ति रूप लकडी सहज स्वभाव ही निकली। परमात्मा का प्रेमरूप पानी मथकर ब्रह्मानन्द रूप घृत निकाला[2] उसी ब्रह्मानन्द घृत को सुन्दरदास खाता है अर्थात् ब्रह्म चिन्तन करके ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है।

पत्र[1] माहि झोली धरे, जोगी मागे भीख।
सोवे गोरख यू कहै, 'सुन्दर' गुरु की सीख ।।२३।।

हृदय रूप पात्र[1] मे दैवी गुण वैराग्यादि से भरी वृत्ति रूप झोली को धारण करे फिर जिज्ञासु रूप जोगी ज्ञानियो से ज्ञान की भिक्षा मागने जाय तब सुन्दरदासजी कहते हैं—ज्ञानी गुरु ज्ञान की भिक्षा यू कह कर देते हैं—सोवे गोरख-गो इन्द्रियो की विषयो से रक्षा करता है वही जिज्ञासु सहज समाधि मे सोकर सहजानन्द प्राप्त करता है अर्थात् इन्द्रियो को जीतने वाला ही ज्ञान का अधिकारी है, इसीलिये जोगी गोरख शब्द का उच्चारण अधिक करते हैं।

चौकी बध

।।चामर छन्द।। दरस त उसका नाव दिल मे इस्क उपजै दरद ।
दरदवद पुकार करते होइ सब सो फरद ।
दर फकीरी (मे) फिरत फारिक जानि सोई मरद ।
दर मजल सोइ जायगा दिल किया सुन्दर सरद ।।४।।

इसके पढ़ने की विधि

चित्र काव्य के चित्र के मध्य मे 'द' अक्षर से प्रारभ करके 'तें' अक्षर को कूट तक पढ कर उसके आगे पार्श्व मे 'उसका' से लगाकर 'जै' तक पढ कर अदर का 'दरद' शब्द पढें। यो एक चरण प्रथम का हो गया। अब उसकी मध्यस्थ 'द' से प्रारभ कर फिर उलटा 'दरद' शब्द को पढकर दूसरे पार्श्व मे के 'वद' से 'सो' तक पढते हुए अदर के 'फरद' शब्द को पढें। यहा दूसरा चरण हो चुका। फिर वैसे ही उस मध्य के 'द' से पार्श्व तीसरे के 'कीरी' आदि को पढते हुए कोने के 'ई' को पढ कर अदर के 'मरद' शब्द को पढें। यो तीसरा चरण हो गया। अन्त मे फिर उसकी मध्यवर्त्ती 'द' से पार्श्व चौथे के शब्दो को पढते हुए 'सुन्दर सरद' पर अन्दर छन्द को समाप्त करें। चौथा चरण हो गया।।

पर धी[1] लेकर घर धरे[2], परधन हर-हर[3] खाय[4]।
पर निन्दा निश दिन करे 'सुन्दर' मुक्ति ही[6] जाय[5] ॥२४॥

पर धी[1] = सन्तो की परमात्म परायण बुद्धि[1] अपने हृदय रूप घर मे धारण[2] करे। पर धन = ज्ञानियो का ब्रह्मज्ञान रूप धन उनसे लेले[3] कर उस से उत्पन्न ब्रह्मानन्द का अनुभव[4] करे। आत्मा से अन्य अनात्म ससार असत्य है, जड है, दुख रूप है, ऐसे रात दिन निन्दा करे, सुन्दरदासजी कहते हैं—वही ससार से ऊचा जाकर[5] निश्चय ही[6] मुक्ति को प्राप्त करता है।

मास भखे[1] मदिरा पिवे, वह तो अगम अगाध।
जो ऐसी करनी करे, 'सुन्दर' सोई साध ॥२५॥

सासारिक पदार्थों की ममता रूप मास को खाता[1] है अर्थात् नष्ट करता है और मोहरूप मदिरा को पीवे = अज्ञान को नष्ट करे तो वह अगम = मन वाणी के अविषय अगाध ब्रह्म रूप को प्राप्त होता है। सुन्दरदासजी कहते हैं—जो ऐसी करनी = कर्तव्य करता है वही साधु = अतिश्रेष्ठ होता है।

जोई हो अति निर्दयी, करे पशुन की घात[1]।
'सुन्दर' सोई उद्धरे[2], और बहे सब जात ॥२६॥

जो अत्यन्त निर्दयी = दयाहीन होकर विषय रूप चारा चरने वाले इन्द्रिय रूप पशुओं को मारता[1] है अर्थात् जीतता है, सुन्दरदासजी कहते हैं—वह जितेन्द्रिय पुरुष ही ससार-सरिता से तिरता[2] है और सब तो बहे ही जाते हैं।

'सुन्दर' समझावे बहू, सुन हे मेरी सास।
माइ[1] बाप[2] तज धी[3] चली, अपने पिय[4] के पास ॥२७॥

सुन्दरदासजी कहते है—वैराग्यादि दैवी गुणो से युक्त बुद्धि रूप बहू सशय वृत्ति रूप सास को समझाती है कि हे मेरी सास सुन, सशय त्याग कर ज्ञान परायण हो। ममता रूप माता[1] अज्ञान रूप पिता[2] को त्याग कर जिज्ञासु की बुद्धि[3] अपने स्वामी[4] परमात्मा के पास चली।

बढई[1] कारीगर मिला, चरखा गढा बनाइ।
'सुन्दर' बहू सतेवडी[2] उलटा दिया फिराइ ॥२८॥

गुरु रूप खाती[1] अच्छा कारीगर मिला उसने शिष्य का चित्त रूप चर्खा घडकर अच्छा बनाया, सुन्दरदासजी कहते हैं—वह चर्खा गृह कार्यों मे अच्छी[2] कुशल वृत्ति रूप बहू को दिया किन्तु उसने उलटा फिरा दिया अर्थात् चित्त को बहिर्मुख कर दिया।

'सुन्दर' सब ही से मिली, कन्या अखन[1] कुमारि ।
वेश्या फिर पतिव्रत लिया, भई सुहागनि नारि ॥२९॥

सुन्दरदासजी कहते हैं—जिज्ञासु की कच्ची[1] बुद्धि रूप कुमारी अनेक गुरु और शास्त्रो के पास जाकर ज्ञान की शिक्षा के लिये उनका सग करती रही, उक्त प्रकार वह व्यभिचारणी वेश्या के समान होकर फिर अन्त मे परमात्मा को पाकर उसी का व्रत धारण करके पतिव्रता हो, सुहागनि नारी होकर ब्रह्म मे लीन हो गई, अब सुहागिन होने का प्रसग ही नही रहा ।

कलियुग मे सतयुग किया 'सुन्दर' उलटी गग ।
पापी भये सु[1] ऊबरे[2], धरमी हूये भग ॥३०॥

जिसके हृदय मे कपट है, वही कलियुग है, सत्सगादि ने कपट को हटाकर सत्य निष्ठा रूप सतयुग कर दिया । सुन्दरदासजी कहते हैं—सत्य व्यवहार से ज्ञान गगा ससार समुद्र मे जाने से उलट कर परमात्मा की ओर जाने लगी अर्थात् व्यवहारिक ज्ञान बदल कर ब्रह्म ज्ञान हो गया, फिर जो इन्द्रियो की अनुचित विषयाकार वृत्तियो को और कामादि को मारने वाले पापी हुए सो[1] तो ससार-सागर से तैर[2] गये और इन्द्रियो की अनुचित विषयाकार विृत्तियो का तथा कामादि का पोषण रूप धर्म करने वाले धर्मी नष्ट हुये अर्थात् जन्मते मरते ही रहे ।

विप्र रसोई करत है, चौके काढी कार ।
लकडी मे चूल्हा दिया, 'सुन्दर' लगी न बार ॥३१॥

वेदादि का ज्ञाता पुरुष रूप विप्र परम तृप्ति की हेतु भक्ति ज्ञानादि की प्राप्ति रूप रसोई करता है तब मन, बुद्धि चित्त, अहकार, चतुष्टय रूप चौका मे श्रवण मनन निदिध्यासन, तत्पद त्वपद का अर्थ रूप पदार्थ तैयार किये और ससार भावना का त्याग करना रूप दृढ वृत्ति की कार रूप मर्यादा कर दी और अन्तर्मुख की वृत्ति लय = तल्लीनता रूप लकडी मे ससार चिन्तन से जलाने वाले चित्त रूप चूल्हे को दिया । सुन्दरदासजी कहते हैं—इतना करने पर ब्रह्म ज्ञान होने मे कुछ भी देर नही लगी फिर ब्रह्मानन्द मे निमग्न हो गये ।

रोटी ऊपर पोइ के, तवा चढाया आनि ।
खिचडी मांही हण्डिका, 'सुन्दर' रोधी जानि ॥३२॥

राम नाम रटन रूप रोटी पर तत्व ज्ञान रूप तवा गुरु के मुख से आन कर= लाकर चढाया, प्रेमा भक्ति और ज्ञान रूप खिचडी में अन्तकरण रूप हडिया राधी = ब्रह्म प्राप्ति रूप सिद्धावस्था को प्राप्त किया । सुन्दरदासजी कहते हैं—हे जिज्ञासु यथार्थ सिद्धावस्था इसी को कहते हैं ।

पहराइत घर को मुसे, साह न जाने कोइ ।
चोर आय रक्षा करे, 'सुन्दर' तब सुख होइ ।।३३।।

इन्द्रियो की अनुचित विषयाकार वृत्तियो और काम क्रोधादि पहराइतो ने जीव रूप साहूकार के अंत करण रूप घर से दैवीगुण रूप धन को मुसा = चुरा लिया किन्तु जीव रूप साहूकार उक्त चोरो की चालाकी को मोह वश होने से जाना भी नही, फिर भाग्यवश सत्सगादि द्वारा भगवान् का नाम जो अनेक पापो को चुराने वाला होने से चोर है, वह अन्त करण मे आकर स्थिर हुआ तब इन्द्रियो की चचलता को मिटाकर और कामादि को अन्त:करण से निकाल कर रक्षा करता है तब सुन्दरदासजी कहते है सुख होता है ।

कोतवाल को पकड के, काठा राखा जूरि ।
राजा भागा गाव तज, सुन्दर सुख भरपूरि ।।३४।।

अज्ञान काल मे मन रूप कोतवाल था, उसको ईश्वर नाम चिन्तन ने दृढता से निग्रह रूप जेल मे जुडकर रखा तब रजोगुण रूप राजा निर्बल हो अन्त करण रूप ग्राम को छोड कर भाग गया। सुन्दरदासजी कहते हैं—मनोनिग्रह और अन्त करण से रजोगुण निकल जाने से परिपूर्ण सुख हो गया ।

नाइक लादा उलट कर, बैल विचारे आय ।
गौन भरी ले वस्तु मे, 'सुन्दर' हरिपुर जाय ।।३५।।

अज्ञानावस्था मे मैं कर्ता भोक्ता हू एसे सर्व कर्मों का, भार ढोने वाला जीव ही बैल है, अज्ञानावस्था मे मुखिया बन रहा मन ही नायक है (स्वामी है) विवेक, विचार प्राप्त होने पर जीव रूप बैल ने कर्ता भोक्ता आदि सर्व कर्मों की करने की भावना मन रूप नायक ने लाद दी, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण रूप गौण (बोरा) जो नाना कर्मों के करने की भावना से भरी थी उसको असग अवस्था मे आकर अपने से उठाकर सत्य ब्रह्म वस्तु मे भर दी अर्थात् सर्व कर्म ब्रह्म के अर्पण किया। सुन्दरदासजी कहते हैं—तब ही जीव हरि पुर = मोक्ष धाम को जाता है ।

'सुन्दर' राजा विपति से, घर घर मागे भीख ।
पाय पयादा उठ चले, घोडा भरे[2] न बीख[1] ।।३६।।

मन रूप राजा आशा-तृष्णा रूप विपत्ति का मारा चचल होकर इन्द्रियो के द्वार रूप घर-घर द्वार पर उनसे विषय सुख रूप भिक्षा मांगता फिरता है, विषय सुख भोगते-भोगते शरीररूप घोडा तो एक पग[1] भी नही चलता[2]। निर्बल होकर थक गया है । इससे मन रूप राजा अपनी वृत्तियो के सकल्प विकल्प से विना पैरो ही पयादा ही चलता है अर्थात् शरीर असक्त होने पर भी मन की विषय वासना नही मिटती ।

पानी फिरे पुकारता, उपजी जलन अपार।
पावक आया पूछने, 'सुन्दर' वाकी सार[1] ॥३७॥

प्रेम रूप पानी की भगवत् विरह रूप अवस्था प्राप्त वृत्ति पुकारती फिरती है, कोई मेरी जलन मिटाने वाला है, मेरे अपार जलन हो रही है। सुन्दरदासजी कहते हैं—तब ज्ञान रूप अग्नि उसे पूछने आई कि तेरी कैसी स्थिति[1] है? जानने पर ज्ञान कहता है।

जो तू मेरी सीखले, तो तू शीतल होइ।
फिर मोही से मिल रहै, 'सुन्दर' दु ख न कोइ ॥३८॥

यदि तू मेरी शिक्षा मान ले तो हे प्रेम तू भी शीतल हो जायगा और फिर मुझ शीतल ज्ञान से ही मिलकर रहेगा। सुन्दरदासजी कहते हैं—प्रेम और ज्ञान पराभक्ति मे मिलकर रहते हैं तब कोई भी दु ख नही रहता। दु ख तो द्वैत मे होता है।

पथी माही पथ चल, आया सु अकसमात।
'सुन्दर' वाही पथ गह, उठ चाला परभात ॥३९॥

ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग मे चलने वाला मुमुक्षु रूप पथी के हृदय मे सत्सगादि मे गुरु वचन द्वारा ज्ञान रूप पथ स्वय ही अकस्मात आ गया। सुन्दरदासजी कहते है—उन ज्ञान रूप पथ को ग्रहण करके ससार दशा से ऊचा उठ कर ब्रह्म निष्ठा रूप ब्रह्म मुहूर्त मे चलकर ब्रह्म रूप होने को आगे चल पडा।

चलत चलत पहुचा तहा, जहा आपना भौन।
'सुन्दर' निश्चल हो रहा, फिर आवे कहि कौन ॥४०॥

उक्त प्रकार चलत-चलत जिस स्थिति मे अपना ब्रह्म रूप भवन प्राप्त होता है, वहा पहुच गया। सुन्दरदासजी कहते है—अपने स्वरूप ब्रह्म भवन मे जाकर निश्चल हो स्थित हो रहा, कहो फिर इस चचल ससार दशा मे कौन आयेगा, अर्थात् कोई नही आयेगा।

वन मे एक अहेरिय[1], दीनी अग्नि लगाइ।
'सुन्दर' उलटे धनुष शर, सावज[2] मारे आइ ॥४१॥

ससार के विषय वासना रूप वन मे साधक सतरूप शिकारी[1] उक्त वन में ज्ञान रूप अग्नि लगा दी अर्थात् विषय वासना को जला दिया। सुन्दरदासजी कहते हैं—सत शिकारी के धनुष-वाण उलटे हैं अर्थात् शिकार के सामने नही चलाये जाते किन्तु ब्रह्म का ध्यान ही धनुष है और चित्त वृत्ति को ब्रह्म मे लीन करना वाण है, इस स्थिति मे आकर काम क्रोधादि रूप शिकार[2] को मारता है=अर्थात् जीतता है।

मारा सिंह महाबली, मारा व्याघ्र कराल[1]।
'सुन्दर' सब ही घेर कर, मारी भृग की डाल ॥४२॥

क्रोध रूप सिंह को क्षमा के बाण से मारा, बहिर्मुख मन की चचल रूप भयकर[1] व्याघ्र को निग्रहरूप साग से मारा और सुन्दरदासजी कहते है—बहिर्मुख सब इन्द्रिय रूप मृगो की डोर को धर कर निग्रह करने रूप पाश से बाध कर मारी अर्थात् जीती।

'सुन्दर' सरवर[1] सूखते, कमल प्रफुल्लित[2] होइ।
हस तहा[3] क्रीडा करे, पखी रहै न कोइ ॥४३॥

सुन्दरदासजी कहते हैं—विषयाशा रूप जल भरा मन रूप तालाव[1] सूखते ही शुद्ध हृदय रूप कमल ब्रह्मानन्द प्राप्त कर के हर्षित हुआ[2], ब्रह्मानन्द को प्राप्त सत रूप हस वहा[3] ब्रह्मानन्द मे निमग्न रहना रूप क्रीडा करते हैं। विषय सुख रूप अन्न कण चुगने वाले कामादि विकार रूप पक्षी उक्त अवस्था रूप स्थान मे नही रहते।

कूप उसारा[1] कुभ मे, पानी भरा अटूट।
सुन्दर' तृषा सबै गई, धापे चारो खू ट[2] ॥४४॥

जिसमे विषय वासना रूप जल भरा है ऐसे बहिर्मुख मन के भाव रूप कूप को शुद्ध और एकाग्र मन के भाव रूप कुम्भ मे छिटकाया[1] तब बहिर्मुख मन के भाव हटकर वह परम शुद्ध हो गया फिर तो उसमे प्रभु प्रेम रूप पानी अटूट=अथाह भर गया। सुन्दरदासजी कहते हैं—फिर तो सर्व तृष्णा रूप प्यास नष्ट हो गई और अन्त करण की चार वृत्ति, मन बुद्धि चित्त अहकार रूप कोण[2] भर गई अर्थात् तृप्त हो गई।

'सुन्दर' वर्षा अति भई, सूख गई सब साख[1]।
नीम फला बहु भाति कर, लागे दाडो दाख ॥४५॥

सुन्दरदासजी कहते हैं—गुरु उपदेश द्वारा अन्तरंग साधन-विवेक, वैराग्य शमादिषट और मुमुक्षुता रूप चातुर्मास प्राप्त होने पर अन्त करण रूप पृथ्वी पर ज्ञान की अत्यधिक वर्षा हुई उससे विषय वासना रूप खेती[1] सूख गई=नष्ट हो गई और अज्ञान दशा मे बढा हुआ सतोगुण नीम के समान कडवा लगता था, ज्ञान होने पर उसके दैवी गुण रूप दाडिम दाख आदि मीठे फल लगने लगे।

मिष्ट[1] सु तो कडवा लगा, कडवा लागा मीठ।
'सुन्दर' उलटी बात यह, अपने नैनो दीठ[2] ॥४६॥

अज्ञान दशा मे इन्द्रियो का विषय सुख मीठा[1]=प्रिय लगता था और वैराग्य कडवा=अप्रिय लगता था फिर गुरु जनो के उपदेश से ज्ञान होने पर विषय सुख कडवा लगने लगा और वैराग्य मीठा लगने लगा। सुन्दरदासजी कहते हैं—हमने यह उलटी बात अपने ज्ञान विचार नेत्रो से देखी[2] है।

मित्र सु तो वैरी भये, वैरी हूये मित ।
'सुन्दर' उलटी बात से, भागी सब ही चित ।।४७।।

मोह, ममता, धन पुत्रादि अज्ञान दशा में मित्र थे किन्तु जब अन्तकरण मे मुमुक्षुता आई तब उक्त मोहादि बन्धन रूप होने से वैरी के समान त्याज्य प्रतीत होने लगे, सत्सगादि प्रथम वैरी के समान थे वे मोक्ष के साधन होने से अब मित्र के समान लगने लगे, सुन्दरदासजी कहते हैं—इस उलटी बात से सासारिक सर्व चिन्ता भाग गई तब परमानन्द मिला ।

उजड मे वस्ती भई, बस्ती भई उजारि[1] ।
'सुन्दर' उलटे पेच[2] को, पडित देख विचार ।।४८।।

अन्त करण रूप वस्ती मे अज्ञान दशा मे अन्तर्मुख शमदमादि सात्विक वृत्तियां न रहने से उजड हो गई थी, ज्ञान दशा मे उक्त अन्तर्मुख वृत्तिया फिर आकर वसने लगी, यही उजड मे वस्ती होना है और जो विपय लोलुप वहिर्मुख इन्द्रियो की वृत्तियां रूप वस्ती उजड[1] ही गई=नष्ट हो गई । सुन्दरदासजी कहते हैं—इस उलटे घुमाव[2] को हे पण्डित ! विचार करके देख, यदि तू विचार करके देखेगा तो यह अच्छा ही लगेगा ।

नीच सु[1] तो ऊचा भया, ऊचा हुवा नीच ।
'सुन्दर' उलटा ज्ञान है, इन साखिन के बीच ।।४९।।

कुसग कुकर्मों द्वारा मन नीच हो गया था, सो सुसग सुकर्मों द्वारा ऊचा हो गया और प्रथम जो मन ऊचा था=श्रेष्ठ था सो[1] कुसग और कुकर्मों से नीच हो गया । सुन्दरदासजी कहते हैं—इन साखियो मे उलटे शब्दो द्वारा ज्ञान का कथन किया गया है ।

'सुन्दर' सब उलटी कही, समझे सत सुजान ।
और न जानें बापुरे[1], भरे बहुत अज्ञान ।।५०।।

सुन्दरदासजी कहते हैं—इस विपर्यय अग की साखियो मे सब उलटी ही बातें ही हैं किन्तु ज्ञानी संत सब समझ जायेंगे और जिनके मन मे वहुत अज्ञान भरा है वे वेचारे[1] अज्ञानी तो नही जान सकेंगे ।

इति विपर्यय का अग २०

अथ समर्थाई आश्चर्य का अग २१

दोहा—'सुन्दर' समर्थ राम है, जे कुछ करे सु होइ ।
जो प्रभु को कुछ कहत है, ता सम बुरा न कोइ ।।१।।
कर्त्तु मकर्ता अन्यथा, 'सुन्दर' सिरजनहार ।
पलक माहिं उतपति करे, पलक माहिं सहार ।।२।।

ज्यो हरि भावे त्यो करे, कौन कहै यह नाहि ।
अग्नि उपावे पलक मे, 'सुन्दर' पाला[1] माहिं ॥३॥ बर्फ[1]
ज्यो हरि भावे त्यो करें, काले धोले रग ।
धोले से काले करे, 'सुन्दर' आप अभग ॥४॥
'सुन्दर' समर्थ राम की[1] मो पै कही न जाय । सामर्थ्य[1]
पल ही मे जल थल भरे, पल मे धूल उडाय ॥५॥
'सुन्दर' समर्थ राम को, करत न लागे बार[1] । देर[1]
पवत से राई करे, राई करे पहार[2] ॥६॥ पहाड[2]
'सुन्दर' सिरजन हार को, करते कैसी शक ।
रक हि ले राजा करे, राजा को लै रक ॥७॥

(२) भगवान् कर्तुमकर्त्ता=करने मे न करने मे, तथा अन्य प्रकार करने मे समर्थ हैं ईश्वर सब शक्तियो से युक्त है भाव यह है ।

'सुन्दर' सिरजनहार की, सब ही अद्‌भुत बात ।
गर्भ माहि पोषत रहै, जहा गम्य[1] नहिं मात[2] ॥८॥ गम[1]माता की[2]
'सुन्दर' समर्थ राम को, कहत दूर से दूर ।
पलक माहि प्रकटे सही, हृदये माहि हजूर ॥९॥
'सुन्दर' समर्थ राम की, महिमा कही न जाय ।
देखहु या आकाश को, क्यो कर राखा छाय ॥१०॥

'सुन्दर' अगम अगाध गति, पल मे बादल होय ।
गरजे चमके बिज्जली, वर्षन लागे तोय[1] ॥११॥ जल[1]

पल मे कुछय न देखिये, शुद्ध रहै आकाश ।
'सुन्दर' समरथ रामजी, उतपति करे रु नाश ॥१२॥

एक बून्द से चित्र[1] यह, कैसा दिया बनाय । शरीर[1]
'सुन्दर' सिरजनहार की, रचना कही न जाय ॥१३॥

जड चेतन संयोग कर, अद्‌भुत कीया ठाट[1] । शरीर[1]
'सुन्दर' समरथ रामजी, भिन्न भिन्न कर घाट[2] ॥१४॥ इन्द्रिय[2]

करै हरै पालै सदा, 'सुन्दर' समरथ राम ।
सब ही से न्यारा रहै, सब मे जिनका धाम[1] ॥१५॥ हृदय[1]

अजन यह माया करी, आप निरजन राय[1] । विश्वराट्[1]
'सुन्दर' उपजत देखिये, बहुरो[2] जाय विलाय ॥१६॥ फिर[2]
उपजे विनशे जगत सब, सुख दुख बहु सन्ताप ।
'सुन्दर' कर न्यारा रहै ऐसा समरथ आप ॥१७॥

'सुन्दर' करता राम है, भरता[1] और न कोइ । पालनकर्ता[1]
हरता[2] वह ही जानिये, ऐसा समरथ सोइ ॥१८॥ नाश[2]
जाकी आज्ञा मे सदा, धरती अरु आकाश ।
ज्यो राखे त्यो ही रहै, 'सुन्दर' मान हि त्रास ॥१९॥
पावक पानी पवन पुनि, 'सुन्दर' आज्ञा माँहि ।
चन्द सूर फिरते रहैं, निश दिन आवे जाहि ॥२०॥
जाकी आज्ञा मे रहै, 'सुन्दर' सप्त समुद्र ।
सव ही मानें त्रास को, देवन सहित पुरन्द्र[1] ॥२१॥ इन्द्र[1]
जाकी आज्ञा मे रहैं, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
'सुन्दर' अवनि[1] अनादि की, धार रहे शिर शेष ॥२२॥ पृथ्वी[1]
'सुन्दर' आज्ञा मे रहैं, काल कर्म जमदूत ।
गण गधर्व निशाचरा, और जहा लग भूत[1] ॥२३॥ प्राणी[1]
सिघ साधक जोगी जती, नाइ[1] रहैं मुनि शीश । नीचा[1]
'सुन्दर' सव ही कहत हैं, जै जै जै जगदीश ॥२४॥
आज्ञा माहि सदा रहैं, 'सुन्दर' वरुण कुवेर ।
अष्ट कुली पर्वत सहित, आज्ञा माहि सुमेर ॥२५॥
'सुन्दर' आज्ञा मे रहैं, दशो दिशा दिग्पाल ।
हिलें चले नहि ठौर से, वीत गया वहुकाल ॥२६॥
छपन कोटि आज्ञा करे, मेघ पृथ्वी पर आय ।
'सुन्दर' भेजे रामजी, तहँ तहँ वरषें जाय ॥२७॥
रिद्धि सिद्धि लौंडी[1] सदा, आज्ञा मेटै नाहिं । दासी[1]
'सुन्दर' माने त्रास अति, प्रभु भेजें तहँ जाहि ॥२८॥
आज्ञा माही लक्षमी, ठाडी है कर जोर[1] । जोड[1]
'सुन्दर' प्रभु सन्मुख रहै, दृष्टि सके नहि चोर[2] ॥२९॥ हटावे[2]
आज्ञा माही तत्त्व सव, होय देह का सग[1] । देह मे साथ रहैं[1]
'सुन्दर' वहुर जुदे रहैं, आज्ञा करे न भग ॥३०॥
आज्ञा माही रहत हैं, सप्त द्वीप नौ खण्ड ।
'सुन्दर' प्रभु की त्रास से, कपे सव ब्रह्माण्ड ॥३१॥
ऐसे प्रभु की त्रास से, कम्पे सव ही लोक ।
वार-वार कर कहत है, 'सुन्दर' तुम को धोक[1] ॥३२॥ प्रणाम[1]
उभय वाहु चहु वाहु पुनि, अष्ट वाहु भुज वीस ।
सहस्र वाहु नहिं लिख सके, 'सुन्दर' गुण जगदीश ॥३३॥

एकानन चतुरानन, पचानन[1] षटगीस[2] । शिव[1]स्वामि कार्तिक[2]
दश[3] सहसानन[4] कहि थके, 'सुन्दर' गुण जगदीश ।।३४।। रावण[3]शेष[4]

उभय अष्ट दश द्वादशा, अरु कहिये पुनि वीस ।
दो सहस्र लोचन थके, 'सुन्दर' ब्रह्म न दीस ।।३५।।

मनुष्य के दो नेत्र, ब्रह्मा के आठ नेत्र, शिव के दश नेत्र, स्वामि कार्तिक के १२ नेत्र, रावण के २० नेत्र, शेष जी के दो हजार नेत्र, उक्त सब नेत्र थक गये, किन्तु ब्रह्म को नहीं देख सके ।

एक रसन चहु रसन पुनि, पच षष्ट दश आहि ।
दो सहस्त्र सुन शेष के, वरण[2]सके नहि ताहि[1] ।।३६।। ब्रह्म का[1]वर्णन[2]

एक शीश चहु शीश पुनि, पच शीश षट शीश ।
दश शिर और सहस्र शिर, नमत सकल जगदीश ।।३७।।

सूरति[1] तेरी खूब[2] है, को कर सके बखान । स्वरूप[1]अद्‌भुत[2]
वाणी सुन सुन मोहिया, 'सुन्दर' सकल जहान[3] ।।३८।। जगत[3]

पलक माहि परकट करे, पल मे धरे उठाय ।
'सुन्दर' तेरे खयाल की[1], क्योकर जानी जाय ।।३९।। स्थिति[1]

ज्यो का त्यो ही देखिये, 'सुन्दर' सब ब्रह्मण्ड ।
यह कोई जाने नही, कबकी माडी[1] मण्ड[2] ।४०।। रची[1]सृष्टि[2]

साई तेरी अगम गति, हिकमत[1] की कुरबान । निर्माण बुद्धि[1]
सब सिरजे न्यारा रहे, 'सुन्दर' यह हैरान[2] ।४१।। आश्चर्य[2]

शेख मसाइक औलिया, सिध साधक मुख मौन ।
वेभी बैठे थाकिकर, 'सुन्दर' बपुरा कौन ।।४२।।

प्रीतम मेरा एक तू, 'सुन्दर' और न कोई ।
गुप्त भया किस कारणे, काहिन परकट होइ ।।४३।।

धन्य धन्य मोटा धणी, रचा सकल ब्रह्मण्ड ।
'सुन्दर' अद्‌भुत देखिये, सप्त द्वीप नौ खण्ड ।।४४।।

उतपति साई[1] तै किया, प्रथम हि वो ऊंकार । ईश्वर[1]
तिस से तीनो गुण भये, 'सुन्दर' सब विस्तार ।।४५।।

तिन का रचा शरीर यह, महल अनूपम एक ।
चौरासी लख योनि ये, 'सुन्दर' और अनेक ।।४६।।

आप सु बैठा गोपि[1] हो, 'सुन्दर' सब घट माहि । गुप्त[1]
करता हरता भोगता, लिपे छिपे कुछ नाहिं ।।४७।।

ऐसी तेरी साहिबी[1], जान सके नहिं कोइ ।　　प्रभुता[1]
'सुन्दर' सब देखे सुने, काहू लिप्त न होइ ॥४८॥

करे करावे रामजी, 'सुन्दर' सब घट माहि ।
ज्यो दर्पण प्रतिविम्ब है, लिपे छिपे कुछ नाहि ॥४९॥

वाजीगर वाजी रची, ताका आदि न अन्त ।
भिन्न भिन्न सब देखिये, 'सुन्दर' रूप अनन्त ॥५०॥

काढ काढ वाहिर करै, राते पीले रग ।
'सुन्दर' चावल धूरि के, पख परेवा[1] सग ॥५१॥　　कबूतर[1]

कबहू मिलावे गोटिका, कबहू बीछुड जाहि ।
'सुन्दर' नाचे जगत सब, ऐसी कल[1] तुझ माहि ॥५२॥　　कला[1]

अजन[1] कोया नैन मे, सब ही राखे मोहि ।　　भुरकी का[1]
'सुन्दर' हुन्नर बहुत है, कोइ न जाने तोहि ॥५३॥

ब्रह्मादिक शिव मुनि जना, थाके सब ही सत ।
'सुन्दर' कोउ न कह सके, जाका आदि न अत ॥५४॥

'सुन्दर' सब चक्रित[1] भये, वचन कहा नहि जाय ।　　हैरान[1]
टग टग रहे सु देखते, ठगमूरी[1] सी खाय ॥५५॥　　जडी[1]

वातै कोउ न कह सके, थकित भये सिध साध ।
'सुन्दर' हू चुप कर रहे, वह तो अगम अगाध ॥५६॥

वचन तहा पहुचे नही, तहा न ज्ञान न ध्यान ।
कहत कहत यू ही कहा, 'सुन्दर' है हैरान ॥५७॥

नेति नेति कह थाकि रहे, 'सुन्दर' चारो वेद ।
अगह अकह अविशेष का, कोउ न पावे भेद ॥५८॥

किन हू अन्त न पाइया, अब पावे कहि कौन ।
'सुन्दर' आगें होहिंगे, थाकि रहे कर गौन[1] ॥५९॥　　गमनो[1]

लौन पूतरी उदधि मे, थाह लेन को जाय ।
'सुन्दर' थाह न पाइये, बिच ही गई विलाय ॥६०॥

अनल पखि आकाश मे, उडे वहुत कर जोर ।
'सुन्दर' वा आकाश का, कहू न पाया छोर[1] ॥६१॥　　अन्त[1]

इति समर्थाई आश्चर्य का अग २१

अथ अपने भाव का अंग २२

दोहा— 'सुन्दर' अपना भाव है, जो कुछ दीसे आन[1] । अन्य[1]
बुद्धि योग[2] विभ्रम भया, दोऊ ज्ञान अज्ञान ॥१॥ मिलकर[2]

जो यह देखे क्रूर हो, तो वह होत कृतात ।
'सुन्दर' जो यह साधु हो, तो आगे है शात ॥२॥

'सुन्दर' जो यह हँस उठे, तो आगे हँस देत ।
जो यह काहू देत है, तो वह आगे लेत ॥३॥

जो यह टेढा होत है, आगे टेढा होइ ।
'सुन्दर' प्रत्यक्ष देखिये, दर्पण माही जोइ[1] ॥४॥ देखकर[1]

'सुन्दर' महल सवार के, राखा काच लगाय ।
दैवयोग सुनहा[1] गया, एक अनेक दिखाय ॥५॥ कुत्ता[1]

अपनी छाया देख के, कूकर जाने आन ।
'सुन्दर' अति ही चोर कर, भुस भुस मूवा श्वान[1] ॥६॥ कुत्ता[1]

सिंह कूप पर आय के, देखी अपनी छाहिं ।
'सुन्दर' जाना दूसरा, बूड मुवा ता माहिं ॥७॥

फटिक शिला से आय कर, कुञ्जर तोडे दत ।
आगे देखा और गज, 'सुन्दर' अज्ञ अनन्त[1] ॥८॥ बहुत[1]

'सुन्दर' याके ऊपजे, काम क्रोध अरु मोह ।
याही के हो मित्रता, याही के हो द्रोह ॥९॥

आप हि फेरी लेत है, फिरते दीसे आन ।
'सुन्दर' ऐसे जान तू, तेरा ही अज्ञान ॥१०॥

'सुन्दर' याके शक हो, याही[1] हो निहशक । यहही[1]
याही सूधा हो चले, याही पकडे वक ॥११॥

'सुन्दर' याके अज्ञता, याही करे विचार ।
याही बूडे धार मे, याही उतरे पार ॥१२॥

'सुन्दर' अपने भाव कर, पूजे देवी देव ।
यह मैं पाया पुत्र धन, बहुत करी तिहि सेव ॥१३॥

'सुन्दर' सूखे हाड को, श्वान चचोरे आय ।
अपना ही मुख फोड के, लोही चाटे खाय ॥१४॥

'सुन्दर' अपने भाव कर, आप किया आरोप ।
काहू से सन्तुष्ट हो, काहू ऊपर कोप ॥१५॥

अपना ही सब भाव है, जो कुछ दीसे और।
'सुन्दर' समझे आतमा, तब याही सब ठौर ॥१६॥
नीचे से नीचे सही, ऊँचे ऊपर ऊच।
'सुन्दर' पीछे पछे[1], आगे को न पहूच ॥१७॥   पीछे[1]
बाहर भीतर सारिखा, व्यापक ब्रह्म अखण्ड।
'सुन्दर' अपने भाव से पूरि रहा ब्रह्मण्ड ॥१८॥
याही[1] देखत सूर सा, याही देखत चन्द।   यह ही[1]
'सुन्दर' जैसा भाव है, तैसा ही गोविन्द ॥१९॥
याही देखत नूर को, याही देखत तेज।
याही देखत ज्योति को, सुन्दर' याका हेज[1] ॥२०॥   प्रेम[1]
'सुन्दर' अपने भाव से, जन की करे सहाय।
बाहर[1] चढ के बीठला[2], दुष्ट हिं मारे आय ॥२१॥ सहाय[1] हरि[2]
'सुन्दर' अपने भाव से, मूरति पीया दुद्ध।
ठाकुर जाना सत्यकर, नामा[1] का उर शुद्ध ॥२२॥   नामदेव[1]
'सुन्दर' अपने भाव से, रूप चतुर्भुज होइ।
याको ऐसा ही द्रसे[1], वाके रूप न कोइ ॥२३॥   दीखे[1]
काहू माना सीघ सा, हृदये उपजा चाव।
'सुन्दर' तैसा ही भया, जाके जैसा भाव ॥२४॥
काहू सें अति निकट है, काहू से अति दूर।
'सुन्दर' अपना भाव है, जहा तहा भरपूर ॥२५॥

इति अपने भाव का अग २२

अथ स्वरूप विस्मरण का अग २३

दोहा—'सुन्दर भूला आपको, खोई अपनी ठौर।
देह माहि मिल देह सा, भया और का और ॥१॥
जा घट की उनहार है, तैसा दीसत आहि[1]।   है[1]
'सुन्दर' भूला आपही, सो अब कहिये काहि ॥२॥
हाथी माही देखिये, हाथी का अभिमान।
'सुन्दर' चीटी माहि रिस[1], चीटी के अनुमान ॥३॥   क्रोध[1]
सिंह माहिं है सिंह सा, स्याल माहि पुनि स्याल।
जैसी घट उनहार[1] है, 'सुन्दर' तैसा ख्याल ॥४॥   आकृति[1]
हस माहिं है हस सा, मोर माहि है मोर।
'सुन्दर' जैसा घट भया, तैसा ही तिहि वोर ॥५॥

बीछू मे बीछू भया, सर्प माहिं है साप ।
'सुन्दर' जैसा घट भया, तैसा हूवा आप ।।६।।
बादर मे बादर भया, मच्छ माहि पुनि मच्छ ।
'सुन्दर' गाइन मे गऊ, बच्छन माही बच्छ ।।७।।
जलचर थलचर व्योमचर, गिने कहा लौ कोइ ।
'सुन्दर' जैसा घट जहा, रहा तिसा ही होइ ।।८।।
'सुन्दर' पावक दार[1] के, भीतर रहा समाय । काठ[1]
दीरघ मे दीरघ लगे, चौडे मे चौराय[2] ।।९।। चौडा[2]
रचक काढे मथन कर, बहुर होइ बलवन्त ।
'सुन्दर' सब ही काठ को, जारि करे भस्मन्त ।।१०।।
'सुन्दर' जड के सग से, भूल गया निज रूप ।
देख हु कैसा भ्रम भया, बूड रहा भव कूप ।।११।।
'सुन्दर' इन्द्रिय स्वाद से, अति गति बाधा मोह ।
मीन न जाने बावरा, निगल गया शठ लोह[1] ।।१२।। मच्छी पकडने का काटा[1]
मरकट मूठ न छाड ही, बधा स्वाद से जाय ।
'सुन्दर' गल मे जेवडी, घर घर नाचा आय ।।१३।।
जैसे मदिरा पान कर, होय रहा उनमत्त ।
'सुन्दर' ऐसे आप को, भूला आतम तत्त[1] ।।१४।। तत्त्व[1]
ज्यो ठग मूरी खात ही, रहै कछू नही बुद्धि ।
यू 'सुन्दर' निज रूप की, भूल गया सब शुद्धि ।।१५।।
जैसे बालक शक कर, कप उठे भय मान ।
ऐसे 'सुन्दर' भ्रम भया, देह आपको जान ।।१६।।
जे गुण उपजे देह का, सुख दुख बहु सन्ताप ।
'सुन्दर' ऐसे भ्रम भया, ते सब माने आप ।।१७।।
शीत उष्ण क्षुधा तृषा, मोको लागे आय ।
'सुन्दर' या भ्रम की नदी, ता ही मे बह जाय ।।१८।।
अन्ध बधिर गूगा भया, मेरा कौन हवाल ।
'सुन्दर' ऐसे मान कर, बहुत फिरे बेहाल ।।१९।।
मिलकर या जड देह से, रहा तिसा[1]ही होय । वैसा[1]
'सुन्दर' भूला आप को, सुधि बुधि रही न कोइ ।।२०।।
'सुन्दर' चेतन आतमा, जड से किया सनेह ।
देह खेह से मिल रहा, रत्न अमोलक येह ।।२१।।

पच तत्त्व का देह जड, सब गुण मिल चौबीस ।
'सुन्दर' चेतन आतमा, ताहि मिले पच्चीस ।।३।।
छव्वीसवा सु ब्रह्म है, 'सुन्दर' साक्षी भूत[1] । साक्षी रूप[1]
यू परमातम आतमा, यथा बाप से पूत ।।४।।
देह रूप ही हो रहा, देह आपको मान ।
ताही से यह जीव है, 'सुन्दर' कहत बखान ।।५।।
देह भिन्न हू[1] भिन्न हू, जब यह करै विवेक । मैं[1]
'सुन्दर' जीव न पाइये, होय एक का एक ।।६।।
क्षीण सुपुष्ट शरीर है, शीत उठण तिहि लार ।
'सुन्दर' जन्म जरा लगे, ये षट देह विकार ।।७।।
सुधा तृषा गुण प्राण के, शोक मोह मन होइ ।
'सुन्दर' साक्षी आतमा, जाने विरला कोइ ।।८।।
जा की सत्ता पाय के, सब गुण हो चैतन्य ।
'सुन्दर' सोई आतमा, तुम जनि[1] जान हु अन्य ।।९।। क्यो[1]
बुद्धि भ्रमे मन चित्त पुनि, अहकार वहु भाइ[1] । प्रकार[1]
'सुन्दर' ये तो ते भ्रमै, तू क्यो इन सग जाइ ।।१०।।
श्रोत्र त्वचा दृग नासिका, रसना रस को लेत ।
'सुन्दर' ये तो तें भ्रमै, तू क्यो वाधा हेत[1] ।।११।। स्नेह[1]
वाक्य पानि अरु पाद पुनि, गुदा उपस्थ हि जान ।
'सुन्दर' ये तो तें भ्रमे, तू क्यो लीने मान ।।१२।।
'सुन्दर' तू न्यारा सदा, क्यो इन्द्रियन सग जाय ।
ये तो तेरी शक्ति कर, बरते नाना भाय[1] ।।१३।। भाव[1]
'सुन्दर' मन को मन कहै, बहुरि बुद्धि को बुद्धि ।
तोहि आपने रूप की, भूल गई सब शुद्धि ।।१४।।
कहै चित्त को चित्त पुनि, 'सुन्दर' तोहि बखान ।
अहकार को है अह, जानि सके तो जान ।।१५।।
'सुन्दर' श्रवणन को श्रवण, आहि नैन को नैन ।
नासा को नासा कहै, अरु वैनन को वैन ।।१६।।
'सुन्दर' शिर को शीश है, प्राणन को है प्रान ।
कहत जीव को जीव सब, शास्तर वेद पुरान ।।१७।।
'सुन्दर' तू चेतन्यघन, चिदानन्द निजसार ।
देह मलीन अशुद्ध जड, विनशत लगे न वार[1] ।।१८।। देर[1]

'सुन्दर' अविनाशी सदा, निराकार निहसग[1] । निस्सग[1]
देह विनश्वर देखिये, होय पलक मे भंग ।।१९।।
'सुन्दर' तू तो एक रस, तोहि कहू समझाय ।
घटे बढे आवे रहै, देह विनश कर जाय ।।२०।।
जो विकार है देह के, देहहि के शिर मार[1] । पटक[1]
'सुन्दर' याते[2] भिन्न हो, अपना रूप विचार ।।२१।। इस देह से[2]
'सुन्दर' यह नहि यह नही, यह तो है भ्रम कूप ।
नाहिं नाहिं करते रहै, सो है तेरा रूप ।।२२।।
एक एक के एक पर, तत्त्व गिणे से होइ ।
'सुन्दर' तू सब के परे, तो ऊपर नहि कोइ ।।२३।।
एक एक अनुलोम[1] कर, दीसहिं तत्त्व स्थूल । सुलटा[1]
एक एक प्रतिलोम[2] से, 'सुन्दर' सूक्षम मूल ।।२४।। उलटा[2]

प्रथम अति सूक्ष्म से उत्तोत्तर अति स्थूल तक आना अनुलोम है । स्थूल से अति सूक्ष्म तक आना प्रतिलोम होता है । सृष्टि प्रथम सूक्ष्म और फिर स्थूल होती है फिर सूक्ष्म होकर लीन होती है ।

सूक्षम से सूक्षम परे, 'सुन्दर' आपहि[1] जान । आत्मा को[1]
तो से सूक्षम नाहि को, याही[2] निश्चय आन[3] ।।२५।। यही[2] ला[3]
इन्द्रिय मन अरु आदि दे, शब्द न जाने तोहि ।
'सुन्दर' तो से चपल ये, तू इन से क्यो होहि ।।२६।।
धूलि धूम अरु मेघ कर, दीसे मलिनाकाश ।
'सुन्दर' मलिन शरीर सग, आतम शुद्ध प्रकाश ।।२७।।
देहनि के ज्यो द्वार मे, पवन लिये कहु नाहिं ।
तैसे 'सुन्दर' आतमा, दीसे काया माहिं ।।२८।।
पावक लोह तपाइये, होय एक ही अग ।
तैसे 'सुन्दर' आतमा, दीसे काया सग ।।२९।।
चोट पडे घन की जबहिं, पावक भिन्न रहाय ।
'सुन्दर' दीसे प्रकट हो, लोहा बधता जाय ।।३०।।
'सुन्दर' पावक एक रस, लोहा घट वढ होइ ।
तैसे सुख दुख देह को, आतम को नहि कोइ ।।३१।।
नीर क्षीर ज्यो मिल रहे, देह आतमा दोइ ।
'सुन्दर' हस विचार विन, भिन्न भिन्न नहि होइ ।।३२।।
देह धातु माही मिले, आतम कनक कुरूप ।

दौड दौड जड देह को, आप हि पकडत आय ।
'सुन्दर' पेच पडा कठिन, सके नही सुरझाय ॥२२॥
सुवा पकड नली रहा, वह कहुं[1] पकडा नांहि । किसी से[1]
ऐसे 'सुन्दर' आपसे, पडा पीजरा माहिं ॥२३॥
ज्यो गुञ्जनि को ढेर कर, मरकट माने आग ।
ऐसे 'सुन्दर' आप ही, रहा देह से लाग ॥२४॥
विप्र हो रहा शुद्र सा, भूल गया ब्रह्मत्व ।
'सुन्दर' ईश्वर आप ही, मान लिया जीवत्त्व ॥२५॥
राजा सोया सेज पर, भया स्वप्न मे रक ।
'सुन्दर' भूला आपको, देह लगाया पक[1] ॥२६॥ कीचड[2]
ज्यो नर वहुत सुरूप है, भ्रम से कहै कुरूप ।
'सुन्दर' भूला आपको, आतम तत्त्व अनूप ॥२७॥
वनिया मू धा[1] हो रहा, ठूगे[2] फेरा हाथ । ऊधा[1] चूतड[2]
'सुन्दर' ऐसा भ्रम भया, मेरे तो नहि माथ ॥२८॥
ज्यो मणि कोऊ कठ थी, भ्रम से पावे नाहि ।
पूछत डोले और को, 'सुन्दर' आप हि माहि ॥२९॥
'सुन्दर' चेतन आप यह, चालत जड की चाल ।
ज्यो लकडी के अश्व चढ, कूदत डोले वाल ॥३०॥
भूतन माही मिल रहा, तातै हूवा भूत ।
'सुन्दर' भूला आपको, उरझा नौ मण सूत ॥३१॥
आपहि इन्द्री प्रेरिके, आप हि माने सुक्ख ।
'सुन्दर' जब सकट पडे, आप हि पाये दुःख ॥३२॥
यू भ्रम से बहु दिन भये, वीत गया चिर काल ।
'सुन्दर' लहा न आपको, भूल पडा भ्रम[1] जाल ॥३३॥ अज्ञान[1]
देह माहि हो देह सा, किया देह अभिमान ।
'सुन्दर' भूला आपको, वहुत भया अज्ञान ॥३४॥
कामी हूवा काम रत, जती हूवा जत साधि ।
'सुन्दर' या अभिमान से, दोऊ लागी व्याधि ॥३५॥
कतहू[1] भूला नीच हो, कतहू ऊची जाति । कहीं[1]
'सुन्दर' या अभिमान कर, दोनो ही के राति[2] ॥३६॥ अविद्या[2]
कतहू भूला मौन घर, कतहू कर वकवाद ।
'सुन्दर' या अभिमान से, उपजा वहुत विपाद ॥३७॥

'सुन्दर' साख्य सुनार विन, होय न शुद्ध स्वरूप ।।३३।।
जब हिं कचुकी होत है, भिन्न न जाने सर्प ।
तैसे 'सुन्दर' आतमा, देह मिले से दर्प[1] ।।३४।। अहंकार[1]
सर्प तजे जब कचुकी, वादिशि देखे नाहिं ।
'सुन्दर' समझै आतमा, भिन्न रहै तन[1] माहिं ।।३५।। देह[1]
'सुन्दर' काला[1] घटे वढे, शशि मण्डल के संग । रंग[1]
देह उपज विनशत रहै, आतम सदा अभग ।।३६।।
देह कृत्य[1] सब करत है, उत्तम मध्य कनिष्ठ । काम[1]
'सुन्दर' साक्षी आतमा, दीसे माहिं प्रविष्ठ ।।३७।।
अग्नि कर्म सयोग से, देह कडा हीं सग ।
तेल लिंग दोऊ तपे, शशि आतमा अभग[1] ।।३८।। नाश रहित[1]
सूक्षम देह स्थूल को, मिला करत सयोग ।
'सुन्दर' न्यारा आतमा, सुखदुख इनका भोग ।।३९।।
हलन चलन सब देह का, आतम सत्ता होइ ।
'सुन्दर' साक्षी आतमा, कर्म न लागे कोइ ।।४०।।
'सुन्दर' सूरज के उदय, कृत्य करे ससार ।
ऐसे चेतन ब्रह्म से, मन इन्द्रिय आकार ।।४१।।
व्योम वायु पुनि अग्नि जल, पृथवी कीये मेल ।
'सुन्दर' इन से होय क्या, चेतन खेले खेल ।।४२।।
'सुन्दर' तत्त्व जुदे जुदे, रक्खा नाम शरीर ।
ज्यो कदली[1] के खभ मे, कौन वस्तु कहि वीर ।।४३।। केला[1]
देह आप कर मानिया, महा अज्ञ मति मन्द ।
'सुन्दर' निकमे छील के, जवहि उचरे[1] कद[2] ।।४४।। छीले[1] कादा[2]
काष्ट सु जोडे युगति कर, कीया रथ आकार ।
हलन चलन जासे भया, सो 'सुन्दर' ततसार ।।४५।।
तत्त्व कहे इकतीस लौं, मत जू जुवा बखान ।
'सुन्दर' जल कौने पिया, मृग तृष्णा घर आन ।।४६।।
देह स्वर्ग अरु नरक है, वन्ध मुक्ति पुनि देह ।
'सुन्दर' न्यारा आतमा, साक्षी कहियत येह ।।४७।।
सुन्दर' नदी प्रवाह मे, चलत देखिये चन्द ।
तैसे आतम अचल है, चलत कहै मतिमन्द ।।४८।।

बहुत सुगन्ध दुर्गन्ध कर, भरिये भाजन अम्बु ।
'सुन्दर' सब मे देखिये, सूरय का प्रतिबिम्ब ।।४९।।

देह भेद बहु विधि भये, नाना भाति अनेक ।
'सुन्दर' सब मे आतमा, वस्तु विचारे एक ।।५०।।

तिलन माहि ज्यो तेल है, 'सुन्दर' पय मे घीव ।
दार माहि है अग्नि ज्यो, देह माहि यू शीव[1] ।।५१।। आतमा[1]

फूल माहि ज्यो वासना, इक्षु माहि रस होइ ।
देह माहि यू आतमा, 'सुन्दर' जाने कोइ ।।५२।।

पोसत माहि अफीम है, वृक्षन मे मधु जान ।
देह माहि यू आतमा, 'सुन्दर' कहत बखान ।।५३।।

'सुन्दर' ब्रह्म अवर्ण[1] है, व्यापक अग्नि अवर्ण । रग रहित[1]
देह दार[2] से देखिये, पावक अन्तहकर्ण ।।५४।। काष्ठ[2]

जैसेकाष्ठ से अग्नि का रग प्रकट होता है, वैसे ही अन्त.करण के विचार से आतमा का स्वरुप प्रकट रुप से भासता है ।

तेज प्रकाश रु कल्पना, जब लग सग उपाधि ।
जब उपाधि सब मिट गई, 'सुन्दर' सहज समाधि ।।५५।।

'सुन्दर' देह सराव मे, तेल भरा पुनि श्वास ।
वाती अन्तहकरण की, चेतन ज्योति प्रकाश ।।५६।।

'सुन्दर' पन्द्रह तत्व का, देह भया सो कुम्भ ।
नो तत्वन का लिग पुनि, माहि भरा है अभ ।।५७।।

जीव भया प्रतिविम्ब ज्यो, ब्रह्म इन्दु[1] आभास । चन्द्रमा[1]
'सुन्दर' मिटे उपाधि जब, जहँ के तहाँ निवास ।।५८।।

जाग्रत स्वप्न सुषोपती, इन से न्यारा होइ ।
'सुन्दर' साक्षी तुरियतत[1], रूप आपना जोइ[2] ।।५९।। तत्त्व[1] देख[2]

तीन अवस्था जड कही, य तो हैं भ्रम कूप ।
'सुन्दर' आप विचार तू, चेतन तत्त्व स्वरूप ।।६०।।

जाग्रत स्वप्न सुषोप्तती, तीन अवस्था गौन[1] । जाने पर तुरियातीत[1]
'सुन्दर' तुरिय[2] चढा जबहि, खरी[3] चढे तब कौन ।।६१।। घोडा[2] गधी[3]

इति साख्य ज्ञान का अग २४

अथ अवस्था का अग २५

दोहा—एक अक सो आतमा, सुन अवस्था तीन।
'सुन्दर' मिल कर वाचिये, न्यारे न्यारे कीन ॥१॥

१ के का अक है वह आत्मा है, सुन्न=विन्दी तीन अवस्था=जाग्रत स्वप्न सषुप्ति इनको मिलाकर पढे तो १०० होते हैं और अलग कर दें तो एक आत्मा ही रह जाता है। तीन अवस्था मादा मय होने से मिथ्या है।

एक सुन्न से दश भये, दूजी शत[1] हो जाहि। १००[1]
तीजी सुन्न सहस्र हो, एक विना कुछ नाहि ॥२॥

एका पर १० दश और दो से १०० हो जाते हैं। तीन से १००० हो जाते हैं किन्तु१ विना कुछ नही।

सु न सु न दश गुण वधे, वहु विधि हो विस्तार।
'सुन्दर' सु न मिटाइये, एक[1] रहै निरधार[2] ॥३॥ आत्मा[1] निर्णय कर[2]
तीन अवस्था माहि है, 'सुन्दर' साक्षी भूत[1]। रूप[1]
सदा एक रस आतमा, व्यापक है अनुस्यूत[2] ॥४॥ मिला हुआ[2]

(१) अवस्था का अन्य भेद

'सुन्दर' जाग्रत भीत मे, लिखा जगत चित्रास[1]। चित्र समूह[1]
स्वप्न घौट[2] सन्मुख भई, हसे सकल घट नाश ॥५॥ घोटने से[2]

सुन्दरदासजी कहते हैं—जाग्रत अवस्था दीवाल मे जगत के चित्र समूह को लिखने के समान है। स्वप्न अवस्था उक्त दीवाल के सामने की दीवाल को खूब घोट कर देखें तो वह जाग्रत दीवाल वाले चित्र घोटी हुई दीवाल मे आकर उक्त दीवाल के सामने मुख किये दीखते हैं, वैसे ही जाग्रत जगत स्वप्न मे दीखता है किन्तु जाग्रत के सब घट शरीर स्वप्न मे नाश हो जाते हैं अर्थात् चित्र ही दीखते है, होते नही इससे स्वप्न मिथ्या कहा जाता है।

चित्र कछू नहि देखिये, जवहि अन्धेरी होइ।
'सुन्दर' सुषुपति मे गये, जाग्रत स्वप्ना दोइ[1] ॥६॥ दोनो नही रहती[1]
तीन अवस्था से जुदा, आतम व्योम[1] समान। आकाश[1]
भीति चित्र पुनि घौट तम, लिप्त नहीं यू जान ॥७॥

जैसे आकाश भीत के चित्र घोटी हुई दीवाल के चित्र सुषुप्ति के अधेरा से अलिप्त है वैसे ही आत्मा तीनो अवस्थाओ मे रहता हुआ भी उनसे अलिप्त ही रहता है।

(२) अवस्था का अन्य भेद

'सुन्दर' जाग्रत धूप है, स्वप्न जोन्ह[1] ज्यों जान। चादनी[1]
दोऊ माही देखिये, रूप सकल पहिचान ॥८॥

सुषुपति मावस की निशा, अभ्र रहे पुनि छाय ।
'सुन्दर' कुछ सूझै नहीं, रूप सकल छिप जाय ।।९।।
धूप जौन्हु तम रूप से, नैन लिये कहु नाहिं[1] । नेत्र जोति न मिटे[1]
'सुन्दर' साक्षी आतमा, तीन अवस्था माहिं[2] ।।१०।। लिप्त न हो[2]

(३) अवस्था का अन्य भेद

बाजीगर पडदा किया, 'सुन्दर' बैठा मांहि ।
खेल दिखावे प्रकट कर, आप दिखावे नाहि ।।११।।
नर पशु पखी काठ[1] के, प्रकट दिखावे खेल । कठपुतली[1]
हस्त क्रिया सब करत है, 'सुन्दर' आप अकेल ।।१२।।
'सुन्दर' चेतन शक्ति बिन, नाच सके नहि कोइ ।
त्यों यह जाग्रत जानिये, जो कुछ जाग्रत होइ ।।१३।।
बहुर वहै रजनी विषै[1], पडदा करे बनाय । रात मे[1]
'सुन्दर' बैठा गोपि[2] हो, बाहर खेल दिखाय ।।१४।। गुप्त[2]
नर पशु पक्षी चर्मके, दीस हि रूप अनेक ।
'सुन्दर' चेतन शक्ति कर, नाच नचावे एक ।।१५।।
यू यह स्वप्ने देखिये, जाग्रत का आभास ।
'सुन्दर' दोऊ भ्रम भये, जाग्रत स्वप्न प्रकाश ।।१६।।
अब सुन सुषुपति की कथा, 'सुन्दर' भ्रम कुछ नाहिं ।
काठ कर्म का खेल सब, धरा पिटारा माहि ।।१७।।
'सुन्दर' बाजीगर जुदा, खेल करे दिन रात ।
वहै खेल रजनी करे, वहै खेल परभात ।।१८।।
जाग्रत स्वप्न सु जवनिका,[1] सुषुपति भई पिटार । पडदा[1]
'सुन्दर' बाजीगर जुदा, खेल दिखावन हार ।।१९।।
तीन अवस्था के परे, चौथी तुरिया जान ।
'सुन्दर' साक्षी आतमा, ताहि लेहु पहचान ।।२०।।

(४) अवस्था का अन्य भेद

एक अवस्था के विषै, तीन हु वर्ते आय ।
जाग्रत स्वप्न सुपोपती, 'सुन्दर' कहत सुनाय ।।२१।।
जाग्रदवस्था जानिये, सब इन्द्रिय व्यापार ।
अपने अपने अर्थ[1] का, 'सुन्दर' करे विहार ।।२२।। विषय[1]
जाग्रत मे स्वप्ना वहै, करे मनोरथ आन[1] । अन्य[1]
नैन न देखे रूप को, शब्द सुने नहिं कान ।। २३।।

जाग्रत मे सुपुपति भई, जबहि तिवाला[1] होइ ।
'सुन्दर' भूले देह को, सुधि बुधि रहै न कोइ ।।२४।।
स्वप्ने मे जाग्रत वहै, वचन कहै मुख द्वार ।
ज्वाब देत और को, 'सुन्दर' शुद्धि न सार ।।२५।।
स्वप्ने माही स्वप्न है, देखे नाना रूप ।
जागे से सब कहत है, 'सुन्दर' छाया धूप ।।२६।।
'सुन्दर' ऐसे जानिये, सुपुपति स्वप्ना माहि ।
स्वप्ने ही मे अनुभवै, जागे जाने नाहि ।।२७।।
सुपुपति मे जाग्रत वहै, जानी कर अनुमान ।
जागे से ततपर भया, सब इन्द्रिन का ज्ञान ।।२८।।
सुषुप्ति ही मे स्वप्न है, जागे वक्रित[1] चित्त ।
कछूक वार लखे नही, 'सुन्दर' चित्त अवित्त[2] ।।२९।।
सुषुप्ति मे सुपुप्ति वहै, सुख अनुभवै प्रभात ।
'सुन्दर' जागे कहत है, सुख से सूते रात ।।३०।।
तीन अवस्था भेद है, तीनो ही भ्रमकूप ।
चौथी तुरिया ज्ञानमय, 'सुन्दर' ब्रह्म स्वरूप ।।३१।।

(५) अवस्था का अन्य भेद

वर वरियान वरिष्ट पुनि, तीन हु का मत एक ।
भिन्न भिन्न व्यवहार है 'सुन्दर' समझ विवेक ।।३२।।
वर सो जीवन मुक्त है, तुरिया साक्षी भूत ।
लिपे छिपे नहि सब करे, अनकरता अवधूत ।।३३।।
महा मुक्त अक्रिय सदा, सो कहिये वरियान ।
तुरिया तुरियातीत के, मध्य कहै सज्ञान ।।३४।।
जाकी गति न लख पडे, सो कहिये जु वरिष्ट ।
तुरियातीत परातपर, वचन परे उतकृष्ट ।।३५।।
ब्रह्म समुद्र जहा तहा, ता मे तीनो लीन ।
एक किनारे आय कर, सबको शिक्षा दीन ।।३६।।
दूजा रहै समुद्र मे, शीश दिखावे आय ।
पूछे बोले वचन को, फेरि तहा छिप जाय ।।३७।।
ब्रह्मानन्द समुद्र से, तीजा निकसे नाहि ।
गहरे पैठा[1] जायके, मगन भया ता माहि ।।३८।।
अष्टावक्र वसिष्ट मुनि, प्रकट किया निज ज्ञान ।
क्रम ही क्रम उपदेशकर, किये ब्रह्म सामान ।।३९।।

[1] बेहोशी
[1] चलायमान
[2] अचल
[1] प्रवेश

दत्तात्रय शुकदेवजी, बोले वचन रसाल ।
नृपति परीक्षत भूप पद्ु, मुक्त किये ततकाल ।।४०।।
ऋषभदेव बोले नही, रहे ब्रह्ममय होय ।
गरक[1] भये निज ज्ञान मे, द्वैत भाव नहिं कोइ ।।४१।। निमग्न[1]
जाग्रदवस्था जानिये, जब हि होय साक्षात ।
अष्टावक्र वसिष्ट मुनि, कही सबन से बात ।।४२।।
स्वप्न अवस्था माहिं है, पूछे बोले सैन ।
दत्तात्रय शुकदेवजी, कहे कछू इक बैन ।।४३।।
सुषुपति मे कुछ सुधि नही, ऐसी परम समाधि ।
ऋषभदेव चुपकर रहै, छूटी सकल उपाधि ।।४४।।

(६) अवस्था का अन्य भेद

मावस अति अज्ञान है, निशा अधेरी कौन ।
शशि आतमा दृसे[1] नही, ज्ञान कला कर हीन ।।४५।। दीखे[1]
है अज्ञान अनादि का, जीव पडा भ्रम कूप ।
श्रवण मनन निदिध्यास से, 'सुन्दर' हो चिद्रूप ।।४६।।
श्रवण सु कहिये प्रतिपदा, ज्ञान कला दरशाय ।
दुतिया तृतिया चतुर्थी, सुन पचमी दिखाय ।।४७।।
मनन किये षष्टी दृसे, अर्थ लेय पहचान ।
होय सप्तमी अष्टमी, नवमी दशमी जान ।।४८।।
निदिध्यास एकादशी, पुनि द्वादशी बदति ।
आगे होय त्रयोदशी, चतुर्दशी पर्यंति ।।४९।।
तदाकार पूरण कला, पूरणमासी होइ ।
पूरण ज्ञान प्रकाश शशि, भ्रम सदेह न कोइ ।।५०।।
ताहि कहत है ब्रह्म विद, शास्त्र वेद पुरान ।
'सुन्दर' या अनुक्रम बिना, और सकल अज्ञान ।।५१।।

छप्पय—प्रथम भूमिका श्रवण, चित्त एकाग्रहि धारे ।
दुतिय भूमिका मनन, श्रवण कर अर्थ विचारे ।।
तृतिय भूमिका निदिध्यास, नीकी विधि कर ही ।
चतुर्भूमि साक्षातकार, सशय सब हर ही ।।
अब तासे कहिये, ब्रह्म-विदवर वरयान वरिष्ठ है ।
यह पच षष्ट अरु सप्तमी, भूमि भेद सुन्दर कहै ।।५२।।

इति अवस्था का अग २५

अथ विचार का अग २६

दोहा— 'सुन्दर' साधन सब थके, उपजा हृदय विचार ।
श्रवण मनन निदिध्यास पुनि, याही[1] साधन सार ॥१॥　　यही[1]
'सुन्दर' या साधन बिना, दूजा नही उपाय ।
निशिदिन, ब्रह्म विचार से, जीव ब्रह्म हो जाय ॥२॥
'सुन्दर' एक विचार है, सुरझावन को सूत[1] ।　　ठीक[1]
उरझरहा, ससार मे, नख शिख प्राणी भूत[2] ॥३॥　　उत्पन्न[2]
उपजे एक विचार जब, तब यह पावे ठौर[1] ।　　परमधाम[1]
भरमावन को जगत मे, 'सुन्दर' साधन और ॥४॥
'सुन्दर' एक विचार से, हिरदा निर्मल होइ ।
फिरत रहैं जो मसक[1] लौ, काट न लागे कोइ ॥५॥

[1]जो मच्छर के समान मतमतान्तर के वाद विवाद रूप डक लगाने वाले फिरते हैं उनके काटने का दाँव नही लगता । विचार के द्वारा बुद्धि सचेत रहती है ।

'सुन्दर' साधन सब किया, बरकत[1] दीसे नाहिं ।　　सिद्धि[1]
आया हृदय विचार जब, तब समझे हरि माहि ॥६॥
करत देह के कृत्य सब, जो उर होय विचार ।
'सुन्दर' न्यारा ही रहै, लेप न एक लगार[1] ॥७॥　　किंचित भी[1]
दधि मथ घृत को काढकर, देत तक्र मे डार ।
'सुन्दर' बहुर मिले नही, ऐसे लेहु विचार ॥८॥
जैसे जल मे कमल है, जल से न्यारा सोइ ।
'सुन्दर' ब्रह्म विचार कर, सबसे न्यारा होइ ॥९॥
मणि अहि के मुख मे सदा, विष नहिं लागे ताहि ।
'सुन्दर' ब्रह्म विचार से, सब से न्यारा आहि[1] ॥१०॥　　है[1]
'सुन्दर' एक विचार से, सुख दुख होय समान ।
राग द्वेष उपजे नही, तजे मान अपमान ॥११॥
'सुन्दर' एक विचार से, बुद्धि तजे नानात्व ।
जाने एकै आतमा, उपजे भाव समत्व[1] ॥१२॥　　समता[1]
'सुन्दर' ब्रह्म विचार है, सब साधन का मूल ।
याही[1] मे आया सकल, डाल पान फल फूल ॥१३॥　　इसी मे[1]
कीया ब्रह्म विचार जिन, तिन सब साधन कीन ।
'सुन्दर' राजा के रहै, प्रजा सकल आधीन ॥१४॥
परा पश्यति मध्यमा, हृदये होय विचार ।
'सुन्दर' मुख से वैखरी, वाणी का विस्तार ॥१५॥
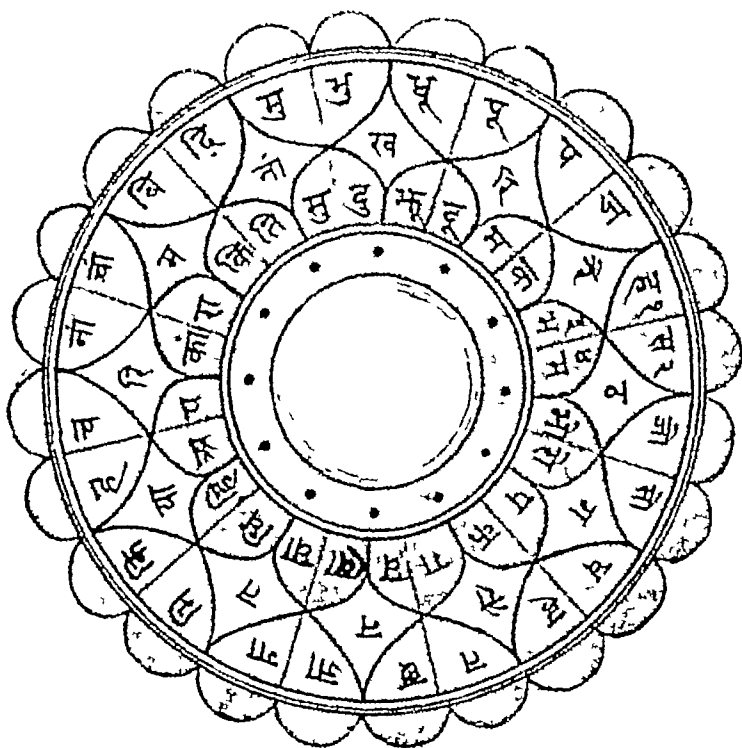
(१३) कंकण बंध पहिला १

डुमिला छन्द

हठ जोग धरी तन जात भिया, हरि नाम बिना मुख धूरि परै ।
सठ सोग हरी छन गात किया, चरि चाम दिना भुष भूरि जरै ।
भठ भोग परी गन षात धिया, अरि काम किना सुख झूरि मरै ।
मठ रोग करी घन घात हिया, परि राम तिना दुख दूरि करै ।

—o—

[इसके पढने की विधि सामने पृष्ठ पर देखें]

कंकण बन्ध (1)

पढने की विधि —

कंकण के भीतर विभाग इस प्रकार है कि ऊपर की वडी पखडियो के और नीचे की छोटी पखडियो के दो २ टुकडे है। और इन टुकडो के चार २ (दो पिछली और दो पहिली) के बीच मे चौकोर से घर बन गये है। अब छन्द के चारो चरणो के आद्य अक्षरो पर १-२-३-४ के अङ्क रख दिये गये है और ये अक्षर वडी छोटी पत्तियो के टुकडो मे पास २ लिखे हुए हैं। यह भी ध्यान रहे कि छन्द का प्रत्येक शब्द दो २ अक्षरो का है। (१) चौकोर घर के १२ अक्षर चारो पखडियो के टुकडो के अक्षरो के साथ चार २ वेर पढे जाते है। (२) प्रथम चरण यो पढना चाहिये — ह (वडी पाखडी के प्रथमार्ध का अक्षर) ठ चौकोर घर के अक्षर) के साथ पढें। इसी प्रकार आगे सव युग्माक्षरो के ग्यारहो शब्द पढें। प्रत्येक चरण मे बारह २ शब्द दो २ अक्षरो के होने से पढना सहज है। (३) द्वितीय चरण इस प्रकार पढ़े — स (वडी पखडी के द्वितीयार्ध का अक्षर) के साथ ठ (पास के चौकोर घर के अक्षर) को पढें। इसही प्रकार आगे के ग्यारहो शब्द। (४) तृतीय चरण यो पढिये — भ को ठ के साथ (जो छोटीपाखडी के प्रथमार्ध का अक्षर, चौकोर घर के अक्षर है) पढें। और आगे के ग्यारहो शब्द इसही ढग से। (५) चतुर्थ चरण पढने की विधि यह है — म (छोटी पाखडी के द्वितियार्ध के अक्षर) को ठ उसही के साथ पढकर आगे ११ शब्दो को यो ही ॥

'सुन्दर' रूप रहै नही, रूप रूप मिल जाय।
एक अखण्डित आतमा, सब मे रहा समाय ।।१६।।
इन दहुवन के मध्य है, नव तत्त्वन का लिंग।
'सुन्दर' करे विचार जब, वहै होय तब भग ।।१७।।

पच तत्त्व से मिल रहा, सूक्षम लिंग शरीर।
'सुन्दर' एक विचार बिन, चेतन मानत सीर[1] ।।१८।। मिला हुआ[1]
ज्यो काहू के रोग हो, नाडी देखे वैद।
'सुन्दर' अपना सी कहै, वायु किया तन कैद[1] ।।१९।। रोक रखा है[1]
बहुर बुलाया जोतिषी, उन यह किया विचार।
'सुन्दर' ग्रह लागे सबै, कीये पुण्य उबार ।।२०।।

भोपे भोपी आय के, बहुत[1] लगाया दोष। बडा[1]
'सुन्दर' या ऊपर किया, देवी देवन रोष ।।२१।।
अपनी अपनी सब कहै, अटकल[1] परै[2]न कोइ। अनुमान[1] पडे[2]
'सुन्दर' बहुत मता सुने, कछू विचार न होइ ।।२२।।

जे विषयी अत्यन्त कर, रहै विषय फल खाय।
'सुन्दर' मावस की निशा, अभ्र[1] रहे अति छाय ।।२३।। बादल[1]
कोऊ एक मुमुक्षु[1] को, दीया गुरु उपदेश। मोक्ष के इच्छुक को[1]
'सुन्दर' वासे यू कहा, यह ससार कलेश[2] ।।२४।। दुख रुप है[2]
जन्म-मरण बहु भाति के, आगे यम की त्रास।
चौरासी के दुःख सुन, सुन्दर' भया उदास ।।२५।।

बादल गये विलाय के, तारन के उजियार।
देखा रजु को सर्प तब, 'सुन्दर' बिना विचार ।।२६।।
'सुन्दर' किया विचार जब, प्रकट भया तब भान[1]। सूर्य[1]
अधकार रजनी गई, सर्प मिटा रजु जान ।।२७।।

सूता जीव नरेश यह, सुख सज्जा[1] पर आय। शया[1]
बडी अविद्या नीद मे, 'सुन्दर' अति सुख पाय ।।२८।।
आया कर्म खवास[1] चल, नृपति जगावन हेत। सेवक[1]
'सुन्दर' दीनी पुटपरी[2], अतिगति भया अचेत ।।२९।। पैरो पर थपथपी[2]
देखा भक्त प्रधान जब, राजा जागा नाहिं।
'सुन्दर' शक करी नही, पकड झझोरी[1] बाहि ।।३०।। हिलाई[1]
तब उठकर बैठा भया, बहुर जभाई खात।
'सुन्दर' किया विचार जब, तब जागा साक्षात ।।३१।।

देह ग्रोर जो देखिये, पच तत्त्व का देह ।
'सुन्दर' ब्रह्मा कीट लौ, करहु विचार सु येह ।।३२।।
प्राण ग्रोर जो देखिये, सबका एकै प्रान ।
'सुन्दर क्षुधा तृषा लगे, सबको एक समान ।।३३।।
मन हू को जो देखिये, मन सबहिन का एक ।
'सुन्दर' करे विकलपना, ग्ररु सकल्प ग्रनेक ।।३४।।
'सुन्दर' एकै ग्रातमा, जब यह करे विचार ।
तब कुछ भ्रम दीसे नही, एक रहै निरधार[1] ।।३५।। निर्णय[1]

प्रश्न—कै[1] दुख पावे देह यह, कै[2] इन्द्रियन दुख होइ । क्या[1] वा[2]
'सुन्दर' कै दुख प्राण को, यह समझावो कोइ[3] ।।३६।। कौन[3]
कै दुख ग्रन्तहकरण को, मन बुधि चित ग्रहकार ।
'सुन्दर' कै दुख त्रिगुण को, यह तुम कहो विचार ।।३७।।
कै दुख है महतत्त्व को, कै दुख प्रकृति हि मान ।
'सुन्दर' कै दुख पुरुप को, श्री गुरु कहो बखान ।।३८।।
बहु विधि देखा सोच[1]कर, कुछ जाना नहि जाय । विचार[1]
'सुन्दर' यह दुख कौन को, सद्गुरु कहि समझाय ।।३९।।

उत्तर—'सुन्दर' दुख नहि देह को, इन्द्रिन को दुख नाहि ।
दुख नहि दीसे प्राण को, श्वास चले तन माहि ।।४०।।
दुख नहि अतहकरण को, जिन से देह प्रवृत्य[1] । प्रवृत्ति[1]
'सुन्दर' दुख नहि त्रिगुण को, यह तुम जानो सत्य ।।४१।।
दु ख नही महतत्त्व को, प्रकृति सु तो जड रूप ।
'सुन्दर' दुख नहि पुरुप को, सूक्षम तत्त्व ग्रनूप ।।४२।।
जड चेतन सयोग से, उपजा एक ग्रज्ञान ।
'सुन्दर' दुख ताको भया, सद्गुरु कहै सुजान ।।४३।।
जो विचार यह ऊपजे, तुरत मुक्त हो जाय ।
'सुन्दर' छूटे दुखन से, पद ग्रानन्द समाय ।।४४।।
यह विचार सुख रूप है, ग्रौर सबहि दुख राशि ।
'सुन्दर' यासे कटत है, नाना विधि की पाशि ४५।।
भरमावन को ग्रौर सब, पहुचावन को एक ।
'सुन्दर' साधू कहत है, जाका नाम विवेक ।।४६।।
याही एक विचार से, ग्रातम ग्रनुभव होइ ।
'सुन्दर' समझे ग्राप को, सशय रहै न कोइ ।।४७।।

जाही का चिन्तन करे, तैसा ही हो जाय।
'सुन्दर' ब्रह्म विचार से, ब्रह्म हि माहि समाय ।।४८।।

करत विचार विचारिया, एकहि ब्रह्म विचार।
'सुन्दर' सकल विचार मे, यह विचार निज सार ।।४९।।

विचार करते करते जब ब्रह्म का विचार किया तब निश्चय हुआ कि सब विचारो मे एक ब्रह्म विचार ही निज स्वरूप की प्राप्ति का सार साधन है।

ब्रह्म विचारत ब्रह्म हो, और विचारत और।
'सुन्दर' जा[1] मारग चले, पहुचे ताही ठौर ।।५०।। जिसके[1]

इति विचार का अंग २६

अथ अक्षर विचार का अंग २७

दोहा — ऐंन नहीं अरु ऐंन है, गैन नही अरु गैन।
'सुन्दर' नुकता आरसी, दूर किये से ऐन ।।१।।

ऐंन=आत्मा प्रत्यक्ष नही है और प्रत्यक्ष भी है। गैन=अप्रत्यक है और अप्रत्यक नही भी है। केवल एक नुकता (०) विन्दु रुप माया ही की आरसी=आडसी है, नुकता=माया को दूर करने से आत्मा ऐन प्रत्यक्ष ही है।

'सुन्दर' नुकता भिन्न है, मिला ऐंन से नाहिं।
मिल कर दोऊ बाचिये, मिले अमिल यू माहि ।।२।।

नुकता (०) माया भिन्न है, ऐन=आत्मा से नही मिली है किन्तु दोनो को मिलाकर पढे जाते है, फिर भी मिले हुये भी इस प्रकार अमिल ही है अर्थात् आत्मा और माया भिन्न ही हैं, कारण चेतन अचेतन का मिलना सम्भव नही है।

ऐन आतमा जानिये, नुकता भया शरीर।
'सुन्दर' दोऊ भिन्न हैं, मिले देखिये वीर[1] ।।३।।

आत्मा को ऐन जानो और माया मय शरीर नुकता (०) है। सुन्दरदासजी कहते हैं—दोनो भिन्न ही है किन्तु हे भाई[1] अज्ञान से मिले हुये दीखते हैं।

ऐन सु दीरघ देखिये, नुकता तनक दिखाय।
'सुन्दर' नुकता तनक से, ऐन गैन[1] हो जाय ।।४।। गमन की तो[1]

वहै ऐन वह गैन है, नुकता ही का फेर।
'सुन्दर' नुकता भ्रम लगा ज्ञान सुपेदा[1] हेर ।।५।।

वह आत्मा ही प्रत्यक्ष है और वही गैन=प्रत्यक्ष है, केवल माया रूप नुकता का ही फेर है और नुकता भ्रम रूप लगा है, उसके रूप ज्ञान रूप सफेदी[1] फेर दी।

ऐंन ऐंन के ऊपरै, नुकता फूला होइ ।
ऐंन गैंन हो जात है, ऐंन न सूझै कोइ ।।६।।

जैसे ऐन = नेत्र के ऊपर फूला आ जाता है तब ठीक नहीं दीखता, वैसे ही ऐन = आत्मा के ऊपर शरीराध्यास आ जाता है, तब आत्मा शरीर रूप ही हो जाता है और आत्मा का शुद्ध स्वरूप नहीं भासता है ।

नुकता फूला ऊपरै, 'सुन्दर' अजन लाय ।
नुकता फूला दूर हो, ऐंन ही ऐंन दिखाय ।।७।।

आख का फूल अजन से दूर हो जाय तब ऐन = ठीक दीखने लगता है, वैसे ही शरीराध्यास ज्ञान से दूर हो जाता है तब आत्मा ही दीखता है ।

ज्यो अकार अक्षरन मे, त्यो आतम सब माहि ।
'सुन्दर' एकहि देखिये, भिन्न भाव कुछ नाहि ।।८।।

जैसे विंजन मिलत है, पर अक्षर से जाय ।
अहकार 'सुन्दर' गये, आतम ब्रह्म समाय ।।९।।

विंजन पर अक्षर मिले, द्वैत भाव दरसाय ।
भक्त मिलै भगवत को, 'सुन्दर' दास कहाय ।।१०।।

विंजन पर अक्षर मिले, द्वैत भाव नहि कोइ ।
'सुन्दर' ज्ञानी ब्रह्ममय, एकमेक मिल होइ ।।११।।

विंजन स्वर अक्षर मिले, होय और ही रूप ।
रज वीरज सयोग से, उपजे देह स्वरूप ।।१२।।

देखत दीसे एक ही, अर्थ विचारे दोइ ।
'सुन्दर' अद्भुत बात है, समझै पण्डित कोइ ।।१३।।

सोरठा— विंजन होय तकार, तालिव होय शकार जो ।
'सुन्दर' होय छकार, उभय वर्णनहि देखिये ।।१४।।

यू द्विज शूद्र सु एक, ज्ञान विषै नहि भेद है ।
उभय वर्ण तज टेक, ब्रह्म रूप 'सुन्दर' भये ।।१५।।

दोहा— दीरघ के पीछे भये, हो अनयास गुरुत्व ।
'सुन्दर' लघु दीरघ करे, ज्यो अक्षर सयुक्त[1] ।।१६।।

आपन लघु हो जात है, और हि दे सन्मान ।
'सुन्दर' रीति बडेन की, जान हि सन्त सुजान ।।१७।।
जो को आय वडा कहै, धरे वडाहि शीश ।
तो हू आप समा करे, 'सुन्दर' विसवा वीस ।।१८।।

[1] सयुक्त

'सुन्दर' लघुता गह रहै, दूर करे जब गर्व ।
गुरु ताही को देत है, चित्त आपना सर्व ॥१९॥
जो गुरु के पीछे रहै, तो लघु दीरघ होइ ।
आगे लघु का लघु रहै, 'सुन्दर' पुस्तक जोइ[1] ॥२०॥ देख[1]

इति अक्षर विचार का अंग २७

अथ आत्मानुभव का अंग २८

दोहा— मुख से कहा न जात है, अनुभव का आनन्द ।
'सुन्दर' समझै आपको, जहा न कोई द्वन्द्व ॥१॥
उमग चलत है कहन को, कछू कहा नहिं जाय ।
'सुन्दर' लहरि समुद्र मे, उपजे बहुर समाय ॥२॥
कहा कछू नहि जात है, अनुभव आतम सुक्ख ।
'सुन्दर' आवे कंठ लौं, निकसत नाही मुक्ख ॥३॥
सुन्दर' जैसे सर्करा, गूंगे खाई होइ ।
मुख से कहि आवे नही, काख बजावे सोइ ॥४॥
सदा रहै आनन्द मे, 'सुन्दर' ब्रह्म समाय ।
गूंगा गुड कैसे कहै, मन ही मन मुसकाय ॥५॥
जाके निश्चय उपजे, अनुभव आतम ज्ञान ।
'सुन्दर' सो बोले नही, सहज भया गलतान ॥६॥
जाको अनुभव होत है, सोई जाने सार ।
'सुन्दर' कहैं बने नही, मुख से एक लगार[1] ॥७॥ किंचित[1]
कामी जाने काम सुख, सोऊ कहा न जाय ।
आतम अनुभव परम सुख, 'सुन्दर' वचन विलाय ॥८॥
सो जाने जाके भया, आतम अनुभव ज्ञान ।
मुख से कहैं बने नही, 'सुन्दर' जाने जान ॥९॥
'सुन्दर' जिन अमृत पिया, सोई जाने स्वाद ।
विन पीये करता फिरे, जहा तहा बकवाद ॥१०॥
'सुन्दर' जाके वित्त है, सो वह राखे गोइ[1] । गुप्त[1]
कौडी फिरे उछालता, जो टटपूंजा[1] होइ ॥११॥ कंगाल[1]
जाके घट अनुभव नही, ताके सुख नहिं लेश ।
'सुन्दर' बहु बकवाद कर, करता फिरे कलेश ॥१२॥
जाके अनुभव होत है, ताही के सुख चैन ।
'सुन्दर' मुदित रहै सदा, पूछे बोले बैन ॥१३॥

'सुन्दर' डूबकी मार के, सुख मे रहै समाय ।
वह सबको देखत फिरे, वह नहि देखा जाय ॥१४॥
अनुभव करके आतमा, जाने ज्यो आकाश ।
सदा अखण्डित एकरस, 'सुन्दर' स्वय प्रकाश ॥१५॥
ताका आदि न अन्त है, मध्य कहा नहि जाय ।
'सुन्दर' ऐसा आतमा, सब मे रहा समाय ॥१६॥
ना वह सूक्षम स्थूल है, ना वह एक न दोइ ।
'सुन्दर' ऐसा आतमा, अनुभव ही गम होइ ॥१७॥
ना वह रूप अरूप है, ना वह मूल न डाल ।
'सुन्दर' ऐसा आतमा, ना वह वृद्ध न बाल ॥१८॥
लघु दीरघ दीसे नही, ना वह भीत[1] अभीत । हुए[1]
'सुन्दर' ऐसा आतमा, कहिये वचनातीत ॥१९॥
इन्द्रिय पहुच सके नही, मनहू की गम नाहिं ।
'सुन्दर' जाने आपको, आप आप ही माहिं ॥२०॥
बुद्धि हु पहुच सके नही, करे दूर लग दौर ।
'सुन्दर' ऐसा आतमा, पहुच सके क्यो और ॥२१॥
शब्द तहा पहुचे नही, बहु विधि करे बखान ।
'सुन्दर' ऐसा आतमा, अनुभव होय प्रमान ॥२२॥
वेद कहा बहु भाति कर, शास्त्र कही बहु युक्ति ।
'सुन्दर' स्मृत पुराण पुनि, कही बहुत विधि उक्ति ॥२३॥
क्यो ही करा न जात है, व्योम माहिं चित्राम ।
'सुन्दर' कह कह सब थके, है अनुभव विश्राम ॥२४॥
रवि शशि तारा दीप पुनि, हीरा होय अनूप ।
'सुन्दर' उनके तेज से, दीसे उनका रूप ॥२५॥
त्यो आतम के तेज से, आतम करे प्रकाश ।
'सुन्दर' इन्द्रिय जड सबहि, कोइ न जाने तास[1] ॥२६॥ आत्मा को[1]
कोई थापत[1] कर्म को, कोई थापत काल । स्थापित कारण[1]
को कहै सृष्टि स्वभाव से, 'सुन्दर' बाइक[2] जाल ॥२७॥ वचन[2]
को कहै माया ब्रह्म पुनि, दोऊ सदा अनादि ।
जैसे छाया ब्रह्म की, सुन्दर' यू प्रतिपादि[1] ॥२८॥ कथन[1]
नास्तिक वादी यू कहै, कर्त्ता नाही कोइ ।
'सुन्दर' मिला सजोग सब, पुनि वियोग हू होइ ॥२९॥

पट दर्शन सब अन्ध मिल, हस्ती[1] देखा जाय । हाथी[1]
अग जिसा जिन कर गहा, तैसा कहा बनाय ।।३०।।
झगडन लागे परस्पर, काको[1] माने कौन । किसको[1]
'सुन्दर' देखा दृष्टि से, तिन तो पकडी मौन ।।३१।।
बाध गरगदा[1] सब चले, करी मुक्ति को दौर । कमरबधा[1]
'सुन्दर' धोखा मे पडे, मुक्ति कहो किहि ठौर ।।३२।।
मुक्ति बतावत व्योम[1] पर, कहि धोखे के बैन । आकाश[1]
'सुन्दर' अनुभव आतमा, वहै मुक्ति सुख चैन ।।३३।।
कोऊ मुक्ति शिला कहै, दूर बतावत प्रोक्ष[1] । अप्रत्यक्ष[1]
'सुन्दर' अनुभव आतमा, यह ही कहिये मोक्ष ।।३४।।
'सुन्दर' साधन सब करें, कहै मुक्ति हम जाहिं ।
आतम के अनुभव विना, और मुक्ति कहु नाहिं ।।३५।।
'सुन्दर' मीठी बात सुन, लागे कडवा खान ।
कष्ट करें बहु भाति के, तासे अति अज्ञान ।।३६।।
दूर करे सब वासना, आशा रहै न कोइ ।
'सुन्दर' वह ही मुक्ति है, जीवत ही सुख होइ ।।३७।।
'सुन्दर' कोऊ कहत है, नाभि कमल मे ईश ।
कोऊ ऐसे कहत है, हृदय माहिं जगदीश ।।३८।।
कोऊ कठ विषै कहैं, अग्र नासिका कोइ ।।
कोऊ भृकुटी मे कहै, 'सुन्दर' अचरज होइ ।।३९।।
कोऊ कहै लिलाट मे, कोऊ तालू माहि ।
कोऊ भौर गुफा कहै, 'सुन्दर' अनुभव नाहिं ।।४०।।
अनुभव बिन जाने नही, 'सुन्दर' व्यापक रूप ।
बाहर भीतर एक रस, ऐसा तत्त्व अनूप ।।४१।।
पच कोश से भिन्न है, 'सुन्दर' तुरिय स्थान ।
तुरियातीत हि अनुभवै, तहा न ज्ञान अज्ञान ।।४२।।
श्रवण ज्ञान है तब लगे, शब्द सुने चित्त लाय ।
'सुन्दर' माया जल पडे, पावक ज्यो बुझ जाय ।।४३।।
मनन ज्ञान नहिं जात है, ज्यो बिजली उद्योत ।
माया जल बरषत रहै, 'सुन्दर' चमका होत ।।४४।।
निदिध्यास है ज्ञान पुनि, बडवा अनल समान ।
माया जल भक्षण करे, 'सुन्दर' यह हैरान[1] ।।४५।। आश्चर्य[1]

आतम अनुभव ज्ञान है, प्रलय अग्नि की अच ।
भस्म करे सब जाल के, 'सुन्दर' द्वैत प्रपच ।।४६।।
नित्य कहत गुरु आतमा, सो है शब्द प्रमान ।
जैसे व्यापक व्योम पुनि, 'सुन्दर' यह उपमान ।।४७।।
जाकी सत्ता इन्द्रियन, यह कहिये अनुमान ।
'सुन्दर' अनुभव आतमा, यह प्रत्यक्ष प्रमान ।।४८।।
'सुन्दर' तत्त्व जुदे जुदे, रक्खा नाम शरीर ।
ज्यो कदली के खम्भ मे, कौन वस्तु कह वीर[1] ।।४९।। माई[1]
है सो सुन्दर है सदा, नही सु[1] सुन्दर नाहि । सो[1]
नही सु परकट देखिये, है सो लहिये माहि ।।५०।।
बिडवा[1] बुद्धि गुलाब है, शब्द सुफूल प्रकाश । वृक्ष[1]
'सुन्दर' आतम ज्ञान का, अनुभव मध्य सुवास ।।५१।।

इति आतमानुभव का अग २८

अथ अद्वैत ज्ञान का अग २९

दोहा— 'सुन्दर' हू नहि और कुछ, तू कुछ और न होइ ।
जगत कहा कुछ और है, एक अखण्डित सोइ ।।१।।
'सुन्दर' हू नहि तू नही, जगत नही ब्रह्माण्ड ।
हू पुनि तू पुनि जगत पुनि, व्यापक ब्रह्म अखण्ड ।।२।।
'सुन्दर' पहली ब्रह्म था, अबहू ब्रह्म अखण्ड ।
आगे हू यह ब्रह्म है, मृषा पिण्ड ब्रह्माण्ड ।।३।।
वृक्षन को वन कहत हैं, वन मे वृक्ष अनेक ।
'सुन्दर' द्वैत कछू नही, वृक्ष रु वन तो एक ।।४।।
घर कहिये सब भूमि पर, भूमि घरन मे होइ ।
'सुन्दर' एक हि देखिये, कहन सुनन को दोइ ।।५।।
'सुन्दर' घर सब गांव मे, गाव सकल घर माहि ।
घर अरु गाव विचारिये, तो कुछ दूजा नाहि ।।६।।
वापी कूप तलाव मे, सुन्दर' जल नहि और ।
एक अखण्डित देखिये, व्यापक सब ही ठौर ।।७।।
कोरिकिये चित्राम बहु, एक शिला के माहि ।
यू 'सुन्दर' सब ब्रह्ममय, ब्रह्म विना कुछ नाहि ।।८।।
दीप मसाल चिराक बहु, दौ[1] लागो घर लाइ । वनाग्नि[1]
'सुन्दर' पावक एक ही, ऐसे ब्रह्म दिखाइ ।।९।।

सुनहु अक की आदि
दृगाइक विधिसात केते।
रसभोजन पुनि जान
भनौ योगांग हि जेते॥
जलज नाभि दल बूझि
हुई कै कंचन बानी।
निरखि भुवन पुनि कहौ
रंभवय किती बखानी॥
जग मांहिं जु प्रगट पुरान के
नंदन नख कर पग गनें।
सब साधन के सिर छत्र यह
सुंदर भजहु निरंजनं॥१॥

प्रश्न

डौकए दिग्रान्यौ सुं
।कए कदिकानमश्रा द
हुकटष नजभो स र
॥कबबि गष्टांग्र तन भ
मसद लद भिनाज ल ज
।गवा नीबालिक ई हु
रिचामद कलो खिर नि
॥राप्यार्षत्र सडपो भ रं
सदएग्र सु नराषु हिमा ग ज
।नंग हु सबी खन नद नं
हयत्र छ रसि के नधसाव स
॥२॥ नंजरंनि हुजभ रद सुं

उत्तर

छत्रबध
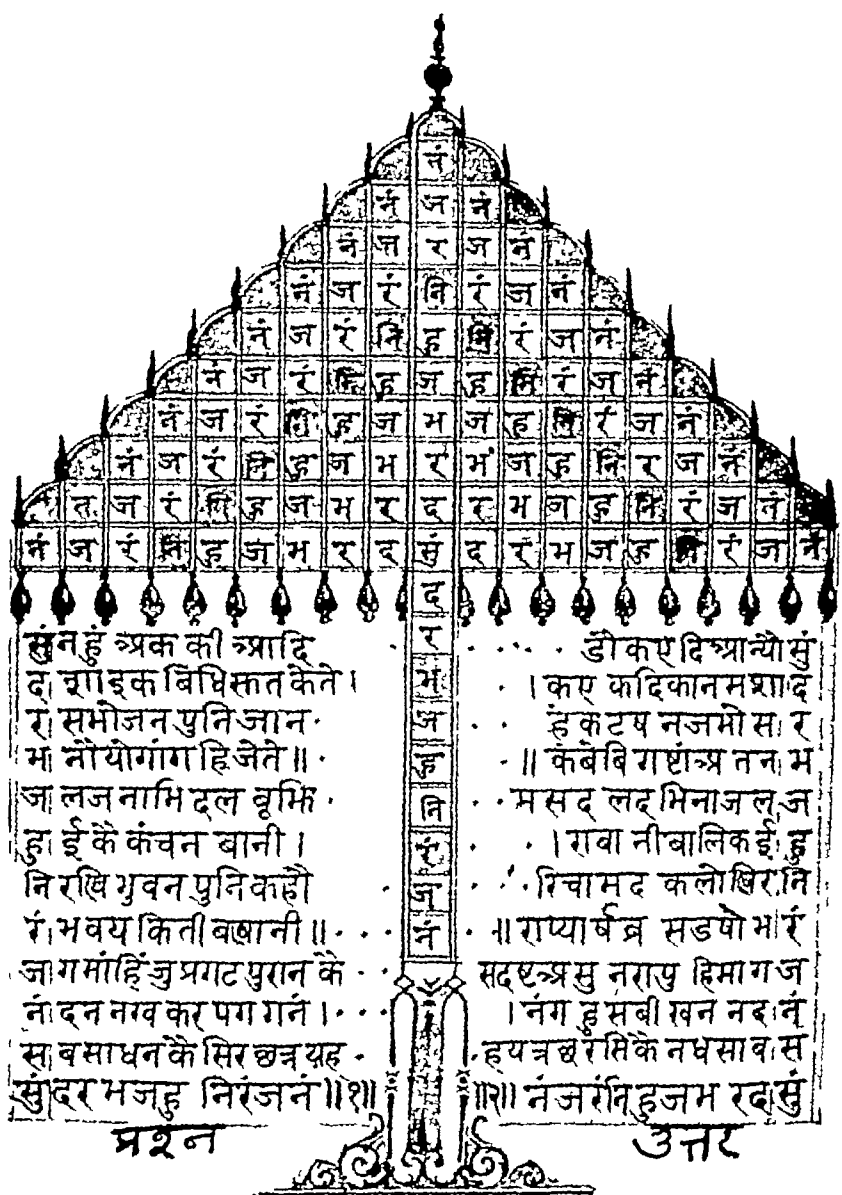
छत्र बन्ध

पढने की विधि —

"सुन्दर भजहु निरजन" यह उल्लाला छन्द का चरणार्ध छत्र मे नीचे ऊपर सर्वत्र पढा जाता है । यही छप्पय के आद्य अक्षरो मे उल्लाला के प्रथमार्ध तक पढा जाता है । और यही बहिर्लापिका के उत्तर की छप्पय के आद्यक्षरो मे दाहिनी पार्श्व मे पढा जाता है । बहिर्लापिका इस प्रकार है कि प्रथम छप्पय मे प्रश्न है और द्वितीय मे उत्तर हैं । अङ्क दो-दो बढ कर बीस तक गये है । इसके दो प्रयोजन प्रतीत होते है । एक तो उक्त पद के दो बेर के १० × २ = २० अक्षर । दूसरे निरजन का भजन ही वीसो बिस्वा सब साधनो मे छत्रवत् शिरोमणि और राजा समान छत्रधारी और ससार से रक्षा करनेवाला है ।

'सुन्दर' यह सब ब्रह्म है, नाम धरा ससार ।
एक बीज से पलट के, हूवा वृक्षाकार ॥१०॥

'सुन्दर' सबकी आदि है, 'सुन्दर' सबका मूल ।
यथा वृक्ष मे देखिये, डाल पान फल फूल ॥११॥

भया[1] सरकरा ईक्षुरस, व्याप्य मिठाई माहिं ! व्यापक[1]
'सुन्दर' ब्रह्म सु जगत है, जगत ब्रह्म द्वै नाहिं ॥१२॥

'सुन्दर' घृत ही बन्ध गया, धरा डला सो नाम ।
ऐसे राम हि जगत है, जगत देखिये राम ॥१३॥

'सुन्दर' पानी से कछू, पाला[1] भिन्न न होइ । बर्फ[1]
ऐसे जगत सु ब्रह्म है, जगत ब्रह्म नहिं दोइ ॥१४॥

'सुन्दर' नीर समुद्र का, जम कर हूवा लौन ।
तैसे यह सब ब्रह्म है, दूजा कहिये कौन ॥१५॥

'सुन्दर' जैसे लोह के, किये बहुत हथियार ।
ऐसे यह सब ब्रह्म है, जो दीसे विस्तार ॥१६॥

कारण से कारज भया, कारण कारज एक ।
जैसे कचन से किये, 'सुन्दर' घाट[1] अनेक ॥१७॥ भूषण[1]

जैसे कीये मैंण[1] के, हय[2] हाथी बहु जन्त[3] । मोम[1] घोडा[2] जीव[3]
'सुन्दर' ऐसे ब्रह्म है, आदि मध्य अरु अन्त ॥१८॥

जैसे मनिका सूत के, बीच सूत का तार ।
ऐसे 'सुन्दर' ब्रह्म सब, याही[1] है निरधार[2] ॥१९॥ यही[1] निर्णय[2]

'सुन्दर' ताना सूत का, बाने बुनिया सूत ।
नाम धरा फिर और ही, यथा बाप से पूत ॥२०॥

सुन्दर मे 'सुन्दर' जगत, सुन्दर है जग माहिं ।
जल सुतरग तरग जल, जल तरग द्वै नाहिं ॥२१॥

'सुन्दर' ब्रह्म अखण्ड पद, 'सुन्दर' यह विस्तार ।
ज्यो सागर मे बुदबुदा, फेन तरग अपार ॥२२॥

'सुन्दर' मे जग देखिये, जग मे 'सुन्दर' सोइ ।
कुजर मे नारी प्रकट, नारी कुजर होइ ॥२३॥

लीला मे नारी हाथी बनती है फिर वही नारी हाथी से नारी बन जाती है । गोपी को कुजर भी कहते हैं ।

जैसे बुनत महीर[1] मे, फुलडी पडती जाहि ।
तैसे 'सुन्दर' ब्रह्म से, जगत भिन्न कुछ नाहि ।।२४।।

महीर[1] नामक वस्त्र मे जुलाहे बुनते समय फूलादि बुन देते हैं, ऐसे ब्रह्म से जगत बनता है ।

चीर माहि ज्यो चूनरी, गिलम[1] माहि बहु भाति । गलीचा मे[1]
ऐसे 'सुन्दर' देखिये, जगत ब्रह्म नहि द्वाति[1] ।।२५।। दो=द्वैत[1]
राजा प्रजा तुरग गज, पशु पक्षी बहु जन्त[1] । जीव[1]
'सुन्दर' पट ज्यो आतमा, जग चित्राम अनन्त ।।२६।।

इक कीड हि इक मारियहि, वस्तर को कुछ नाहि ।
'सुन्दर' जग चित्राम ज्यो, पट आतम के माहि ।।२७।।

कोट कागुरे एक है, देखत दीस हि होइ ।
ऐसे 'सुन्दर' ब्रह्म से, जगत भिन्न नहि होइ ।।२८।।
लीक हाथ पर देखिये, ज्यो शीतला शरीर ।
ऐसे 'सुन्दर' ब्रह्म से, जगत भिन्न नहि वीर ।।२९।।
'सुन्दर' मे ससार है, ज्यो शरीर मे अग ।
हस्त पाव मुख नासिका, नैन श्रवण सब सग ।।३०।।
हस्त पाव अरु अगुली, नैन नासिका कान ।
'सुन्दर' जगत शरीर ज्यो, निन्दै कौन स्थान ।।३१।।
'सुन्दर' जिह्वा आपनी, अपने ही सब दत ।
जो रसना विदलित[1] भई, तो कहा वैर करत ।।३२।। दात से पिस गई[1]
'सुन्दर' ज्यो आकाश मे, अभ्र[1] होय मिट जाहि । बादल[1]
त्यो आतम से जगत है, ताही मध्य समाहि ।।३३।।

जहँ 'सुन्दर' तहँ जग नही, जग तहँ सुन्दर नित्य ।
जहँ पृथ्वी तहँ घट नही, घट तहँ पृथ्वी सत्य ।।३४।।

वोह सोह एक ही, तू हो हू ही एक ।
कहिवे ही का फेर है, 'सुन्दर' समझ विवेक ।।३५।।
ज्यो माता हाऊ कहै, बालक माने त्रास ।
त्यो 'सुन्दर' ससार है, मिथ्या वचन विलास ।।३६।।

जगत नाम सुन भ्रम भया, माना सत्य स्वरूप ।
'सुन्दर' मृग जल देखिये, है सूरय की धूप ।।३७।।
जैसे महदाकाश से, घटाकाश नहि भिन्न ।
यू आतम परमातमा, 'सुन्दर' सदा प्रसन्न ।।३८।।

आतम अरु परमातमा, कहन सुनन को दोइ ।
'सुन्दर' तब ही मुक्त है, जबहि एकता होइ ॥३९॥
देह धरे यह जीव है, ईश्वर धरे विराट ।
कारज कारण भ्रम गये, 'सुन्दर' ब्रह्म निराट[1] ॥४०॥ केवल[1]
जगत जगत सब को कहै, जगत कहो किहि ठौर ।
'सुन्दर यह तो ब्रह्म है, नाम धरा फिर और ॥४१॥
खोज करत ही जगत का, जगत विलय हो जाइ ।
'सुन्दर' यह सब ब्रह्म है, जगत कहा ठहराइ ॥४२॥
जगत कहेते जगत है 'सुन्दर' रूप अनेक ।
ब्रह्म कहेते ब्रह्म है, वस्तु विचारे एक ॥४३॥
प्रकट भया भ्रम जगत का, करते जगत विचार ।
'सुन्दर' ब्रह्म विचार ते, जगत न रहा लगार[1] ॥४४॥ किंचत भी[1]
ज्यो रवि के उद्योत से, अन्धकार भ्रम दूर ।
'सुन्दर ब्रह्म विचार से, ब्रह्म रहा भरपूर ॥४५॥
'सुन्दर' सर्व खल्विद[1], ब्रह्म कहत है वेद । सब यह श्रुति[1]
चतुर श्लोकी[2] मांहि पुनि, सकल मिटाया भेद ॥४६॥ भागवत मे[2]
'सुन्दर' कहा वसिष्ट[1] पुनि, रामचन्द्र मे ज्ञान । योगवाशिष्ट मे[1]
ब्रह्म बताया एक हो, दूर किया भ्रम आन[1] ॥४७॥ अन्य[1]
'सुन्दर' अष्टावक्र[1] ऋषि, ब्रह्म बताया एक । अष्टावक्र गीता मे[1]
दूर किया भ्रम सकल ही, जो नानात्व अनेक ॥४८॥
दत्तात्रय[1] मुनि यू कहा, ब्रह्म विना कुछ नाहि । दत्तात्रय संहिता मे[1]
'सुन्दर' सोई कृष्णजी, भाषा[1] गीता माहि ॥४९॥ कहा[1]
'सुन्दर' यहै निरूपिया, बहु विधि कर वेदात[1] । उपनिषादि[1]
ब्रह्म विना दूजा नही, सब का यह सिद्धात ॥५०॥

इति अद्वैत ज्ञान का अंग २९

अथ ज्ञानी का अंग ३०

दोहा—'सुन्दर' ज्ञानी जगत मे, विचरै सदा अलिप्त ।
वह गुण जाने देह के, भूखा रहे कि तृप्त ॥१॥
खान पिवै देखै सुनै, 'सुन्दर' ले पुनि स्वास ।
नाखै तीर पताल को, फिर मारै आकाश ॥२॥
देखे पर देखै नही, सुनता सुनै न कान ।
जाने सब जानै नही, 'सुन्दर' ऐसा ज्ञान ॥३॥

भक्ष करे न भखे कछू, सू घत सू घे नांहि ।
ऐसे लक्षण देखिये, 'सुन्दर' ज्ञानी मांहि ॥४॥
बोलत ही अनबोलता, मिलता ही अनमेल ।
सोवत ही अनसोवता, 'सुन्दर' ऐसा खेल ॥५॥
बैठे पै बैठा नही, उठत उठा न मान ।
चलते सो चाले नही, 'सुन्दर' ज्ञानी जान ॥६॥
देत कछू नहिं देत है, लेत कछू नहिं लेत ।
यह सब जाने स्वप्न कर, 'सुन्दर' ज्ञानी सेइ[1] ॥७॥ सो[1]
काज अकाज भला बुरा, भेदाभेद न कोइ ।
'सुन्दर' ज्ञानी ज्ञानमय, देह क्रिया सब होइ ॥८॥
कायक वायक मानसी, कर्म न लागे ताहि ।
'सुन्दर' ज्ञानी ज्ञानमय, देह क्रिया सब आहि[1] ॥९॥ होय[1]
पहले किया न अब करू, आगे की नहिं आश ।
'सुन्दर' ज्ञानी ज्ञान कर, काटे बन्धन पाश ॥१०॥
विधि निषेध जाके नही, ना कुछ पाप न पुन्य ।
'सुन्दर' ज्ञानी ज्ञान मे, सब कर जाने शून्य[1] ॥११॥ ब्रह्म[1]
हर्ष शोक उपजे नही, राग द्वेष पुनि नांहि ।
'सुन्दर' ज्ञानी देखिये, गरक ज्ञान के मांहि ॥१२॥
बन्ध मोक्ष जाके नही, स्वर्ग नरक नहिं दोइ ।
'सुन्दर' ज्ञानी ज्ञानमय, सशय रहा न कोइ ॥१३॥
घर वन दोऊ सारिखे, ना कुछ ग्रहण न त्याग ।
'सुन्दर' ज्ञानी ज्ञानमय, ना कहु राग विराग ॥१४॥
निन्दा स्तुती देह की, कर्म शुभाशुभ देह ।
'सुन्दर' ज्ञानी ज्ञानमय, कछू न जाने येह ॥१५॥
काहू से घट बढ नही, काहू निकट न दूर ।
'सुन्दर' ज्ञानी ज्ञानमय, ब्रह्म रहा भरपूर ॥१६॥
शब्द सुने सो ब्रह्ममय, कहै ब्रह्ममय बैन ।
'सुन्दर' ज्ञानी ब्रह्म मय, ब्रह्म हि देखे नैन ॥१७॥
पच तत्त्व पुनि ब्रह्ममय, ब्रह्म कीट पर्यन्त ।
ज्ञानी देखे ब्रह्ममय, 'सुन्दर' सत असन्त ॥१८॥
'सुन्दर' विचरत ब्रह्ममय, ब्रह्म रहा भरपूर[1] । परिपूर्ण[1]
जैसे मच्छ समुद्र मे, कहा जाय कछु दूर ॥१९॥

जो पग पहरी पानही[1], काटा चुभे न कोइ । 　　　　जूता[1]
'सुन्दर' ज्ञानी सुखमयी, जहा तहा सुख होइ ।।२०।।
जलचर थलचर व्योमचर, जीवन की गति तीन ।
ऐसे 'सुन्दर' ब्रह्मचर, जहा तहा लयलीन ।।२१।।
अपने मन आनन्द है, तो सगले[1] आनन्द । 　　　　सब स्थान मे[1]
'सुन्दर' मन शीतल भया, दह दिशि शीतल चन्द ।।२२।।
ऊठत बैठत फिरत हू, खात हु पीवत प्रान ।
'सुन्दर' ज्ञानी के सदा, कहिये केवल ज्ञान ।।२३।।
जागत सोवत जोवते,[1] सुख से करत बखान । 　　　　देखते[1]
'सुन्दर' ज्ञानी के सदा, कहिये केवल ज्ञान ।।२४।।
भूत हु भव्य[1] हु वर्तते[2], दूजा नाही आन । भविष्यत्[1] वर्तमान[2]
'सुन्दर' ज्ञानी के सदा, कहिये केवल ज्ञान ।।२५।।
अध ऊरध दश हूं दिशा, पूरण ब्रह्म समान ।
'सुन्दर' ज्ञानी के सदा, कहिये केवल ज्ञान ।।२६।।
घटाकाश ज्यो मिल गया, महदाकाश निदान ।
'सुन्दर' ज्ञानी के सदा, कहिये केवल ज्ञान ।।२७।।
मुक्ति शिला मूये कहै, ते तो अति अज्ञान ।
'सुन्दर' ज्ञानी के सदा, कहिये केवल ज्ञान ।।२८।।
भावे तन काशी तजो, भावे बागड मांहि ।
'सुन्दर' जीवन मुक्त के, सशय कोऊ नांहि ।।२९।।
जैसा काशी क्षेत्र है, तैसा बागड देश ।
'सुन्दर' जीवन मुक्त के, शक नही लवलेश ।।३०।।
अज्ञानी को जगत सब, दीसे दुख सताप ।
'सुन्दर' ज्ञानी के सकल, ब्रह्म विराजे आप ।।३१।।
अज्ञानी को जगत यह, दुखदायक भय त्रास ।
'सुन्दर' ज्ञानी के जगत, है सब ब्रह्म विलास ।।३२।।
अज्ञ क्रिया कुछ करत है, अह बुद्धि को आन ।
'सुन्दर' ज्ञानी करत है, अहकार विन जान ।।३३।।
अज्ञानी सुख दुखन को, जानत अपने मांहि ।
'सुन्दर' ज्ञानी आप मे, सुख दुख माने नांहि ।।३४।।
'सुन्दर' अज्ञ रु तज्ञ[1] के, अतर है बहु भाति । 　　　　ज्ञानी[1]
वाके दिवस अनूप है, वाहि अधेरी राति ।।३५।।

ज्ञानी शुभ कर्मनि करे, लोक आचरण हेत[1] । लिये[1]
बहुत भांति के शब्द कहि, 'सुन्दर' शिक्षा देत ॥३६॥

जानत है सब स्वप्न कर, इन्द्रिनि का व्यवहार ।
'सुन्दर' ज्ञानी ज्ञान से, भिन्न न होय लगार[1] ॥३७॥ किंचित[1]

'सुन्दर' ज्ञानी ज्ञान मे, नरक भया निज ठौर ।
दंत दिखावे और गज, दशन खान के और ॥३८॥

तम रज गुण कर जगत है, भक्त सतोगुण रुद्ध[1] । रुका[1]
'सुन्दर' तीनो गुण परे, ज्ञानी सात्विक शुद्ध ॥३९॥

तवा अधो मुख आरसी[1], दर्पण सूधा होइ । दर्पण[1]
ऐसे तम रज सत्व गुण, सुन्दर' देखहु जोइ[2] ॥४०॥ विचार[2]

तमगुण तवा के समान, रजगुण दर्पण के उंधी ओर के समान, सतोगुण सूधा दर्पण के समान विचार करके देखे तो ठीक समझ में आयेगा । तमोगुण, रजोगुण प्रधान अन्त करण मे आत्मा न भासे ।

तवा माहि नहि देखिये, सूरय का उद्योत ।
'सुन्दर' मूंधी आरसी, तामे कछूक होत ॥४१॥

जब दर्पण सूधा करे, रवि आभासे आय ।
'सुन्दर' दर्पण मिट गये, सूरय ही रह जाय ॥४२॥

जीव ब्रह्म मिल जात है, 'सुन्दर' उपजे ज्ञान ।
दूर भया प्रतिबिम्ब जब, रहा एक ही भान[1] ॥४३॥ सूय[1]

'सुन्दर' ज्ञान प्रकाश से, धोखा रहै न कोइ ।
भावे[1] घर माही रहो, भावे वन मे होइ ॥४४॥ चाहे[1]

वन से घर आवे नही, घर से वन नहि जाय ।
'सुन्दर' रवि उद्दोत से, तिमिर कहा ठहराय ॥४५॥

पक्षी को पर[1] टूट के, भूमि पडा जिहि ठौर । पख[1]
'सुन्दर' उडबे से रहा, मिटी सकल ही दौर ॥४६॥

एक क्रिया खेती करे, बन्धन होत अपार ।
एक क्रिया भोजन करत, बन्धन उतनी बार ॥४७॥

एक क्रिया मल मूत्र को, तजत नही कुछ प्यार ।
'सुन्दर' ज्ञानी की क्रिया, बन्धन नहीं लगार[1] ॥४८॥ किंचित[1]

चौपर खेल हि दो जने, 'सुन्दर' बाजी लाय ।
जीते सु[1] तो खुसाल हो, हारे सो मुरझाय ॥४९॥ सो[1]

अथ अन्योऽन्य भेद का अंग ३१

दोहा—'सुन्दर' ज्ञानी नृपति के, सेना है चतुरंग।
रथ अश्व गज त्रय अवस्था, इन्द्रिय पाइक संग ॥१॥
तुरिया सिंहासन किया, तुरियातीत सु ओक[1]। निज भवन[1]
ज्ञान छत्र है शीश पर, 'सुन्दर' हर्ष न शोक ॥२॥
रथ चौवीस हु तत्त्व का, कर्म शुभाशुभ बैल।
'सुन्दर' ज्ञानी सारथी, करे दशों दिशि सैल ॥३॥
तीन गुण इन्द्रिय सकल, ये सब चालें गैल।
'सुन्दर' विचिरत जगत मे, ताहि न लागे मैल ॥४॥
(२) अन्य भेद—देह तमूरा ठाट जड, जीभ तार तिहिं लाग।
'सुन्दर' चेतन चतुर बिन, कौन बजावे राग ॥१॥
जीभ तार दोऊ बजहिं, 'सुन्दर' देखहु आय।
एक बजावत देखिये, एक न देखा जाय ॥२॥
एक कहा अनुमान कर, एक देखिये अक्ष[1]। नेत्र[1]
'सुन्दर' अनुभव होय जब, तब देखिये प्रत्यक्ष ॥३॥
किन हूं पूछा फेरिके, अनुभव कैसा होइ।
'सुन्दर' तुम अनुभव कहा, चिन्ह बतावो कोइ ॥४॥
तेरे अनुभव होय है, तबहिं जान है वीर[1]। भाई[1]
मुख से कही न जात है, 'सुन्दर' सुख की सीर[2] ॥५॥ धार[2]
कन्या पूछत और त्रिय, पुरुष मिलन का सुक्ख।
'सुन्दर' परसी[1] पीव को, तब कुछ कहै न मुक्ख ॥६॥ मिली[1]
गूंगे खाई सरकरा, 'सुन्दर' मन मुसकाइ।
सैन बतावे हाथ से, मुख से कहा न जाइ ॥७॥
जिन जिन को अनुभव भया, तिन तिन पकडी मौन।
'सुन्दर' अनुभव गोपि[1] है, चिह्न बतावे कौन ॥८॥ गुप्त[1]
'सुन्दर' जैसे पुरुष से, अगुली हो चेतन्य।
अगुली यन्त्र बजाव ही, राग अन्य ही अन्य ॥९॥
... तो चेतन्य है, अगुली अन्तहकर्ण।
...जे यन्त्र तन, शब्द कहै बहु वर्ण ॥१०॥१४॥
... अरु चित आनन्दमय, ब्रह्म विशेषण तीन।
...प्रिय आतमा, वहै विशेषण कीन ॥१॥
... दु ख मय, तीन विशेषण देह।
...न हो, मव विकार का गेह ॥२॥

एक जना दुहुं ओर को, चौपर खेले आन[1]। 　　आकर[1]
'सुन्दर' हार न जीत कुछ, ऐसे ज्ञानी जान ।।५०।।
'सुन्दर' देखा आप को, सुने आपने बैन।
बूडा[1] अपनी बुझ[2] को, समझा अपनी सैन ।।५१।। निमग्न[1] ज्ञान[2]
'सुन्दर' भाया आपको, आया अपने ठाम[1]। 　　ठिकाना[1]
गाया अपने ज्ञान को, पाया अपना धाम ।।५२।।
अत्यज ब्राह्मण आदि दे, दार[1] मथे जो कोइ। 　　अरणि काठ[1]
'सुन्दर' भेद कछू नही, प्रकट हुताशन[3] होइ ।।५३।। 　　अग्नि[3]
दीपक जाया विप्र घर, पुनि जोया चण्डाल।
'सुन्दर' दोऊ सदन का, तिमिर गया ततकाल ।।५४।।
अत्यज के जल कुम्भ मे, ब्राह्मण कलश मझार।
'सुन्दर' सूर प्रकाशिया, दुहुन मे इकसार ।।५५।।
अत्यज ब्राह्मण आदि दे, कि वा रक कि भूप।
'सुन्दर' दर्पण हाथ ले सो देखे निज रूप ।।५६।।
'सुन्दर' सब को ज्ञान की, बातें कहै अनेक।
ज्यो दर्पण बहु भाति के, अग्नि पड़े[1] कहु एक ।।५७।। 　　प्रकटे[1]
देह चले आतमा अचल, चलत कहै मतिमन्द।
अभ्र चलत ज्यो देखिये, 'सुन्दर' चले न चन्द ।।५८।।
सूरय कर के देखिये, तवा आरसी दोइ।
सूरय सूरय सा दमै, 'सुन्दर' समझे कोइ ।।५९।।
जो भिक्षा मागत फिरे, कै जो भुक्ते राज।
'सुन्दर' ज्ञानी मुक्त है, ना कुछ काज अकाज ।।६०।।
इन्द्री अर्थन को गहै, लिप्त न कबहू होइ।
'सुन्दर' ज्ञानी मुक्त है, कर्म न लागे कोइ ।।६१।।
रागी त्यागी शान्त पुनि, चतुर्थ घोर बखान।
ज्ञानी चार प्रकार है, तिन हि लेहु पहचान ।।६२।।
रागी राजा जनक है, त्यागी शुक सम थोर[1]। 　　थोडे[1]
शात जान जमदग्नि को, दुर्वासा अति घोर ।।६३।।
क्रिया सु तिन की भिन्न है, भिन्न देह व्यवहार।
ज्ञान विषै[1] नहिं भेद है, सुन्दर' एक लगार ।।६४।। 　　मे[1]
क्रिया देख ज्ञानी न की, सब कोऊ भ्रम जाहि।
'सुन्दर' देखे, देह कृत[1], आशय पावे नाहिं ।।६५।। 　　काम[1]

इति ज्ञानी का अग ३०

अह्म देह के मध्य है, अन्तःकरण उपाधि ।
तत सम्बन्धी आतमा, ताहि लगी यह व्याधि ॥३॥
याही[1] शुद्ध अशुद्ध है, या के ज्ञान अज्ञान । यही[1]
जड से मिल जडवत भया, जीवातम सो जान ॥४॥
अस्ति असत सो जानिये, भाति भया जड रूप ।
प्रिय पुनि हुवा दुःखमय, भूल पडा भ्रम कूप ॥५॥
यह लक्षण अज्ञान का, देह सू माना आप ।
'सुन्दर' या अभिमान से, व्यापे तीनो ताप ॥६॥
ताही से यह जीव है, अहं ममत जब होइ ।
भूल गया निज रूप को, सुधि बुधि अपनी खोइ ॥७॥
जो कोई जिज्ञासू हो, सद्गुरु शरणे जाय ।
'सुन्दर' ताहि कृपा करे, ज्ञान कहैं समझाय ॥८॥
वासे सद्गुरु यू कहैं, समझ आपनो रूप ।
सकल भेद भ्रम दूर कर, तू है तत्त्व अनूप ॥९॥
अस्ति होय सत रूप तब, भाति होय चैतन्य ।
प्रिय पुनि हो आनन्दमय, आतम ब्रह्म न अन्य ॥१०॥
जीव भया अनुलोम से, ब्रह्म होय प्रतिलोम ।
'सुन्दर' दारु जलाय के, अग्नि होय निर्धोम ॥११॥२५॥

(४) अन्य भेद—गऊ देह के मध्य है, पय अरु उत्तम ज्ञान ।
'सुन्दर' घृत ज्यो आतमा, व्यापक एक समान ॥१॥
चार श्रवण जब नीरिये, बाट मनन अभ्यास ।
'सुन्दर' दुहिये धेनु को, सो कहिये निदिध्यास ॥२॥
दुग्ध ज्ञान जब पाइये, जा मन निश्चय तात ।
'सुन्दर' दधि मथ अनुभवै, निकसे घृत साक्षात ॥३॥
'सुन्दर' या अनुक्रम बिना, ज्ञान प्रकट नहिं होय ।
बात कहे का होत है, भ्रम मत भूलै कोय ॥४॥२९॥

(५) अन्य भेद—क्रिया करत है बहुत विधि, ज्ञान दृष्टि जो नाहिं ।
अन्ध चला मग जात है, पडे कूप के माहिं ॥१॥
ज्ञान दृष्टि कर निपुण है, क्रिया नहीं [illegible] दौर ।
अग्नि लगे जब सदन [illegible] जरे [illegible] ॥२॥
ज्ञान क्रिया दोऊ [illegible]
यथा अन्ध के कन्ध [illegible]

कूप अग्नि दोऊ बचहिं, तामे फेर न कोइ ।
'सुन्दर' ज्ञान क्रिया बिना, मुक्त कदे नहिं होइ ।।४।।
क्रिया भक्ति हरि भजन है, और क्रिया भ्रम जान ।
ज्ञान ब्रह्म देखे सकल, 'सुन्दर' पद निर्वान ।।५।।३४।।

(६) अन्य भेद—कर्ता कर्मन भोगता, पुद्गल जीवन कोइ ।
'सुन्दर' यह भ्रम स्वप्न मे, जागे एक न दोइ ।।१।।
भ्रम कर्ता भ्रम भोगता, भ्रम सु कर्म अरु काल ।
भ्रम पुद्गल भ्रम जीव है, 'सुन्दर' सब भ्रम जाल ।।२।।
वचन जाल उरझे सबहि, सुरझावे गुरु देव ।
नेति नेति करते रहै, 'सुन्दर अलख अभेव[1] ।।३।।　　अभेद[1]
एक अखण्डित ब्रह्म है, दूसर नाही आन[1] ।　　अन्य[1]
'सुन्दर' भ्रम रजनी मिटे, प्रकट होय जब भान[2] ।।४।।　　सूर्य[2]
कठिन बात है ज्ञान की, 'सुन्दर' सुनी न जाय ।
और कहू नहिं ठाहरे, ज्ञानी हृदय समाय ।।५।।३९।।

इति अन्योऽन्य भेद का अग ३१

इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित साखी समाप्त साखी अग ३१ सर्व साखी १३५१ ।

अथ पद (भजन) ग्रन्थ ४१

जकडी राग गौडी (१) ताल रूपक, जीव काया सवाद दे कहै सुन प्राणिया काहे होत उदासवे ।

अरस परस हम तुम मिले, ज्योव् पहुप अरु बास वे ।।टेक।।
इक पहुप बास मिलाप जैसा, दूध घृत ज्यो मेल वे ।
काष्ठ मे ज्यो अग्नि व्यापक, तिलन मे ज्यो तेल वे ।।
जैसे उदक लवना मध्य गवना, एक मेक बखानिया ।
'सुन्दर' दास उदास काहे, देह कहै सुन प्राणिया ।।१।।
जीव कहै काया सुनो, हम तुम होय वियोग वे ।
हम निर्गुण तुम गुणमयी, कैसे रहत सयोग वे ।।
सयोग कैसे रहत तोसे, हू अमर अविनाश वे ।
तू क्षण भगुर आहि बौरी[1], कौन ताकी आश वे ।।　　बावली[1]
इक आश ताकी कहा करिये, नाश होवे तिहि तनो ।
'सुन्दरदास' उदास याते, जीव कहै काया सुनो ।।२।।
देह कहै सुन प्राणिया, तोहि न जानत कोय वे ।
प्रकट सु तो हमसे भया, कृतघनी जनि[1] होय वे ।।　　क्यो[1]

इक होय जनि कृतघनी कव हो, भोग बहु विधितै किये ।
शब्द सपरस रूप रस पुनि, गंध नीके कर लिये ।।
इक लिये गंध सुवास परिमल, प्रकट हमसे जानिया ।
'सुन्दरदास' विलास कीने, देह कहै सुन प्राणिया ।।३।।

जीव कहै काया सुनो, तू काहू नहिं काम वे ।
शोभ[1] दिई हम आपके, चेत न कीया चाम वे ।। शोभा[1]
इक चाम चेतन आय कीया, दिया जैसे भौन[1]वे । भवन[1]
बोलन चालन तबहिं लागी, नहि तु[2]होती मौन वे ।। तू[2]
यह मौन तेरी जबहिं छूटे[1], तब हि तुम नीकी बनो । खुले[1]
'सुन्दरदास' प्रकाश हम से, जीव कहै काया सुनो ।।४।।

देह कहै सुन प्राणिया, तेरे आख न कान वे ।
नासा मुख दीसे नही, हाथ न पाव निसान वे ।।
इक हाथ पाव न शीश नाभी, कहा तेरा देखिये ।
भिन्न हमसे जबहि बोले, तबहिं भूत विशेषिये ।
डरै सब कोइ शब्द सुने, भरम भय कर मानिया ।
'सुन्दरदास आभास[1] ऐसा, देह कहै सुन प्राणिया ।।५।। प्रकट दीखे[1]

जीव कहै काया सुनो, तो मे बहुत विकार वे ।
हाड मास लौहू भरी, मज्जा मेद अपार वे ।।
इक मेद मज्जा बहुत तो मे, चरम ऊपर लाइया ।
जा घडी हम होहि न्यारे, सबहि देखि घिनाइया[1] ।। घृणा[1]
घिन करे सबको[2] देख तो को, नाक मूंदे जन जनो । सब कोई[2]
'सुन्दरदास'सुवास हमसे, जीव कहै काया सुनो ।।६।।

देह कहै सुन प्राणिया, तेरे ठौर न ठाम वे ।
लेत हमारा आसरा, धरत हम ही को नाम वे ।।
तू नाम कैसे धरत हमको, बात सुनिये एक वे ।
जा हाडी मे खाय चलिये, ताहि न करिये छेक वे ।।
अब छेक कीये नाहि शोभा, कर हमारी कानिया[1] । काण[1]
'सुन्दरदास' निवास हम मे, देह कहै सुन प्रानिया ।।७।।

जीव कहै काया सुनो, मेरे ठौर अनन्त वे ।
आया था इस काम को, भजन करन भगवत वे ।।
भगवत भजने कारन आया, प्रभु पठाया आप वे ।
पीछली सुधि सबहि बिसरी, भया ताहि मिलाप वे ।।

इक मिले तो से कहा कोसो, अन्तरा पाडा[1] घनो । पड गया[1]
'सुन्दरदास' विसास[2]घातनि, जीव कहै काया सुनो ।।८।। विश्वास[2]

(२) निज स्थिति

अलख निरजन ध्यावउ, और न जाचउ रे ।
कोटि मुक्ति देइ कोई, तो ताहि न राचउ[1] रे ।।टेक।। अनुरक्त[1]

ब्रह्मा कहिये आदि, पार नहिं पावे रे ।
कीया कर्म कुलाल[1], सु मन नहिं भावे रे ।।१।। कुम्भार[1]

विष्णु हुते[1] अधिकारि, सु तो ग्रभ[2] जनमा रे । थे[1] गर्भ[2]
सकट माही आय, दशो दिश भरमा रे ।।२।।

शकर भोला नाथ, हाथ वर दीना रे ।
अपना काल उपाय, मरम नहिं चीन्हा रे ।।३।।

शकर ने भस्मासुर को कडा वर दिया । जिसके शिर पर तू अपना हाथ करेगा वह भस्म हो जायगा, उसने फिर शिव को ही भस्म करना चाहा, इससे शकर ने अपने काल को आपने उत्पन्न किया । आगे की कथा प्रसिद्ध है ।

औरो देविय देव, सेव हम त्यागिय रे ।
सब से भया उदास, ब्रह्म लय लागिय रे ।।४।।

जाचिक निकट अवास[1], आश धर गावे रे । निवास[1]
बाहर ठाडा[2] रहै, कि भीतर आवे रे ।।५।। खडा[2]

खबर भई दातार, सार मोहि बूझि रे ।
इह आवन की गैल, तोहि कस सूझी रे ।।६।।

जाचिक बोले बैन, सकल फिर आया रे ।
तो जैसा को[1] और, कहू नहिं पाया रे ।।७।। कोई[1]

सब साहन पर साह, नृपती पर राय रे ।
सब देवन पर देव, सुन्या सुख दाय रे ।।८।।

खुसी भये दातार, कहा तुम मागै रे ।
रिधि सिधि मुक्ति भण्डार, सु तेरे आगै रे ।।९।।

जाकी इन मे चाह, ताहि को दीजे रे ।
हम को नाम पियार, सदा रस पीजे रे ।।१०।।

देखा बहुत डुलाइ, न कतहू डोले रे ।
दिया अभय पद दान, आन[1] नहिं तोले[2] रे ।।११।। अन्य[1] उचित[2]

जाचक देइ अशीश, नाम ले काको रे।
माइ बाप कुल जाति, वर्ण नहिं वाको रे।।१२।।
सब तेरा परिवार, न तेरा कोई रे।
बहुत कहा कहु तोहि, शब्द सुन दोई रे।।१३।।
धनि धनि सिरजनहार, सुमगल गाया रे।
जन 'सुन्दर' कर जोड शीश तब नाया रे।।१४।।

पाचवें पद से अपने को याचक मान कर प्रभु से अपना सबन्ध कर कहते है और प्रभु से याचना करते है। फिर नवम् पाद मे प्रभु देते कहते हैं तब नाम चिन्तन ही मागते हैं अन्य नहीं।

(३) चेतावनी

ताहि न यह जग ध्यावही, जातै सब सुख[1] आनन्द होइ रे। लौकिक[1]
आनदेव को ध्यावतें, सुख नहिं पावे कोइ रे।।टेक।।
कोइ शिव ब्रह्मा जपे रे, कोई विष्णु अवतार।
कोई देवी देवता इहा उरझ रहा ससार।।१।।
घट धारी सब एक है रे, तासे प्रीति न लाइ।
भेड शरण गहै भेड की, तो कैसे उबरा[1] जाइ।।२।। बचाव[1]
प्राण पिंड जिन सिरजिया रे, सो तौ विसरै दूरि।
और और के हो गये, ताते अन्त पडै मुख धूरि।।३।।
लोक कहैं हम करत हैं रे, सेवा पूजा ध्यान।
कात मुई सब जन्म लौ वह, भया कपास निदान[1]।।४।। अन्त मे[1]
गुण धारी गुण से रजे रे, निर्गुण अगम अगाध।
सकल निरतर रम रहा, तिहिं सुमिरे कोइ इक साध।।५।।
जरा मरण से रहित है रे, कीजे ताकी सेव।
जन 'सुन्दर' वासे लगा, जो है अविनाशी देव।।६।

(४) (पूर्वी बोली मिश्रित) उपदेश

हरि भज बोरी[1] हरि भज, तज नैहर[2] कर मोह। बावरी[1] पीहर[2]
पिव लिनहार[3] पठाइहि, इक दिन होय हि बिछोह।।टेक।। लेने को[3]
आपहि आप जतन करु, जो लगि बार[4] बयेस[5]। बालक[4] अवस्था[5]
आन पुरुष जनि भटेहु, केहू के[6] उपदेश।।१।। किसी के[6]
जब लग होहु सुयानिय[7], तब लग रहब सभारि। स्यानी[7]
केहू[8] तन जनि[9] चितवहु, ऊचिय दृष्टि पसारि।।२।। किसी का[8] क्यो[9]
यह जोवन पिय कारने, नीके राखि जुगाइ।
आपन घर जनि छोड हु, परघर आग लगाइ।।३।।

यहि विधि तन मन मारे, दुहु कुल तारे सोइ ।
'सुन्दर' अति सुख विलस ही, कन्त पियारी होइ ।।४।।

शेखावाटी प्रदेश के फतेहपुर नगर मे बसल गोती अग्रवाल रायचन्द के विवाह पश्चात् छोटी अवस्था मे लकवा हो गया था, उनकी पत्नी अति सुन्दर थी उसे वहा के नवाब ने देख लिया और प्राप्त करने के लिये दूतियें नियुक्त की। उसको पता लगा तब उसने अपनी सासु को कहा। उसने पुत्र रायचन्द को कहा तुम दोनों सन्त सुन्दरदासजी को यह कहो। वे गई और कहा, तब सुन्दरदासजी ने ४ न० के भजन से उनको उपदेश दिया था। नवाब को भी समझा दिया था। नवाब उन पर श्रद्धा रखता था, उनका उपदेश मान गया था। उसने अपना विचार बदल दिया था। विशेष कथा सुन्दरदासजी के जीवन चरित्र मे दी जायगी, यहा सकेत ही किया।

(५) झूला के रूपक से विचार

ये तहा झूल हि सत सुजान, सरस हिंडोल वा ।।टेक।।
जत सत दोउ खभवारे, श्रद्धा भूमि विचार ।
क्षमा दया धृति दीनता, ये सखि[1] शोभत डाडी चार ।।१।। साधक सत[1]

उत्तम पटली प्रेम की रे, डोरी सुरति लगाइ ।
भईया भाव झुलाव ही, ये सखि हरिष हरिष गुण गाइ ।।२।।

चहु दिशि बादल ऊनपे रे, रिमि झिमि वर्षे मेह ।
अन्तर भीजे आतमा, ये सखि, दिन दिन अधिक सनेह ।।३।।

झूल हिं नाम कबीरजी रे, अति आनन्द प्रकास ।
गुरु दादू तहा झूल ही, ये सखि झूले 'सुन्दर'दास ।।४।।

(६) ताल तिताला, पानी शब्द को श्लेष से विचार

सन्तो भाई पानी विन कुछ नाही,
तो दर्पण प्रतिबिंब प्रकाश, जो पानी[1] उस माही ।।टेक।। साफ[1]
पानी[2] से मोती की शोभा, महिंगे मोल विकावे । चमक[2]
नहि तो फटक[3] शिला की सरिभर, कौडी बदले पावे ।।१।। श्वेत पत्थर[3]

जब गजराज मस्तमद होई करिये बहु विध सारा ।
जब मद[4] गया भया वश अपने, लाद चलाया भारा ।।२।। पानी[4]

जब सरवर जल रहै पूरि के, सब कोइ देखन चाहा ।
सूख गये ताही के भीतर, खोदे जाय वराहा[5] ।।३।। सूवर[5]

याही साखि कहैं सिध साधू, बिन्दु[6] राख के लीजे । वीर्य[6]
'सुन्दरदास' जोग तब पूरण, राम रसायन पीजे ।।४।।

(७) त्रिताल, माया जीव व काया जीव कथन

सन्तो भाई सुनिये एक तमासा,
चुप कर रहूं तु कोई न जाने, कहते आवे हासा[1] ॥टेक॥ हासी[1]
नारी पुरुष के ऊपर बैठी, बूझे एक प्रसंगा।
जो तूं मेरे कहे न चाले, तो कुछ रहे न रगा[2] ॥१॥ प्रेम=सुख[2]
कंत कहै सुन सर्व-सोहागनि, तेरा बोल न टालौ[3]। त्यागू[3]
अबके क्यो ही छूटन पाऊं, बहुर न तोहि सभालौ ॥२॥
बहुर त्रिया इक बात विचारी, यह कब हू नहिं मेरा।
अब के आय पड़ा वश माही, कर छाडूं गी चेरा॥३॥
दोउ मेल रहत नहिं दीसे, इक दिन होहिं निराले[4]। अलग[4]
'सुन्दरदास' भये वैरागी, इन बातन के चाले ॥४॥
देह और जीव मृत्यु होने पर अलग हो और माया और जीव मोक्ष होने से अलग हों।

(८) त्रिताल, नारी के सब आधीन

देखो भाई कामिनि जग मे ऐसी,
राजा रक सबन के घर मे, बाघनि होकर बैसी[1] ॥टेक॥ बैठी[1]
कब ही हसे कब ही इक रोवे, कोई मरम न पावे।
औनी[1] पैसि हरै बुधि सबकी, छल बल कर गटकावे ॥१॥ चमत्कार रूप से[1]
ज्ञानी गुणी शूर कवि पण्डित, होते चतुर सयाना।
सन्मुख होय पडे फन्द माही, युवती हाथ विकाना ॥२॥
बस्ती छाड बसे बन माहीं, चाबें सूके पाता।
दाउ पडे उनहू को मारे, दे छाती पर लाता ॥३॥
नाग लोक नग[1] पतनी कहिये, मृत्यु लोक मे नारी। नाग[1]
इन्द्र लोक रंभा हो बैठी, मोटी पाशि पसारी ॥४॥
तीन लोक मे बचा न कोई, दीये डाट तल नारे।
'सुन्दरदास' लगे हरि सुमिरण, ते भगवंत उबारे[1] ॥५॥ बचाये[1]

(९) त्रिताल, अध्यात्म, विपर्यय

सन्तो भाई पद मे अचरज भारी,
समझ को सुनते सुख उपजे, अनसमझे को गारी ॥टेक॥
माय[1] मारि कर ऊपर बैठा, बाप पकड कर बाधा। माता[1]
घर के और कुटम्बी उपर, दिन कमान[2] सर साधा ॥१॥ धनुष[2]
तिया मान कर बाहर काढी, नहुडी[3] धी पर घाली। छोटी=ननन्द[3]
सेठी धी के गले छुरी दे, वह अपठी चाली ॥२॥

सासु विचारी ज्यों त्यो नीकी, सुसरा वडा कसाई ।
तासें सगति वने न कवहू, निकस भगा जवाई ॥३॥
पुत्र हुआ पर पाय[4] पागुला, नैन अनन्त अपारा । पैरों से[4]
'सुन्दरदास' इसा कुल दीपक, किया कुटम्ब सहारा ॥४॥

ममता रूप माय=माता को मार के ऊपर वैठा=ममता रहित अवस्था में स्थित हुआ, अहकार रूप वाप को निरहकार स्थिति मे आकर वाध दिया=हृदय से हटा दिया और अज्ञान दशा के घर के अन्य कुटम्वी=विषय वासना कामादि का विना धनुष वैराग्य रूप वाण साधा जिससे वे हृदय से हट गये। तृष्णा रूप त्रिया=नारी को त्रास देकर=तृष्णा रहित स्थिति में आकर हृदय से निकाल दिया और सन्तो की लहुडी=छोटी=नम्रता युक्त धी=वुद्धि को अन्त करण रूप घर मे रक्खा। जेटी धी=सासारिक विचारो वाली वुद्धि पहले से होने से जेठी=वडी थी उसके भावना रूप गले मे ससार मिथ्या है यह छुरी मार दी। मनोवृत्ति रूप वहू उक्त स्थिति देखकर ससार को पीठ देकर परमात्मा की ओर चली, विचारवान वुद्धि रूप सासु तो उक्त साधन हो जाने पर ज्यो त्यो उक्त साधनो के अनुसार होकर रही किन्तु मात्सर्य रूप सुसरा वडा कसाई है जो अव भी सरलता आदि को नष्ट करना चाहता है, उसका संग विचार रूप जवाई को अच्छा नही लगा, इससे वह ईर्ष्या से निकलकर समता मे आ गया, तव उसके तमोगुण, रजोगुण रूप पैरो से रहित पगु पुत्र हुआ, किन्तु उसके नेत्र=ज्ञान तो अनन्त, अपार ब्रह्म को देखने वाले थे। सुन्दरदासजी कहते हैं—वह ज्ञान रूप पुत्र दैवी सम्पदा रूप कुल को दीपक के समान प्रकाशित करने वाला और अपने पहले कुटम्व आसुर सम्पदा का नाशक हुआ। उक्त प्रकार साधन होने पर साधक ब्रह्म को प्राप्त होता है।

(१०) ताल चरचरी, चेतावनी उपदेश

पल पल छिन काल ग्रसत, तोहिरे दृग नाहि द्रसत हसत मूढ अज्ञान तें।
करत है अनेक धन्ध, और कौन वदत अन्ध, देखत शठ विनश जाय,
झूठे अभिमान ते ॥टेक॥
पडा जाय विषय जाल, होयगे वुरे हवाल,
वहुत भाति दुख पै है, निकस या प्राण तें।
सुत दारा छाड धाम, अरथ धरम कौन काम,
'सुन्दर' भज राम नाम, छूटे भ्रम आनतें ॥१॥

(११) त्रिताल, निजस्थिति

भया मैं न्यारारे, सतगुरु के जु प्रसाद भया मैं न्यारारे।
श्रवण सुना जव नाद भया मैं न्यारारे ॥
छूटा वाद विवाद भया मैं न्यारारे ॥टेक॥

लोक वेद का सग तजारे, साधु समागम कीन ।
माया मोह जजाल से, हम भाग किनारा दीन[1] ।।१।। दे दिया[1]
नाम निरजन लेत है रे, और कछू न मुहाय ।
मनसा वाचा कर्मना, सब छाडी आन[2] उपाय ।।२।। अन्य[2]
मनका भरम विलाइयारे, भटकत फिरता दूर ।
उलट समाना आप मे, तब प्रकटा राम हजूर[3] ।।३।। पास[3]
पिंड ब्रह्मण्ड जहाँ तहा रे, वा विन और न कोइ ।
'सुन्दर' ताका दास है, जाते सब पैदाइस[4] होइ ।।४।। उत्पत्ति[4]

(१२) तिताल

काहे को तू मन अनत भ्रमे रे ।
जगत विलास तेरा भ्रम है रे ।।टेक।।
जन्म मरन देहनि को कहिये,
सोऊ भ्रम जब निश्चय गहिये ।।१।।
स्वर्ग नरक दोऊ तेरी शका,
तू ही राव भया तु रका ।।२।।
सुख दुख दोऊ तेरे कीये,
तैं ही बन्ध मुक्त करि लीये ।।३।।
द्वैत भाव तजि निर्भै होई,
तब सुन्दर सुन्दर है सोई ।।४।। १२।।

राग माली गौड (१) ताल रूपक, हरि नाम महिमा

हरि नाम से सुख ऊपजे, मन छाड आन उपाय रे ।
तन कष्ट कर कर जो भ्रमे, तो मरण दुःख न जायरे ।।टेक।।
गुरु ज्ञान का विश्वास गह, जनि[1] भ्रमे दूजी ठौर रे । क्यों[1]
योग यज्ञ कलेश तप व्रत, नाम तुलत[2] न और रे ।।१।। समान[2]
सब सन्त यू ही कहत है, श्रुति स्मृति ग्रन्थ पुरान रे ।
'दास सुन्दर' नाम से, गति लहे पद निर्बान रे ।।२।।

(२) ताल रूपक, सत्सग प्रेरणा

सत सग नित प्रति कीजिये, मति होय निर्मल सार[1] रे । तत्त्व[1]
रति प्राणपति से उपजे, अति लहै सुख्ख अपार रे ।।टेक।।
मुख नाम हरि हरि उच्चरे, श्रुति[2] सुने गुण गोविन्द रे । कान[2]
रट ररकार अखण्ड धुनि, तहा प्रकट पूरण चन्द[3] रे ।।१।। ज्ञान[3]
सत गुरु बिना नहि पाइये, यह अगम उलटा[1] खेल रे : ससार से[1]
कहि 'दास सुन्दर' देखते, होय जीव ब्रह्म हि मेल रे ।।२।।

(३) ताल रूपक, ब्रह्म ज्ञान की प्रेरणा

ब्रह्म ज्ञान विचार कर, ज्यो होय ब्रह्म स्वरूप रे ।
सकल भ्रम तम जाय मिट, उर[1]उदित भान[2] अनूप रे ।।टेक।। हृदय[1]सूर्य[2]
यह दूसरा कर जब हि देखे, दूसरा तब होइ रे ।
फेर अपनी दृष्टि ही का, दूसरा नहिं कोइ रे ।।१।।
दिवि[3] दृष्टि कर जब देखिये, तब सकल ब्रह्म विलासरे । दिव्य[3]
अज्ञान से ससार भासे[4], कहत 'सुन्दरदास' रे ।।२।। दीख[4]

(४) ताल रूपक, सर्व ब्रह्म ही है

परब्रह्म है पर ब्रह्म है, परब्रह्म अमित[1] अपार रे । असीम[1]
नहिं जगत है नहिं जगत है, नहिं जगत सकल असार रे ।।टेक।।
नहिं पिंड है न ब्रह्माड है, नहिं स्वर्ग मृत्यु पाताल रे ।
नहिं आदि है नहिं अत है, नहिं मध्य माया जाल रे ।।१।।
नहिं जन्म है नहिं मरण है नहिं काल कर्म स्वभाव रे ।
जीव नहिं जमदूत नहिं अनुस्यूत[2] सुन्दर गात्र रे ।।२।। ओत प्रोत[2]

(५) सत जगत से न्यारा

जग से जन न्यारा रे, कर ब्रह्म विचारा रे ज्यो सूर उजारा रे ।।टेक।।
जल अबुज जैसे रे, निधि सीप[1]सु तैसे रे, मणि अहि मुख ऐसे रे ।।१।। मोती की[1]
ज्यो दर्पण माही रे, दीसे परछाही रे, कुछ परसे नाही रे ।।२।।
ज्यो घृत हि समीपे रे, सब अग प्रदीपेरे, रसना नहिं छीपे रे ।।३।।
ज्यो है आकाशारे, कुछ लिपे न तासारे, यू सुन्दर[2]दासा रे ।।४।। सन्त[2]

(६) गुरु ज्ञान की विशेषता

गुरु ज्ञान बतायारे, जग झूठ दिखायारे, यू निश्चय आयारे ।।टेक।।
ज्यो मृग जल दीसे रे, कोइ पियान पीसेरे, यू विसवा बीसे रे ।।१।।
ज्यो रैन अधारी रे, रजु सर्प निहारी रे, भ्रम भागा भारी रे ।।२।।
ज्यो सीप अनूपा रे, कर जाना रूपारे, कोइ भया न भूपारे ।।३।।
वध्या सुत झूलेरे, आकाश के फूले रे, नहिं 'सुन्दर' भूलेरे ।।४।।१८।।

राग कल्याण ३ (१) त्रिताल चेतावनी

तोहि लाभ कहा नर देह का,
जो नहिं भजे जगत पति स्वामी, तो पशुपन मे छेह[1] का ।।टेक।। भेद[1]
खान पान निद्रा सुख मैथुन, सुत दारा धन गेह का ।
यह ममत आहि सबहिन को, मिथ्या रूप सनेह का ।।१।।
समझ विचार देख या तन को, बध्या पूतला खेह का ।
'सुन्दरदास' जान जग झूठा, इन मे कोउ न केह[1] का ।।२।। किसीका[1]

(२) त्रिताल, उपदेश

नर राम भजन कर लीजिये,
साधु सगति मिल हरि गुण गाइये, प्रेम मगन रस पीजिये ।।टेक।।
भ्रमत भ्रमत जग मे दुख पाया, अब काहे को छीजिये ।
मनिषा जन्म जान अति दुर्लभ कारज अपना कीजिये ।।१।।
सहज समाधि सदा लय लागे, इहि विधि जुग जुग जीजिये ।
'सुन्दरदास' मिले अविनाशी, दण्ड काल शिर दीजिये ।।२।।

(३) त्रिताल, पेट की चिन्ता न कर, हरि भजो

नर चित न करिये पेट की,
हलै चलै तामे कुछ नाही, कलम लिखी जो ठेट[1] की ।।टेक।। प्रारम्भ की[1]
जीव जन्त जल थल के सब ही, तिन निधि कहा समेट[2] की । संग्रह[2]
समय पाय सबहिन को पहुचे, कहा बाप कहा बेटकी[3] ।।१।। बेटी[3]
जाको जितना रचा विधाता, ताको आवे तेटकी[4] । तितनी[4]
'सुन्दरदास' ताहि किन सुमिरो, जोहै ऐसा चेटकी[5] ।।२।। सृष्टि चेटक कर्ता[5]

५ रचना, पालन और लय रूप चेटक करने वाले ईश्वर को क्यो नही मानते ।

(४) धीमा त्रिताल, जगत् झूंठा ब्रह्मसत्य

जग झूठा है झूठा सही[1], सत्य[1]
पूरण ब्रह्म अकल अविनाशी, मन वच कर्म ताको गही[2] ।।टेक।। ग्रहण करो[2]
उपजे विनशे सो सब बाजी, वेद पुराणन मे कही ।
नाना विधि के खेल दिखावे, बाजीगर साचा वही ।।१।।
रजु भुजग मृग तृष्णा जैसी, यह माया विस्तर रही ।
'सुन्दर' वस्तु[3] अखण्ड एक रस, सो काहू विरले लही ।।२।। ब्रह्म[3]

(५) त्रिताल, 'तत्वमसि' परिचय

तत थेई तत थेई तत थेई ताधी,
नागड़ धी नागड धी नागड धी माधी ।।टेक।।
थु गनि थु गनि थु गनि थु ग त्रिघट, उघटितत तुरिय उतगा ।।१।।
तन नन तन नन तन नन तन्ना गुप्त, गगन वत आतम भिन्ना ।।२।।
तत् त्व त्त् त्व तत् सो त्व असि, सामवेद यू वदत तत्त्वमसि ।।३।।
अद्भुत निरतत नाशत मोह, 'सुन्दर' गावत सोह सोह ।।४।।२३।।

उक्त ५ वें पद मे गायको के स्वर बाधने के रूपक से ब्रह्म का प्रतिपादन किया है तत=वह ब्रह्म, थेई=तुम ही हो, यह तीन बार दृढ कराने के लिये कहा है । ताधी=ब्रह्माकार रहने वाली वह बुद्धि वृत्ति स्थिर करो । नागड धी=विकार रहित होने से नागड=नागी धी=बुद्धि है, यह तीन बार बुद्धि विकार रहित रखने

के लिये जोर देकर कहा है। मार्धी=जगत विचार युक्त धी=बुद्धि अध्यात्म विषय मे मा=काम नहीं देती। अत उसे बदल कर परमार्थ परायण करो। थुंगनि थु गनि थु गनि=माया, कार्य ससार और देहाध्यास त्याज्य है। थु गा=थूकन योग्य है। त्रिघट=स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों ही शरीर उघंटि=उघड जाते हैं अर्थात् इनका नाश हो जाता है, तब वह तत्=तुरिय सबसे ऊचा ब्रह्मरूप ही रहता है। तन=यह शरीर नहीं हैनहीं है, तीन बार तीनों शरीरों की नश्वरता दृढ कराने के लिये कहा है। तन्ना=तत आत्मा प्रकट इन्द्रियो का विषय नही है, मुक्त है और आकाश के समान सब से भिन्न है। तत्=ईश्वर, त्वजीव व असि दोनो एक है अर्थात् जीव ब्रह्म एक हैं। उक्त प्रकार सामवेद 'तत्त्वमसि' कहता है। उक्त प्रकार अद्‌भुत निरतर=विचार करने से मोह नष्ट हो। सुन्दरदास जी कहते है—फिर ज्ञानी सोह सोह गाता है।

राग कानडा ४, (१) मेरे राम का ही व्रत हैं

राम छबीले[1] का व्रत मेरे, सुन्दर[1]
सुख तो सुखी दुखी तोहू[2] सुख, ज्यो राखे त्यो नेरे ।।टेक।। तो भी[2]
निश तो निश वासर तो वासर, जोइ जोइ कहैं सोइ सोइ वेरे[1]। समय[1]
आज्ञा माहिं एक पग ठाडी, तब हाजर जब टेरे ।।१।।

रीस करहिं तो हू रस उपजे, प्रीति करहिं भाग भले रे।
'सुन्दर' धन[3] के मन मे ऐसी, सदा रहूंगी केरे[2] ।।२।। केड़े[2] पत्नी[3]

(२) सत सुखी

संत सुखी दुखयम ससारा,
सत भजन कर सदा सुखा रे[1], जगत दुखी गृह के विवहारा ।।टेक।। सुखी[1]
सतन के हरि नाम सकल निधि, नाम सजीवनि नाम अधारा।
जगत अनेक उपाय कष्ट कर, उदर पूरणा करे दुखारा ।।१।।

सतन को चिंता कुछ नाही, जगत सोच सोच कर मुख कारा।
'सुन्दरदास' सत हरि सन्मुख, जगत विमुख पच मरे गवारा ।।२।।

(३) सतसग प्रेरणा

सत समागम करिये भाई,
जान अजान छुवे पारस को, लोह पलट कचन हो जाई ।।टेक।।
नाना विधि बतराइ कहावत, भिन्न भिन्न कर नाम धराई।
जाको वास लगे चन्दन की, चन्दन होत बार नहिं काई[1] ।।१।। कोई[1]

तवका रूप जान सत सगति, तामे सब कोइ बैठहु आई।
और उपाय नही तरिवे को, 'सुन्दर' काठी राम दुहाई ।।२।।

(४) हरि सुख महान

हरि सुख की महिमा शुक जानै,
इन्द्रपुरी शिव ब्रह्मलोक पुनि, वैकुंठादिक नजर न आनै ॥टेक॥
ता सुख मगन रहैं सनकादिक नारद हू निर्मल गुण गानै।
ऋषभदेवदत्तात्रय तनमय मे, वामदेव महा मुक्त बखानै ॥१॥
ता सुख का क्षय होय न कबहू, सदा अखंडित सत प्रमानै।
'सुन्दरदास' आश व सुख की, प्रकट होय तब ही मन मानै ॥२॥

(५) ज्ञानी लक्षण

सब कोउ आप कहावत ज्ञानी,
जाको हर्ष शोक नहिं व्यापे, ब्रह्म ज्ञान की यह नीसानी ॥टेक॥
ऊपर सब व्यवहार चलावे, अन्त करण शून्य कर जानी।
हानि लाभ कुछ धरे न मन मे, इहिं विधि विचरे निराभिमानी ॥१॥
अहकार की ठौर उठावे, आतम दृष्टि एक उर आनी।
जीवन-मुक्त जान सोइ 'सुन्दर', और बात की बात बखानी ॥२॥

(६) ब्रह्म स्वरूप

तू अगाध परब्रह्म निरजन, को अब ताहि लहै।
अजर अमर अविगत अविनाशी, कौन रहनि रहै ॥टेक॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद से, सोहु अगम कहै।
'सुन्दरदास' बुद्धि अति थोडी, कैसे तोहि गहै[1] ॥१॥ प्राप्त कर[1]

(७) ज्ञान, ज्ञानी

ज्ञान तहा जहा द्वन्द्व न कोई,
वाद-विवाद नही काहू से, गरक ज्ञान मे ज्ञानी सोई ॥टेक॥
भेदाभेद दृष्टि नहिं जाके, हर्ष शोक उपजे नहिं दोई।
समता भाव भया उर अतर, सार लिया सब ग्रन्थ विलोई[1] ॥१॥ विचारक[1]
स्वर्ग नरक सशय कुछ नांही, मन की सकल वासना धोई।
वाही के तुम अनुभव जानो, सुन्दर' वही ब्रह्म मय होई ॥२॥

(८) वही पण्डित

पण्डित सो जु[1] पढे यह पाथी, जो[1]
जामे ब्रह्म विचार निरतर, और बात जाने सब थोथी ॥टेक॥
पढत पढत केते दिन बीते, विद्या पढी जहा लग जो थी।
दोष बुद्धि जो मिटी न कबहू, याते और अविद्या को थी ॥१॥
लाभ पढे का कछू न हूआ, पूंजी गई गाँठ की सो थी।
सुन्दरदास' कहैं समझावे, बुरा न कबहू मानो मोथी[2] ॥२॥ ॥३१॥ तुमसे[2]

राग विहागडा ५, (१) ताल त्रिवट, विरह

हो वैरागी राम तज किहि देश गये,
ता दिन से मोहि कलन पडत है, परवश प्राण भये ।।टेक।।
भूख पियास नीद नहि आवे, नैनन नेम लये[1] ।　　लिया[1]
अजन मजन सुधि सब विसरी, नख शिख विरह तये[2] ।।१।।　　तपे[2]
आप कृपा कर दर्शन दीजे, तुम्हे कौन रिझाये ।
'सुन्दर' विरहनि तब सुख पावे, दिन दिन नेह नये ।।२।।

(२) धीमा त्रिताल, विरह

माई हो हरि दर्शन की आश,
कब देखू मेरा प्राण सनेही, नैन मरत दोऊ प्यास ।।टेक।।
पल छिन आध घडो नहि विसरू, सुमिरत श्वास उश्वास ।
घर बाहर मोहि कल न पडत है, निश दिन रहत उदास ।।१।।
यही सोच सोचत मोहि सजनी[1], सूखे रक्त रु मास । साधक सत[1]
'सुन्दर' विरहनि कैसे जीवे, विरह विथा तन त्रास ।।२।।

(३) त्रिताल ज्ञान जड़ी

हमारे गुरु दीनी एक जरो,
कहा कहू कुछ कहत न आवे, अमृत रसहि भरी ।।टेक।।
ताका मरम सतजन जानत वस्तु अमोल खरी[1] ।　　सत्य[1]
याते मोहि पियारी लागत, लेकर शीश धरी ।।१।।
मन भुजग अरु पच[2] नागनी, सू घत तुरत मरी ।　　ज्ञानेन्द्रिय[2]
डायनि[3] एक खात सब जग को, सो भी देख डरी ।।२।।　　माया[3]
त्रिविधि[4] विकार ताप तन भागी, दुर्मति सकल हरी ।　　तन मन वच[4]
ताका गुण सुन मीच पलाई[5], और कवन बपुरी ।।३।।　　भागई[5]
निश वासर नहि ताहि विसारत, पल छिन आध घरी[6] ।　　घडी[6]
'सुन्दरदास' भया घट निर विष, सब ही व्याधि टरी ।।४।।

(४) त्रिताल, मन को उपदेश

मन मेरे उलट आप को जान,
काहे को उठ चहु निशि धावे, कौन पड़ी यह बान ।।टेक।।
सतगुरु ठौर बताई तेरी, सहज शुन्य पहचान ।
तहा गये तोहि काल न व्यापे, होय न कबहू हान[1] ।।१।।　　हानि[1]
तू ही सकल वियापी कहिये, समझ देख भ्रम भान[2] ।　　नष्टकर[2]
तू ही जीव शीव[3] पुनि तूही, तू ही 'सुन्दर' मान ।।२।।　　ब्रह्म[3]

(५) त्रिताल, मन को शिक्षा

हाहा[1] रे मन हा हा[2], हँसी[1] विनती[2]
हाय हाय तोहि टेर कहत हूं, अब चल सीधी राहा ।।टेक।।
वार वार समझाया तोको, दे दे लंबी धाहा[3] । जोर से पुकार[3]
निकस जाय पल माहि धूम ज्यो, कतहू ठौर न ठाहा[4] ।।१।। ठिकाना[4]
तेरा वार पार नहिं दीसे, बहुत भाति औगाहा[5] । विचार किया[5]
डूबकी मार मार हम थाके, कतहू न पाया थाहा ।।२।।
जो तू चतुर प्रवीन जान[6] अति, अब के कर निर्वाहा । ज्ञान[6]
छाड कलपना रामनाम भज, या से और न लाहा[7] ।।३।। लाभ[7]
चचल चपल चाह माया की, यह गुलाम-गति काहा ।
'सुन्दर' समझ विचार आपको, तू तो है पति साहा ।।४।।

(६) त्रिताल, मन को शिक्षा

तू ही रे मन तू ही,
कौन कुवुद्धि लगी यह तोको, होत सिंह से चूही ।।टेक।।
छानत छार फिरे निश वासर, कौडी को सव भू[1]ही । पृथ्वी[1]
अमृत छाड निलज्ज मूढ-मति, पकडत नीरस छू[2]ही ।।१।। छूत[2]
अतन पार कलपना तेरी, ज्यो वर्षा ऋतु फू[3]ही । फुवार[3]
सुख निधान अपना सुख तज के, कत हो दु ख समूही ।।२।।
शिव सनकादिक पुनि ब्रह्मादिक, प्रहलाद अरु ध्रू ही ।
नाम कवीरा सोझा पीपा, कहै सतगुरु दादू ही ।।३।।
वाती देख रहा तू भूले, यह तो है सव रूही[4] । रुई[4]
'सुन्दर' ऐसे जान आपको, सुन्दर काहि न हूही[5] ।।४।। होता[5]

(७) गुजराती भाषा, ताल दीपचन्दी-होली का ठेका, उपदेश

भाई रे आपणपो जू ज्यो, सांभलिने जिमना तिम हूं ज्यो ।।टेक।।
जीव यथा ज्यारें देह हूँ जारायों, निच स्वरूप नथी आप पिछाण्ये ।।१।।
मूलगों ज्ञान तुम्हे वीसरयो ज्यारें, जीव यया तुम्हे ततक्षण त्यारें ।।२।।
सद्गुरु मिलत सशय जाये, पोतानी जाणे महिमाये ।।३।।
हू हू करतो तेहूं भोलै, हू तो तेजे सोह बोलै ।।४।।
हम जागें हूं वस्तु अनामैं, 'सुन्दर' तें 'सुन्दर' पद पामैं ।।५।।३८।।

राग केदार ६ (१) ज्ञान

व्यापक ब्रह्म जानहू एक,
और सब भ्रम दूर करिये, यही परम विवेक ।।टेक।।

ऊच नीच भला बुरा, शुभ अशुभ यह अज्ञान।
पुन्य पाप अनेक सुख दुख, स्वर्ग नरक बखान ।।१।।
द्वन्द्व जोलौ जगत तोलौं, जन्म मरण अनन्त।
हृदय मे जब ज्ञान प्रकटे, होय सब का अन्त ।।२।।
दृष्टि गोचर श्रुत[1] पदारथ, सकल है मिथ्यात।
स्वप्न से जागा जबहिं, तब सब प्रपच विलात ।।३।।
यथा भानु प्रकाश से कहु, तम रहै न लगार[2]।
कहत 'सुन्दर' समझ आई, तब कहा ससार ।।४।।

[1] सुने हुये
[2] किंचित

(२) अद्वैत

देखहु एक है गोविन्द,
द्वैत भाव हि दूर करिये, होय तब आनन्द ।।टेक।।
आदि ब्रह्म अन्त कीट हु, दूसरा नहिं कोइ।
जो तरग विचारिये तो, वहै एकै तोइ[1] ।।१।।
पच तत्त्व रु तीन गुण को, कहत है ससार।
तऊ दूजा नाहिं एकहि, बीज का विस्तार ।।२।।
अतत[2] निरसन[3] कीजिये, तो द्वैत नहिं ठहराय।
नहिं नहिं करते रहै तहा, वचन हू नहिं जाय ।।३।।
हरि जगत मे जगत हरि मे, कहत है यू वेद।
नाम 'सुन्दर' धरा जब ही, भया तब ही भेद ।।४।।

[1] जल
[2] अतत्त्व [3] बाघ

(३) ज्ञान बिना उलझे

ज्ञान बिन अधिक अरूझत है रे,
नैन भये तो कौन काम के, नैक न सूझत है रे ।।टेक।।
सब मे व्यापक अन्तरजामी, ताहि न बूझत[1] है रे।
भेद दृष्टि कर भूल पडा है, ताते जूझत[2] है रे ।।१।।
कठिन कर्म की पडत भाखसी[3], माहि अमूझत है रे।
'सुन्दर' घट मे कामधेनु हरि, निश दिन दूझत[4] है रे ।।२।।

[1] समझत
[2] लडता है
[3] फंद
[4] दूध दे

(४) हरि भजन बिना सब भूले

हरि बिन सब भ्रम भूल परे[1] हैं,
नाना विधि के क्रिया कर्म कर, बहु विधि फलन फरे[2] हैं ।।टेक।।
कोऊ शिर पर करवत धारै, कोऊ हीम गरे है।
कोऊ झपापात[3] लेइ कर, सागर बूड मरे है ।।१।।
कोऊ मेघाडम्बर भीजहिं, पचा अग्नि जरे हैं।
कोऊ शीतकाल जल पैठें, बहु कामना भरे है ।।२।।

[1] पडे
[2] फले
[3] गिरि से गिरना

कोऊ लटक अधोमुख झूलहि, कोऊ रहत खरे[4] हैं। खड़े[4]
कोऊ वन मे खात कन्द खणि[5], वलकल वसन धरे हैं ॥३॥ खोद कर[5]
कोऊ तीरथ कोऊ व्रत कर, कष्ट अनेक करे हैं।
'सुन्दर' तिनको[6] को समझावे, पुहपित[7] वचन हरे[8] है ॥४॥४२॥

उनको[6] कौन समझावे, वे तो पुष्पा[7] = सुनने मे निर्गंध पुष्पो के समान सुन्दर और प्रिय लगने वाले कर्म काण्ड के वचन = यज्ञादि कर्म करके स्वर्ग मे जाकर अक्षय सुख भोगेगे। उक्त प्रकार की वाणी से छले गये हैं, इससे समझते हो नहीं हैं।

राग मारू ७ (१) राम प्रेम का लाभ

लगा मोहि राम पियारा हो,
प्रीति तजि ससार से, मन किया न्यारा हो ॥टेक॥
सतगुरु शब्द सुनाइया, दिया ज्ञान विचारा हो।
भरम तिमर भागे सबै, गह कीया उजारा हो ॥१॥
चाख चाख सब छाडिया, माया रस खारा हो।
नाम सुधारस पीजिये, छिन बारम्बारा हो ॥२॥
मै बन्दा ब्रह्म का, जाका वार न पारा हो।
ताहि भजे कोइ साधवा, जिन तन मन मारा हो ॥३॥
आन देव को ध्याव ही, ताके मुख छारा हो।
अलख निरजन ऊपरै, जन 'सुन्दर' वारा[1] हो ॥४॥ निछावर[1]

(२) निज भावना परिचय

मेरे जिय आई ऐसी हो,
तन मन अरपा राम को, पीछे जानो जैसी हो ॥ टेक ॥
सतगुरु कही मरम की, हिरदै मे बैसी[1] हो। बैठ गई[1]
समझ पडी सब ठौर की, कहू रही न कैसी हो ॥१॥
अन जाने जो कुछ किया, अब होय न वैसी हो।
रीति सकल ससार की मोहि, लगत अनैसी[2] हो ॥२॥ अप्रिय[2]
मनसा बाहर दौडती, अभिअन्तर पैसी[3] हो। प्रवेश कर गई[3]
अगम अगोचर शुन्य[4] मे, तहा लागी तैसी हो ॥३॥ ब्रह्म मे[4]
जो आगे सन्तन करी, उपजी है तैसी हो।
'सुन्दर' काहे को डरे, जब भागी भैसो[5] हो ॥४॥ भय की भावना[5]

(३) प्रार्थना

सुना तेरा नीका नाऊ[1] हो, नाम[1]
मोहि कछू दत्त[1] दीजिये, बलिहारी जाऊ हो ॥टेक॥ दान[1]

सब ठाहर होय आइया, रुचि नही कहाऊ[1] हो । कहीं भी[1]
ब्रह्मा विष्णु महेश लौं, अरु किते बताऊ हो ॥१॥
मैं अनाथ भूखा फिरा, तोहि पेट दिखाऊ हो ।
धका लगे से गिर पडू, तब ही मर जाऊ हो ॥२॥
दुर्बल की कुछ बूझिये, कब का बिललाऊ हो ।
तेरे कुछ घटि है नही, मैं कुटम्ब जिनाऊं हो ॥३॥
राम राम रटबो करूं, निर्मल गुण गाऊ हो ।
'सुन्दर' एक निवाजिये, यह रोजी[3] पाऊ हो ॥४॥ भजन रूप[3]

(४) राम को प्रिय साधु

सोई जन राम को भावे[1] हो, प्रिय[1]
कनक कामिनी पर हरै, तहि आप बन्धावे हो ।।टेक।।
सबही से निरवैरता, काहू न दुखावे हो ।
शीतल वाणी बोल के, रस अमृत प्यावे हो ॥१॥
कै तो मौन गहे रहै, कै हरि गुण गावे हो ।
भरम कथा ससार की, सब दूर उडावे[2] हो ॥२॥ हटावे[2]
पचो इन्द्री वश करे, मन मनहि[3] मिलावे हो । ईश्वर मन मे[3]
काम क्रोध अरु लोभ को, खनि[4] खोद बहावे हो ॥३॥ मनखान से[4]
चोथे पद को चीन्ह के, ता माहि समावे हो ।
'सुन्दर' ऐसे साधु की, ढिग काल न आवे हो ॥४॥

(५) जीव जुवारी को उपदेश

जुवारी जूवा छाडो रे,
हार जाहुगे जन्म को, मत चौपड मोडो[1] रे ।।टेक।। खेल[1]
चौपड अन्त करण की, तीनो गुण पासा रे ।
सारि कुबुद्धि धरत हो, यू होय विनाशा रे ॥१॥
लख चौरासी घर फिरै, अब नर तन पाया रे ।
पाकी काची सारिहूं, जो दाव न आया रे ॥२॥
झूठी बाजी है मडी, ता मे मत भूलो रे ।
जीव जुवारी बापडा, काहे को फूलो रे ॥३॥
सारि समझ के दीजिये, तो कबहु न हारो रे ।
'सुन्दर' जीतो जन्म को, जो राम सभारो[2] रे ॥४॥ स्मरण करो[2]

(६) निज स्थिति

ऐसी मोहि[1] रैनि विहाई[2] हो, मेरी[1] बीती[2]
कौन सुने कासे कहू वरणी नहिं जाई हो ।।टेक।।

पूरण ब्रह्म विचार तें, मोहि नींद न आई हो ।
जागत जागत जागिया[3], सुने न सुहाई हो ।।१।। ज्ञान हो गया[3]
कारण लिंग स्थूल की, सब शंक मिटाई हो ।
जाग्रत स्वप्न सुषोपती, तीनो बिसराई हो ।।२।।
तुरिया तत्पद अनुभया, ताकी सुधि पाई हो ।
"अहं ब्रह्म" यूं कहत ही, हूं गया बिलाई हो ।।३।।
वचन तहां पहुंचे नहीं, यह सैंन बताई हो ।
'सुन्दर' तुरियातीत में, सुन्दर कहरदई हो ।।४।।

(७) ज्ञानी

ज्ञानी ज्ञान को जाने हो,
मुक्त भया विचरे सदा, कुछ शंक न आने हो ।।टेक।।
समझ बूझ चुपचाप हो, बकवाद ना ठाने हो ।
दूर भई सब कल्पना, भ्रम भेद हि भाने[1] हो ।।१।। नष्ट करे[1]
देखे हस्तामलक[2] ज्यों, कुछ नांहीं छाने हो । हाथ के आमले[2]
'सुन्दर' ऐसा हो रहे, तब ही मन माने हो ।।२।।३४९।।

राग भैरुं (१) चेतावनी उपदेश

वेगि वेगि नर राम सभाल, शिर पर मूंछ मरोडत काल ।।टेक।।
या तन का लेखा[1] है ऐसा, काचा कुंभ भरा जल जैसा । हिसाब[1]
विनशत बार कछू नहिं होई पीछे फिरे पछतावे सोई ।।१।।
को तेरा तू काका पूत, घर घर नौ मण अरुझा सूत ।
नीके समझ देख मन माहिं, आठ बाट[2] सब कोई जांहि ।।२।। मार्ग[2]
ममता मोह कौन से करे, बाट वटो ही क्यों नहीं डरै ।
संगी तेरे सर्वहि सिधाये, तो को देन सदेसा आये ।।३।।
मनुष देह दुर्लभ है सही, शिव विरंचि शुक नारद कही ।
'सुन्दरदास' राम भज लेह, यह औसर बरिया[3]पुनि येह ।।४।। श्रेष्ठ[3]

(२) सब शरीर नष्ट हों

घट विनशे नहीं रहै निदाना[1], अन्त मे[1]
खुदई[1] देखा अकलि[2] से जाना ।।टेक।। स्वय ने[1] बुद्धि[2]
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर खपिया, इन्द्र कुबेर गये तप तपिया ।।१।।
पीर पैगम्बर सब हि सिधाये, मुहमद मिरखे रहन न पाये ।।२।।
धरणि गगन पानी अरु पवना, चंद सूर पुनि करि है गवना ।।३।।
एक रहै सो 'सुन्दर' गावे, मुष्टि न आय दृष्टि नहिं आवे ।।४।।

(३) मन चपलहा वल नष्ट हो, ब्रह्म प्राप्त

वीरज नाश भये फल पावे, ऐसा ज्ञान सु गुरु समझावे ।।टेक।।
मनको जान सकल का मूल, शाखा डाल पत्र फल फूल ।
मन के उदय पसारा भासै, मन के मिटे जु ब्रह्म प्रकाशे ।।१।।
को हूं आदि कहा से आया, क्यो कर दूजा नाम धराया ।
ऐसे निश दिन करे विचारा, होय प्रकाश मिटे अंधियारा ।।२।।
बाहर दृष्टि सो भीतर आने, भीतर दृष्टि ब्रह्म पहचाने ।
जो भीतर सो बाहर सूझै, यह परमारथ विरला बूझै ।।३।।
मृतिका के घट भये अपार, जल तरग नहिं भिन्न विचार ।
'सुन्दर' कहन सुनन को दोइ, पाला गल पानी ही होइ ।।४।।

(४) सब मे ब्रह्म

सोई है सोई है सब मे, कोई नहिं कोई नहिं कोई नहिं तब मैं[1] ब्रह्म[1]
पृथ्वी नहिं जल नही, तेज नहि तन मे, वायु नहिं व्योम नहिं मन आदि मन मे।।१।
शब्द रूप रस गन्ध नहिं घर मैं, श्रोत्रत्वक चक्षु घ्राण रसना न चर मैं ।।२।।
सत रज तम नहिं, तीन गुण हित मैं। काल नहिं जीव नहिं, कर्म नहिं कृत मैं ।।३।।
आदि नहिं अत नही मध्य नही अस मैं। 'सुन्दर' स्वभाव नहिं सुन्दर हैं तस मैं।।४।।

चर = चरमावस्था = वास्तव मे मैं ही हू। तीन गुण जीव के हित मे नही हैं, कालादि आत्मा के स्वरूप मे नहीं है। अस = ऐसा मैं हू। स्वभादि से रहित सुन्दर ब्रह्म है, तस = वैसा मैं हू।

(५) गुजराती भाषा, प्रपच से परे ब्रह्म

किम छै किम छै, काम निहकाम[1] छै, निष्काम[1]
जिमनो[2] तिम छै, ठाम नो ठाम छै ।।टेक।। जैसा[2]
आम छै आम छै, आम छै आम छै।
अधो न उरधै, दश दिशा धाम छै ।।१।।
दिवस नहिं रैनि नहिं, शीत नहिं घाम छै।
एक नहिं बे[2] नहिं, पुरुष नहिं बाम छै ।।२।। दो[2]
रक्त नहिं पीत नहिं, सेत नहिं स्याम छै।
कहत इम सुन्दर, नाम न अनाम छै ।।३।।

(६) ब्रह्म अथाह अपार

ऐसा ब्रह्म अखडित भाई, वार पार जाना नहिं जाई ।।टेक।।
अनल पक्षि उड चढ आकाश' थकित भया कहु छोर न तास ।।१।।
लौंण पुतरी थाघै[1] दरिया जात जाता भीतर गरिया ।।२।। थाह[1]

अति अगाध गति कौन प्रमाने, हेरत हेरत सबहिं हिराने[2] ।।३।। हैरान हुये[2]
कहि कहि सत सबहि कोउ हारा, अब 'सुन्दर' का कहै विचारा ।।४।।

(७) सब स्वप्न

सोवत सोवत सोवत आया, सपने ही मे सपना पाया ।।टेक।।
प्रथम हिं सपना आया येह, आप भूल कर माना देह ।
ताके पीछे सपना और, सपने ही मे कीन्ही दौर ।।१।।
सपना इन्द्री सपना भोग, सपना अन्त'करण वियोग ।
सपने ही मे बाधा मोह, सपने ही मे भया विछोह ।।२।।
सपने स्वर्ग नरक मे बास, सपने ही मे जम की त्रास ।
सपने मे चौरासी फिरै, सपने ही मे जनमैं मरै ।।३।।
सतगुरु शब्द जगावन हार, जब यह उपजे ब्रह्म विचार ।
'सुन्दर' जागि पडे जे कोइ, सब ससार स्वप्न तब होय ।।४।।

(८) जीव ब्रह्म एक

तू ही तू ही तू ही तू, जोई तू है सोई हू ।।टेक।।
ज्यो ज्यो आवे त्यो त्योद्यो, ना कुछ द्यो नहिं ना कुछ लौ ।।१।।
तू मत जानो है या स्यो[1], ज्यो का त्यो ही त्यो का त्यो ।।२।। क्या[1]
यू ही यू ही यू ही यू, 'सुन्दर' धोखा राखे क्यो ।।३।।५७।।

राग ललित (९) ब्रह्म अगाध

तू अगाध तू अगाध, तू अगाध देवा ।
निगम नेति[1] नेति कहै, जाने नहिं भैवा[2] ।।टेक।। यह नहिं[1] रहस्य[2]
ब्रह्मादिक विष्णु शकर, शेष हू बखानै ।
आदि अन्त मध्य तुमहि, कोऊ नहिं जानै ।।१।।
सनकादिक नारदादि, शारदादि गावे ।
सुर नर मुनिगण गधर्व, कोऊ नहिं पावे ।।२।।
साधु सिद्ध थकित भये, चतुर बहु सयाना ।
'सुन्दरदास' कहा कहै, अति ही हैराना ।।३।।

(२) प्रभु से याचना करें

द्वार प्रभु के जाचन जइये,
विविध प्रकार, सरस[1] गुण गइये[2] ।।टेक।। सुन्दर[1] गाइये[2]
याचक होय सु नीद निवारे, बडे प्रात दाता[1] हि सभारै[2] ।।१।। ईश्वर[1] स्मरण करे[2]
नित प्रति ताके कान जगावे, वह पुनि जाने याचक आवे ।।२।।
दाता के मन चिंता होई, दान करन की उपजे कोई[1] ।।३।। बात[1]
'सुन्दरदास' पहाऊ गावे, मागत यही जु दर्शन पावे ।।४।।

(३) हरि अभय दान दें

अब हूँ हरि को जाचन आया,
देखे देव सकल फिर फिर मैं, दालिद्र भजन कोउ न पाया ।।टेक।।
नाम तुम्हारा प्रकट गुसाई, पतित उधारन वेदन गाया ।
ऐसी साखि सुनि सतन मुख, देत दान जाचक मन भाया ।।१।।
तेरे कौन बात का टोटा, हो तो दुख दलिद्र कर छाया ।
सोई देहु घटे नहिं कबहू, बहुत दिवस लग जाय न खाया ।।२।।
अति अनाथ दुर्बल सब ही विधि, दीन जान प्रभु निकट बुलाया ।
अन्त करण उमग 'सुन्दर' का, अभयदान दे दु ख मिटाया ।।३।।

(४) विनय

तुम प्रभु दीन दयाल मुरारी,
दु ख हरण दालिद्र निवारण, भक्त वछल सतन हितकारी ।।टेक।।
जे जो तुमको भजत गुसाई, तिन तिन की तुम विपति निवारी ।
आप सरीखे करके राखो, जनम मरण की शका टारी ।।१।।
वारवार तुम से कहा कहिये, जानराय भय-भजन भारी ।
'सुन्दरदास' करत है विनती, मोहू को प्रभु लेहु उबारी ।।२।।

(५) गुरु दर्शन विशेषता

आज मेरे गृह सतगुरु आये,
भरम करम की निशा वितीती, भोर भया रवि प्रकट दिखाये ।।टेक।।
अति आनन्दकन्द सुख सागर, दर्शन देखत नैन सिराये[1] । शीतल हुये[1]
प्रफुलित कमल अग सब पुलकित, प्रेम सहित मन मगल गाये ।।१।।
वचन सुनत सब ही दुख भागे, जागे भाग चरण शिर लाये ।
'सुन्दर' सफल भया सब ही तन, जन्म जन्म के पाप नशाये ।।२।।

(६) ज्ञान जाग्रण

जाग सवेरे जाग सवेरे, जाग पडे से तू ही है रे ।।टेक।।
सोय सपन मे अति दुख पाये, जाग पडे जीवत्व मिटावे ।।१।।
सोय सपन मे आनत भयसा, जाग पडे जैसे का तैसा ।।२।।
सोय सपन मे हो गया रका, जाग पडे रावत है बका ।।३।।
सोय सपन मे सुधि बुधि खोई, जाग पडे 'सुन्दर' है सोई ।।४।।६३।।

राग काल्हेडा, ९ (१) गुजराती भाषा, ब्रह्म एक

जो वो पूरण ब्रह्म अखण्ड अनावृत एक छै ।
नथी बीजो अवर न कोई यह विवेक छै ।।टेक।।

इम बाह्याभ्यतर व्योम, तिम व्यापी रह्यो ।
जेन्हो[1] आदि न अन्त न मध्य, महा वाक्यें कह्यो ।।१।। जिसका[1]

ये जे देहादिक भ्रम रूप, ते इग जाणि ज्यो ।
इम मृग तृष्णा मे नीर, निश्चय आणि ज्यो ।।२।।

ये जे शेष नाग पर्यन्त, ऊरध लोक छै ।
ये ता जे दीसे नानात्व, वे सब फोक[1] छै ।।३।। मिथ्या[1]

जेन्हें उपना आतम ज्ञान, तेन्हौ[2] भ्रम टल्यो । उनका[2]
कहै छै 'सुन्दर' पानी माँहि, इम पाला गल्या ।।४।।

(२) अनुभव ही प्रमाण, गुजराती भाषा

काईं अद्भुत बात अनूप, कही जानी नथी[1] । नही[1]
ये जे वाणी ते निर्वाण, महा पुरुषे कथी ।।टेक।।

ये जे परा पश्यन्ती मध्य, रिदै मुख बैखरी ।
तेन्है[2] नेति नेति कहै वेद, कारण छै हरी ।।१।। तिस को[2]

ये जे पछै रहै अवशेष, तेन्है स्वाँ[3] कहै । क्या[3]
जेन्हैं अनुभव आतम ज्ञान, इम छै तिम लहैं ।।२।।

इस कस्तूरी कपूर, केमर किम छिपै ।
तेन्ही सगले आवै बास, प्रकट ते तिम दिपै ।।३।।

जेन्है जे काई खाधा होय, डकारे जाणिये ।
तिम 'सुन्दर' अनुभव गोपि, वचन प्रमाणिये ।।४।।

(३) एक ब्रह्म सत्य, गुजराती भाषा

तम्हे साभलि ज्यो श्रुति, सार वाक्य सिद्धातना,
एता[1] सर्व खल्विद ब्रह्म, वचन छै अन्तना ।।टेक।। ये[1]

एता जगत नथी त्रय काल, एक जगदीश छै ।
इम सर्प रज्जु नैं गमि, न विश्वा बीस छै ।।१।।

ए जे अपना भ्रम मिथ्यात, जिहा लग रात्र छै ।
काईं नथी वस्तु ता, अन्य कल्पना मात्र छै ।।२।।

ज्यारे कीधा भान प्रकाश, भ्रम ततक्षण गया ।
ज्यारें लीधो निज साहि, रजु नो रजु थया ।।३।।

तिम "एकमेव" छै ब्रह्म, बीजा[1] को नथी[2] । दूसरा[1] नही[2]
कहै छै 'सुन्दर' निश्चय धारि, निज अनुभव कथी ।।४।।

(४) ब्रह्मानन्द, गुजराती भाषा

जेन्हैं हृदयें ब्रह्मानन्द निरतर थाय छै,
जेन्है[1] अनुभव जाणें तेहज किम कहवाय छै ।।टेक।। जिन्है[1]
ज्यारें अन्तर[2] थी आनन्द, उमग कठे रमे[3] । जिनके[2] विराजे[3]
त्यारें मुख थी नवि कहवाइ बली पाछ समै ।।१।।
इम लहरी उठे समुद्र, मूकि[4] जाये किहां । छोड़[4]
एता पाल लगणि आवनै, समै[5] जिहानी तिहा ।।२।। समाये[5]
तेन्ही[6] पटतर नथी अनेक, सर्व सुख स्वर्गना । तिमकी[6]
नथी ब्रह्मलोक शिवलोक, नथी अपवर्गना ।।३।।
ये जे ब्रह्मानन्द अपार, कहै किम जे भणी[7] । कहा[7]
कोई 'सुन्दर' नवि कहवाइ, जिह्वा ते भणी ।।४।।६७।।

रागदेव गधार १० (१) सद्गुरु का उपकार

अब के सतगुरु मोहि जगाया,
सूता हुता अचेत नीद मे, बहुत काल दुख पाया ।।टेक।।
कबहू भया देव कर्मन कर, कबहू इन्द्र कहाया ।
कबहू भूत पिशाच निशाचर, खात न कबहू अघाया ।।१।।
कबहू असुर मनुष्य देह धर, भूमडल मे आया ।
कबहू पशु पक्षी पुनि जलचर, कीट पतग दिखाया ।।२।।
तीनो गुण के कर्मन करके, नाना योनि भ्रमाया ।
स्वर्ग मृत्यु पाताल लोक मे, ऐसा चक्र फिराया ।।३।।
यह तो स्वप्ना है अनादि का, वचन जाल विथराया[1] । फैलाया[1]
'सुन्दर' ज्ञान प्रकाश भया जब, भ्रम सदेह विलाया ।।४।।

(२) अद्वैत

अब तो ऐसे कर हम जाना,
जो नानात्व प्रपच जहालौं, मृग तृष्णा का पाना[1] ।।टेक।। पानी[1]
रजु का सर्प देख रजनी मे, भ्रम से अति भय आना ।
रवि प्रकाश जब भया प्रात ही, रजु का रजु पहचाना ।।१।।
ज्यो बालक बेताल[1] देख के, यू ही वृथा डराना । अपनी छाया का[1]
ना कुछ भया नही कुछ हो है, यह निश्चय कर माना ।।२।।
शशा-शृ ग बध्या-सुत झूले, मिथ्या वचन बखाना ।
तैसे जगत काल त्रय नाही, समझ सकल भ्रम भाना ।।३।।
जो कुछ हुता रहा पुनि सोई, दुतिया भाव विलाना ।
'सुन्दर' आदि अन्त मधि, 'सुन्दर' सुन्दर ही ठहराना ।।४।।

(३) ब्रह्मपद

पद[1] में निर्गुण पहचाना, शब्द मे[1]
पद का अर्थ विचारे कोई, पावे पद निर्वाना ।।टेक।।
पद[2] बिन चले जहा पद[3] नाही, पद है सकल निधाना । चरण[2] लोक[3]
ज्यो हस्ती के पद मे सब पद, काहू पद न भुलाना ।।१।।
देव इन्द्र विधि शिव वैकुण्ठहि, ये पद ग्रन्थन गाना ।
जीवत पद से परिचय नाही, मूये पद[4] किन जाना ।।२।। मोक्ष[4]
पद प्रसिद्ध पूरण अविनाशी, पद अद्वैत बखाना ।
पद[5] है अटल अमर पद कहिये, पद आनद न छाना ।।३।। ब्रह्म[5]
पद खोजै से सब विसरे, विसरे ज्ञान रु ध्याना ।
पद का तात्पर्य सो पावे, 'सुन्दर' पदहि समाना ।।४।।

(४) साक्षी

अब हम जाना सब मे साखी[1], साक्षी चेतन[1]
साखि पुरातन सुनी आगली, देह भिन्न कर नाखी ।।टेक।।
साखी[2] सनकादिक अरु नारद, दत्त कपिल मुनि आखी[3] । गवाह[2] कही[3]
अष्टावक्र वसिष्ट व्यास-सुत, उन प्रसिद्ध यह भाखी ।।१।।
साखी रामानन्द गुसाई, नाम कबीर हि राखी[4] । धारण की[4]
साखी सत सकल ही कहिये, गुरुदादू यह दाखी[5] ।।२।। कही[5]
साखी कोऊ और जानते, मन मे यह अभिलाखी[6] । इच्छा की[6]
अब तो साखी[7] भये आपही, 'सुन्दर' अनुभव चाखी ।।३।।७१।। साक्षी[7]

राग विलावल ११ (१) सत महिमा

सत भले या जग मे आये, मनसा वाचा राम पठाये ।
परम दयाल सकल सुख दाता, परउपकारी किये विधाता ।।टेक।।
कीये विधाता बडे ज्ञाता, शील सयम उर धरै ।
काम क्रोध कलेश माया, राग द्वेष हि परहरै ।।
गुण निधान रु ज्ञानसागर, अति सुजान प्रवीन हैं ।
यू कहत 'सुन्दर' मुक्त विचरत, सदा ब्रह्महि लीन हैं ।।१।।
जिनके दर्शन पातक जाही, परसन[1] सकल विकार नशाही । मिलन[1]
वचन सुनत भयभ्रम सब भागै, नखशिख रोमरोम तब जागे ।।
जागे जु नखशिख रोम सबही, प्रेम उमगै पलक मे ।
पुनि गलित हो कर अग भजै, सुख समुद्र की झलक मे ।।

वे हरन दुरगति करन शुभ गति, परम दुर्लभ गाइये ।
यू कहत 'सुन्दर' सत ऐसे, बडे भागन पाइये ।।२।।

साधु कि पटतर कोई न तूलै, वाजी देख कहा कोउ भूलै ।
चितामणि पारस कहा कीजै, हीरा पटतर[1] कैसे दीजे ।।   बराबर[1]
दीजे न पटतर चन्द सूरज, दीप की अब को कहै ।
वह कामधेनु रु कल्प तरु वर, चन्दन पटतर क्यो लहै ।।
पुनि मेरु सागर नदी वोहित, धरणि अबर पेखिया ।
यू कहत 'सुन्दर' साधु सरभर[2], कोइ न जग मे देखिया ।।३।। बराबर[2]

साधु की महिमा अगमअपारा, कही न जाय कोटि मुख द्वारा ।
जिन की पद रज वंदहि देवा, इन्द्र सहित विनवे कर सेवा ।।
सेवा करहिं पुनि इन्द्र ब्रह्मा, धूप दीप न आरती ।
वे हर्महिं दुर्लभ दास हरि के, करे सुस्तुति भारती[1] ।। सरस्वती[1]
अति परम मगल सदा तिनके, साधु महिमा जे कहैं ।
जन्म सफल सु होय 'सुन्दर' भक्ति दृढ हरि की लहैं ।।४।।

(२) चेतावनी

सोय सोय सब रैनि विहानी, रतन जन्म की खबर न जानी ।।टेक।।
पहले पहर मरम नहि पावा, माता पिता से मोह बधावा ।
खेलत खात हसा कहु रोया, बालापन ऐसे ही खोया ।।१।।

दूजे पहर भया मतवाला, परधन परत्रिय देख खुसाला ।
काम अन्ध कामिनी सग जाई, ऐसे हि जोबन गया सिराई[1] ।।२।।   बीता[1]
तीजे पहर गया तरुनापा, पुत्र कलत्र का भया सतापा ।
मेरे पीछे कैसी होई घर घर फिर है लडका जोई ।।३।।
चौथे पहर जरा तन व्यापी, हरि न भजा इहिं मूरख पापी ।
कहि समझावे 'सुन्दरदासा', राम विमुख मर गये निराशा ।।४।।

(३) विरहनी

किस विधि पीव रिझाइये, अनी[1] सुन सखिय सयानी । अरी सत सखी[1]
जोवन जाय उतावला, कुछ साध[2] न मानी ।।टेक।।   इच्छा[2]
केश गुहैं[1] मागे भरी सिंदूर घनेरा, हार हमेला[2] पहरिया । गूथे[1] स्वर्णहार[2]
भूषण बहुतेरा, काजल नैनन मे कीया, अबे पिये[3] नेकु न हेरा ।।१।। हरि[3]
वस्तर बहुविधि फेर के, ओढे अति झीना ।
दर्पण मे मुख देख के, शिर तिलक जु दीना ।।
सब सिंगार[4] फीका भया, अब पिय खुस नही कीना ।।२।।   साधन[4]

सेज[5] अनूप सवार के, तहा फूल[6] बिछाया। हृदय[5] श्रद्धा[6]
चोवा चन्दन अरगजा, सब[7] अग लगाया ॥ दैवी गुण[7]
दीपक[8] धरा जलाय के, अबे पिय मुख न दिखाया ॥३॥ परोक्ष ज्ञान[8]
दारुण दुख कैसे सहौं, क्यो रहू अकेली[9]। बुद्धि[9]
अति अगीझ मेरा साईया[10], क्या करू सहेली[11] ॥राम[10]साधक सत[11]
"सुन्दर" विरहनि यू कहै, अबे हौं खरी दुहेली[12] ॥४॥ दुखी[12]

(४) पतिव्रत से प्रभु को प्रिय

जो पिय का व्रत ले रहै, सो पिय हि पियारी।
काहे को पच पच मरत है, मूरख विभचारी ॥टेक॥
अजन मजन क्या करै, क्या रूप सिंगारा।
ऊपर निर्मल देखिये, दिल माहिं विकारा।
इन वातन क्यो पाइये, अबे प्रीतम पिय प्यारा ॥१॥

पतिव्रत कवहु न देखिये, मन चहु दिश धावे।
और सखिन[1] मे बैसि के, पतिव्रता कहावे। साधक सतो मे[1]
हौंस करे पिय मिलन की, अबे तोहि लाज न आवे ॥२॥

कोटि जतन कीये कहा, पिय एक न माने।
नाना विधि की चातुरी, बहुतेरी ठाने ॥
तन को बहुत बनाव ही, अबे मन सौंप न जाने ॥३॥

अपना बल जो छाड के, सब सुधि विसरावे।
लोक बडाई नैकहू, कुछ याद न आवे।
'सुन्दर' तब पिय रीझ के, अबे तोहि कठ लगावे ॥४॥

(५) विहर, पजाबी भाषा

आव आसाडे यार तू चिरकि कू लाया।
हाल तुसा मालुम है, तनु जोवन आया ॥टेक॥
जद मैं हौ दीन कडी, तद कुझ न जाना।
हुण मैंनो कल ना पवे, सभ खेड भुलाना ॥१॥
मा मैं नूई आखदी, तू धीय आसाडी।
प्योदी गल्ह अभावणी, मैं सभो छाडी ॥२॥
हिक्क सहा उभि राउदा, मैं नू समझावै।
नाल तुसाडे हौं चला, जे कतु न आवै ॥३॥
जे ते हुण आया नही, ता मैं हुणु आवा।
'सुन्दर' आखे विरहनी, मन कित्था लावा ॥४॥

(६) मन की चपलता

कैसे राम मिलें मोहि सन्तो, यह थिर न रहाई रे।
निश्चल निमष होत नहि कब हो, चहु दिश भागा जाई रे ।।टेक।।
कौन उपाय करू या मन को, कैसी विधि अटकाऊ रे।
ऐसे छूट जाय या तन से, कत हूं खोज न पाऊ रे ।।१।।
सोये स्वर्ग पताल निहारे, जागे जात न दीसे रे।
खेलत फिरे विषय वन माही, लीये पाच पचीसे रे ।।२।।
मैं जाना मन अब थिर होई, दिन दिन पसरनलागा रे।
नाना चोज[1] धरू ले आगे, तऊ करक पर कागा रे ।।३।।   सुवातें[1]
ऐसे मन का कौन भरोसा, छिन छिन रग अपारा रे।
'सुन्दर' कहै नही वश नेरा, राखे सिरजन हारा रे ।।४।।

(७) मन को उपदेश

रे मन राम सुमरि राम, सुमरि राम की दुहाई।
ऐसा अवसर विचार, कर से हीरा न डार,
पशु के लक्षण निवार, मनुष देह पाई ।।टेक।।
सकल सौंज मिली आय, श्रवण नैन वैन गाय।
सन्तन को शिर नवाइ, लेखे तन लाई।
दासन का होय दास, छूटे सब आश पाश,
कर्मन का करे नाश, शुद्ध होय भाई ।।१।।
सत गुरु की करहु सेव, जिन से सब लहै भेव[1],   रहस्य[1]
मिल है अविनाशी देव, सकल भुवनराई।
समझे अपना स्वरूप, 'मुन्दर है अति अनूप,
भूपति का होय भूप, साची ठकुराई ।।२।।

(८) प्राण अन्न मे

सब के आहि अन्न मैं प्रान,
वात बनाय कहो कोऊ केती, नाच-कूद के तूटत तान ।।टेक।।
पडित गुणी शूर कवि दाता, जो कोऊ और कहावत जान।
जठरा[1] अग्नि प्रकट होइ, जबही तब ही विसर जाय सब ज्ञान ।।१।।   पेट[1]
मीर मलिक[1] उमराव[2] छत्रपति, औरउ कहियत राजारान। बादशाह[1] सरदार[2]
यद्यपि सकल सपदा घर मे, तद्यपि मुख देखियत कुमिलान ।।२।।
आसन मार रहे वन माही, तेऊ उठत होत मध्यान।
'सुन्दर' ऐसी क्षुधा पापिनी, रहै नही काहू का मान ।।३।।

(९) योगी योग

है कोई योगी साधे पौना[1], प्राण[1]
मन थिर होय बिन्दु नहिं डोले, जितेन्द्री सुमरे नहिं कौना ।।टेक।।
यम अरु नेम धरे दृढ आसन, प्राणायाम करे मन मौना ।
प्रत्याहार धारणा ध्यान, लै समाधि लावे ठिक ठौना[2] ।।१।। स्थान[2]
इडा पिंगला समकर राखे, सुषमन करे गगन[1] दिषी गौना । ब्रह्म सहस्त्रा[1]
अहनिश ब्रह्म अग्नि परजारे, सापनि[3] द्वार छाड दे जौना ।।२।। कुंडलनी[3]
बहुदल षटदल दलदल खोजे, द्वादशदल तहा अनहद भौना[3] । स्थान[3]
षोडशदल अमृतरस पीवे, ऊपर दो दल करे चतौना ।।३।।
चढ आकाश अमर पद पावे, ताको काल कदे नहिं खोना[4] । नष्ट[4]
'सुन्दरदास' कहे सुन अवधू, महा कठिन यह पथ अलौना ।।४।।

योग को समझने के लिए मेरा लिखित 'साधक सुधा ग्रन्थ' अवश्य पढ़ें, उससे अधिक लाभ होगा ।

(१०) गोविन्द का स्वरूप गुरुगम्य

गुरु बिन गति गोविन्द की, जानी नहिं जाई ।
हौ सेवक उस पुरुष का, मोहि देइ लखाई ।।टेक।।
योगी जगम सेवडा, अरु बोध सन्यासी ।
शेख मसायक औलिया, बूझे वनबासी ।।१।।
जोगी तो गोरख जपै, जगम शिव ध्यावै ।
अरिहत अरिहत सेवडा, कहु पार न पावै ।।२।।
बोध सन्यासी बापुरे, लीये अभिमाना ।
शेख मसायक दीन का, उन कलमा ठाना ।।३।।
बडे अवलिया यूं कहैं, हम ही निज बदा ।
वन वासी वन सेइ के, खनि खावे कदा ।।४।।
अपने अपने पथ मे, सब दरसन[1] राता । जोगी आदि[1]
जन 'सुन्दर' रस राम के, कोई विरला माता[2] ।।५।। मस्त[2]

(११) करने योग्य सतगुरु

ऐसा सतगुरु कीजिये करनी[1] का पूरा । कर्तव्य[1]
उनमनि ध्यान तहा धरै, जहा चन्द[1]न सूरा[2] ।।टेक।। ईडा[1] पिंगला[2]
तन मन इन्द्री वश करे, फिर उलट समावे ।
कनक कामिनी देख के, कहु चित्त न चलावे ।।१।।

दो पख हिन्दू तुरक की, बिच आप सभाले[4] ।   जाने[4]
ज्ञान खड्ग गह झूझता, मधि मारग चाले ।।२।।
जाने सबको एक ही, पानी की बूदा ।
नीच ऊच देखे नही, कोई ब्राह्मण सूदा ।।३।।
सब्र सतन का मत गहै, सुमरे करतारा ।
'सुन्दर' ऐसे गुरु बिना, नहि हो निस्तारा[4] ।।४।।   उद्धार[4]

(१२) ईश्वर ख्याली

ख्याली तेरे ख्याल[1] का, कोई अन्त पावे ।   ससार[1]
कब का खेल पसारिया, कुछ कहत न आवे ।।टेक।।
ज्यो का त्यो ही देखिये, पूरण ससारा ।
सरिता नीर प्रवाह ज्यो, नहि खडित धारा ।।१।।
दीप जलत ज्यो देखिये, जैसे का तैसा ।
को जाने कैता गया, जग पावक ऐसा ।।२।।
जैसे चक्र कुलाल का, फिरता बहु दीसे ।
ठोर छाड कतहु न गया, यह बिसवा बीसे ।।३।।
प्रकट करे गुप्ता करे, घट घू घट ओटा ।
'सुन्दर' घटत न देखिये, यह अचरज मोटा ।।४।।

(१३) सब ब्रह्म विलास

एकै ब्रह्म विलास है, सूक्षम अस्थूला ।
ज्यो अकुर से वृक्ष है, शाखा फल फूला ।।टेक।।
जैसे भाजन मृतिका, अतर नहि कोई ।
पानी से पाला भया, पुनि पानी सोई ।।१।।
जैसे दीपक तेज[1] से, ऐसा यह खेला ।   अग्नि[1]
घाट[2] घडे बहु भाति के, है कनक अकेला ।।२।।   भूषण[2]
वायु बघूरा कहन को, ऐसा कुछ जाना ।
बादल दीसत गगन मे, तेउ गगन बिलाना ।।३।।
सतगुरु से सशय गया, दूजा भ्रम भागा ।
'सुन्दर' पटहि विचार से, सब देखे धागा ।।४।।

(१४) अद्वैत

एक अखडित देखिये, सब स्वय प्रकाशा ।
छता अनछता हो गया, यह बडा तमासा ।।टेक।।
पच तत्त्व दीसे नही, नही इन्द्री देवा ।
मन बुधि चित दीसे नही, है अलख अभेवा ।।१।।

सत रज तम दीसे नही, नही जाग्रत सपना ।
सुषुपति हीं तुरिया नही, नहि और न अपना ।।२।।
काल कर्म दीसे नही, नहि आहि[1] स्वभावा । — है[1]
प्रकृति पुरुष दीसे नही, नहि आव न जावा ।।३।।
ज्ञे ज्ञाता दीसे नही, नहिं ध्याता ध्यानं ।
'सुन्दर' सोधत सोध से, सुन्दर[1] ठहराना ।।४।। — ब्रह्महो[1]

(१५) ज्ञानी के कर्म न लागे

जाके हिरदै ज्ञान है, ताहि कर्म न लागे ।
मव पर बैठे मक्षिका, पावक से भागे ।।टेक।।
जहा पाहरू जाग हो, तहां चोर न जाही ।
आखिन देखत सिंह को, पशु दूर पला[1]ही ।।१।। — भागें[1]
जा घर माहि मजार हो, तहा मूषक नाशे ।
शब्द सुनत ही मोर का, अहि[1] रहे न पासे ।।२।। — सर्प[1]
ज्यो रवि निकट न देखिये, कबहूं अंधियारा ।
'सुन्दर' सदा प्रकाश मे, सबही से न्यारा ।।३।।८६।।

राग टोडी १२ (१) रमता राम को यूं समझो

राम रमइयो, यू समझइयो, ज्यो दर्पण प्रतिबिंब समझ्यो ।।टेक।।
करे करावे सब घट आपै, भिन्न रहै गुण कोई न व्यापै ।।१।।
रवि के उदय करहिं कृत[1] लोई[2], सूर्य कर्म लिपे नहिं कोई ।।२।। — कर्म[1] लोग[2]
शब्द रूप रस गध सपरसै, मन इन्द्रिन से न्यारा दरसै ।।३।।
ऐसे ब्रह्म जबहिं पहचाने, 'सुन्दरदास' तबै मन माने ।।४।।

(२) सब कुछ राम ही करावें

राम बुलावें राम बुलावे, राम बिना यह श्वास न आवे ।।टेक।।
रामहि श्रवनो शब्द सुनावे, राम नैनहु रूप दिखावे ।।१।।
रामहिं नासा गन्ध लिवावे, रामहिं रसना रस हि चखावे ।।२।।
रामहि दोऊ हाथ हलावे, रामहिं पाव हु पन्थ चलावै ।।३।।
रामहि तनको वमन उढावे, राम सुलावे राम जगावे ।।४।।
रामहि चेतन जगत नचावै, रामहि नाना खेल खिलावै ।।५।।
रामहि रकहिं राज करावै, रामहि राजहिं भीख मगावै ।।६।।
रामहि बहुविधि जलचर खावै, रामहि पलमे धूरि उड़ावै ।।७।।
रामहि सबमे भिन्न रहावै 'सुन्दर' वाको वाही पावै ।।८।।

(३) राम जप श्रेष्ठ साधन

राम नाम राम नाम, राम नाम लीजे ।
राम राम रट रट, राम रस पीजे ।।टेक।।
राम नाम राम नाम, गुरु से पाया ।।
राम नाम मेरे, हिरदै आया ।।१।।
राम नाम राम नाम, भज रे भाई ।
राम नाम पटतर, तुले न काई ।।२।।
राम नाम राम नाम, है अति नीका ।
राम नाम सब. साधन का टीका ।।३।।
राम नाम राम नाम, अति मोहि भावे ।
राम नाम निशि दिन, 'सुन्दर' गावे ।।४।।

(४) शिक्षा

भज रे भज रे भज रे भाई । लैरे लैरे, लै सुख दाई ।।टेक।।
दे रे देरे, तन मन अपना, है रे है रे, है सब सपना ।।१।।
मेट रे मेट रे मेट अहकारा, भेट भेट रे प्रीतम प्यारा ।।२।।
गाइ रे गाइ रे गुण गोविन्दा, ध्याय रे ध्याय रे परमानदा ।।३।।
खोल रे खोल रे भरम कपाटा, बोल रे 'सुन्दर' शब्द निराटा[1] ।।४।। निराला[1]

(५) निज स्थिति

खोजत खोजत सतगुरु पाया,
धीरे धीरे सब समझाया ।।टेक।।
चिन्तत चिन्तत चिन्ता भागी, जागत जागत आतम जागी ।।१।।
बूझत बूझत अन्तर बूझा, सूझत सूझत सब कुछ सूझा ।।२।।
जानत जानत सोई जाना, मानत मानत निश्चय माना ।।३।।
आवत आवत ऐसी आई, अब तो 'सुन्दर' रही न काई[1] ।।४।। कोई[1]

(६) ईश्वर ही कारण

एक तू एक तूं व्यापक सारै, एक तू एक तूं वार न पारै ।।टेक।।
एक तू एक तू पृथवी जाना, एक तू एक तू भाजन नाना ।।१।।
एक तू एक तू नीर प्रसगा, एक तू एक तू फैन तरगा ।।२।।
एक तू एक तू तेज तपन्ता, एक तू एक तू दीप अनन्ता ।।३।।
एक तू एक तू पवन प्रचूरा[1], एक तू एक तू फिरत बघूरा ।।४।। बहुत[1]
एक तू एक तू ज्यो आकाशा, एक तू एक तू अभ्र निवासा ।।५।।
एक तू एक तू कनक स्वरूपा, एक तू एक तू घाट[2]अनूपा ।।६।। भूषण[2]
एक तू एक तू सूत्र समाना, एक तू एक तू ताना वाना ।।७।।

एक तूं एक तूं और न कोई, एक तूं एक तूं 'सुन्दर' सोई ।।८।।

इसमे कारण कार्य की एकता बताई है। कारण ईश्वर अन्य सब कार्य भी ईश्वर रूप है ।

(७) सतो का धन ईश्वर

मेरा धन माधव माई री, कबहू बिसर न जाऊ ।
पल पल छिन छिन घडी घडी तिहि, बिन देख न रहाऊ ।।टेक।।
गहरी ठौर धरू उर अन्तर, काहू को न दिखाऊ ।
'सुन्दर' को प्रभु सुन्दर लागत, लेकर गोपि छिपाऊ ।।१।।

(८) प्रभु दर्शन से आनन्द

मेरा मन लागा माई री, परम पुरुष गोविन्द ।
चितवत नैनन मोहत सैनन, बोलत बैनन मन्द ।।टेक।।
अद्भुत रूप अरूप सकल अग, दुख हरन सुख कद ।
'सुन्दर' प्रभु अति सुन्दर शोभित, निरखत नित आनन्द ।।१।।

इस नौ के भजन मे दादूजी को पीनारा कहने वालो को बताया है कि दादूजी कैसे पीनारे थे। यहा किंचित सकेत किया है। जिनको अधिक देखना हो वै श्री दादू चरितामृत, प्रथम भाग, पृष्ठ ३२०/१५ विन्दु को अवश्य पढें ।

(९) पीनारे के रूपक से अध्यात्म विचार

एक पिंजारा ऐसा आया,
रूह[1] रूई पीजण के कारण, आपन राम पठाया ।।टेक।। आत्मा का अत करण[1]
पीजण प्रेम मूठिया मन की, लै की ताति लगाई ।
धुनि ही ध्यान बन्धा अति ऊचा, कबहू छूट न जाई ।।१।।
कर्म काटि[1] काढे नीके कर, गज ज्ञान के सकेलै[2] । कचर[1] इकठी[2]
पछल जमाइ सपेदी भरकर, प्रभु के आगे मेल्है ।।२।।
जोई जोई निकट पिनावन आये, रूई[3] सवन की पीजे । हृदय शुद्ध करे[3]
परमारथ को देह धरा है, मसकति[4] कछू न लीजै ।।३।। मजदूरी[4]
बहुत रूई पीनी बहु विधि[5] कर, मुदित भये हरि राई । भक्ति आदि से[5]
दादूदास अजब पीनारा, 'सुन्दर' बलि बलि जाई ।।४।।

दादूजी को पीनारा क्यो कहने लगे ? एकतो दादूजी ने भजन विघ्न मिटाने के लिए अपने पोष्य पिता लोधीराम नागर अहमदाबाद वाले रुई के वडे व्यापारी थे, उन के रुई पीजने के कारखाने का रामल नाम व्यक्ति विरक्त होकर दादूजी के पास भजन करने आमेर आ गया था, उस समय राजा तथा प्रजा के लोग दादूजी के पास बहुत आने मे भजन मे विघ्न हो गया । दादूजी ने रामल को कहा तुम

यहा रुई पीजने लगो, जब पीजने बैठोगे तब तुम मेरे रूप मे दीखोगे। इससे लोग मुझे पीनारा समझकर आना बन्द करेंगे। भजन विघ्न मिटाने के लिए दत्तात्रेय और कबीर जी ने भी उपाय किये थे (क्या किये थे वे दादू चरितामृत के भजन के ऊपर लिखे पृष्ठ देखें)। रामल ने स्वीकार किया तब सहसा पीजने के साधन और रुई वहा प्रकट हो गई। रामल पींजता था तब दादूजी के रूप में दीखता था। इससे बहुत लोग तो हट गये। राजा तथा कुछ सत्सगियो की श्रद्धा ज्यो की त्यो रही। तीसरे दिन भगवान ने दादूजी से कहा, यह क्यो कराते हो, दादूजी ने कहा-भजन का विघ्न मिटाने को। तुम्हे भक्ति प्रचार के लिए यहा भेजा है। जनता के आने से विघ्न मानोगे तो उपदेश किसको करोगे। इसे बन्द करो, उसी समय वह पीजने के साधन सब लय हो गये। फिर यह ज्ञात होने पर राजा तथा प्रजा की तो और अधिक श्रद्धा बढी, किंतु गलता वालो ने ईर्ष्या से यह प्रचार जोर से आरम्भ किया कि दादू पीनारा है। इससे पीनारा कहने लगे। दूसरी बात दादूजी धुनीगर्भ=नदी के प्रभाव मे बहते मिले थे। इससे "धुनीगर्भ सभू तो दादू नाम महामुनि" रज्जब के सर्वंगी मे श्लोक देखकर भी लोग बहक गये है, धुनिया कहने लगे। धुनिया की स्त्री धुनियानी कहलाती है, धुनी नही, धुनी नदी का नाम है। जैसे गगाजी का नाम देवधुनी=देव नदी। इस प्रकार बिना समझ तथा ईर्ष्या से यह प्रचार हुआ है। रज्जब ने दादूजी की पालकी मे केवल फूल देखकर और दादूजी को गुफा द्वार पर देखकर कहा था—"जो जोनी आया नही, मरण किस विधि होय" कहा है। सुन्दर दासजी ने—"अजोनी अनाय सु पाये अनादू, नमोदेव नमोदेव दादू" अष्टक मे कहा है, किन्तु लोगो ने ग्रन्थ तो देखे नहीं, विरोधियो के प्रचार से लिखने लगे। दादूजी के जीवन सबध मे लिखने वालो को "दादू चरितामृत" दादूजी का जीवन चरित्र देखकर लिखना चाहिये, मिथ्या बातें लिखकर निन्दा करने के भागी नही बनें। श्री दादू चरितामृत 11 सौ 75 पृष्ठ दो भागो मे छपा है और स्वामी लक्ष्मीराम चिकित्सालय, नथमल का चौक, जौहरी बाजार, जयपुर (राजस्थान)से मिलता है।

(१०) दादूजी की विशेषता

आया था इक आया था, जिन दर्शन प्रकट दिखाया था ।।टेक।।
श्रवण हू शब्द सुनाया था, तिन सत्य स्वरूप बताया था ।।१।।
ब्रह्म ज्ञान समझाया था, तिन सशय दूर बहाया था ।।२।।
अलख खजाना लाया था, तिन बाट सबन को खाया था ।।३।।
ऐसा दादू राया था, जो सुन्दर के मन भाया था ।।४।।९६।।

राग आशावरी १३ (१) मन की चपलता

कैसे धौं प्रीति रामजी से लागे, मन अपराधी चहु दिशि भागे ।।टेक।।

निश बासर भरमे अति भारी, कहा न माने बडा विकारी ।।१।।
भटकत डोले बिन ही काजा, बेशरमी को नैकु न लाजा ।।२।।
मेरा वश नाही कुछ याते, बारबार पुकारत ताते ।।३।।
आपही कृपा करे हरि सोई, तो 'सुन्दर' थिर काहे न होई ।।४।।

(२) जोगी अवधूत को उपदेश

अवधू आतम क्राहे न देखे,
जाहि हते सोई तुझ माही, कहा लजावत भेखै ।।टेक।।
हिंसा बहुत करै अपस्वारथ, स्वाद लगा मद[1] मासै । मदरा[1]
महामाइ भैरू को शिरदे, आप हि बैठा आसै[2] ।।१।। खावे[2]
गोरख भाग भखी नहि कबहू, सुरापान नहि पीया ।
झूठ हि नाम लेत सिद्धन का, नरक जायगा भीया[3] ।।२।। भाई[3]
कान फाड के भस्म लगाई, योगी किया शरीरा ।
सकल वियापी नाथ न जाना, जन्म गमाया हीरा ।।३।।
नाटक चेटक जत्र मत्र कर, जगत महा भरमावै ।
'सुन्दरदास' सुमर अविनाशी, अमर अभय पद पावै ।।४।।

(३) शरीर के उद्धार का साधन करो

साधो साधन तन का कीजे,
मन पवना पचो वश राखै, शून्य[1] सुधा रस पीजे ।।टेक।। विकार शून्य[1]
चन्द[1] सूर[2] दोउ उलट अपूठा, सुषमन के घर लीजे । ईडा[1] पिंगला[2]
नाद विन्दु जब गाठ[3] पडे तब, काया नैकु न छीजे ।।१।। स्थिर हो[3]
राजस तामस दोऊ छाडे, सात्विक बरतै तीजे ।
चौथा पद मे जाय समावै, 'सुन्दर' जुग जुग जीजे ।।२।।

(४) निज गुरु स्थिति परिचय

मेरा गुरु दो पख रहित समाना,
पिंड ब्रह्म निरतर खेले, ऐसा चतुर सयाना ।।टेक।।
पाप पुण्य की बेडी काटी, हर्ष शोक नहि आना[1] । हृदय मे नही आते[1]
राग द्वेष से भया विवर्जित, शीतल तपति बुझाना ।।१।।
हिन्दू तुरक दुहू से न्यारा, देखे वेद कुराना ।
मैं तै मेट तजा आपा पर, नीच ऊच सम जाना ।।२।।
दिवस न रैनि सूर नहिं शशिहर, आदि अत भ्रम भाना[2] । नष्ट[2]
जन्म मरण का सोच न कोई, पूरण ब्रह्म पिछाना ।।३।।
जागि न सोवे खाय न भूखा, मरे न जीवे प्राना ।
'सुन्दरदास' कहै गुरु दादू देखा अति हैराना ।।४।।

(५) निज गुरु प्रिय

मेरा गुरु लागे मोहि पियारा,
शब्द सुनावै भरम उडावै, करे जगत से न्यारा ।।टेक।।
जोग जुगति की सब विधि जानें, बातें कछु न छानै ।
मन पवना उलटा गह आने, आने छाने जानै ।।१।।
पचो इन्द्री दृढ कर राखै, शून्य सुधारस चाखै ।
वाणी ब्रह्म सदा ही भाषै, भाषै चाखै राखै ।।२।।
परमारथ को जग मे आया, अलख खजाना लाया ।
बाट बाट सबहिन से खाया, खाया लाया आया ।।३।।
परम पुरुष सो प्रकटे आदू, श्रवण सुनाया नादू ।
'सुन्दरदास' ऐसा गुरु दादू, दादू नादू आदू ।।४।।

(६) राम रस को कोई पावे

कोई पिवे राम रस प्यासा रे,
गगन मडल मे अमृत सरवै, उनमनि के घर वासा रे ।।टेक।।
शीश[1] उतार धरे धरती पर, करे न तन की आशा रे ।   अहकार[1]
ऐसा मिहगा अमी बिकावे, छह रितु बारह मासा रे ।।१।।
मोल करे सो छके दूर से, तोलत छूटे बासा[2] रे ।   वैराग्य हो[2]
जो पीवे सो जुग जुग जीवे, कबहू न होय विनाशा रे ।।२।।
या रस काज भये नृप जोगी, छाडे भोग विलासा रे ।
सेज सिंहासन बैठे रहते, भस्म लगाइ उदासा रे ।।३।।
गोरखनाथ भरथरी रसिया, सोई कबीर अभ्यासा रे ।
गुरु दादू परसाद कछू इक, पाया 'सुन्दरदासा' रे ।।४।।

(७) विपर्यय शब्दों द्वारा माया ईश्वर परिचय

सतो लखन बिहूनी नारी,
अग एकहु सावत नाही, कत रिझाया भारी ।।टेक।।
अधली आखन काजल कीया, मु डली माग सवारै ।
वूचा कानन कु डल पहिरे, नकटी बेसर धारै ।।१।।
कठ बिहूनी माला पहरै, कर बिन चूडा सोहै ।
पात्र बिहूनी पहरे घु घरू, पति अपने को मोहै ।।२।।
दत विहूनी बोडा चाबै, जीभ विहूणा बोले ।
निशिदिन ता पूहड के पीछे सग लगा पिव डोले ।।३।।
मन बिन काम करै सब घर के, जीव विहूनी जीवे ।
'सुन्दर' साई सेज विराजे, तेल न बाती दीवे ।।४।।

सन्तो ! माया रूप नारी है, वह नारी के लक्षणो से रहित है, मिथ्या होने से उस के अगो मे एक अग भी सावत=ठीक नही हैं तो भी उसमे अपने ईश्वर रूप पति को प्रसन्न किया है, अर्थात् ईश्वर माया द्वारा ही सब कुछ करते है। माया जड होने से ज्ञान नेत्रो से हीन अन्धी है, तो भी उसने सबका आकर्षण करना रूप काजल लगाया है। मोडी होने पर भी अज्ञानियो को मोहित करना रूप माग बनाई है। बूची होने पर भी वहकाना रूप कुण्डल पहन रखे हैं। नकटी होने पर भी धोखा देना रूप नथ पहन रखी है। कठ न होने पर भी शोभा रूप माला पहन रखी है। हाथ न होने पर दिखावा रूप चूडा पहन रखा है। पैर न होने पर भी सब को चमत्कृत करना रूप घुघरू पहने है। उक्त शृगार से अपने स्वामी को मोहित करती हैं। दात तो नही है फिर भी अपने द्वारा लोगो को नष्ट करना रूप पान चबाती है। जीभ नही है फिर भी बोल कर सबको अपनी ओर बुलाती है। ऐसी फूहर=निर्बुद्धि के पीछे पती=चेतन रात-दिन लगा फिरता है अर्थात् मायक शरीर के साथ ही रहता है। उस माया के मन तो नही है, फिर भी घर के सब काम करती हैं अर्थात् सब काम माया द्वारा ही होते हैं। यह माया जीव के बिना भी सुवर्ण चादी आदि के रूप म जीवित है। सुन्दरदासजी कहते हैं—साई= ईश्वर माया रूप सेज पर ही विराजते हैं किन्तु वहा तेल, बत्ती, दीपक आदि प्रकाश का साधन नही है कारण ईश्वर स्वय प्रकाश रूप है, उन्हे प्रकाश की आवश्यकता नही वेही सब को प्रकाश देते हैं। उक्त प्रकार माया नारी, के सब लक्षणो से हीन फूहर नारी है।

(८) विपर्यय ज्ञान पुत्र परिचय

सतो ! पुत्र भया एक धी[1] के, — बुद्धि[1]
पुरुष सग कबहू का छाडा, जानत सब कोई नीके ।।टेक।।
पिता आय किया संयोगा, यह कलियुग बरताना ।
शब्द सु विंदु श्रवण द्वारै कर हृदय माहि ठहराना ।।१।।
ता वीरज का सो सुत उपना, निश दिन करे तमासा ।
कर विन उचकि चन्द को पकडे, पग विन चढे अकाशा ।।२।।
भूल न दूध धाय का पीवे, माके चूखे फूले ।
सदा मुदित रोवे नहि कबहू, पडा पिघूर झूले ।।३।।
अति बलवन्त अग बिन बालक, करे काल को चोटा ।
'सुन्दर' डर किसहू का नाही, रहै ब्रह्म की ओटा ।।४।।

सन्तो ! जिज्ञासु की बुद्धि[1] मे ज्ञान रूप पुत्र हुआ। जिज्ञासु की बुद्धि विरक्त होने से किसी देवता आदि की उपासना रूप पुरुष सग तो कभी का ही छोड दिया था, यह तो सभी सत्सगी अच्छी प्रकार जानते हैं। जिज्ञासु की बुद्धि के

पिता गुरु हैं। गुरु का उपदेश वह अन्य सतसगियो से सुनती रही, तब ही उसमे निज को जानने की इच्छा हुई, फिर गुरु रूप पिता का सतसग रूप सग हुआ, तब बुद्धि मे अज्ञान रूप कलियुग वरत रहा था, यह देख कर गुरु ने अपना शब्द रूप विन्दु श्रवणो के द्वारा उसमे रखा, वह हृदय मे जाकर ठहर गया। उस वीर्य से वह ब्रह्म ज्ञान रूप पुत्र हुआ, जो रात-दिन ससार को बाजीगर के तमासा के समान मिथ्या रूप मानता था। उसके कर तो नही थे किन्तु वह ससार से ऊचा उचककर शान्ति रूप चन्द्रमा को पकडता था, और पैरो के विना ही ब्रह्म रूप आकाश मे चढता था। अविद्या रूप धाय का विषय सुख रूप दूध नही पीता था। किन्तु विद्या मा के विचार रूप स्वप्न चू क कर आनन्द से फूलता था। यह ज्ञान रूप पुत्र सदा प्रसन्न रहता था, कभी भी रोता नही था अर्थात् चिन्ता, शोकादि कभी नही करता था। विवेक रूप पालने मे सदा सहजावस्था मे झूलता रहता था। यह अपरोक्ष ज्ञान रूप बालक हाथ, पैरादि अगो के विना ही था, किन्तु अति बलवान था, काल को भी चोट पहुचाता था अर्थात् सब ब्रह्म स्वरूप है। यह निश्चय रूप आघात करता था। 'सुन्दरदास' जी कहते हैं-इस ज्ञान रूप पुत्र को किसीका भी डर नही था। वह तो मैं ब्रह्म रूप हू, इस प्रकार ब्रह्म की ओट मे रहता था।

(९) मुक्ति विषय मे नाना मत

मुक्ति तो धोखे की नीसानी,
सो कत हू नहि ठौर ठिकाना, जहा मुक्ति ठहरानी ॥टेक॥
को कहै मुक्ति व्योम के ऊपर, को पाताल के माही।
को कहै मुक्ति रहै पृथवी पर, ढू ढै तो कहु नाही ॥१॥
वचन विचार न कीया किन हू, सुन सुन सब उठ धाये।
गोदडा ज्यो मारग[1] चाले, आगे खोज विलाये ॥२॥
जीवत कष्ट करै बहुतेरे, मुये मुक्ति कहँ जाई।
धोखे ही धोखे सब भूले, आगे ऊवाबाई[2] ॥३॥ कुछ नही[2]
निज स्वरूप को जान अखडित, ज्यो का त्यो ही रहिये।
'सुन्दर' कछू ग्रहै नहि त्यागे, वहै मुक्ति पद कहिये ॥४॥

१ गोओ का वन मे मार्ग, उसमे चलने पर वन मे लय होता है, गोओ के खोज नही रहते।

२ ऊवा वाई की कथा पहले लिख आये हैं। तात्पर्य नही होने मे हैं।

(१०) निरजन राम सत्य

राम निरजन तू ही तू ही,
अहकार ज्ञान गया जब, सो तू ही सो तू ही ॥टेक॥

तूं ही तूं ही तब लग कहिये, जब लग मैं मैं आगे ।
मैं मैं मैं मैं होय विलय जब, सोहं सोहं जागे ॥१॥

सोहं सोहं कहै जबै लग, तब लग दूजा कहिये ।
'सुन्दर' एक न होय तहां कुछ, ज्यों का त्यों ही रहिये ॥२॥

(११) परम सुख का अधिकारी

मन मेरे सोय परम सुख पावै,
जाग प्रपंच[1] माहिं मत भूले, यह औसर नहिं आवै ॥टेक॥
सोवै क्यों न सदा समाधि में, उपजे अति आनन्दा ।
जो तू जागे[2] जग उपाधि में, क्षीण होय ज्यों चन्दा ॥१॥

सोये[3] रहते ही अखंड सुख, तो तू जुग जुग जीवे ।
जो जागे[4] तो पड़े मृत्यु मुख, बाद वृथा विष पीवे ॥२॥

सोवै जोगी जागै भोगी, यह उलटी गति जानी ।
'सुन्दर' अर्थ विचारे याका, सोई पंडित ज्ञानी ॥३॥

संसार[1] भोग भोगने में[2] समाधि में[3] भोगों हित[4]

(१२) ब्रह्म स्वरूप घर की स्थिति

सन्तो ! घर ही में घर[1] न्यारा,
पिंड ब्रह्मांड तहां[2] कुछ नाहीं, निरालम्ब निरधारा ॥टेक॥
दिवस न रैनि सूर नहिं ससिहर, अग्नि पवन नहिं पानी ।
घर आकास तहां कुछ नाहीं, ता घर सुरति समानी ॥१॥

वेद पुराण शब्द नहिं पहुंचे, मन ही मन में जाना ।
उलटा पंथ मीनका मारग, शून्य[3] शून्य पयाना ॥२॥

आदि अन्त मध्य तहां नाहीं, उतपति प्रलय न होई ।
तीनोंह गुण से अगम अगोचर, चौथा पद है सोई ॥३॥

अलख निरंजन है अविनाशी, आपे आप अकेला ।
दादूदास जाय तहां गोता, जीव ब्रह्म से मेला ॥४॥

शरीर रूप घर में ब्रह्म रूप घर अलग[1] ब्रह्म घर में[2] निरविकार हो[3]

(१३) हरि का निज बिरला पावे

सब कोई वर्णन करै देहका, सूक्षम ठौर न सूझे ।
पिंड ब्रह्मण्ड तहा कुछ नाही, उलट आप मे बूझे ।।३।।
काया[1] शून्य तजे ता आगे, आतम शून्य[2] प्रकाशै ।
परम शून्य[3] से परिचय होई, तब हि सकल भ्रम नाशै ।।४।।
पूरण ब्रह्म प्रकाश अखडित, वर्णन कैसे होई ।
दादूदास जाय वा घर मे, जानेगा जन सोई ।।५।।

शरीर का अभाव[1], द्वैत का अभाव[2], सर्वाभाव[3] हो तब सब भ्रम नष्ट होकर परब्रह्म अखण्ड रूप से भासता है । उस परब्रह्म का वर्णन किसी प्रकार भी नहीं हो सकता है । १२-१३ पदो मे अपने गुरुदादू का आभोग दिया है । रचना तो सुन्दरदास की है ।

(१४) पर ब्रह्म स्वरूप जडी

औधू[1] एक जडी हम पाई, — अवधूत[1]
पिंड ब्रह्मण्ड जहा तहां पसरी[1], सद्गुरु मोहि बताई ।।टेक।। — व्यापक है[1]
सातौ धातु मिलाय एकठी[1], तामे रग[2] निचोया । — शरीर मे[1] चेतन[2]
अष्ट पहर[3] की अग्नि लगाई, पीत वरण तब जोया ।।१।। — अन्तरग साधन[3]
चेला[4] सकल मढी[5] मे आये, कहैं गुरु से बैना । — इन्द्रिय[4] अन्त करण[5]
घर घर भिक्षा मागत फिरते, कबहू न होता चैना ।।२।।
अब तो बैठ करै बोगरा[6], चिन्ता गई हमारी । — बोगालना[6]
कोई कलपना उपजे नाही, सोवे पाव पसारी ।।३।।
और[7] करै सो छिपते डोलें, मेरे कुछ न भाये । — अन्य कर्म करें[7]
'सुन्दरदास' कहत है बाबा, प्रकट ढोल बजावें ।।४।

(१५) सत्य रसायन

औधू पारा[1] इहि विधि मारो, — वीर्य वा मन[1]
हो रसाइनी करहु रसायन, दुख दालिद्र निवारो ।।टेक।।
शीशी सुमति चढाय जुगति कर,ब्रह्म अग्नि प्रजारो ।
हो भसमन्त[2] उडे नहिं कबहू, ऐसो धवनी धारो ।।१।। — अन्त मे भस्म हो[2]
पलटे धातु होय सब कचन, जीवन जडी[3] बिचारो । — ब्रह्म चिन्तन[3]
भागे रोग भूख अति लागे, जागे भाग तुम्हारो ।।२।।
और कलाप करहु काहे को, किया कर्म सब डारो ।
मिथ्या बूटी खोद मरो जनि[4], वृथा जन्म कथ हारो ।।३।। — क्यो[4]
सद्गुरु भेद बतावे जबही, तब ही थिर हो पारो[5] । — मन[5]
'सुन्दरदास' कहै समझावे, बाजे प्रकट नगारो[6] ।।४।।१११।। — कीर्ति[6]
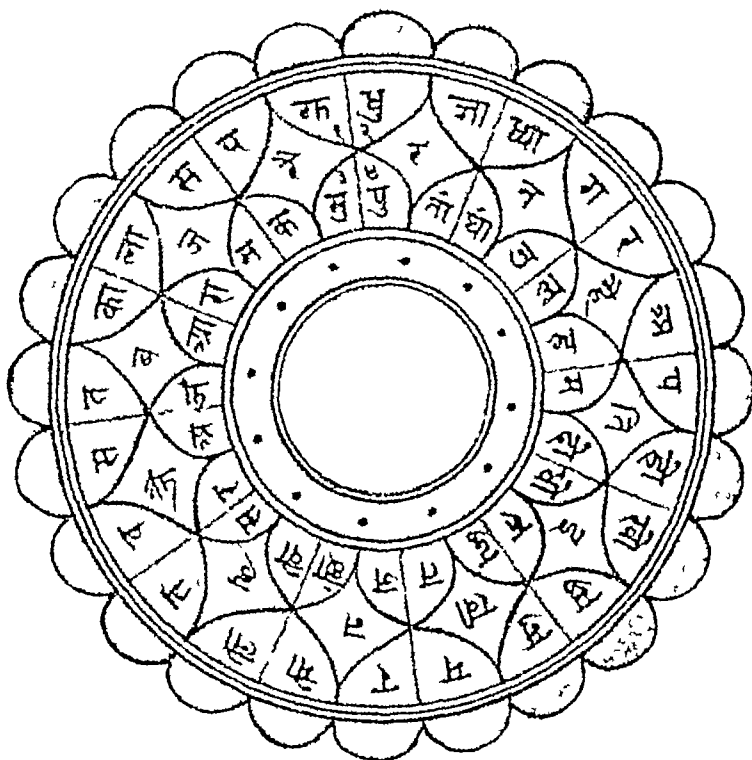
(१४) ककरा बन्ध दूसरा २

डुमिला छन्द

गुर ज्ञान गहै अति होइ सुखी, मन मोह तजै सब काज सरै ।
धुर ध्यान रहै पति खोइ मुखी, रन लोह वजै तब लाज परै ॥
सुर तान उहै हति होइ रुखी, तन छोह सजै अब आज मरै ।
पुर थान लहै मति धोइ दुखी, जन वोह रजै जब राज करै ॥

———o———

[इसके पढने की विधि सामने पृष्ठ पर देखें]

उपदेश चितावना अंग २ छंद ३३

कंकण बंध (२)

पढने की विधि —

जैसी ककरण-वध प्रथम के पढने की विधि है वैसी ही इसकी है'। उसही को सक्षेप मे देते हैं। छन्द के प्रत्येक चरण मे बारह शब्द दो २ अक्षरो के है। चारो चरणो के किसी भी सख्या के शब्दो मे दूसरा अक्षर एक ही है। ककरण मे की ऊपर नीचे वडी छोटी सब पखडियो (पत्तियो) के दो २ टुकडे हैं पिछले दो और पहिले दो यो चार २ टुकडो से एक २ चौकोर सा घर घिरा हुआ है। प्रत्येक ऐसे चौकोर घर का अक्षर चार वेर पढा जाता है। चारो चरणो के प्रथम शब्दो के प्रथम (आद्य) अक्षर-गु-धु-सु-पु-पखडियो के टूकडो मे पास २ हैं। इन पर चरणो के प्रथम अक्षर होने से १-२-३-४ के अक लगा दिये है। उक्त चारो आद्य अक्षर क्रम से इनके आगे पास वाले चौकोर घर के र अक्षर के साथ पढे जायगे। इसही प्रकार आगे के शब्द क्रमश छन्द वार पढे जायगे। (१) प्रथम चरण मे गु प्रथमाक्षर को चौकार घर के र अक्षर के साथ पढे। इसी तरह आगे ग्यारह शब्द इस प्रथम चरण के पढे। (२) २ रे चरण मे धु अक्षर के साथ उसही र अक्षर को साथ पढकर आगे के ११ शब्दो को भी उसही तरह पढे। (३) ३ रे चरण मे सु प्रथम अक्षर को उसही र के साथ पढकर आगे के शब्द पढे। (४) ४ थे मे पु को र के साथ और आगे वैसे ही ॥

— ❀ —

राग सिंधूडा १४, (१) महाशूर दादू

दादू शूर सुभट दल थम्भण, रोप रहा रण[1] माही रे । आसुर गुणो मे[1]
जाकी साखि सकल जग बोले, टेक टली कहु नाही रे ।।टेक।।
ऐसी मार करै बाणन[2] की, जिहि लागे सो जाणें रे । दैवी गुण बाण[2]
माता पूत एक ही जाया, बैरी बहुत बखाणे रे ।।१।।
हाक सुणे से हीया फाटे, सन्मुख कोइ न आवे रे ।
जहा पडे तहा टूक टूक कर, अति घमसाण मचावे रे ।।२।।
अग उघाडे उतर अखाडे, पर दल पाडे[3] शूरा रे । मारे[3]
रहै हजूर राम के आगे, मुख पर बरषे नूरा[3] रे ।।३।। तेज[3]
काम धणा[4] का सबहि सवारा, साहिब के मन भाया रे । ईश्वर[4]
कछू एक यश गुरु दादू का, 'सुन्दरदास' सुनाया रे ।।४।।

(२) वही शूर वीर है

सोई शूर वीर सामन्त शिरोमणि, रण मे जाय गलारे[1] रे । ललकारे[1]
आप आपना घर मे बैठा, गाल सबै कोई मारे रे ।।टेक।।
नागा लडे पहर केसरिया, सत वादी सत भाषै रे ।
श्याम भरोसे शक न कोई, और ओट नहि दाखे रे ।।१।।
हो मरणीक आश तज तन की, रोप[2] रहे रण माही रे । पैरो से खडा है[2]
दोनो प्राणी[3] जुडै जब सन्मुख, तब पाछा दे नाही रे ।।२।। वीर[3]
पीसे दात पिसण[4] के ऊपर, कै हाथ गहै हथियारा रे । शत्रु[4]
नेजा[5] धारी निरख फौज मे, मारै मन शिरदारै रे ।।३।। साँग[5]
जहा छूटे तीर[6] झडाझड बीचै, तहा साबता आवे रे । आसुर गुणो पर[6]
'सुन्दर' लटका[7] करै श्याम को, तव तो शूर कहावे रे ।।४।। प्रणाम[7]

(३) विवेक मोह का युद्ध

दो दल आय जुडे धरणी पर, विच सिंधूडा[1] बाजे रे । रण वाजा[1]
एक ओर को नृप विवेक चढ, एक मोह नृप गाजे रे ।।टेक।।
प्रथम काम रण माँहि गलारा[2], को हम ऊपर आवेरे । ललकारा[2]
महादेव सरिखा मैं जीता, नरकी कौन चलावे रे ।।१।।
आय विचार बोलिया वाणी, मुख पर नीके डाटारे[3] । फटकारा[3]
ज्ञान खडग ले तुरत काम को, हाथ पकड शिर काटा रे ।।२।।
क्रोध आय बोला रण माही, हू सब हिन का काला रे ।
देव दयत मनुष्य पशु पक्षी, जलें हमारी ज्वाला रे ।।३।।
क्षमा आय के हँसने लागी, शीश चरण को नाया रे ।
चूक हमारी बकसहु स्वामी, इतते क्रोध नशाया रे ।।४।।

तब हि लोभ रण आय पचारा[4], मैं तो सब ही जीते रे । बोला[4]
जो सुमेर[5]घर भीतर आवे, तो पेट सबन के रीते रे ।।५।। सुवर्ण गिरि[5]
इत सतोष आय भया ठाडा[6], बोले वचन उदासा रे । खडा[6]
होनहार सो हो है भाई, कीया लोभ का नाशा रे ।।६।।

महा मोह को लगी चटपटी, अति आतुर सो आया रे ।
मेरे जोधा सब ही मारे, ऐसा कौन कहाया रे ।।७।।

ता पर राय विवेक पधारा, कीनी बहुत लडाई रे ।
इततें उततें भई झडाझड, काहू सुद्धि न पाई रे ।।८।।

बहुत बार लग भूझे राजा, राय विवेक हकारा[7] रे । हाक दे के[7]
ज्ञान गदा की दिई शीश मे, महामोह को मारा रे ।।९।।

फीटा[8] तिमिर भान[9] तब उगा, अतर भया प्रकाशा रे । फटा[8] सूय[9]
युग युग राज दिया अविनाशी, गावे 'सुन्दरदासा' रे ।।१०।।

(४) शौर्य और उसका फल

तडफडे शूर नीसान[1] घाई पडे, कोट[2] की ओट सब छोड चालै । नगारा[1] किला[2]
श्याम के काम को लोट अरु पोट हो, निकसि मैदान मे चोट घाले[3] ।।टेक।। मारे[3]
जहा कडकडे[4] वीर गजराज हय हडहडै, धडधडे धरणि ब्रह्मण्ड गाजै । दात[4]
झलहलै[5] सार हथियार अति खडहडै, देखता दूर भकभूरि[6] भाजै ।।१।।
चमके[5] कायर[6]

जहा तुपक[7] तलवार अरु सेल टक[8] टूक हो, बाण की ताण चहु फेर हुई ।
वन्दूक[7] टकराव[8]
गहर घमसाणा मे कहर[9] धीरज धरै, हहरि भाजै नही सुभट सोई ।।२।। क्रोध[9]

पिसुन[10] सब फेनि झडझेलि सन्मुख लडै, मर्द को मार कर गर्द मेलै । शत्रु[10]
पच पच्चीस रिपु रीस कर निर्दलै, शीश भुइ मेल्हि के कमध खेलै ।।३।।
अगम को गम करै दृष्टि उलटो धरै, जीत सग्राम निज धाम आवै ।
'दास सुन्दर' कहै मोज मोटी लहै, रीझ हरि राय दर्शन दिखावै ।।४।।

(५) सत शूरो का यश

महाशूर तिनका यश गाऊ, जिन हरि से लय लाई रे ।
मन मैवासी[1] किया आप वश, और अनीति उठाई रे ।।टेक।। शत्रु[1]
प्रथम शूर सतयुग मे कहिये, ध्रुव दृढ ध्यान लगाया रे ।
माया छल कर छलने आई, डिगा न बहुत डिगाया रे ।।१।।
सनक सनन्दन नारद शूरा, नौ योगेश्वर न्यारा रे ।
तीन गुणो को त्याग निरतर, कीया ब्रह्म विचारा रे ।।२।।

ऋषभदेव नृप शूर शिरोमणि, जाय बसावन माही रे।
एक मेक हो रहा ब्रह्म से, सुधि शरीर की नाही रे ॥३॥
जन प्रह्लाद जोध जोरावर, पिता दिई बहु त्रासा रे।
रामनाम की टेक न छाडी, प्रकट भया हरीदासा रे ॥४॥
शूरवीर दत्तात्रय ऐसा, विचरत इच्छाचारी रे।
भया स्वतत्र नही परतत्रा, सकल उपाधि निवारी रे ॥५॥
व्यास-पुत्र शुकदेव सुभट अति, जनमत भया विरक्ता रे।
रम्भा मोह सकी नहिं ताको, सदा ब्रह्म अनुरक्ता रे ॥६॥
गोरखनाथ भरथरी शूरा, कमधज[2] गोपी चन्दा रे। वीर[2]
चरपट काणेरी चोरगी, लीन भये तज द्वन्द्वा रे ॥७॥
रामानन्द किया शूरातन, काशीपुरी मझारी रे।
लोक उपासक शिव के होते, आन भक्ति[2] विस्तारी रे ॥८॥ हरि की[2]
नामदेव अरु रकाबका, भया तिलोचन शूरा रे।
भक्ति करी भय छाड जगत का, बार्जहि तिनके तूरा[4] रे ॥९॥ वाजा[4]
कलियुग माहिं किया शूरातन, दास कबीर निशका रे।
ब्रह्म अग्नि पर जाल पलक मे, जीत लिया गढ[5] बका रे ॥१०॥ अज्ञान[5]
जन रैदास साध शूरातन, विप्रन मार मचाई रे।
सोझा पीपा सेन धना तिन, जीती बहुत लडाई[6] रे ॥११॥ आसुर गुणो की[6]
अगद भुवन परस हरदासा, ज्ञान गहा हथियारा रे।
नानक कान्हा बेण महाभट, भला बजाया सारा[7] रे ॥१२॥ वैराग्य लोह[7]
गुरु दादू प्रकटे[8] साभर मे, ऐसा शूर न कोई रे। ख्याति हुई[8], पहले प्रकट न थे
वचन बाण लाया जाके उर, थकित भया सुन सोई रे ॥१३॥
आदि अन्त किया शूरातन, युग युग साधु अनेका रे।
'सुन्दरदास' मोज यह पावै, दीजे परम विवेका रे ॥१४॥११६॥

राग सोरठ १५, (१) निज गुरु का शौर्य

ऐसा तै जूझ किया गढ घेरी, कोई जान न पाया सेरी[1] ॥टेक॥ गली[1]
दल जोड किया सब एका, गह शील सतोष विवेका।
गुरु ज्ञान सदा ही आया, उन शूरातन उपजाया ॥१॥
पहले कर नाम[1] अवाजा, तब रोके दश दरवाजा[2]। राम[1] शरीर के[2]
गह ब्रह्म अग्नि पर जारी, जल मुई पचीसो[3] नारी ॥२॥ प्रकृति[3]
वे पच[4] पयादा कोपे, तहँ उठ विवेक पग रोपे। ज्ञानेन्द्रय[4]
पुनि ज्ञान भया पर चण्डा, तिन मार किये शत खण्डा ॥३॥

वे काम क्रोध दोऊ भाई, गये लोभ मोह पै[5] धाई। 　　　　पास[5]
तुम बैठे कहा गवारा, उन मारा सब परिवारा ॥४॥
जब चारो मिलकर आये, तब शील शूर उठ धाये।
ता पीछे उठा सतोषा, तिन कछू न राखा धोखा ॥५॥
जब जूझ परे अगवानी, तब आये नृप अभिमानी[6]। 　　　　अभिमान[6]
उठ प्राण भवाल गलारे[7], गहि राजा मान पछारे ॥६॥ 　　　　ललकारा[7]
यह जीता खेत नरेशा, सो सुनियो शेष महेशा।
घट भीतर अनहद बोजे[8], तहा दादूदास विराजे ॥७॥ 　　　　हृदय मे[8]
दत गोरख ज्यो यश तेरा, यू गावे 'सुन्दर' चेरा[9]। 　　　　चेला[9]
इक दिन वचन सुन लीजे, मोहि मोज[10] दरश की दीजे ॥८॥ 　　　　सुख[10]

(२) शौर्य गुजराती भाषा (ताल)

भाजे काई रे भिडभारथ साम्हो, शूरा सत जिण हारे।
दुहो पवाड सुजस ताहरो, कै मरती कै मारै ॥टेक॥
चोट नगारे सुने सुभट जब, सिंधूडा सहनाई।
छोड सनाह हुलम कर आधा, फूला अग न माई ॥१॥
झलहल[1] तीर तरवार वरछो, देख कादरे[2] काचा। 　　चमके[1] कायर[2]
छूटे तीर तुपक[3] अरु गोला, घाव सहै मुख साचा ॥२॥ 　　　　बदूक[3]
गाढा[4] रोप रहे रण माही, फिर पाछा जनि आवे। 　　　　पैर[4]
घोडा घात विसण[5] सब खेले, तब तू शोभा पावे ॥३॥ 　　　　शत्रु[5]
भला शूर सामन्त सर्वही, सो शूरातन कीजे।
'सुन्दर' शीश उतार आपणो, श्याम काम को दीजे ॥४॥

(३) सत शौर्य

सोई ओ गाढा रे रण रावत वाको, पाछा पाव न मेल्हे।
साचे मते श्याम रे आगे, शीश[1] उतारा खेल्हे ॥टेक॥ 　　　　अहकार[1]
चढ चढ शूर चहु दिसि आया, हय[2] हीसे गै[3] गाजे। घोडा[2] हाथी[3] = कामादि
वीजल ज्यो चमके बाढली, कायर भाजै ॥१॥ 　　　　तलवार[5]
मुहै मिल हूवा मुहै नहि मोडे, होयजाय विकराला।
साग सवहि फेर शिर ऊपर, मारे मीर मुछाला ॥२॥
चूके नही चोट यू घाले, मारे मार सुनावे।
करडी कमर बाध कर कमधज, पर की फौज फिटावे[6] ॥३॥ 　　　　फाड दे[6]
खण्ड विहण्ड होय पल माही, करे न तन का लोभा।
'सुन्दर' मरे[7] तु मुकती पहुचे, जीवे तु जग मे शोभा ॥४॥ जीवित मृतक[7]

(४) सब शरीर में

जो कोई सुने सुगुरु की वाणी, सो काहे को भरमे प्राणी ।।टेक।।
घट भीतर सब दिखलावे, बडभागी होय सु पावै ।
जो शब्द माँहि मन राखे, सो राम रसायन चाखै ।।१।।
घट भीतर विष्णु महेशा, ब्रह्मादिक नारद शेषा ।
घट भीतर इन्द्र कुबेरा, घट भीतर प्रकट सुमेरा ।।२।।
घट भीतर सूरज चन्दा, घट भीतर सात समन्दा ।
घट भीतर नौ लख तारा, घट भीतर सुरसरि धारा ।।३।।
घट भीतर है रस भोगी, गोदावरि गोरख जोगी ।
घट भीतर सिद्धन मेला, घट भीतर आप अकेला ।।४।।
घट भीतर मथुरा काशी, घट भीतर गृह वनवासी ।
घट भीतर तीरथ न्हाना, घट भीतर आव न जाना ।।५।।
घट भीतर नाचे गावे, घट भीतर बेन बजावे ।
घट भीतर फाग बसता, घट भीतर कामिनि कन्ता ।।६।।
घट भीतर स्वर्ग पताला, घट भीतर है क्षय काला ।
घट भीतर युग युग जीवे, घट भीतर अमृत पीवे ।।७।।
जब घट से परिचय होई, तब काल न व्यापे कोई ।
जन 'सुन्दर' कहि समझावे, सतगुरु बिन कोई न पावे ।।८।।

(५) राम नाम चिन्तन से लाभ

मेरा मन राम नाम से लागा, तातै भरम गया भय भागा ।।टेक।।
आशा मनसा सब थिर कीनो, सत रज तम त्यागे तीनी ।
पुनि हर्ष शोक गये दोऊ, मद मच्छर रहे न कोऊ ।।१।।
नख शिख लौ देह पखारी, तब शुद्ध भई सब नारी[1] ।
भया ब्रह्म अग्नि सु प्रकाशा, किया सकल कर्म का नाशा ।।२।।
ईड़ा पिंगला उलटी आई, सुषमन ब्रह्माण्ड[2] चढाई ।
जब मूल चापि दिढ बैठा, तब बिन्दु गगन मे बैठा ।।३।।
जहा शब्द अनाहद बाजे, तहा अन्तर जोति विराजे ।
कोई देखे देखन हारा, सो 'सुन्दर' गुरू हमारा ।।४।।

[1] नाडी
[2] सहस्रार

(६) योग युक्ति लाभ

ऐसी योग युगति जब होई, तब काल न व्यापे कोई ।।टेक।।
धर आसन पद्म रहता, सब काया कर्म दहता ।
तज निद्रा खड अहारा, कर आप हि आप विचारा ।।१।।

गहि विन्दु गगन[1] दिशि जाता, भख पवन पियाला माता ।　　दशम द्वार[1]
सुन अनहद सीगी बाजे, धुनि माँहि निरजन गाजे ॥२॥

सो अवधू गुरु का पूरा, जिन एक किया शशि[1] सूरा[2] ।　　इडा[1] पिंगला[2]
अभिअतर जोति जगावे, तहा उनमनि ताली लावे ॥३॥

गह गग जमुन विच खेला, तहा परम पुरुष का मेला ।
गुरु दादू दिया दिखाई, तहा 'सुन्दर' रहा समाई ॥४॥

उक्त ६ न पद के विषय को वारवार कह आये हैं तथा शब्दार्थ सब वता आये हैं ।

(७) हमारे महान् साहूकार राम

हमारे साहु रमइया मोटा, हम ताके आहि बनोटा[1] ॥टेक॥ छोटे बनिया[1]
यह हाट दिई जिन काया, आपना कर जान बिठाया ।
पू जी का अन्त न पारा, हम बहुत करी भडसारा[1] ॥१॥ भडार की भरती[1]

लिई वस्तु अमोलक सारी, सब छाड विषय खल खारी ।
भर राखा सब ही भौना, कोई खाली रहा न कौना ॥२॥

जो गाहक लेने आवे, मन माना सौदा पावे ।
देखे बहु भाति किराना, उठ जाय न और दुकाना ॥३॥

समरथ की कोठी आये, तव कोठीवाल कहाये ।
बनिजें हरिनाम निवासा[2], यह बनिया 'सुन्दरदासा' ॥४॥ भडार भर के[2]

(८) राम साहूकार

देख साह रमइया ऐसा, सो रहै अपरछन[1] वैसा ॥टेक॥ छिपा नही[1]
यह हाट किया ससारा, तामे विविधि भाति व्योपारा ।
सब जीव सौदागर आया, जिन बनजा तैसा पाया ॥१॥

किनहूँ बनजी खल खारी, किनहू लिइ लौग सुपारी ।
किन हू लिइ मू गा मोती, किन हू लिइ काच की पोती[1] ॥२॥　　टुकडा[1]

किन हू लिइ औषधि मूरी, किन हू केसर कस्तूरी ।
किन हू लिया वहुत अनाजा, किन हू ल्हसण प्याजा ॥३॥

सतन लीया हरि हीरा, तिन से कीया हम सीरा ।
दु ख दालिद निकट न आवे, यू 'सुन्दर' वनिया गावे ॥४॥

इस मे विविध कर्म करने जैसा फल पाया, यह वताया है। वस्तुयें सव अच्छे-बुरे कर्म के वोधक हैं।

(९) निर्गुण ब्रह्म से प्रेम

मोहि सतगुरु कह समझाया हो,
परम पुरुष बिन और न परसौं[1], पीव निरजन राया हो ।।टेक।। मिलू[1]
सब ऊपर सोई मेरा स्वामी, उस पर कोई न बताया हो ।
मनसा वाचा और कर्मना, वाही से मन लाया हो ।।१।।
घट धारी से प्रीत न मेरो, जो अवतार कहाया हो ।
वे हम भइया बधु आपस मे, एक हि जननी जाया हो ।।२।।
ब्रह्मा विष्णु महेश विचारा, वहा लग जान न पाया हो ।
बाजी माहि बीच ही अटके, मोह लिये सब माया हो ।।३।।
तहा गये गोरक्ष भरथरी, जहा घाम नहि छाया हो ।
तहा कबीर गुरु दादू पहुचे, 'सुन्दर' वहि दिशि धाया हो ।।४।।

(१०) निजगुरु परम ज्ञानी

मेरे सतगुरु बडे सयाने हो,
लोक वेद मरजाद उलघि कै, गये गगन[1] के थाने[2] हो ।।टेक।। ब्रह्म[1] धाम[2]
अगम ठौर के आसन बैठे, बेहद से मन माने हो ।
साच सिगार किया उर अतर, भेष भरम सब भाने हो ।।१।।
तिमिर मिटा जब ब्रह्म प्रकाशे, कैसे रहत पिछाने हो ।
शिव विरचि सनकादिक नारद, शेषनाग पुनि जाने हो ।।२।।
योगी यती तपी सन्यासी, ये सब भरम भुलाने हो ।
तीरथ व्रत जप तप बहु कर कर, उरै उरै उरझाने हो ।।३।।
गोरख भरथरि नाम कबीरा, सतन माहि प्रमाने हो ।
'सुन्दरदास' कहै गुरु दादू, पहुचै जाय ठिकाने[3] हो ।।४।। ब्रह्मधाम[3]

(११) निज गुरु महिमा

उस सतगुरु की बलिहारी हो,
बन्धन काट किये जिन मुकता, अरु सब विपति निवारी हो ।।टेक।।
वाणी सुनत परमसुख पाया, दुरमति गई हमारी हो ।
भरम कर्म के सशय खोले, दिये कपाट उघारी हो ।।१।।
माया ब्रह्म भेद समझाया, सो हम लिया विचारी हो ।
आदि पुरुष अभिअतर राखे, डायनि[1] दूर विडारी हो ।।२।। आशा[1] माया
दया करी उन सब सुख दाता, अबके लिया उबारी हो ।
भवसागर मे बूडत काढे, ऐसे पर उपकारी हो ।।३।।
गुरु दादू के चरण कमल पर, मेल्हौ शीश उतारी हो ।
और कहा ले आगे राखै, 'सुन्दर' भेट तुम्हारी हो ।।४।।

(१२) श्रेष्ठ सत

सोई सत भला मोहि लागे हो,
राम निरजन से मन लावे कनक कामिनी त्यागे हो ।।टेक।।
तज ससार उलट नहि आवे, जो पग सुआगे हो ।
ज्ञान खडग ले सन्मुख जूझे, फिर पीछे नहि भागे हो ।।१।।
पच तीन गुण और पचीसो, ब्रह्म अग्नि में दागे हो ।
सहज स्वभाव फिरे जन मुकता, ऐसे जग मे जागे हो ।।२।।
आशा तृष्णा करे न कबहू, काहू पै नहि मागे हो ।
कबहू पचा अमृत भोजन, कबहू भाजी शागे हो ।।३।।
अतरयामी नैक न विसरे, बारबार चित[1] धागे हो । चित्त को ब्रह्म लगाव[1]
'सुन्दरदास' तास को बदे, शून्य[2] सदारस पागे हो ।।४।। ब्रह्मरस[2]

(१३) सब सुखद सत

वे सन्त सकल सुखदाता हो,
जिनके हृदय नाम निज निर्मल, प्रेम मगन रस माता हो ।।टेक।।
रोमाचित अरु गदगद वाणी, पल पल पुलकित गाता हो ।
सर्व भूत से दया निरतर, शीतल बैन सुहाता हो ।।१।।
दर्शन करत ताप त्रय भागे, परसत पाप नशाता हो ।
मोन रहै बूझे से बोले, कहैं ब्रह्म की बाता हो ।।२।।
कोई निन्दे कोई बदे, सम दृष्टि तत[1]-ज्ञाता हो । तत्त्व[1]
कोप न करे हर्ष नहि माने, परम पुरुष से राता[2] हो ।।३।। अनुरक्त[2]
जग मे रहै जगत से न्यारा, ज्यो जल पुरइ निपाता[3] हो । कमल पत्र[3]
'सुन्दरदास' सत जन ऐसे, सिरजे आप विधाता हो ।।४।।

(१४) सतगुरु प्रदत्त विचार

भाई रे सतगुरु कहि समझाया, मोहि एक विचार बताया ।।टेक।।
धाये भूखे भूखे भूखे, जब लग नही सतोषा ।
धाये धाये भूखे धाये, हरि भज पाया मोषा[1] ।।१।। मोक्ष[1]
बैठे चलते चलते चलते, जब लग मन थिर नाही ।
बैठे बैठे चलते बैठे, जब समझा हरि माही ।।२।।
निर्मल मैले मैले मैले, जब लग मन हि विकारा ।
निर्मल निर्मल मैले निर्मल, गलित भया गुण सारा ।।३।।
उत्तम मध्यम मध्यम मध्यम, जब लग वस्तु[2] न जानी । ब्रह्म[2]
उत्तम उत्तम मध्यम उत्तम, आतम दृष्टि पिछानी ।।४।।

साचा झूठा झूठा झूठा, जब लग आन पुकारे।
साचा साचा झूठा सांचा, वाणी ब्रह्म उचारे ॥५॥
पडित मूरख मूरख मूरख, जब लग अह[3] न जाई। अहकार[3]
पडित पडित मूरख पडित, दुविधा दूर गमाई ॥६॥
मुक्ता बन्धा बन्धा बन्धा, जब लग तजी न आशा।
मुक्ता मुक्ता बन्धा मुक्ता, सबमे भया उदासा ॥७॥
जीता हारा हारा हारा, जब लग है अज्ञाना।
जीता जीता हारा जीता, 'सुन्दर' ब्रह्म समाना ॥८॥

(१५) ब्रह्म प्रकाश प्रद ज्ञान

भाई रे प्रकटा ज्ञान उजाला,
अहकार भ्रम गया विलाई सतगुरु किये निहाला ॥टेक॥
इहै[1] ज्ञान गह ब्रह्मा बोले, कहिये आदि कुलाला। यही[1]
इहै ज्ञान गह सतगुण धरके, विष्णु करे प्रतिपाला ॥१॥
इहै ज्ञान गह शकर गौरी, प्रेम मगन मतवाला।
इहै ज्ञान गह शुक मुनि नारद, बोलत बैन रसाला ॥२॥
इहै ज्ञान गह राम भजत है, बैठे शेष पताला।
इहै ज्ञान गह प्रकट जती भये, ऐसे हनुमत बाला ॥३॥
इहै ज्ञान गह जन प्रहलादू, बचे अग्नि की ज्वाला।
इहै ज्ञान गह ध्रू अविनाशी, टरत न काहू टाला ॥४॥
इहै ज्ञान गह दत्त दिगम्बर, यह न लिई मृग छाला।
इहै ज्ञान गह गोरख जोगी, जीत लिया यम काला ॥५॥
इहै ज्ञान गह गये भरथरी, केते और भुवाला।
इहै ज्ञान गह गोपी चन्द हि, छाडा सब जजाला ॥६॥
इहै ज्ञान गह नाम कबीरा, पीवे अमृत प्याला।
इहै ज्ञान गह सोझा पीपा, जन रैदास कमाला ॥७॥
इहै ज्ञान गह यू गुरुदादू, चल सतन की चाला।
इहै ज्ञान पाया जन 'सुन्दर', जग मे भया निराला ॥८॥

(१६) ससार बाजी मे भूल रहे हैं

सब कोऊ भूल रहे इहि बाजी,
आप आपने अहकार मे, पातसाह क्हा पाजी[1] ॥टेक॥ पैदल[1]
पात साह के विभव बहुत विधि, खात मिठाई ताजी।
पेट पयादा भरत आपना, जीमत रोटी भाजी ॥१॥

पण्डित भूले वेद पाठ कर, पढ कुरान को काजी ।
वे पूरबदिशि करें दडवत, वे पश्छिमहि निवाजी ॥२॥

तीरथिया तीरथ को दोडे, हज को दौडे हाजी ।
अन्तरगत को खोजे नाही, भ्रमणे ही से राजी ॥३॥

अपने अपने मद के माते, लखें न फूटी साजी[2] ।
'सुन्दर' तिनहि कहा अब कहिये, जिनके भई दुराजी ॥४॥१३२॥

[2] मावत

राग जंजैवन्ती १६ (१) परब्रह्म तेरे पास

काहै को भ्रमत है तू, बावरा अन्यत्र जाय ।
जाको तू कहत दूर, सो तो तेरे पास है ॥टेक॥

ऐसे तू विचार देख, व्यापक है तोहि माहि ।
दूध माहि घृत जैसे, फूलन मे बास है ॥१॥

बाहर को दौडे तेरे, हाथ न पडत कुछ ।
अलट अपूठा तेरा, तो ही मे प्रकाश है ॥२॥

जाके रूप रेख कुछ, वरण[1] कहा न जाय ।
अलख अमूरति, अमर अविनाश है ॥३॥

[1] रग

सोह सोह बार बार, होत ही रहत नित्य ।
याही मे समझ जो, उठत तेरे श्वास है ॥४॥

एकता विचारे जब, 'सुन्दर' ही स्वामी होय ।
दूसरा विचारे तब 'सुन्दर' ही दास है ॥५॥

(२) तू ही सुख-सागर है

आप को सभारे जब, तू ही सुखसागर है ।
आपको विसारे तब, तू ही दुख पाइ है ॥टेक॥

तू ही जब आवे ठौर, दूसरा न भासे और ।
तेरी ही चपलता से, दूसरा दिखाइ है ॥१॥

बाये कान सुन भावे, दाहिने पुकार कहू ।
अब के न चेता तो तू, पीछे पछताइ है ॥२॥

भावे आज भाये कल्पान्त, बीते होय ज्ञान ।
तब ही तू अविनाशी, पद मे समाइ है ॥३॥

'सुन्दर' कहत सन्त, मारग बतावै तोहि ।
तेरी खुसी पडे तहा, तू ही चल जाइ है ॥४॥१३४॥

राग रामगरी१७, (१) भेष भरोसे न भूलें

अवधू भेष देख जनि[1] भूले, क्यो[1]
जब लग आतम दृष्टि न आई, तब लग मिटे न सूलै[1] ।।टेक।। दु ख[1]
मुद्रा पहर कहावत जोगी, युगति न दीसै हाथा ।
वह मारग कहु रहा अनत[2]हो, पहुँचे गोरखनाथा ।।१।। अन्य स्थान[2]
ले सन्याम करे वहु तामस, लम्बी जटा बधावै ।
दत्तदेव की रहनि न जाने, तत्त्व कहा से पावै ।।२।।
मू ड मुण्डाय तिलक शिर दीया, माला गले झुलाई ।
जो सुमिरन कीना सब सन्तन, सो तो खबर न पाई ।।३।।
तहबन्द[1] बाध कुलका लीना, दम दम करै दीवाना[2] । लु गी[1] पागलपन[2]
महमुद की करनी नहिं जाने, क्यो पावे रहिमाना[3] ।।४।। दयालु ईश्वर[3]
दरसन[5] लिया भली तुम कीनी, क्रोध करो जनि कोई । भेष[5]=षट दरसन
'सुन्दरदास' कहै अभिअन्तर, वस्तु[6] विचारी सोई ।।५।। ब्रह्म[6]

(२) सत साधन मे दृढ़

सत चले दिश ब्रह्म की, तज जग व्यवहारा ।
सीधे मारग चालते, निन्दै ससारा ।।टेक।।
सन्त कहैं साची कथा, मिथ्या नहिं बोले ।
जगत डिगावे आय के, तो कबहू न डोलै ।।१।।
जे जे कृत ससार[1] के, ते सन्तन छाडे । जन्म मरण दाता[1]
ता को जगत कहा करे, पग आगे[2] माडे ।।२।। ब्रह्म की ओर[2]
जे मरजादा वेद की, ते सन्तन मेटी ।
जैसे गोपी कृष्ण को, सब तज कर भेटी ।।३।।
एक भरोसे राम के, कुछ शक न आने ।
जन 'सुन्दर' साचे मते, जग की नहिं माने ।।४।।

(३) सतगुरु शब्दों से उद्धार

सतगुरु शब्दहु जे चले, तेई जन छूटे,
जग मरजादा मे रहे, ते महुकम[1] लूटे[2] ।।टेक।। बहुत[1] गये[2]
कुलकी मोटी सकला, पग बाधे दोई ।
गले तौक[3] कर हथकडी, क्यो निकसे कोई ।।१।। फाशी[3]
नाना विधि के बाधनो, सब बाधे वेदा ।
शूरवीर कोई निकस है, जो पावे भेदा ।।२।।
बाबा अरु दादा चले, ते मारख खोटा ।

सो व्यापार न कीजिये, जिहि आवे टोटा ॥३॥
पन्थ पुरातन कहत हैं, सब[4] चलता आया। सत[4]
'सुन्दर' सो उलटा[5] चले, जिन सतगुरु पाया ॥४॥ ब्रह्म की ओर[5]

(४) जगत मे यही खोट

यह सब जान जग का खोट।
छाड श्रीपति शरण साची, गहैं झूठी ओट ॥टेक॥
दगाबाज प्रचण्ड लोभी, कामना नहि छेह।
भूत आगे पूत मागे, पडेगी शिर खेह ॥१॥
देव देवी सकल भ्रम भ्रम, कहू न पूजी[1] आश। पूर्ण[1]
मानुषा तन पाय ऐसा, किया यू ही नाश ॥२॥
कष्ट कर कर स्वर्ग बछहि, और पृथवी राज।
महा मूढ अज्ञान अपना, करहि बहुत अकाज ॥३॥
सुख निधान मुजान समथ[2], ताहि भजत न कोइ। समर्थ ईश्वर[2]
कहत 'सुन्दरदास' ऐसे, काज कैसे होइ ॥४॥

(५) ससार बाजी

नटवट[1] रचा नटवे[2]एक, नटवर[1] ईश नटमे[2] भव बाजी रची
बहु प्रकार बनाय बाजी, किये रूप अनेक ॥टेक॥
चार खानी जीव तिनकी, और और जाति।
एक एक समान नाही, करी ऐसी भाति ॥१॥
देव भूत पिशाच राक्षस, मनुष पशु अरु पखि।
अगिन जलचर कीट कृमि कुल, गिने कौन असखि ॥२॥
भिन्न भिन्न स्वभाव किये, भिन्न भिन्न अहार।
भिन्न भिन्नहि युक्ति राखी, भिन्न भिन्न विहार ॥३॥
भिन्न वाणी सकल जानी, एक एक न मेल।
कहत 'सुन्दर' माहि बैठा, करै ऐसा खेल ॥४॥

(६) यह शरीर रहने वाला नहीं

यह तन ना रहै भाई,
दिना दहु[1] चहु[2] माहि सबका, चला जग जाई ॥टेक॥ दश[1] चार[2]
विष्णु ब्रह्मा शेष शकर, सो न थिर थाई[3]। स्थित[3]
देव दानव इन्द्र केते, गये विनशाई ॥१॥
कहत दश अवतार जग मे, औतरे आई।
काल तेऊ झपट लीने, वश नही काई[4] ॥२॥ कोई[4]

कौरवा पाडवा रावण, कुम्भकरनाई।
गरद[5] वैसे भये जोधा, खबर ना पाई ॥३॥ धूल[5]
घट घर कोई थिर न दीसे, रक अरु राई[6]। राजा[6]
'दास सुन्दर' जान ऐसी, राम त्यौ लाई ॥४॥

(७) निरजन राम जप सर्वश्रेष्ट साधन

एक निरजन नाम भजहुरे, और सकल जजाल तजहुरे ॥टेक॥
योग यज्ञ तीरथ व्रतदाना, लौंण बिन ज्यो विजन नाना ॥१॥
जप तप सयम साधन ऐसे, सकल सिंगार नाक बिन जैसे ॥२॥
हेम[1]तुला वैठे कहा होई, नाम बराबर धर्म न कोई ॥३॥ सोना[1]
'सुन्दर' नाम सकल शिरताजा, नाम सकल साधन का राजा ॥४॥

(८) ऐसी भक्ति सुखद

ऐसी भक्ति सुनहु सुख दाई,
तीन अवस्था मे दिन बीते, सो सुख कहा न जाई ॥टेक॥
जाग्रत कथा कीरतन सुमिरन, स्वप्ने ध्यान लै त्यावै।
सुषपति प्रेम मगन अतरगत, सकल प्रपच भुलावै ॥१॥
सोई भक्ति भक्त पुनि सोई, सो भगवन्त अनूप।
सो गुरु जिन उपदेश बताया, 'सुन्दर' तुरिये स्वरूप ॥२॥

(९) अन्तिम अद्वैत

तू ही राम हू ही राम, वस्तु विचारे भ्रम द्वै नाम ॥टेक॥
तू ही हू ही जवलग दोइ, तवलग तू ही हूं ही होइ ॥१॥
तू ही हू ही सोह दास, तू ही हू ही वचन विलास ॥२॥
तू ही हू ही जबलग कहै, तवलग तू ही हू ही रहै ॥३॥
तू ही हू ही जब मिट जाय, 'सुन्दर' ज्यो का त्यो ठहराय ॥४॥१४३॥

राग बसन्त १८, (१) गुरु की शिक्षा प्राप्त योगी

इन योगी लीनी गुरु की सीख, नाम निरजन मागे भीख ॥टेक॥
कथा पहरी पचरग[1], ज्ञान विभूति लगाई अग। ज्ञानेन्द्रिय वश करना[1]
मुद्रा गुरु का शब्द कान, ऐसा भेष किया अवधू सुजान ॥१॥
सीगी सुरति बजाई पूरि, वस्ती देखी बहुत दूर।
जहा शब्द सुने नगरी मझार, तहा आसन कर बैठा विचार ।२॥
अमृत का तहा आवे ग्रास[2], चेला चाटी रहै पास। सिर मे अमृत तम्याली[1]
नव काहू से बाट खाय, तहा विद्भुर जमात[3] कहू न जाय ॥३॥ दैवीगुण[3]
यह भोजन[4] पावै बार बार, भर भर पेट करै अहार। अमृत[4]
भागी भूख अघाय प्रान, ऐसी 'सुन्दर' नगरी सुख निधान ॥४॥ योग साधन[5]

(२) गुरु के शब्द बाण प्राप्त स्थिति

मेरे हिरदै लागा शब्द बान, ताकि मारा सतगुरु सुजान ।।टेक।।
यह दशो दिशा मन करता दौड, वोधत ही रह् गया ठौड ।
चल न सके कहु पैड एक, देखो माहि कलेजे भया छेक ।।१।।

ऊपर घाव न दीसे कोइ, भीतर नख सिख लीया पोइ ।
कोइ न जाने मेरी पीर, सो जाने जाके लगा तीर ।।२।।
जीवत मृतक किये मार, रोम रोम ऊठे पुकार[1] । प्रभु से प्रार्थना[1]
प्रेम मगन रस गलित गात, मोहि बिसर गई सब और बात ।।३।।

गति मति पलटी पलटा अग, पच पचीसनि[2] एक सग । प्रकृति[2]
उलट समाने शून्य[3] माहि, अब 'सुन्दर' कहु अनत नाहि ।।४।। ब्रह्म मे[3]

(३) हरि रचित बाग

ऐसा बाग[1] किया हरि अलख राइ, कुछ अद्भुत रचना कही न जाइ ।।टेक।। ससार[1]
यह पच तत्त्व का सघन बाग, मूल बिना तरु सरस लाग ।
बहु विधि बिरवा[2] रहे फूल, जो देखे सो जाय भूल[3] ।।१।। शरीर[2] हरि[3]

यह बारह मास फले सुफाल, तहा पक्षी बोलै डाल डाल ।
जब यह आये ऋतु बसत, ये तब सुख पावै सकल जत ।।२।।

ताहि सीचत है प्रभु बार बार, पुनि पल पल माहि करै सभार ।
प्रभु सब ही द्रुम[4] का मर्म जान, तामे कोइक बाके मनहि मान ।।३।। वृक्ष[4]
जो फलै न फूले बाग माहि, ऐसा सतगुरु चन्दन और नाहि ।
ताकी रचक लागी आय बास, तिन पलट लिया 'सुन्दर' पलास ।।४।।

(४) ऐसा फाग सत न खेलै

ऐसा फाग न खेलै सत कोई, जामे उतपति प्रलै जीव होई ।।टेक।।
इन मोह गुलाल लगाया अग, पुनि लोभ अरगजा[1] लिया सत । सुगधित वस्तु[1]
केसर कुमति करी बनाइ, अरु माया का मद पिया अघाइ ।।१।।

तहा मदल[2] मदन बजाये भेरि, आशा अरु तृष्णा गावै टेरि । मद[2]
हाथन मे लीने क्रोध बस, इन कर कर क्रीडा हता हस[3] ।।२।। परम हस[3]

जब खेल मालिह के चले न्हान, पुनि शोक सरोवर किया सनान ।
सशय का तिलक दिया लिलाट, गये आप आपको बारह बाट ।।३।।

यही जान तुरत हम छूटे भाग, यह सब जग देखा जलत आग ।
अपने शिरकी फिर डारी पोट, जन 'सुन्दर' पकडी हरि ओट ।।४।।

(५) माया का खेल

हम देख बसंत किया विचार, यह माया खेलै[1] अति अपार ।।टेक।। खेल है[1]
यह छिन छिन मांहि अनेक रग, पुनि कहू विछुरे कहू करै सग ।
यह गुणधर वैठी कपट भाइ, यह आपहि जनमे आप खाइ ।।१।।
यह कहु कामिनि कहु भई कन्त, यह कहु मारे कहू दयावन्त ।
यह कहु जागे कहु रही सोइ, यह कहू हँसे कहू उठे रोइ ।।२।।
यह कहु पाती कहु भई देव, पुनि कहु युक्ति कर करै सेव ।
यह कहु मालनि कहुं भई फूल, यह कहूं सूक्ष्म कहु हो है स्थूल ।।३।।
यह तीन लोक मे रही पूरि, भाग कहा कोई जाय दूरि ।
जो प्रकटे 'सुन्दर' ज्ञान अग, तो माया मृग जल रजु भुजग ।।४।।

(६) सतो का फागोत्सव

तुम खेलहु फाग पियारे कन्त, अब आया है फागुन ऋतु वसत ।।टेक।।
घसि प्रेम प्रीति केसर सु रग, यह ज्ञान गुलाल लगावै अंग ।
भर सुमति पिचकारी अपने हाथ, हम भरिहैं तुमहि त्रिलोक नाथ ।।१।।
तुम हमहिं भरहु कर अधिक प्यार, हम तुमहिं प्रभु वार वार ।
निश वासर खेल अखड होइ, यह अद्भुत खेल लखे न कोइ ।।२।।
तहँ शब्द अनाहद अति रसाल, धुनि दुन्दभि[1] ढोल मृदग ताल । नगारा[1]
सुख उपजे श्रवनन सुनत नाद, मन मगन होय छूटे विषाद ।।३।।
हम तुमहि पकड आज है नैन, सव हो हो हो हो कहैं वैन ।
तुम छूटे चाहत फगुवा देइ, यह 'सुन्दर' नारि कछू न लेइ ।।४।।

(७) आत्मा राम का वसत खेल

देखो घट घट आतम राम, निरतर खेलत सग्म वसत ।
ऐसा ख्याली ख्याल किया है, कवहु न आवत अत ।।टेक।।
चार खानि विस्तार जगत यह, चौरासी लख जत ।
खेचर भूचर अरु जल चारी, वहु विधि सृष्ठि रचन्त ।।१।।
धरती गगन पवन अरु पानी, अग्नि सदा वरतत ।
चन्द सूर तारा गण सव ही, देव यक्ष अगनन्त ।।२।।
ज्यो ससुद्र मे फेन वुद वुदा, लहर अनेक उठन्त ।
तरुवर तत्त्व रहै एक रस, झडझड़ पत्र पडन्त ।।३।।
ज्यो का त्योही खेल पसारा, वीता काल अनन्त ।
'सुन्दर' ब्रह्म विलास अखडित, जानत है सव सत ।।४।।१५०।।

राग गौंड १९, (१) विरह दुःख

मेरा प्रीतम प्राण अधार, कब घर आइ है ।
कहु सो दिन ऐसा होय, दरश दिखाई है ।।टेक।।
ये नैन निहारत मार्ग, इक टग हेरही ।
बाल्हा[1] जैसे चन्द चकोर, दृष्टि न फेरही ।।१।। प्यारा[1]
यह रसना करत पुकार, पिव पिव प्यास है ।
बाल्हा जैसे चातक लीन, दीन उदास है ।।२।।
ये श्रवण सुनन को बैन, धीरज ना धरैं ।
बाल्हा हिरदै होय न चैन, कृपा प्रभु कब करैं ।।३।।
मेरे नख शिख तपति अपार, दुःख कासे कहूं ।
जब 'सुन्दर' आवे यार[2], सब सुख तो लहूं ।।४।। प्रेमी[2]

(२) विरह वियोग

मुझ वेगि मिलहु किन[1] आय, मेरा लाल रे । क्यो नही[1]
मैं तेरे विरह वियोग, फिरूं बेहाल रे ।।टेक।।
हूं निशदिन रहो उदास, तेरे कारने, ।
मुझे विरह कसाई आय, लागा मारने ।।१।।
इस पंजर[2] मांही पैठ, विरह मरोर ही । शरीर मे[2]
जैसे बस्तर धोबी ऐठ, नीर निचोर ही ।।२।।
मैं कासन[3] करूं पुकार, तुम बिन पीव रे । किससे[3]
यह विरहा मेरी लार, दुखी अति जीव रे ।।३।।
अब काहेन[4] करहु सहाय, 'सुन्दरदास' की । क्यो नहीं[4]
बाल्हा तुम से मेरी आय, लगी है आसकी[5] ।।४।। प्रीति[5]

(३) विरहनी पुकार

विरहनि है तुम दरश पियासी, क्यो न मिलो मेरे पिय[1] अविनाशी ।।टेक।। राम[1]
येते दिन हौ काइ विसारी, निश दिन झूर मरत है नारी ।।१।।
विभचारनि हौ होती नाही,ले पतिव्रत हि रहौ मन माही ।।२।।
तुम तो वहुत त्रियन[3]सग कीना, मैं तो एक तुमहिं चित दीना ।।३।। भक्तन से[3]
'सुन्दरदास' भई गति ऐसी, चातक मीन चकोर हि जैसी ।।४।।

(४) राम से सच्ची प्रीति लगी

लागी प्रीति पिया से साची, अबहू प्रेम मगन हो नाची ।।टेक।।
लोक वेद डर रहा न कोई, कुल मरजाद कदे[1] की खोई ।।१।। कभी की[1]
लाज छोड गिर फरका[2] डारा, अब किन हसो सकल ससारा ।।२।। पल्ला[2]

भावे कोई करहु कसौटी, मेरे तन की बोटी[8]बोटी ॥३॥ टुकड़ा[8]
'सुन्दर' जब लग शंका राखे, तब लग प्रेम कहा से चाखे ॥४॥

(५) सतदर्शन हर्ष

आज दिवस धनि राम दुहाई, आये सत सकल सुखदाई ॥टेक॥
मगलाचार भया आनन्दा, कमल खिले ज्यो देखे चन्दा ॥१॥
भाव अधिक उपजा जिये मेरे, तन मन धन नौछावर फेरे ॥२॥
विनती जोड करू दोइ हाथा, वारवार नमाऊ माथा ॥३॥
मस्तक भाग उदय कर जाना, 'सुन्दर' भेटे सत सयाना ॥४॥१५५॥

राग नट २० (१) ईश्वर करे पर शिर और दे

यह तो एक अचम्भा भारी,
करहु आप शिरदेहु और के, कैसी रीति तुम्हारी ॥टेक॥
पच तत्त्व गुण तीन आन के, युक्ति मिलाई सारी।
आप न निर्विकार हो बैठे, हमको किये विकारी ॥१॥
जड की शक्ति कहा की स्वामी, देखहु दृष्टि निहारी।
हलन चलन चम्वक से दीसे, सुई न चलत विचारी ॥२॥
माया मोह लगाय सवन को, मोहे नर अरु नारी।
ममता मच्छर[1] अहकार की, पासि गले मे डारी ॥३॥ मत्सर[1]
ठग विद्या नीकी जानत हो, वडे चतुर व्यापारी।
हमको दोष न देहु गुसाई, 'सुन्दर' कहत उधारी[1] ॥४॥ उघाड कर[1]

(२) ससार रच कर ईश्वर गुप्त

वाजी कौन रची मेरे प्यारे,
आप गुप्त हो रहे गुसाई, जग सब ही से न्यारे ॥टेक॥
ऐसा चेटक[1] किया चेटकी[2], लोग भुलाये सारे। जादू[1] जादूगर[2]
नाना विध के रग दिखावै, राते पीले कारे ॥१॥
पाख परेवा[3] धूरि सु चावल, लुकअजन[4] विस्तारे। कबूतर[3] सिद्धाजन[4]
कोई जान सके नहि तुमको, हुन्नर वहुत तुम्हारे ॥२॥
ब्रह्मादिक पुनि पार न पावे, मुनि जन खोजत हारे।
साधक सिद्ध मौन गह बैठे, पडित कहा विचारे ॥३॥
अति अगाध अति अगम अगोचर, चारो वेद पुकारे।
'सुन्दर' तेरी गति तू जाने, किनहु नही निरधारे[5] ॥४॥ निर्णय[5]

(३) ईश्वर की गति अगम

तेरी अगम गति गोपाल,
कौन जाने यह कहा से, किया ऐसा ख्याल[1] ।।टेक।। ससार[1]
को कहत है करम करता, को कहत है काल ।
को कहत है न को करता, सबै मारत[2] गाल ।।१।। व्यर्थ बकते हैं[2]
को कहत है ब्रह्म माया, है अनादि विशाल ।
को कहत है सब स्वभाव से, स्वर्ग मृत्यु पाताल ।।२।।
जूवा[3] जूवा मत बखाने, जूई[4] जूई चाल । जुदा[3] जुदी[4]
अत सबही कूद थाके, मृग की सी फाल ।।३।।
वार पार कहूं न दीसे, कहू मूल न डाल ।
देख 'सुन्दर' भये चक्रित[5], सब ठगे से लाल ।।४।। हैरान[5]

(४) ईश्वर की बात अकथनीय

देखहु अकथ प्रभु की बात,
एक बून्द उपाय जल की, रची सातो धात[1] ।।टेक।। शरीर की धातु[1]
साज नख शिख अति अनूपम, किया चेतन गात[2] । शरीर[2]
योनि द्वारै जनम पाया, पुत्र जाना मात ।।१।।
पुष्ट नित प्रति होन लगा, चलत पीवत खात ।
बाल लीला रमत बहु विधि, सबन अग सुहात ।।२।।
बहुर यौवन निरख निज तन, कही से न शकात ।
मन मनोरथ बहुत कीन्हे, छल छदम[3] उतपात ।।३।। कपट[3]
जरा झपा शीश कपा, तजा सब सघात ।
कहत 'सुन्दर' मरण पाया, जीव धौं[4] कहा जात ।।४।।१५९।। निश्चय[4]

राग सारग २१ (१) विरहनि को हरि वियोग दुखद

मेरा पिय परदेश लुभाना री[1], साधक सत सखी[1]
जानत हौं अजहू नहिं आये, काहू से उरझाना री ।।टेक।।
ता दिन से मोहि कल[2] न पडत है, जब से किया पयाना री । चैन[2]
भूख पियास नीद नही आवे, चितवत होत विहाना[3] री ।।१।। प्रभात[3]
विरह अग्नि मोहि अधिक जलावै, नैनो मे पहचानो री ।
बिन देखे हौं प्राण तजूगी, यह तुम साची मानो री ।।२।।
बहुत दिनन की पथ निहारत, किनहु सदेश न आना री ।
अब मोहि रहा पडत नहि सजनी, तन से हस उडाना री ।।३।।
भई उदास फिरत हौं व्याकुल, छूटा ठौर ठिकाना री ।
'सुन्दर' विरहनि को दुख दीरघ, जो जाने सो जाना री ।।४।।

(२) चेतावनी

अधे सो दिन काहे भुलाया रे,
जा दिन गर्भ हुता अधे मुख, रक्त पीत लपटाया रे।
बालपने कुछ सुधि नहिं कीनी, मात पिता हुलराया[1] रे। लडाया[1]
खेलत खात गये दिन यू ही, माया मोह बधाया रे ।।१।।
जोवन माहि कामरस लुबधी, कामिनी हाथ बिकाया रे।
जैसे बाजीगर का वानर, घर घर बार नचाया रे ।।२।।
तीजापन मे कुटम्ब भया तब, अति अभिमान बढाया रे।
मेरी सरभर करे न कोई, हौ बाबा का जाया रे ।।३।।
बिरध भया शिर कपन लागा, मरने का दिन आया रे।
'सुन्दरदास' कहै समुझावे, कबहू राम न गाया रे ।।४।।

(३) चेतावनी

कौने भ्रम भूले अधला[1] अंधा[1]
अपना आप काट के मूरख, आपहि कारण रधला[2] ।।टेक।। सीझ रहा है[2]
मात पिता दारा सुत सम्पति, बहु विधि भाई बधला[3]। बान्धव[3]
अन्तकाल कोइ काम न आवे, फोकट फाटक[4] धधला[5] ।।१।। व्यर्थ[4] धधा[5]
गये बिलाय देव अरु दाना, होते बहुतक मधला[6]। मदिर[6]
तुम कहा गर्व गुमान करत हो, नख शिख लौ दुरगधला[7] ।।२।। दुर्गन्ध युक्त[7]
या सुख मे कुछ नाहिं भलाई, काल विनाशे कधला।
'सुन्दरदास' कहै समझावे, राम भजहु निरमधला[8] ।।३।। भेदरहित[8]

(४) संसारी प्राणियो की दुर्मति

देखहु दुरमति या ससार की,
हरि सा[1] हीरा छाड हाथ से, बाधत मोट[2] विकार की ।।टेक।। जैसा[1] पोट[2]
नाना विधि के करम कमावत, खबर नही शिर भार की।
झूठे सुख मे भूल रहे है, फूटी आख गवार की ।।१।।
कोई खेती कोइ बनजी लागे, कोइ आश हथियार की।
अध धध[3] मे चहु दिशि धाये, सुधि विसरी करतार की ।।२।। धधो[3]
नरक जान के मारग चाले, सुन सुन बात लवार[4] की। बहुबोलने वाला[4]
अपने हाथ गले मे बाही, पासी माया जार[5] की ।।३।। जाल[5]
वारवार पुकार कहत हौ सौं[6] है सिरजनहार की। शपत[6]
'सुन्दरदास' विनश कर जै है, देह छिनक मे छार की ।।४।।

(५) चेतावनी

या मे कोऊ नही काहू कारे,
राम भजन कर लेहु वावरे, औसर काहे चूका रे ।।टेक।।
जिन से प्रीति करत है गाढी, सो मुख लावे लूका[1] रे ।   अग्नि[1]
जाल बाल तन खेह करेगे, देदे मूड ठरूका[2] रे ।।१।।   कपाल क्रिया[2]
जोड जोड धन करत एकठा, देत न काहू टूका रे ।
एक दिना सब यू ही जै है, जैसे सरवर सूका रे ।।२।।
अजहूँ वेगि समझ किन देखो, यह ससार बिझूका[3] रे ।   चमकाने वाला[3]
माया मोह छाड कर बौरे, शरण गहे हरिजू का रे ।।३।।
प्राण पिंड सिरजे जिन साहिब,ताको काहे न कूको[4] रे ।   पुकारो[4]
'सुन्दरदास' कहै समझावे, चेलो है दादू को रे ।।४।।

(६) निजगुरु महिमा

स्वामी पूरण ब्रह्म विराज ही,
सदा प्रकाश रहे जिनके उर, भरम तिमिर सब भाज ही ।।टेक।।
भाव भक्ति अरु प्रेम मगन अति, रोम रोम धुनि वाज ही ।
ज्ञान ध्यान सब ही विधि पूरण, सकल भवन मे गाज ही ।।१।।
दीनदयाल परम सुखदाई, करत सबन का काज ही ।
जिनकी महिमा जाय न वरणी, फेरि सवारत साज[1] ही ।।२।।   शरीर के[1]
अति अपार भवसागर तारत, देकर नाम जहाज ही ।
अनायास प्रभु पार करत है, बाह गहे की लाज ही ।।३।।
किये प्रकट जगदीश जगत मे, नाना भाति निवाज[2] ही ।   कृपा करें[2]
'सुन्दरदास' कहै गुरु दादू, हैं सब के सिरताज ही ।।४।।

(७) सत विशेषता

बलिहारी हू उन सत की,
जिन के और झोर[1] कुछ नाही, कहै कथा भगवत की ।।टेक।।   झगडा[1]
शीतल हृदय सदा सुखदाई, दया करै सब जत की ।
देखि देखि वे मुदित होत हैं, लीला आप अनन्त की ।।१।।
जिनसे गोपि[2] कहू कुछ नाही, जानत आदि रु अन्त की ।   गुप्त[2]
'सुन्दरदास' कहै जन तेई, रखत वात सिद्धन्त की ।।२।।

(८) सन्त महिमा

आये मेरे अलख पुरुष के प्यारे,
परमहस अतिसै कर शोभित, निर्मल दशा निहारे ।।टेक।।

देखत ही शीतलता उपजी, मिलत सकल अघ जारे[1] । जलाये[1]
वचन सुनत भय भ्रम सब भागे, सशय शोक निवारे ।।१।।

चरणामृत लेत ही परम सुख, उपजा आज हमारे ।
सीथ[2] पाय के मुक्त भये है, काटे बन्धन सारे ।।२।। प्रसाद[2]
महिमा अनन्त कहा लग वरणो, कहत कहत कहि हारे ।
आप सरीषे किये तुरत, ही, 'सुन्दर' पार उतारे ।।३।।

(९) सन्त घर पधारने पर आनन्द

सन्तन जब गृह पाव धरे,
धन्य दिवस सोइ घडी महूरत, जा क्षण दृष्टि परे ।।टेक।।
अति आनन्द भया मन मेरे, विगसत अक भरे ।
कर दण्डोत प्रदक्षिणा दीनी, नख शिख अग ठरे[1] ।।१।। ठहे[1]
बिनती बहुत करी तिन आगे, दीन वचन उचरे ।
हो प्रसन्न मदिर[2] मे आये, पावन धाम करे ।।२।। घर[2]
चरण पखाल लिया चरणोदक, पूरब पाप गरे[3] । गल गये[3]
'सुन्दर' तिनका दर्शन पावत, कारज सकल सरे[4] ।।३।। सिद्ध हो गये[4]

(१०) सत सेवा करने की प्रेरणा

कर मन उन सन्तन की सेवा,
जिन के आन भरोसा नाही, भजहि निरजन देवा ।।टेक।।
शील सतोष सदा उर जिनके, राम नाम के लेवा ।
जीवत मुक्त फिरै जग माही, उरझे को सुरझेवा ।।१।।

जिन के चरण कमल को बछत, गगा जमुना रेवा ।
'सुन्दरदास' उनहु की सगति, मिल है अलख अभेवा[1] ।।२।। अद्वैत[1]

(११) निरजन की बलिहारी

राम निरजन की बलिहारी,
रूप रेख कुछ दृष्टि पडे नहि, कौन सके निरधारी[1] ।।टेक।। निर्णय[1]
जाका किया जगत नाना विधि, यह माया विस्तारी ।
कीमत कोऊ कहै कहा कहि, नहि हलका नहि भारी ।।१।।

सब घट व्यापक अन्तरजामी, चेतन शक्ति तुम्हारी ।
'सुन्दर' शक्ति काढ जब लीनो, रूस[2] रहे नर नारी ।।२।। शक्तिहीन से[2]

(१२) गुरु ज्ञान सुखद

अहो यह ज्ञान सरस गुरुदेव का, जाके सुनत परम सुख होई ।
सहज मिले परब्रह्म को, कष्ट कलेश न कोई ।।टेक।।

(५) कर्म रूप झूला पर ससार झूले

करम हिंडोलना झूलता सब ससार,
है हिंडोल अनादि का यह, फिरत बारम्बार ।।टेक।।
दोइ खभ सुख दुख अडिग रोपे, भूमि माया माहिं ।
मिथ्या ममता कुमति कुट्या, चार डाडी आहिं[1] ।।　　　　है[1]
पाप पटली पुन्य मरवा, अधो ऊरध जाहिं ।
सत्त्व रज तम देहि झोटा, सूत्र खैचि झुलाहिं ।।१।।
तहा शब्द सपरश रूप रस बन, गध तरु विस्तार ।
तहा अति मनोरथ कुसम फूले, लोभ अलि[2] गु जार ।।　　　　भ्रमर[2]
चक्रवाक[3] मोर चकोर चातक, पिक ऋषीक[4] उचार ।　　चकवा[3] हिरण[4]
तरल तृष्णा वहत सरिता, महा तीक्षण धार ।।२।।
यह प्रकृति पुरुष मचाइ राखा, सदा करम हिंडोल ।
सज विविध रूप विकार भूषण, पहरि अगन चोल ।।
एक नृत्यत एक गावत, मिल परस्पर लोल[5] ।　　　　चचल[5]
रति ताल मदन मृदग बाजत, दुन्द[6] दुन्दुभि ढोल ।।३।।　　　　द्वन्द्व[6]
यहि भाति सब ही जगत झूले, छ रुति बारह मास ।
पुनि मुदित अधिक उछाह मन मे, करत विविधि विलास ।।
यू झूलते चिरकाल बीता, होत जनम विनाश ।
तिन हार कबहू नाहिं मानी, कहत 'सुन्दरदास' ।।४।।

(६) ब्रह्म आकाश समान

देखो भाई ब्रह्माकाश समान,
परब्रह्म चैतन्य व्योम जड, यह विशेषता जान ।।टेक।।
दोऊ व्यापक अकल अपरमित, दोऊ सदा अखड ।
दोऊ लिये छिपे कहु नाही, पूरण सब ब्रह्मण्ड ।।१।।
ब्रह्म माहिं यह जगत देखियत, व्योम माहि घन यौंही ।
जगत अभ्र उपजे अरु विनशे, वे हैं ज्यौं के त्यो ही ।।२।।
दोऊ अक्षय अरु अविनाशी, दृष्टि मुष्टि नहिं आवै ।
दोऊ नित्य निरतर कहिये, यह उपमान बतावै ।।३।।
यह तो एक दिखाई है रुख, भ्रम मति भूलहु कोई ।
'सुन्दर' कचन तुले लोह सग, तो कहा सरभर होई ।।४।।१७९।।

राग काफी २३, (१) फाग ने सब का घर खाया

इन फाग सबन घर खोया हो,
अही हों, कहत पुकार पुकार ।।टेक।।
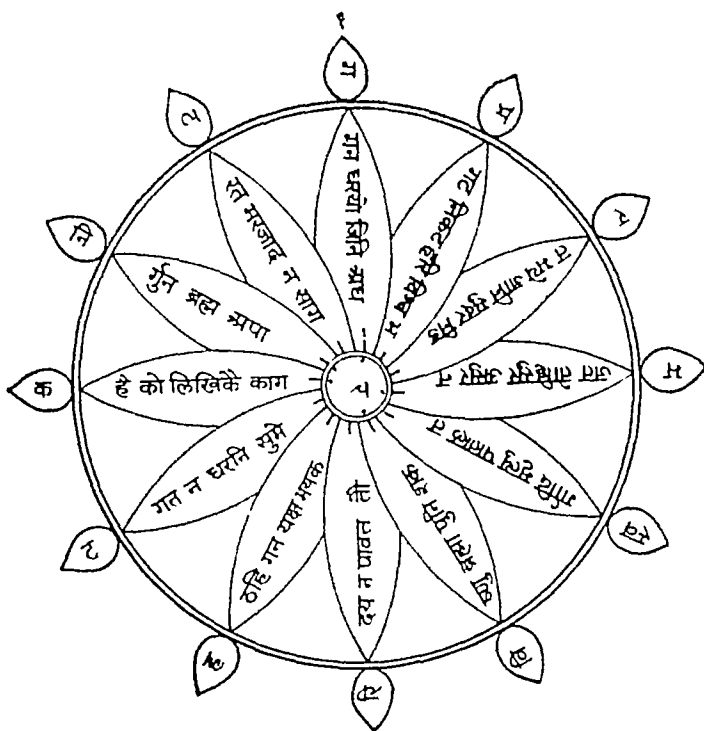
कमल बन्ध

छप्पय

गगन धर्यो जिनि अधर टरत मरजाद न सागर।
निर्गुन ब्रह्म अपार कहै को लिखि कै कागर।।
टगत न धरनि सुमेर हठहि गन यक्ष भयकर।
रिदय न पावत तौर विष्णु ब्रह्मा पुनि शकर।।
स्वर्गादि मृत्यु पाताल तर भजत तोहि सुर असुर नर।
रत भये जानि सुन्दर निडर प्रगट निकट हरि विश्व भर।।

पढने की विधी

"गगन" शब्द के 'गकार' पर १ का अङ्क है—वहा से प्रारम्भ करके बाई ओर की पँखुडियो के चरणो को पढते जाँय। अन्त का चरण 'सुन्दर' वाली पक्ति मे है।

यह छप्पय चित्रकाव्य ही मे है, ग्रन्थ मे नही है।

कुछ सशय शोक रहै नहिं, निकस जाय सब साला[1] । दुःख[1]
ज्यो अमृत के पीवतें, अमर होय ततकाला ।।१।।

सत सगति मिल खेलिये, जुग जुग फाग बसन्ता ।
राम रसाइण पीजिये, कबहु न आवे अन्ता ।।२।।

अनहद बाजा बाज ही, अन्तकरण मझारा ।
कमल प्रफुलित होत है, लागे रग[2] अपारा ।।३।। प्रेम[2]

भान[3] उदय ज्यो होत ही, अन्धकार मिट जाये । सूर्य[3]
'सुन्दर' ज्ञान प्रकाश से, ब्रह्मानन्द समाये ।।४।।

(१३) ब्रह्म विचार की विशेषता

पहले हम होते छोकरा,
ब्रह्म विचार वनिज हम कीया, ताही से भये डोकरा ।।टेक।।
भली वस्तु सचय कर राखी, लेने आवे लोकरा[1] । जिज्ञासु लोग[1]
यह उधार का सौदा नाही, दीजे लीजे रोकरा[2] ।।१।। पूर्ण श्रद्धा[2]
जो कोइ ग्राहक लेत प्यार से, ताका भागे शोकरा[3] । शोक[3]
'सुन्दर' वस्तु[4] सत्य यह यू ही, और बात सब फोकरा[5] ।।२।। ब्रह्म[4] व्यर्थ[5]

(१४) निज स्थिति परिचय

पहले हम होते छोहरा[1], परमार्थमे लडके[1]
कौडी[1] बेच पेट नित भरते, अब तो हुये बोहरा[2] ।।टेक।। नीति सुनाते[1] ज्ञानी[2]
दे इकोतरासई[3] सबन को, ताही से भये सोहरा[4] । एक सत्य उत्तर[3] सुखी[4]
ऊचा महल रचा अविनाशी, तजा पराया[5] नोहरा ।।१।। भेदभाव[5]
हीरा[7]लाल जवाहिर घर मे, माणिक मोती चौहरा[8] । महावाक्यादि[7] कीमती[8]
कौन बात की कमी हमारे, भर भर राखें भौंहरा[9] ।।२।। तहखानी[9]
आगे विपति सही बहुतेरी, वे दिन काटे दोहरा[10] । कठिनता से[10]
'सुन्दरदास' आश सब पूगी[11], मिलाया राम मनोहरा ।।३।। १७३।। पूर्ण[11]

राग मलार २२ (१) राम शरण की विशेषता

अब हम गये राम के शरने,
वा बिन और नही कोइ समर्थ, मेटे जामन मरने ।।टेक।।
भटकत फिरे बहुत दिन ताई, कहु न पार उतरने ।
आन देव की सेवा कर कर, लागे बहुत हिजरने[1] ।।१।। पछताने[1]
काहू ऊपर किया बहुत हठ, काहू ऊपर धरने ।
दीजे दोष करम अपने को, वे दिन यू ही भरने ।।२।।

श्रोतागन की महिमा सुन सुन, चाले तीरथ फिरने।
हम जाना ये ही परमेस्वर, पाया उनहु का निरने ॥३॥

बहुत कृपा कीनी जब सतगुरु, आये कारज करने।
दिया बताय पुरुष वह एकै, 'सुन्दर' का कहि बरने ॥४॥

(२) आज का दिन अच्छा

देखो भाई आज भला दिन लागत,
बरषा रितु का आगम आया, बैठ मलारहिं रागत ॥टेक॥
राम नाम के बादल उनये[1], घोरि घोरि रस पागत। उठे[1]
तन मन माँहि भई सीतलता, गये विकार जु दागत[2] ॥१॥ भेद का[2]

जा कारण हम फिरत वियोगी, निसि दिन उठ उठ जागत।
'सुन्दरदास' दयाल भये प्रभु, सोई दिया जोई[3] मागत ॥२॥ दर्शन[3]

(३) बिरहनि की व्याकुलता

पिय मेरे बार कहा धौं[1] लाई, न जाने[1]
रितु बसन्त मोहि या बिन बीती, अब वर्षा रितु आई ॥टेक॥
बादल उमगि चले चहु दिसि से, गरज सुनी नहिं जाई।
दामिनि दमक[1] कलेजा कंपे, बूंद लगत दुखदाई ॥१॥ चमक[1]

कारी रैन अन्धारी देखत, बारी[2] वयस[3] डराई। बालक[2] अवस्था[3]
जारी बिरह पुकारी कोकिल, भारी आग लगाई ॥२॥

दादुर[4] मोर पपीहा पापी, लहत न पीड पराई। मेंढक[4]
ये सु जले पर लोन लगावत, क्यों जीऊँ मेरी माई ॥३॥

ऐसी विपति जान प्रभु मेरी, जो कहूं देहि दिखाई।
'सुन्दरदास' बिरहनी व्याकुल, मृतक हि लेहु जिवाई ॥४॥

(४) बिरहनी से वर्षा ऋतु के दुःख

हम पर पावस[1] नृप चढ़ आया, वर्षा[1]
बादल हस्ती हवाई दामिनि, गरज निसान बजाया ॥टेक॥

पवन तुरंगम[2] चलत चहु दिश, बून्द बाण झर लाया। घोड़े[2]
दादुर मोर पपीहा पायक[3], मारै मार सुनाया ॥१॥ पैदल सेना[3]

दसहु दिसा माय गढ़[4] घेरा, बिरहा अनल[5] लगाया। शरीर[4] अग्नि[5]
आठ पहर आग के तजमौं[6], रजनी दुन्द[7] उठाया ॥२॥ [illegible][6] झगड़ा[7]

सो अब करै सहाय हमारी, पिय परदेसहिं छाया[8]। बस गए हैं[8]
'सुन्दरदास' बिरहनी व्याकुल, करिये कौन उपाय ॥३॥

सुन सुन लीला कृष्ण की हो, दूना उपजा काम ।
बूडे काली धार मे हो, कनहूं नहिं विश्राम ।।१।।
पडित पैडा[1] मारिया हो, कहि कहि ग्रन्थ पुरान । वैराग का मार्ग[1]
सूता सर्प जगाइया हो, फिर फिर लागा खान ।।२।।
पहले आगि बलै हुती हो, पूला नाखा आय ।
रोगी को रोगी मिले तो, व्याधि कहा से जाय ।।३।।
माया ऐसी मोहनी हो, मोहे हैं सब कोइ ।
ब्रह्मा विष्णु महेश की हो, घर घरनी भइ सोइ ।।४।।
चन्दवदन मृगलोचनी हो, कहत सकल ससार ।
कामिनि विष की बेलडी हो, नख शिख भरी विकार ।।५।।
देखत ही सब पडत हैं हो, नरक कु ड के माहिं ।
या नारी के नेह से हो, वेगि रसातल जाहिं ।।६।।
नारी घट दीपक भया हो, ता मे रूप प्रकाश ।
आप पडे निकसे नही हो, करत सबन का नाश ।।७।।
जल जल मुये पतग ज्यो हो, गये जन्म को रोय[2] । हार गये[2]
'सुन्दरदास' कहा कहै हो, सत कहै सब कोइ ।।८।।

(२) विरहनी विलाप

मेरे मीत सलौना साजना हो,
अहो तुम, काहे न दर्शन देहु ।।टेक।।
आया फाग सुहावना हो, सब कोइ करत सिंगार ।
मेरी छतिया दौ जले हो, कबहु न बुझत अगार ।।१।।
अपने अपने घर घर कामिनि, खेलत पिय की जोर[1] । साथ[1]
देख देख सुख और सखिन[2]का, कटत कलेजा मोर ।।२।। साधक सत[2]
चोवा चन्दन केसर कुमकुम, उडत गुलाल अबीर[3] । लाल रग[3]
हो तुम बिन मेरे प्राण पियारे, कैसे कै राखू धीर ।।३।।
बाजत चग उपग पखावज, राई गिर गिरी[4] ढोला । एक वाजा[4]
सुन सुन विरहनि के मन माही, सालत तबके बोल ।।४।।
बार बार मोहि विरह सतावे, कल[5] न फडत पल एक । चैन[5]
कहि जु गये ते वेगि मिलन की, वीते दिवस अनेक ।।५।।
तुम जनि जानो है विभचारनि, हौं पतिबरता नारि ।
और पुरुप भइया सब मेरे, यह तुम लेहु विचारि ।।६।।

सुरति कोकिला रसना-चातक, पिवपिव करत विहाइ ।
नैन चकोर भये मेरे प्यारे, निश दिन निरखत जाइ ॥७॥
अब मोहि दोप कछू नहिं लागे, सुनियो दोऊ कान ।
'सुन्दर' विरहनि कहत पुकारे, तुरत तजूगी प्रान ॥८॥

(३) प्रियतम बिन फाग दुखद

मोहि फाग पिया बिन दुख भया हो,
अहो हौ कैसी[1] करू कत जाउ ॥टेक॥ — कैसी रीति[1]
जब हौ देखू उडत गुलालहिं, केसर की झकझोर ।
तवहिं सु मेरे आगि लगत है, हियरे उठत मरोर ॥१॥
जब हौ सुना झिझ डफ बाजत, वीणा ताल मृदग ।
तवहिं सु विरह बाण मोहि मारै, वेघत नख शिख अग ॥२॥
कै हौ जाय पडो गिरवर से, कै व[2] कूप धस देव[3] । — अव[2] प्राण देव[3]
कै हौ तलफ तलफ तन त्यागू, कै शिर करवत लेव ॥३॥
है कोउ पथिक सदेश हमारा, प्रीतम से कहै जाय ।
'सुन्दर' विरहनि प्राण तजत है, वेगि मिलहु किन आय ॥४॥

(४) मेरे स्वामी रमताराम

रमइया मेरा साहिवा हो,
अहो मैं सेवक खिजमतगार ॥टेक॥
पाव पलोटू पखा ढोलू, निश दिन रहू हजूर ।
जो फरमावो सो कर आऊ, कवहु न भाजू दूर ॥१॥
जो पहिरावो सोई पहिरू, जो तुम देहु सुखाऊ ।
द्वार तुम्हारा कवहुँ न छाडू, अनत कहू नहिं जाऊ ॥२॥
तुम्हरे घर के पाले पोषे, तुम ही लिये मुलाइ[1] । — मोल लिये[1]
ज्यो जाने त्यो राख गुसाई, उजर किया नहिं जाइ ॥३॥
जो रीझहु तो इतना दीजो, लेउ तुम्हारा नाम ।
और कछू अब मागत नाही, 'सुन्दरदास' गुलाम ॥४॥

(५) सुहावना फाग

पिय खेल हु फाग सुहावना हो,
अहो यह आया है फागुन मास ॥टेक॥
ज्ञान गुलाल करू नाना विधि, तन मन केसर घोरि[1] । — घोल कर[1]
वित चन्दन ले छिडकू ललना, जो न चलो मुख मोरि[2] ॥१॥ — मोडकर[2]
अनहद शब्द झाझ डफ बाजें, ताल मृदग उपग ।
सुमति पिचक[3] ले धाऊ ललना, भरहिं परस्पर अग ॥२॥ — पिचकारी[3]

उततै तुम इतते हम हो कर, माझ करहिं झक झोर ।
देखे अबहिं कवन धौ जीतैं, बहुत करत तुम शोर ।।३।।
हम है पच[4] पचीस[5] सहेली, तुम जु अकेले राइ । ज्ञानेन्द्रिया[4] प्रकृति[5]
चहू दिशा मे पकड राखि हैं, कैसे के जाहु छुडाइ ।।४।।
जोरावर तुम अधिक सुने हो, बहुतन पै गये भाग ।
तो जानू जो अबहि छूट हो, लपट रहौं गल लाग ।।५।।
अव हिं सु मेरा दाव बना है, गारी देत हौं तोहि ।
और और त्रिय[6] के सग राते, विसर गये कहा मोहि ।।६।। भक्तोके[6]
माइ न बाप कुटुम्व नहि तुम्हरे, निगुसाये[7] हो नाहु[8] । विनास्वामी[7] स्वामी[8]
समय जान के हस बोलत हौं, जनि[9] कुछ जियहि रिसाहु ।।७।। क्यों[9]
फगवा हम सु कछू नहि ले है, तुमहिं न देहैं जान ।
"सुन्दर" नारि[10] छाड है कैसे, हो हो कत सुजान ।।८।। भक्त[10]

(६) हरि व्यापक

हरि आप अपरछन[1] हो रहे हो, व्यापक[1]
ताहि लिपे छिपे कुछ नाहिं ।।टेक।।

ॐ कार की आदि दै हौ, और सकल ब्रह्माण्ड ।
खेलत माया मोहनी हो सप्त द्वीप नौ खड ।।१।।

ब्रह्मा सावत्री मिले हो विष्णु लक्ष्मी सग ।
शकर गौरि प्रसिद्ध है हो, ये माया के रग ।।२।।

नाना विधि हो विस्तारी हो, खेलन लागी फाग ।
ब्रह्म न काहू मिलन दे हो, रोक रही सब माग ।।३।।

माया जड सु कहा करे हो, प्रेरक औरै कोइ ।
ज्यो बाजीगर पूतली हो, हाथ नचावे सोइ ।।४।।

लोक चेष्टा करत है हो, सूरज के जु प्रकाश ।
ताहि कहू व्यापै नही हो, हरष शोक दुख त्रास ।।५।।

अहकार को धरत है हो, तब लग जीव प्रमान ।
अधकार तब भाग है हो, जब सु उदय हो भान ।।६।।

जीव शीव अतर यही हो, देखहु प्रकट हि नैन ।
जैसे जल से ऊपजै हो, तरग बुद्बुदा फैन ।।७।।

परमारथ कर देखिये तो, है सब ब्रह्म विलास[1] । खेल[1]
कहन सुनन को दूसरा हो, गावत सुन्दरदास ।।८।।

(७) विरह व्यथा

बहुत दिवस भये मेरे समर्थ साइया
कोऊ कागर[1]हू न पठाय, सदेश सुनाइया ।।टेक।। कागज[1]
पथ निहारत जाय, उपाय किये घने ।
मोहि अशन बसन न सुहाय, तजे सुख आपने ।।१।।
कल[2]न पडत पल एक, नही जक[3] जीयरा । चैन[2] शांति[3]
यह सुख गई सब देह, भया मुख पीयरा[4] ।।२।। पीला[4]
भूख न प्यास उदास, फिरू निश बासरा[5] । दिन[5]
इन नैन न आवत नीद, नही कुछ आसरा[6] ।।३।। आश्रय[6]
दूभर[7] रैनि विहाय, रहौं क्यो एकली । कठिन[7]
मैं छाडे सकल सिंगार,. लिई गल मेखली[8] ।।४।। अलफी[8]
चन्दन खोरि[9] तजी, रु भस्म लगाई है । स्नान[9]
कुछ तेल फुलेल न शीश, जटासु बढाई है ।।५।।
जोगिन होय रही, जगमोहन कारने ।
तुम काहे न दर्शन देहु, करू तन वारने ।।६।।
मेरा खून[9] खता[10] अब कौन, कहो किन रावरे । वध[9] अपराध[10]
तेरी सुरति की बलि जाउ, मेरे गृह आवरे ।।७।।
'सुन्दर' विरहनि के पीव, गहर[11] न लाइये । देर[11]
मोहि महर मया[12] कर वेगि, दरश दिखाइये ।।८।। दया[12]

(८) विरहनि की पुकार

तू ही तू ही तू ही, तू ही तू ही तू ही साई ।
क्योही क्योही क्योही, क्योही दरश दिखाई ।।टेक।।
पीव पीव पीव, पीव रसना पुकारै ।
रटत रटत तोहि, कबहू न हारै ।।१।।
निश दिन नख शिख, रोम रोम टेरे ।
पल पल छिन छिन, नैन मग हेरे ।।२।।
सोच सोच ससकत, श्वास उश्वासा ।
धख धख[1] उठत, रक्त अरु मासा ।।३।। धडक धडक[1]
बार बार 'सुन्दर' विरहनी सुनावे ।
हाय हाय हाय तुझ, महर[2] न आवे ।।४।। दया[2]

(९) विरह वेदना

पीव हमारा मोहि पियारा,
कब देखू गी मेरा प्राण अधारा ।।टेक ।।

ये सखि[1] यही अदेशा[2], पाया न सदेशा। साधक सत[1] चिंता[2]
काहे से विरम रहे, पर देशा ।।१।।
ये सखि फिरू उदासा, भूख न प्यासा।
कब पुरवैंगे मेरे, मन की आशा ।।२।।
ये सखि विरह सतावे, नीद न आवे।
कठिन कठिन कर, रैनि बिहावे[3] ।।३।। बीतती है[3]
ये सखि अजहू न आया, किन[4] विरमाया। भक्त ने[4]
'सुन्दर' विरहनि, अति दुख पाया ।।४।।

(१०) विहरनी को सन्देश से सुख

आज तो सुना है माई, सन्देशा[1] पिया का, आने का समाचार[1]
प्रफुलित भया मेरा कमल हिया का ।।टेक।।
करूगी सिंगार; घसि चन्दन लगाऊ।
सेजरो[2] सवारू तहा, फूलरे[3] बिछाऊ ।।१।। हृदय[2] देवीगुण[3]
मेरे गृह आय, मोहि देहिगे सुहागा।
खेलूगी परस्पर, बडे मेरे भागा ।।२।।
परम पुरुष मेरा, पीव अविनाशी।
देखूगी नैन भर, सब सुख राशी ।।३।।
जन्म सफल कर, लेउगी मैं लाहा[4]। लाभ[4]
"सुन्दर' विरहनि के, भया है उछाहा ।।४।।

(११) विरहनी प्रार्थना

खूब तेरा नूर[1] यार[2], खूब तेरे बाइके[3]। रूप[1] प्यारे[2] वचन[3]
काहे न निहाल करो, दरश दिखाइ के ।।टेक।।
तेरे काज चली हौं तो, खलक हँसाइ के।
ढूढत फिरत पिय, कहा रहे छाइके ।।१।।
इश्क[1] लिया है मेरा, तन मन ताइके[2]। प्रेमी[1] तपाय[2]
कलन पडत मुझ, बिन देखे राइके ।।२।।
महर करहु अब, लेहु अग लाइके।
निशि दिन रहौ साई, नैनन समाइ के ।।३।।
जानत हो तुम सब, कहू क्या बनाइके।
हिल मिल सुख दीजे, सुन्दर को आइके ।।४।।

(१२) दर्शनहित प्रार्थना

महबूब[1] सलौना[2] मैं, तुझ काज दिवाना। प्रिय[1] सुन्दर[2]
आसिक को दीदार दे, मेरा देख दरद सुबिहाना[3],।।टेक।। ईश्हर[3]

इसक[4]आग अति परजली, अब जारत तन मन प्राना । प्रेम[4]
निश दिन नीद न आव ही, इन नैन तुम्हारा ध्याना ॥१॥
यह दुनिया सब फीकी लागी, अरु फीका जुमल[5] जिहाना । सब[5]
'सुन्दर' तेरे नूर को, कब देखेगा रहिमाना[6] ॥२॥ दयालु[6]

(१३) ब्रह्म मे मन लगाने की प्रेरणा

सहज शून्य[1] का खेला, है अभिअन्तर मेला । ब्रह्म[1]
अविगत नाथ निरजना, तहँ आपै आप अकेला ॥टेक॥
यह मन तह विलमाइये, गह ज्ञान गुरू का चेला ।
काल कर्म लागे नही, तहँ रहिये सदा सुहेला[1] ॥१॥ आनन्द मे[1]
परमजोति जहा जगमगै, अरु शब्द अनाहद भेला ।
सत सकल पहुचे तहा, जन 'सुन्दर' वाही गैला ॥२॥

(१४) निरजन पर निछावर

अलख निरजन थीरा[1], कोई जाने वीरा[2] । स्थिर[1] ज्ञानी सत[2]
कृत्तम[3] का सब नाश है, अजर अमर हरि हीरा ॥टेक॥ बनावटी[3]
शुन्य[4] सरोवर भर रहा, तहा आपै निर्मल नीरा । ब्रह्म सब मे पूर्ण[4]
वार पार दीसै नही, कहू नाही तट न तीरा ॥१॥
कुछ रूप वर्ण जाके नही, वह श्वेत श्याम नहिं पीरा[5] । पीला[5]
ता साहिब के वारने, यह 'सुन्दरदास' फकीरा[6] ॥२॥ १९३ सत[6]

राग ऐराक २४, (१) प्रभु परम प्रिय

लालन मेरा लाडला, तू मुझ बहुत पियारा ।
राखू रे नैनन बाहि[1] के, पलकन खोलू किवारा ॥टेक॥ छिपाय के[1]
सूरति रे तेरी खूब है, नूर न बरणा जाई ।
ताके सब कोई सामहा[2], दिठि[3] जिन लागै माई ॥१॥ सामने[2] दृष्टि[3]
वाणी रे तेरी मोहनी, मोहा सकल जिहाना ।
पीर पैगम्बर औलिया, ये सब भये हैं दिवाना ॥२॥
मैं भी रे तेरी आसिकी,[4] तू महबूब[5] रे साई । प्रीति[4] प्यारा[5]
बलि बलि तेरे नूर की, तुझ पर घोलि[6] गुसाई ॥३॥ घुल मिल[6] एक हू
कीरति रे तेरी मैं सुनी, तीन्यो लोक मझारा ।
आया रे बन्दा बन्दगी, 'सुन्दरदास' विचारा ॥४॥

(२) बिरहनी प्रार्थना

ढोलन[1] रे मेरा भावता, मिल मुझ आय सवेरा । पति[1]
जिय तरसे दीदार को, कब मुख देखू तेरा ॥टेक॥

जोवन रे मेरा जात है, ज्यो अंजुली का पानी ।
हौ तलफू तुझ कारने, तै मेरी एक न जानी ॥१॥
अन्दर रे साई मेरडे,[2] पैठा इश्क[3] दिवाना । मेरे[2] प्रेम[3]
भाहि[4] लगी इस पिंजरै, जालत नख शिख प्राना ॥२॥ अग्नि[4]
निश दिन रे पथ निहारते, नैना भये है उदासा ।
कलन पडत पल एक हू, मुझ दर्शन की प्यासा ॥३॥
अबहिन[5] रे ऐसी बूझिये, वात विचार हु येहा । अवतक[5]
'सुन्दर' विरहनि यू कहै, ओर निवाहो नेहा ॥४॥

(३) हम तुम मे अन्तर क्यो ?

प्रीतम रे मेरा एक तू, और न दूजा कोई ।
गुप्त भया किस कारने, काहे न परकट होई ॥टेक॥
हृदय रे मेरे तू बसे, रसना नाम तुम्हारा ।
श्रवणो तेरे गुण सुनू, नैनहु पीव पियारा ॥१॥
नख शिख रे तू ही रम रहा, रोम रोम घट सारै ।
मन मनसा मे तू बसै, छिन छिन सुरति सभारे ॥२॥
व्यापक रे तीनो लोक मे, जल थल अग्नि मझारी ।
पवन अकाश जहा तहा, सब मे सिफते[1] तुम्हारी ॥३॥ गुण[1]
हम तुमरे अन्तर[2] क्यो भया, यह मोहि अचरज आवे । भेद[2]
बार बार कर वीनती, 'सुन्दरदास' सुनावे ॥४॥

(४) सिरजनहार का यश गाऊं

रासा[1] रे सिरजनहार का, सो मैं निशदिन गाऊं । यश[1]
कर जोडे विनती करू, क्यो ही जो दर्शन पाऊ ॥टेक॥
उतपति रे साई तै किया, प्रथम ही वो ओकार ।
तिस से तीनो गुण भये, पीछे पच पसार ॥१॥
तिनका रे यह औजूद[2] है, सो तै महल बनाया । शरीर[2]
नव दरवाजे साजि के, दशवें कपाट लगाया ॥२॥
आपन रे बैठा गुप्त हो, व्यापक सब घट माही ।
करता हरता भोगता, लिपे छिपे कुछ नाही ॥३॥
ऐसी रे तेरी साहिबी, सो तू ही भल जाने ।
सिफत[3] तुम्हारी साइया, 'सुन्दरदास' बखाने ॥४॥१९७॥ गुण[3]

राग शकरा भरन २५, (१) मन को उपदेश

मन कौन से जाय अटका रे,
ऐसे बधा छोडा न छूटे, कैउक बरिया झटका रे ॥टेक॥

जाहो दिश तू भ्रमता ही आया, ताही दिश को लटका रे ॥१॥
भूल रहा विषया सुख माही, याही से निशदिन भटका रे ॥२॥
गुरु साधुन का कहा न माने, बहु विधि कर उन हटका रे ॥३॥
सुन्दर' मत्र न लागत कोई, माया सापनि गटकारे ॥४॥

(२) मन को चेतावनी

मन कौन से लग भूला रे,
इन्द्रिनि के सुख देखत नीके, जैसे सैमर फूला रे ॥टेक॥
दोपक ज्योति पतग निहारे, जल बल गया ममूला रे ॥१॥
झूठी माया है कुछ नाही, मृग तृष्णा मे झूला रे ॥२॥
जित तित फिरे भटकता यू ही, जैसे वायु बघूला रे ॥३॥
'सुन्दर' कहत समझ नहि कोई, भवसागर मे डूला रे ॥४॥१९९॥

राग धनाश्री २६, (१) सतों की होली

आवो मिलहु रे सत जना, हो हो होरी।
सब मिल खेलहु फाग, रगनि रग हो हो होरी॥
राम नाम गुण गाइये, रग हो हो होरी।
देखहु मीठे भाग, रगनि रग हो हो होरी ॥टेक॥

काया कलश भराइये, रग हो हो होरी।
प्रेम प्रीति घसि घोलि रगनि रग हो हो होरी॥
सहज शील मत अरगजा[1], रग हो हो होरी।
भाव भगति झकझोरि, रगनि रग हो हो होरी ॥१॥

ज्ञान गुलाल उडाइये, रग हो हो होरी।
सुमति पिचक[2] कर लेहु, रगनि रग हो हो होरी॥
भरहु परस्पर आतमा, रग हो हो होरी।
हरि यश गारी देहु, रगनि रग हो हो होरी ॥२॥

शब्द अनाहत बाज ही, रग हो हो होरी।
बीणा ताल मृदग, रगनि रग हो हो होरी॥
रोम रोम सुख ऊपजे, रग हो हो होरी।
खेल मचा सतसग, रगनि रग हो हो होरी ॥३॥

अमी[3] महारस पीजिये, रग हो हो होरी।
पूरण ब्रह्म विलास[4], रगनि रंग हो हो होरी॥
मतवाले सब साधवा, रग हो हो होरी।
माते 'सुन्दरदास' रगनि, रग हो हो होरी ॥४॥

[1] केशरादि से बना
[2] पिचकारी
[3] ज्ञानामृत
[4] आनन्द

(२) मीया को उपदेश

मीया हर्दम[1] हर्दम रे, अपने साई को सभाल । श्वास[1]
मुसलमान ईमान[2] राखिले, करद[3] हाथ से डाल ।।टेक।। धर्म[2] छूरी[3]

सुन यह सीख पुकार कहत हौ, मिहरवानगी[4]पाल । दया[4]
सब अरवाहै[5]सिरजी साहिब, किसकी काटत खाल ।।१।। आत्माये[5]
पाच सात मिल पकै सहनक[6], हो वैठे बेहाल । सामने हडिया मे मास[6]
मुरदा खाय भये तुम मोमिन[7], कीया कहत हलाल ।।२।। ईमानदार[7]

ये जु तुम्हारे काजी मुलना, झूठे मदरत गाल ।
अपने स्वारथ तमहि बताये, उनका दोजग[8] हाल ।।३।। नरक[8]

इला इलाहि इलला की, सब घट मे बलत मसाल ।
कलमा का तुम भेद न पाया, फूटा करम कपाल ।।४।।

यह तो महमद ना फुरमाया, जो तुम पकडी चाल ।
कीया खून तुम्हारी गरदन, हो है बुरा हवाल ।।५।।

मादर[9]पिदर[10]पिसर[11]बिरादर, झूठ मुलक सब माल । माता[9]पिता[10]पुत्र[11]
इन मे काहे जलत दिवाने, देख अग्नि की झाल ।।६।।

अज हू समझ तरस[12]कर जियमे, छाड सकल जजाल । दया[12]
कर दिल पाक[13]पाक मे मिलहै,नियरे आवत काल ।।७।। पवित्र[13]

साई सेती साटि[14] मिलावे, सोई पूछ दलाल । मेल[14]
'सुन्दरदास' अरश के ऊपर, रहै धणी के नाल ।।८।।

'ला इलला है लिल्लिल्ला मोहम्मद रसूलिल्ला । अर्थ—नही है कोई पूजने योग्य सिवाय परमेश्वर के और मोहम्मद उसका पैगम्बर है, उसके हुकमो को ससार मे पहुचाने वाला हरकारा है ।

(३) ईश्वर के ज्ञान पर निछावर

हौं तो तेरी हिकमत[1] की कुरवान[2] मौले[3] साई वे । ज्ञान[1] निछावर[2] स्वामी[3]
सकल जिहान किया पुनि न्यारा, वह गति किनहूँ न पाई वे ।।टेक।।

शेष मसायक पीर अवलिया, बहु बदगी कराई वे ।
कुदरत[4] कौन कहै तू ऐसा, हेरत गये हिराई[5] वे ।।१।। माया[4] चकित[5]

सुर नर मुनि जन सिध अरु साधक, शिव विरचि उन ताई[6] वे । तक[6]
उनमनि ध्यान रहत निश बासर, वे भी कहत डराई वे ।।२।।

अति हैरान भये सब कोई तेरी पनह[6] रहाई वे । शरण[6]
मुझ गरीब की क्या गम येती, 'सुन्दर' वलि बलि जाई वे ।।३।।

(४) संतों की बलिहारी

साईं तेरे बंदों की बलिहारी,
सुहबति[1] रहै परम सुख उपजै, बातें कहत तुम्हारी ।।टेक।।　　सतसंग[1]
चलते फिरते जागत सोवत, हरदवद[2] अति भारी ।　　विरही[2]
दुनिया से फारिक[3] ह्वो बैठे, राह गही कुछ न्यारी ।।१।।　　अलग[3]
निर्मल ज्ञान ध्यान पुनि निर्मल, निर्मल दृष्टि उघारी ।
निर्मल नाम जपत निश वासर, निर्मल गति मति सारी ।।२।।
अपना आप करत नहिं परकट, ऐसे बडे विचारी ।
'सुन्दरदास' रहै क्यों छाने, जिनके घट उजियारी[4] ।।३।।　　ज्ञान प्रकाश[4]

(५) विरह व्यथा

अहो हरि देहु दरश अरस परस, तरसत[1] मोहि जाई ।　　व्यथित[1]
प्राण त्याग होन[2] लाग, मिल हो कब आई ।।टेक।।　　होने[2]
फिर हौ उदास बास, आश एक तेरी ।
निश बासर कल न पडत, देहु दादि[3] मेरी ।।१।।　　न्याय[3]
अति वियोग लिये जोग, भोग काहि भावे ।
तुही तुही मन माहिं जपत, और न कहि आवे ।।२।।
तात मात बंधू सुत, तजी लोक लाजा ।
तुम बिना सुख और सकल, मेरे किहिं काजा ।।३।।
प्रभु दयाल कहियत[4] हो, सकल अंतरयामी ।　　कहे जाते हो[4]
काहे न संभाल करहु, 'सुन्दर' के स्वामी ।।४।।

(६) विरहनि की प्यास बुझाओ

सजन सनेहिया[1] छाय रहे परदेश ।　　प्रेमी[1]
बालपन योवन गया, पडुर[2] हूवा केश ।।टेक।।　　सफेद[2]
मेरे मन मे और थी, तुम कुछ ठानी[3] और ।　　करी[3]
तुम कर हो सोई सही, मेरो झूठी दौर ।।१।।
मैं जाना औसर भला, पीव मिलहिंगे आय ।
तेरे कुछ भायें नही, तलफ तलफ जिय जाय ।।२।।
मैं अबला अति ही दुखी, तुम समर्थ सब बात ।
जब सुदृष्टि कर देख हो, तब मेरे कुशलात ।।३।।
मैं चातक पिय पिय करू, तुम जलधर[4] जलदानि ।　　बादल[4]
'सुन्दर' विरहनि यू कहै, प्यास बुझावो आनि ।।४।।

(७) विरहनि की दर्शन हित प्रार्थना

हरि निरमोहिया, कहा रहे कर बास ।
पहले प्रीति लगाइ के, अब क्यो भये उदास ।।टेक।।
लाड लडाये बहुत ही, होस पुजा[1]ई कोड । पूरी की[1] बहुत[2]
बनजारा की आग ज्यो, गये बलती छोड ।।१।।
पलक घडी जुग जात है, क्यो कर राखू प्रान ।
मैं जानू संग ही रहो, तुम यह तोरी तान[3] ।।२।। संग छोडा[3]
बीत गये दिन बहुत ही, अन्तरयामी राइ ।
कै तुम आवो आप तै, कै तुम लेहु बुलाइ ।।३।।
अब तो ऐसी क्यो बने, प्यारे प्रीतम लाल ।
'सुन्दर' विरहनि यू कहै, दर्शन देहु दयाल ।।४।।

(८) हरि दूर नहीं हैं

हरि हम जानिया, है हरि हम ही माहि ।
जो बाहर को देखिये, तो कुछ दूजा नाहि ।।टेक।।
जो हम यहा बैठे रहैं, तो वह नाही दूर ।
जो शत योजन जाइये, तो वहाहू भरपूर ।।१।।
शेष नाग वैकुंठ लौं, जहां लगे ब्रह्मण्ड ।
वह हरि वहाहू से परे, यहा पडे नहिं खड ।।२।।
यू ही वेदन मे कहा, यूही भाषहि सत ।
यू जाने बिन हो नही, जन्म मरण का अत ।।३।।
जाको अनुभव होय है, सोई जाने जान[1] । जानना[1]
'सुन्दर' याही समझ है, याही आतम ज्ञान ।।४।।

(९) ब्रह्म विचार से ब्रह्म ही स्थिर

ब्रह्म विचार से ब्रह्म रहा ठहराय,
और कछू न भया हुता, भ्रम उपजा था आय ।।टेक।।
ज्यो अन्धियारी रैनि मे, कल्प लिया रजु व्याल[1] । सर्प[1]
जब नीके कर देखिया, भ्रम भागा ततकाल ।।१।।
ज्यो स्वप्ने नृप रक हो, भूल गया निज रूप ।
जाग पडा जब स्वप्न से, भया भूप का भूप ।।२।।
ज्यो फिरते फिरता द्रसै, जगत सकल ही ताहि ।
फिरत रहा जब बैठ के, तब कुछ फिरत न आहि[2] ।।३।। है[2]
'सुन्दर' और न हो गया, भ्रम से जाना आन[3] । अन्य[3]
अब सुन्दर सुन्दर[4] भया, 'सुन्दर' उपजा ज्ञान ।।४।। ब्रह्म[4]

(१०) विश्व वृक्ष, संस्कृत में पद

दृश्यते वृक्ष एक अति चित्र,
ऊर्द्ध मूलमधोमुख शाखा, जगम द्रुम श्रणु मित्र ।।टेक।।
चतुर्विंश तत्त्वभिर्निमित, वाच यस्य दलानि ।
अन्योऽन्य वासनोद्‌भव, तस्य तरोः कुसुमानि ।।१।।
सुख दु खानि फलानि अनेक, नाना स्वादन पूत ।
तत्रात्मा विहगम तिष्ठति, 'सुन्दर' साक्षीभूत ।।२।।

एक वृक्ष अति विचित्र दिखाई देता है, उसकी जड ऊपर को है और डालिया नीचे की ओर हैं। वचन उसके पत्ते हैं, यह चलता हुआ वृक्ष है। हे मित्र सुनो!

यह चौबीस तत्त्वो से बना हुआ है, नाना प्रकार वासनाओ से उत्पन्न सकल्पादि उसके पुष्प हैं, सुख दुखादि अनेक द्वन्द्व उसके फल हैं। उन फलो मे अनेक प्रकार के स्वाद भरे हैं। इस वृक्ष मे आत्मारूप पक्षी साक्षी रूप होकर बैठा है।

(११) अद्वैत संस्कृतमय पद

क्व गतन्निज पर विभ्रम भेद ।,
यन्नानात्व दृश्यते, पूर्वमधुना रूप ममेद ।।टेक।।
यथा शरीरे अग पृथग्नहि, ज्ञान कर्म करणानि ।
तथा अह व्यापक, परिपूर्ण , स चराचर सर्वाणि ।।१।।
यथा सागरे भग बुद्‌बुदा, उत्पद्यन्तेऽनता ।
तथा विश्वमयि अह, विश्वमयि 'सुन्दर' मध्याघता ।।२।।

अपना पराया ऐसा भ्रम पूर्ण भेद कहा गहा? ब्रह्म ज्ञान से पहले जो नानात्व रूप भेद दिखाई देता था वह न रह कर अब मेरा निज आत्म रूप हो गया। जैसे शरीर से शरीर के अग पृथक नही और ज्ञान, कर्म और कारण पृथक नही, वैसे ही मुझ व्यापक मे सर्व चराचर व्यापते हैं, जैसे समुद्र मे अनन्त बुद्‌बुदे बनते बिगडते हैं, वैसे ही मैं विश्व मे और विश्व मुझ मे आदि मध्य और अत पाता है।

(१२) आरती १

आरती परब्रह्म की कीजे, और ठौर मेरा मन न पतीजे ।।टेक।।
गगन मडल मे आरती साजी, शब्द अनाहद झालर बाजी ।।१।
दीपक ज्ञान भया प्रकाशा, सेवक ठाडे स्वामी पासा ।।२।।
अति उछाह अति मगलचारा, अति सुख बिलसै बारबारा ।।३।।
सुन्दर आरती सुन्दर देवा, 'सुन्दरदास' करै तहा सेवा ।।४।।

(१३) आरती २ अद्वैत

आरती कैसे करूं गुसाई, तुम ही व्याप रहे सब ठाई ।।टेक।।
तुम ही कुंभ नीर तुम देवा, तुम ही कहिये अलख अभेवा ।।१।।
तुम ही दीपक धूप अनूप, तुम ही घटा नाद स्वरूप ।।२।।
तुम ही पाती पहुप प्रकासा, तुम ही ठाकुर तुमही दासा ।।३।।
तुम ही जल थल पावक पौना, 'सुन्दर' पकड रहे मुख मौना ।।४।।

इति पद ग्रंथ समाप्त सर्व पद २१२

अथ फुटकर काव्य ग्रंथ ४२

अथ चौबोला प्रसग १

पीपरदे से गमन कर, वरवट गये रिमाय ।
परा सखी मो रोवना, साल रिदै नहिं जाय ।।१ ।

इन चौबोलो में गूढ अर्थ के निमित शब्दो मे श्लेश प्राय रक्खा है और चार नाम प्रत्येक दोहे मे से निकलते हैं। कही शब्दो को विच्छिन्न करने मे, कोइ यति भग मे कही शब्द मे न्यूनाधिक करने मे अर्थ निकलता है । भाव—प्रभु प्राप्ति से दुख मिटे । दोहा १—पीपरदे में पी=पीव=प्रियतम, परदेमें=दिशावर । गमनकर= जाकर । दूसरा अर्थ –पीपरदा=पीपलादा-जयपुर राज्य का एक ग्राम । वर वट= वड का वृक्ष । दूसरा अर्थ-गाव का नाम । गये रिमाय=रूप कर गये । परामखी= हे सखी ! पड गया । मो रोवना=मुझ को रोना पडा। दूसरा अर्थ—पराम गाव का नाम । मोरो=मोर गाव का नाम है । यह टोडा रायसिंह के पास है । साल रिदै= साल=दुख। रिदै=हृदय। दूसरा अर्थ साल रिदै=साल रदह=गाव का नाम है ।

वहे रावरे कौन दिशि, आव राखि मन मोर । भाव त्रिगुण मे न फसे
हररै हररै जनि फिरहु, करहु कृपा की कोर ।।२।। प्रभु कृपा करे।।

वहे रावरे कौन दिशि=वहेडा (औषधि), दूसरा अर्थ—रावरे=राजा आपके, प्यारे के (हाथी, घोडे आदि) कौन दिशि=किस ओर वहे=गये । आवराखि मन मोर=आवला (औषधि) दूसरा अर्थ—आवो मेरा मन रक्खो अर्थात् आकर मेरे को शान्ति दो । हररैं हररैं । जनि फिरहु=हरडें हरडें=(औषधि), दूसरा अर्थ (मुझे छोडकर) इधर-ऊधर क्यो फिरो किंचित् कृपा करो ।

जभी रीस तुम करत हो, सदा फरक दै जात ।
अनारपना कौने वह्या, करुणा नैक न गात ।।३।।

जब भी तुम रीस=क्रोध करते हो सदा=हृदय, सर्वदा आवाज ने फरक दे जात=फडक ने लग जाय । दूसरा अर्थ—जभीरी=जभीरी (फल) सदाफर= सदाफल, सीताफल, श्रीफल। अनारपना=अनादीपना वह्या=कहा । करुणा=दया। दूसरा अर्थ—अनार (फल) करुणा फल ।

आगरा सु मम पीव है, दिल मे और न कोइ।
पट नारी तातें भई, राज महल मे सोइ ॥१४॥

आगरा —मेरा प्रीतम आगया वा घर मे आगया है (गरा=घरा, घर मे। दिल मे=मेरे दिल मे वही बस रहा है, अन्य कुछ नही। मैं मेरे राजा (पति) के महल मे आनन्द मे रहती हूँ इससे पटनारी वा पटरानी बन गई हू। प्रभु की अत्यन्त कृपा पात्र बनगई=मुझे ब्रह्म साक्षात्कार से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो गई। इस मे–आगरा, दिल्ली=दिल्ली, पटना राजमहल। ये चार नाम हैं।

काशी लगा बहुत ही, गया और ही बाट।
अजो ध्यान अब करत हौं, तिरबेनी के घाट ॥१५॥

काशी —तू अन्य बाट (बुरे मार्ग) जाकर क्या किया तू शील व्रत (पतिव्रत=ब्रह्मचर्य आदि उत्तम मार्ग मे) प्रवृत्त क्यो नही हुआ। अजी अब ध्यान करता हूँ। इडा पिंगला, सुसुम्ना रूप तिरबेनी के स्थान मे साधनशील होकर। इस मे—काशी, गया, अयोध्या, त्रिवेणी (प्रयाग) ये चार नाम निकलते हैं।

कुरुषेत कौनि दान तू, हरिद्वार तब जाइ।
बदरी तासौं क्यों रहै, सुर सगीर मे न्हाइ ॥१६॥

कुरुषेत कौ .—हे नादान मूर्ख ! तू करु=कर। खेत=क्षेत्र जो काया, उसको उतमकार्य से शुद्ध करले। तब तू हरि (परमात्मा) के द्वार (धाम को) जायगा। तो (उस) प्रीतम ब्रह्म से तूं क्यो बदला हुआ है (बद दिलवा बेदिल) रहता है ? सुर जो देवता उनका साशरीर न्हाय=(पाकर) भी साधन क्यो नहीं करता। इसमे कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, बदरीनाथ, सुरसरी (गगा) ये चार नाम निकलते हैं।

थरौ लीपिका कीजिये, शिव हार हि पय पान।
बहर बलाइन समझई, बौरी नेक न ज्ञान ॥१७॥

थरो लीपि —थडा जो शरीर उसके श्रृगार और लडाने से क्या प्रयोजन। इसको पालने से वैसा ही फल है जैसा कि शिरहार=शिव के गले का हार, सर्प है उसको दूध पिलाना अथवा थडा=चौका लीप पोतने की आवश्यकता पति को नहीं, उस का आहार दूध है। बहर=बाहर के विषयादिक बलायें हैं, अनिष्ठ कारी हैं। हे बावली, तुझ को ज्ञान नही है। इसमे-थडोली (गाव) शिवहार (सिंगार=राजावतो का ठिकाना) बहर=बहरावडा (गाव सवाई माधोपुर की ओर) जयपुर राज्य मे। बौरी=बौंली जयपुर राज्य मे।

इति चौबोला प्रसंग १

अथ गूढार्थ प्रसग २

शिव चाहत है आपना, विधि नीके कर धार।
विष्णु इहै निश दिन रहै, व्याप न शी विचार ॥१॥

यदि अपना शिव=कल्याण चाहता है तो विधि=साधन की विधि नीके कर अच्छी
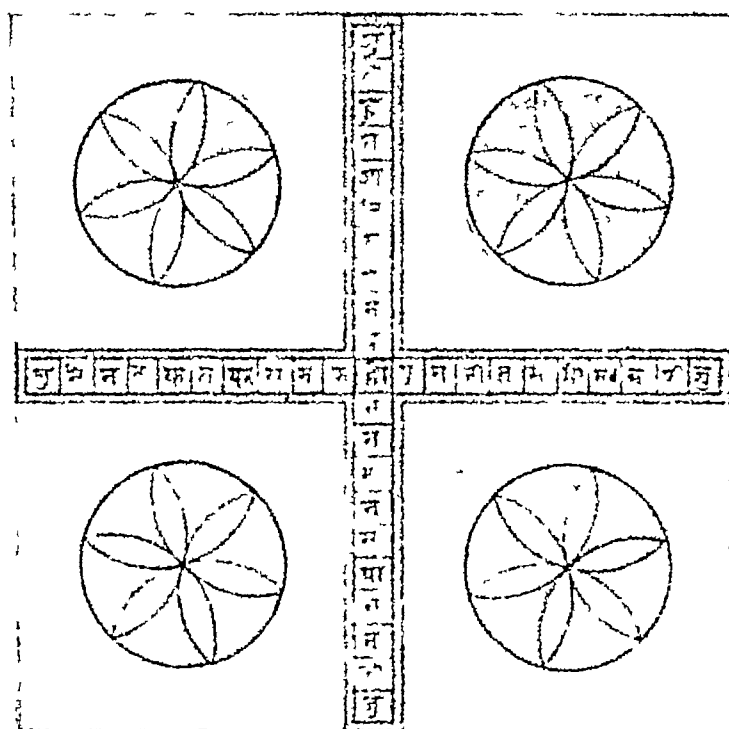
चौपड बन्ध

चौपई

हौं गुन जीत महौ नव की जु । हौ सनमान मयान तजो जु ।
हौ कन राखत यातन मे जु । हौं बन मे तजि जात हुतो जु ।।

पढने की विधि

चौपट के मध्यवर्त्ती 'हौ' अक्षर से प्रारंभ कर के दाहिनी, फिर बाईं, फिर ऊपर की ओर पढ़ें ।

मैं थी अपने माइ के, सगा मिला मोहि द्वार।
करौं जीव नौछावरी, धना गई वलिहार ॥४॥

मैं थी=मा के गई थी। दूसरा अर्थ—मेथी सागा सगा मिला=प्यारा मुझे मिल गया। दूसरा अर्थ=साग=शाक। करौं जीव नौछावरी=मैं अपने प्राणो को (प्यारे पर) न्यौछावर कर दू। दूसरा अर्थ=कलौंजी, वा करोदा। धना गई=धन (तन-मन-धन) को वार के प्रभु के अर्पण कर दिया। दूसरा अर्थ=धनिया (साग, मसाला)। अध्यात्म—मैं माया मे फँसा था। किन्तु हरि मुझे गुरु के बताये हुये साधन मार्ग से मिल गये, उन प्रभु पर मरे प्राणो को निछावर कर दू। धन्य धन्य गुरु कृपा से मेरा भाग्योदय हो गया उन पर मैं वलिहारी जाता हू।

सू ठिक चूकोतू धनी, पीपरि हरि किन जाइ।
अज मौ इनि दीधौ विरह, वचन सँभालौ आइ ॥५॥

सू=क्यो, ठिक (ठिगाकर) चूको=चूकते हो। हे धनी तू! हे पी=पीतम! तू हम दीन जनो को परिहरि=त्यागकर, किम=क्यो जाइ=जात है। दूसरा अर्थ–सू ठि=सू ठ (औषधि) चूकौ=चूका मान। पीपरि=पीपल (औषधि)। अज=आज वा अब भी मो=मुझे इन=इन प्यारे ने, दीधौ=दिया, वचन सभाला आइ=मिलने के कौल करार को पास आकर पूरा करो। दूसरा अर्थ—अजमोद=अजवाइन (औपधि) सभालो=सभालू (औपधि)।

चपा कदे न पाव मैं, जुही तिहारें हेज।
जाही विधि तुम अब कहो, जाय विछाऊ सेज ॥६॥

चम्पा=चापे, दवाये। जुही=जो रही। हेज=प्रेमदूसरा—चम्पा (सुगन्ध वृक्ष फूल), जुही=जूही (सुगन्ध वृक्ष फूल)। जाही=वृक्ष। जाइ=जया कुसुम चमेली। ये चार अर्थ निकले।

केत कीन मैं बीनती, केव राखि हौ चित्त।
सेव तीन विधि करत हौ, कु ज कली के मित्त ॥७॥

केत=कितनी। केतकी=सुगन्ध वृक्ष। केव=लेकर, निरन्तर। केवरा=केवडा सुगन्ध वृक्ष। सेव=सेवा। तीन विधि=तन, मन, धन, वामन, बुद्धि चित्त से वा भक्ति ज्ञान वैराग्य से। सेवती=सुगन्ध पुष्प। कु जकली=कु जगली। कु ज=सुगन्ध पुष्प। ये चार नाम निकले।

रत नहि दीसै तोर चित्त, मो तीखो मन आहि।
लालन यहु दुख वहुत है, मानि कह्यो मिलि चाहि॥८॥

रत=अनुरक्त। मो तीखो=मेरा तीव्र (मन) आहि=है। रतन=रत्न। मोती=मुक्ता, मोती। लालन=हे लालन, प्यारे, लाडले। मानि कह्यौ=कहना मान। लाल=लाल, रत्न। मानिक=माणिक्य। ये चार नाम निकले।

गौरी मेरो पीव तजि, पर्यो कान रा बोल।
कैसे होत कल्यान, अब, रूठो नाह हिं डोल ॥९॥

गौरी मेरा हे गौरी ! मेरा प्रीतम मुझे तज गया। कानरा बोल=कान में ऐसा असह्य वचन पडा=सुना। अब कुशल नही, जब नाह=नाथ हिंडोले पर से या हिंडोले की ऋतु मे रूस गया। गौरी, कानडा, कल्याण, हिंडोल, इन चार रागो के नाम है।

सूहौ मुहि साई करी, धना सीस सिरताज।
आशा पूरइ जीव की, राम गरीब नवाज ॥१०॥

सूहो मुहि मेरे स्वामी ने मेरे सुहाती, मेरे ऊपर कृपाकरी। मैं धन्य हूँ सबका सिरताज हो गया, मेरा शीश (भगवत चरणो नत होकर) धन्य हुआ। आशा—पूरइ भगवान् दीनबन्धु है, इस क्षुद्र जीव की आशा पूर्ण कर दी। इसमे सूहा धनासी=धना श्री, आशा=आशवरी, पूरइ=पूरिवा, पूर्वी। रामगरी ये चार रागो के नाम हैं।

दुवा तिहारी लेत ही, कलमष रहे न कोइ।
काग दशा सब मिट गई, लेख कर्म यू होइ ॥११॥

दुवा तिहारी=दुवा=शुभाशीश। कलमष=पाप। काग=कागले कीसी बुरीदशा। कर्म का लिखा, भोग इसमे=दुराती=स्याही की दवात। कलम= लेखनी। कागद=कागज। लेखक= लिखने वाला। ये चार नाम निकले हैं।

मारू मन को पटकि के, के दारा सू प्रीति।
नट बाजी भूली नही, भैरव राखा जीति ॥१२॥

मारू मन मन को मारू (एकाग्रह कर लू)। के दारा सू =स्त्री से प्रेम क्यो किया ? नट बाजी=नट कला। (फुरती से कर्म फन्द से निकल ने की कला) भैरव—भैरव सम बलवान मन को जीतकर राखू। इस में मारू केदार, नट=नट नारायण, भैरव, ये चार रागो के नाम निकलते हैं।

बलकल बाढे का भया, का बिल माहिं रहाइ।
का समीर साधन किये, लाहो नूर दिखाइ ॥१३॥

बलकल=वृक्ष की छाल ओढने से क्या। बिल=गुफा मे रहने क्या। समीर= पवन=प्राणायाम करने से क्या। लाहो=लाभ तो आत्म साक्षात्कार, नूर=प्रकाश दिखाई देने से होता है=ज्योति स्वरूप ब्रह्म दर्शन से ही सत्य लाभ होता है। इसमे बलख—बुखारा नगर, (काबुल सहर)। काशमीर नगर, लाहोर नगर ये चार नाम निकलते हैं। (नोट—लाहो नूर मे नू का लोप करना पडता है, वा नूर को नगर का विकृत रूप मान लें।

प्रकार से धारण कर। विष्णु=विसन (व्यसन) इस शरीर मे राम चिन्तन का व्यसन=अभ्यास निरतर रहना चाहिये। दूसरा अर्थ—शिव=महादेव। विधि=ब्रह्मा। विष्णु=नारायण। ये तीनो देव तम रज सत इन तीनो गुण रूप से सृष्टिक्रम मे प्रधान माया विशिष्ठ ब्रह्म है। तीनो से रहित केवल शील (सत्कर्म) के विचार से ही तुरीया अवस्था नही प्राप्त होती। अन्तर मुख होकर अन्तरात्मा का साक्षात्कार करने से व्यापकता=ब्रह्मस्वरूप प्राप्त होता है।

वासुदेव हित छाड के, प्रद्युम्नहि मन दीन्ह।
अनिरूद्ध हि कीया, संकर्षण नहिं कीन्ह ॥२॥

वासुदेव=परमात्मा का प्रेम छोडकर प्रद्युम्न—काम, विषयादिकी ही कामना की। अनिरुद्ध हि=बेरोक, स्वतत्र, इच्छानुसार अनर्गल प्रवृति मे ही सदा मन दिया। सकर्षण=सयम, विषयादि से मन को नही खेंचा। 2 अर्थ—वासुदेव=श्री कृष्ण, प्रद्युम्न श्री कृष्ण के पुत्र। अनिरुद्ध=कृष्ण के पौत्र प्रद्युम्न के बेटे। सकर्षण=बलरामजी श्री कृष्ण के बडे भाई। ये चारो नाम एक साथ आये है। इन से अर्थ निकलता है, ऊपर दे दिया है।

राम लक्षमण शत्रुघन, भरत जान कर प्रीति।
सीता शाति सदा रहै, यह सन्तन की रीति ॥३॥

प्रथम अर्थ—शत्रु=(काम, क्रोध, लोभ मोहदि) घन (समूह) इस शरीर के अन्त करण मे भरत (भरता हुआ=प्रवेश करता हुआ) जान कर, प्रीति भक्ति का लक्ष्य राम=परमात्मा मे सीता (वृत्ति) पिरोने से, पूर्ण रूप से लगा देने से) शाति (परमानन्द उत्तम अवस्था) सदा रहती है, वा रवते हैं। सन्तन=सतो की यही रीति है। दूसरा अर्थ—राम=रामचन्द्र जी, लक्षमण, शत्रुघन, भरत, सीता, ये पाच नाम निकलते हैं, इनसे ही उक्त अर्थ निकलते है।

हनुमान कू जानिके. सुग्रीव हि रट राम।
बालि कनक तोरैं श्रवण, अगद कौनें काम ॥४॥

जानिके=यह जान कर के, अथवा ज्ञान प्राप्त कर लेने की अवस्था मे मान (अभिमान, अहकार) को हनू (मारू और गुणातीत हो जाऊ)। सुग्रीव (अच्छे गले की राग से राम (परमात्मा) को निरन्तर रटता रहू। वह अगद। भूषण कनक बालि। सोने की बाली (कान भूषण) किस काम की, जिससे कान टूटने लगे। यहा शरीर और विषय सुख से अभिप्राय है—शरीर की आसक्ति और विषय सुख आत्मा की अनुभूति मे परमशत्रु है, अत. त्यागने योग्य है। दूसरा अर्थ—हनुमान जानकी, सुग्रीव, बाली, अगद ये नाम निकलते हैं। इनसे जो अर्थ होता हैं वह ऊपर दे ही दिया है।

त्यागी माया देवकी, किया जसोमति हेत।
पिये अमीरस गोपिका, कान्ह मिले कुरु खेत ॥५॥

देव (परमात्मा) की माया (त्रिगुणात्मक प्रकृति) को त्यागी (जीत ली) और जसोमति (शुद्धि-बुद्धि से) जैसा भी परमोत्कृष्ट हेत (प्रेम-पराभक्ति मे)। गोपिका (अन्तरात्मा मे भ्रमर गुफा मे छिपा) प्रेम (पराभक्ति) का अमीरस (अमृत-ब्रह्मानद) को पान करै तब मग्न हो जाय। क्योकि कुरु खेत (धर्म का मूल क्षेत्र) पवित्र अन्त करण सच्चा हृदय है, उसमे कृष्ण परमात्या प्राप्त हुये। दूसरा अर्थ—इस मे माया देव की, जसोमति=यशोदा, गोपिका कान्हा कुरुक्षेत्र, ये नाम बुलते है। देवकी को त्याग कर कृष्ण ने यशोदा से प्रेम किया। वहा वसने से यह फल अधिक हुआ कि गोपिकाओ को प्रेम भक्ति मिली। वे प्रेम की ध्वजा कहाई, प्रभास क्षेत्र मे विछुडे कृष्ण कुरुक्षेत्र मे फिर मिले।

राम राम रटबो करहु, रामारमा निवार।
धर्म धाम मे प्रकट है, काम काम को मार ॥६॥

राम नाम निरन्तर रटाकरो, रमा=लक्ष्मी, रमा (स्त्री) को तजकर, धाम-धाम (घट-घट) मे परमात्मा की सत्ता चेतन रूप से प्रतीत होती है। काम=कामदेव और काम=कर्म को मार=निवृत्त कर=त्याग।

गो पर गो चारत फिरा, गौरस खोया मन्द।
गोरखनाथ न हो सका, गोविन्द गहा न चन्द ॥७॥

गो=पृथ्वी पर। गो इन्द्रिया को ही चराता फिरा=विषय ही भोगता रहा। गोरस=ब्रह्मानन्द वा ज्ञानानन्द खो दिया। हे मन्द बुद्धि! योग की क्रियायें करता रहा। किन्तु गोरक्षनाथ के समान सिद्ध नही हो सका। गोविन्द=परमात्मा की प्राप्ति भी नही हो सकी और न चन्द्रमा की सी शीतलता रूप शाति ही पास की। गो=गाय को रख कर भी उनका स्वामी गोपाल (भगवतभक्त) नही हो सका। गो=इन्द्रियो के स्वामी मन को भी वश नही कर सका। और न चन्द (ईश्वर) रूप सूर्य से प्रकाश पाने वाले जीवात्मा रूप चन्द को ध्यानादि से ब्रह्म को गह अपने को लीन न करसका।

बार बार गणिवो किया, बार गई सब बीति।
बार बार क्यो फिरत है, बार बार मन जीति ॥८॥

बारबार द्रव्य की मुद्राओ को गिण गिण धन सग्रह किया। इसही मे आयु का समय बीत गया। बारबार=द्वार-द्वार पर क्यो फिरता है। बारबार यत्न करके मन को जीत। वहिर्मुख मे हटाकर मन को अन्तर्मुख करके जीत=वश मे कर।

श्रार्क हि त्यागे जानके, चन्दन जाके पास ।
ता राजा के सग है, नभ मे किया निवास ।।९।।

जिस के पास चन्दन है वह पुरुष श्रर्क=श्राकडे को त्याग देता है । श्रात्मानन्द रूप चन्दन के सामने विषयानन्द श्राकाडा के समान कटु है । जिस राजा=परमेश्वर के सग (सामीप्य मोक्ष) प्राप्त किया जो नभ (गगन मडल=शून्यलोक श्रनतता) मे निवास किया जो सर्व व्यापक है। दूसरा श्रर्थ–श्रर्क=सूर्य । चन्द्र=चन्द्रमा । तारा=नक्षत्र । नभ=श्राकाश मडल । ये चार शब्द ज्योतिष सबन्धी इस मे हैं ।

श्रग्नि बाण कर चौगुने, लक्षण एकहु नाँहि ।
श्रनुडवान सो जानिये, समझ देख मन माँहि ।।१०।।

श्रग्नि १=एक । बाण=पाच । पाच एक ६।६ के चौगुण=२४ चोबीस लक्षण मे से एक भी, जिस पुरुष मे नही हो वह पुरुष श्रनुड्वान=बैल ही है श्रर्थात् मूर्ख है ।

मिश्री निद्रा पडसुत, चतु रक्षर त्रय नाम ।
पीये श्राये श्ररु मिले, सुख ही श्राठौ जाम ।।११।।

मिश्री (मीठा पीने से) निद्रा लिये=गहरी नीद से । पड सुत युधिष्ठर=धर्म, धर्म की प्राप्ति से । इन चार-चार श्रक्षरो वाले शब्दो के श्रभिप्राय से सुख होता है ।

ऋषि करण वसु देव सुत, इनके श्रर्थ हि जान ।
तीन नाम तिन मे प्रकट, चतुरक्षर पहिचान ।।१२।।

ऋषी=ज्ञानी । करण=दानी । वासुदेव सुत=कृष्ण=योगी ।

रामार्पण सब करत है, कृष्णार्पण नहि कोइ ।
कृष्णार्पण कृष्ण हि मिले, रामार्पण घर खोइ ।।१३।।

रामा=स्त्री (इस से स्थूल प्रेम=विषय वासना) के श्रर्थ सब (लौकिक) जन सग्रह करते है। स्त्री पुत्रादि मे मोह करके सर्वस्व खोते हैं। किन्तु कृष्ण (परमात्मा) के श्रर्थ दानादि, ध्यान, ज्ञान नही करते । प्रथम से श्रनिष्ट द्वितीय से इष्ट की प्राप्ति हो ।

रमा खाइ रवि पुत्र की, तर जो हो पर नारि ।
दास रहै सो दुख मे, तीनो उलट विचार ।।१४।।

रमा का उलटा=मार । रवि पुत्र=यम । तर का उलटा=रत, श्रनुरक्त श्रासक्त दास । दास का उलटा सदा । ये सब ससार मे श्रासक्त होने से सदा यमराज की मार ही खाते रहेंगे ।

रसु सोई श्रमृत पिवे, रन सोई जिह ज्ञान ।
शुप सोई जो बुद्धि बिन, तीनो उलटे जान ।।१५।।

रसु का उलटा=सुर, देवता । रन का उलटा=नर, शुप का उलटा=पशु, मूर्ख ।

तारी बाजे कुम्भ ज्यो, खैरा गर्व गुमान ।
लेबो मिथ्या रात-दिन, लाभ न होय निदान[1] ।।१६।। श्रन्त मे[1]

तारी का उलटा=रीता । खैरा का उलटा=राखै । लेवो का उलटा=वोले । रात दिन मिथ्या बोलने से श्रन्त लाभ नही होता, श्रति श्रधिक हानि ही होती है ।

तरक बुराई बहुत विधि, हैरिप माया जाल ।
नरम होय पल एक मे, करन जाय तत्काल ।।१७।।

तरक का उलटा=करत । हैरिप का उलटा=परि है । नरम का उलटा=मरन । करन का उलटा=नरक । उलटा शब्द करने पर उनका लाभ जो होता है । मायाजाल, नरक है ।

मरा मना भजि बो करो, गरा षदो नहिं कोइ ।
ईसो धूसा जानिये, हूका पैलि न सोइ ।।१८।।

मरा मना का उलटा=नाम राम-राम नाम । गरा षदो का उलटा=दोपराग=रागदोष । इसो घूसा का उलटा=साधू सोई । हूका पैलि का उलटा=लिपै काहू-काहून । लिपै ।

नयराना व्यापक सकल, रकारानि सब ठौर ।
वदे सुवा सब मे बसै, मीनानघ शिर मौर ।।१९।।

नयराना का उलटा=नारायण । रकारानि का उलटा=निराकार । वदेसुवा का उलटा=वासुदेव । मीनानघ का उलटा=घननामी, जिके बहुत नाम हो=ईश्वर ।

नाकरिये नहिं मागते, कछू न लागत दाम ।
रैमा ने[1] जु त्रिषा बुझे, पी पाणी विश्राम ।।२०।। माने त्रिषा न बुझे[1]
कर्म काट न्यारा भया, बीसो बिसवा सत ।
रमैं रैनि दिन राम सौ, जीबै ज्यो भगवत ।।२१।।
नाम हृदय निशिदिन सुने, मगन रहै सब जाम ।
देखे पूरण ब्रह्म को, वही एक विश्राम ।।२२।।

इति गूढार्थ प्रसग २

श्रथ श्राद्यक्षरी प्रसग ३

दोहा—स्वाति बून्द चातक रटै, मीन नीर बिन छीन ।
दा दू जीया रामहित, दूसर भाव न कीन ।।१।।

स म दृष्टि सब आतमा, त्यक्त किये गुण देह ।
क र्म काट लागे नही, रि दै विचार सु येह ।।२।।
भ व जल राखे बूडते, जे आये उन पास ।
नि र्भय कीये पलक मे, रंच न जम की त्रास ।।३।।
ज न्म मरण तिनके मिटे, नजरि पडे जे कोइ ।
ना टक मे नाचे नही, थकित भये थिर होइ ।।४।।
ति रत न लागी बार कछू, नवका दोया नाम ।
हीं न जाति हरि को मिले, दीरघ पाया धाम ।।५।।
या मे फेर न सार कछु, आशा पूरइ आइ ।
पु न्य पाप के फन्द ने, ते सब दिये छुडाइ ।।६।।
सु न्य[1] माहि सूरय[2] उदय, दश हू दिशा प्रकाश । निर्विशरावस्था[1] ज्ञान[2]
र है निरन्तर मग्न हो, कैसौ[3] जन्म विनाश ।।७।। कैसा[3]
सि द्ध भये सब साधिके, रही न कोऊ शक ।
हा रि जीत अब को करै, थपे[4] और ही अक ।।८।। स्थापित[4]

इन आद्यक्षरी आठ दोहो मे प्रत्येक पाद के आदि के अक्षरो से यह दोहा बनता है ।

स्वामी दादू सत्य करि, भजे निरन्जन नाथ ।
तिन ही दीया आपुते, सुन्दर के सिर हाथ ।।

इति आद्यक्षरी प्रसग ३

अथ आदि अत अक्षर भेद प्रसग ४

दोहा—येकाकी जेई भये, करी न कोई टेक ।
येक ब्रह्म से मिल गये, कमधज[1] साधु अनेक ।।१।। महावीर[1]

दोऊ कुल से हो जुदो, इन के सग न जाइ ।
दोष छाडि पावै मुदो[1], इहा वहा सुख पाइ ।।२।। मोद=आनन्द[1]

तीनो पन[2] मे हो जती, नखशिख पावे चैन । बाल युवा वृद्ध[2]
तीक्षण होय महामती, नर हरि देखे नैन ।।३।।

चारि वेद की सुनरिचा, रिस आपनी निवारि ।
चा हिछाडि ज्यो हो सचा, रिण शिर से जु उतारि ।।४।।

पांवन नाम सदा जपां, चरण कमल चित राच ।
पानि[1]ग्रहण कैसे थपां[2] चमकि कहै मुख साच ।।५।। हाथ[1]स्थापन करै[2]

साध सग ऊची दसा तम रज का हो पात ।
सार सुधा पावे उसा, तत दरगी कुशलात ।।६।।

आया ठाहर अवस आ, ठ हराया दिठ पीठ।
आशा तृष्णा छाडि आ, ठत्रकि[1] लिया मन धीठ ॥७॥ मनको रोका[1]
घेरि पंच[1] पर्वत लघे, रिद्ध सिद्धि दी डारि। इन्द्रिय[1]
माती हरि रस से उमा[2], रिझये शिव शिव नारि ॥८॥ वृति[2]
राखत काहे न वापुरा, मसकति[1] करिके माम[2]। अभ्यास[1]अहंकार[2]
नाश करे मत आपना, मरद होय तज काम ॥९॥
ले वे तो हरि नाम ले, हरि से करै सनेह।
दे वे तो उपदेश दे, हम जानत हैं ये ह ॥१०॥
तापस के काचा मता, तप करि जारत गात।
माल मुलक चाहे रमा, तरसत[1] ही दिन जात ॥११॥ तरसते ही[1]
गेरत नग[1]नर जग मगे, हरिनाक्षी[2] अति प्रेह। श्वास[1] आंख मे[2]
येक[3]न जाना जिन किये, हठ शिर डारी खेह ॥१२॥ ब्रह्म[3]
जाप जपे विन हो सजा, गिरा अमी रस पागि[1]। लगा[1]
माव राखि मज्जन सभा, गिर पर[2]चरनहु लागि ॥१३॥ पड[2]
माधवजी भज त्याग मा[1], रसपी वारवार। लक्ष्मी[1]
लाभ कौन याते भला, र है सुरति इकतार ॥१४॥
जाल पसारा है अजा[1], हद वेहद नहि नाह। माया[1]
राति दिवस आवे जरा, हरि भजन निर्वाह ॥१५॥
वास[1] करत सब जग मुवा, रन वन चढे पछार। निवास स्थान[1]
पाप कटे न विना कृपा, रट ले सिरजन हार ॥१६॥

इसके दोहो के पादो के आदि और अन्त के अक्षरो से एक एक दोय दोय तीन तीन ऐसे ही १६ दोहो मे जाने।

इति आद्यताक्षरी प्रसग ३

अथ मध्याक्षरी प्रसग ४

छप्पय शकर कर कहि कौन ? (पिनाक = धनुष)
कौन अंबुज[1] रस रगा ? (भ्रमर) कमल[1]
अति निलज्ज कहि कौन ? (गनिका = वेश्या)
कौन सुन नाद हिं भगा ? (कुरग = मृग)
काम अन्ध कहि कौन ? (कु जर = हाथी)
कौन को देखत डरिये ? (पनग = सर्प)
हरिजन त्यागत कौन ? (कलेश)
कौन खाये से मरिये ? (मोहरा = विष)
कहि कौन धातु जग मे रबन[1] ? (कनक = सोना) सुन्दर[1]
रसना को को देत वर ? (सारदा = सरस्वती)

अब 'सुन्दर' द्वै पख त्यागि के,
'ना[1]म निरजन लेहु नर[1] ॥१॥   उत्तर[1] के अक्षरो के मध्य अक्षरो से[1]

सब गुण युक्त सु कौन ? (विचित्र)
कौन सकुचे नहि देते ? (उदार)
विष्णु पारषद कौन ? (सुनन्द)
दूर दुख कौन तजे से ? (मदन=काम)
समझत नही सु कौन ? (अचेत=मूर्ख)
कौन हरि सुमिरत भागे ? (पातक=पाप)
बनिक वृत्ति कहि कौन ? (बन्यज=वाणिज्य)
कौन जल वर्षन लागे ? (मघवा=इन्द्र)
कहि कौन नृपति तज द्वन्द्व सब ? (जनक)
सदा रहै मध्यस्थ मन ।
यू 'सुन्दर' आपुहि जान तू ।
'चिदा[1]नन्द चैतन्य घन' ॥२॥ इस[1]के उत्तर के मध्य अक्षरोसे निकलता है'

चौपाई–पोवै कहा सूत्र के माही ? (मनिका)
नाद सुनत चाले को नाही । (कुरग मृग)
शीश कवन के अकुश गजन ? (कुञ्जर=हाथी)
को विदेह भज भया निरञ्जन[1] ॥१॥ (जनक) इसमे[1] निकल है ।

कौन नगर जहा उपजे लौन ? (साभर)
नदी नाथ सो कहिये कौन ? (सागर)
का ऊपर असवार चढन्त ? (पवग=घोडा)
कहा कटे भजते भगवत[1] ॥२॥ (पातक=पाप) यह निकले[1] ।

दुख दाइक सो कहिये कौन ? (असुर)
गिरि कैलाश कौन का भौन ? (शकर)
पथी को का दीजे भेव ? (सदेह)
कौन त्यागि चाले सुकदेव ॥३॥ (भवन) निकलता है ।[1]

को वन मे गहि बैठे मौन ? (उदास)
हस्ती के शिर शोभा कौन ? (सिन्दूर)
काके कीये कनक अवाम ? (सुदामा)
त्यागी कौन सु दादूदास[1] ॥४॥ (वासना) निकलता है ।[1]

इति मध्याक्षरी प्रसंग ४

अथ चित्र काव्य के बन्ध प्रसंग ५

(१) छत्र बन्ध, छप्पय—सु न हु अंक की आदि, दशाइक विधि सुत[1] केते । १ वा (४)[1]
रस[2] भोजन पुनि जान, भनो योगांग[3] हि जेते । (६[2])(८[3])
जलज[4] नाभिदल[5] बूझि, हुई कँ कंचन वानी[6] । कमल[4] (१०[5]) (१२[6])
निरखि भुवन[7] पुनि कहो, रंभ[8] वय[9] किती वखानी ।। (१४[7]) रंभ[8] (१८ वर्ष[9])
जग माँहि जु प्रकट पुराण[10] कँ, नंदन[11] नख कर पग[12] गन ।
(१८[10]) पुत्र[11] (२०[12])
सब साधन के शिर छत्र यह, 'सुन्दर' भजहु निरंजन[13] ।।१।। यह निकलता है[13]

अंक आदि दशा=(०) वा १ है । विधि=ब्रह्मा के पुत्र-सनक, सनन्दन, सनतकुमार, सनातन ये चार हैं । भोजन के रस—मीठा, खट्टा, खारा, चरपरा, कडवा और कसेला ये छ हैं। योगांग—१ यम २ नियम ३ आसन ४ प्राणायाम ५ प्रत्याहार ६ ध्यान ७ धारणा ८ समाधि आठ हैं । नाभि कमल के दल दश हैं । कंचन वानी = उत्तम सोना १२ वानी का होता है । भुवन = भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महलोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक ७ ऊपर के तल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल ये ७ नीचे के ऐसे १४ हैं । रंभा = इन्द्र की अप्सरा की आयु १८ वर्ष की ही रहती है, पुराण १८ प्रसिद्ध है । नन्दन = पुत्र के हाथ पैरो के नख २० होते है । सब साधनो का शिरमोर निरंजन का भजन ही है ।

(२) अथ कमल बन्ध

छप्पय—दर्शन अति दुखहरण रसन प्रेम रस बढावन ।
सकल विकल भ्रम दलन, वरन वरनो गुण पावन ।।
सुढरन[1] कृपा निधान, खचर जन की प्रति पालन । द्रवत[1]
हलन चलन सब करन, रितय[2] कर भर पुनि ढारन[3] ।। रीतेको[2] दात[3]
सठ समझ विचार सभार मन, रहत न काहे परिचरन ।
नम[4] नरक निवारन जान जन, 'सुन्दर' सब सुख हरि शरन ।। प्रणाम[4]

(३) कमल बन्ध द्वितीय

छप्पय—गगन धरा जिन अधर, टरत मरजाद न सागर ।
निर्गुण ब्रह्म अपार, कहै को लिख के कागर[1] ।। कागज[1]
टगत[2] न धरणि सुमेरु, हठ[3] हि गत यज्ञ भयंकर । डिगते[2] दूर[3]
रिदय[4] त पावत तौर[5], विष्णु ब्रह्मा पुनि शंकर ।। हृदय[4] तेरा[5]

स्वर्गादि मृत्यु पाताल तर[6],भजत तोहि सुर असुर नर । तले[6]
रत भये जान 'सुन्दर' निडर,प्रकट निकट हरि विश्वभर ।।३।।

छप्पय पाद का अर्थ—सुन्दरदास जी कहते हैं विश्वभर हरि को निकट मे ही प्रकट जानकर रत=अनुरक्त हो गये वे सतजन सर्वथा काल कर्म के डर से रहित हो गये हैं ।

(४) चौकी बन्ध

चामर—दरस ते उसका नाम दिल मे, इसक[1] उपजे दरद[2] । प्रेम विरह[1]वेदना[2]
दरदवद पुकार करते, होइ सब सौ फरद[3] ।। अलग[3]
दर फकीरी मे फिरत फारिक[4], जान सोई मरद । त्यागी[4]
दर मजल सोई जाइगा, दिल किया 'सुन्दर' सरद[5] ।।४।। शात[5]

(५) चौकी बन्ध

चौपईया—या[1] पासै आप रहै अविनाशी, देखि विचारहु काया । इस देह[1]
या काहु न जाना जगत भुलाना, मोहे मोटी माया ।।
या माटी[2] माही हीरा[3] निकसा, सतगुरु खोज लखाया । काया[2] हरि[3]
या खाल लपेटा 'सुन्दर' दीसै, याही पासै पाया ।।५।।

६ गोमूत्रिका बन्ध

दोहा—माया दुख का मूल है, काया सुख नहि लेश ।
पाया विप मामूर[1]है, आया नखतहि केश[2] ।।६।। भरा हुआ[1] स्वेत हो गये[2]
गो[1]जी[2] गोजी नरनिये[3], विन्दुपाल रह राम । इन्द्रिये[1] जीव[2] नियत[3]
दक्ष विवेकी पाइ है, चतुरक्ष[4]र विश्राम ।।७।। गोविन्दजी[4]

(७) चौपड बन्ध

चौपाई—हौ[1] गुण[2] जीत सहो[3] सबकी जु, हौं सनमान सयान तजोजु ।
मैं[1] त्रिगुण[2] सह्नता करू[3]
हौं कन राखत या तन मे जु, हौ वन मे तज जात हुतौ जु ।।

(८) कोनपोस बन्ध

उल्लाला—सरस[1] इसक तन मन सरस, सरस नवनि कर अति सरस । सुन्दर[1]
सरस तिरत भव जल सरस, सरस लगत हरि लय सरस ।।
सरस कथा सुन कै सरस, सरस विचार उहै सरस ।
सरस ध्यान धरिये सरस, सरस ज्ञान 'सुन्दर' सरस ।।१०।।

यह छद चित्र काव्य का ही है, ग्रन्थ मे नही है ।

(९) वृक्ष बन्ध

मनहर—एक ही विटप विश्व. भ्रम भूल है ।।११।।

यह मनहर मन के अग[11] मे २३ वा छद है, वही देखें ।

(१०) वृक्ष बन्ध

दोहा—प्रगट विश्व यह वृक्ष है, मूला माया मूल ।
महतत्त्व अहकार, कर, पीछे भया सथूल ।।१२।।
शाखा त्रिगुन त्रिधा भई, सत रज तम प्रसरत ।
पच प्रशाखा जान यौ, उपशाखा सु अनन्त ।।१३।।
अवनि नीर पावक पवन, व्योम सहित मिल पच ।
इनही कौ विस्तार है, जो कछु सकल प्रपच ।।१४।।
श्रोत्र तुचा दृग नासिका, जिह्वा है तिनमाँहि ।
ज्ञान सु इन्द्रिय पच ये, भिन्न भिन्न वर्ताहि ।।१५।।
वाक्य पाणि अरु चरण पुनि, गुदा उपस्थ जु नाम ।
कर्म सुइन्द्रिय पच ये, अपने अपने काम ।।१६।।
शब्द स्पर्श जु रूप रस गध सहित मिल पुष्ट ।
मन बुद्धि चित्त अह तहा, अन्त करण चतुष्ट ।।१७।।
इन चौबीस हु तत्थ का, वृक्ष अनूपम एक ।
सुख दुख ताके फल भये, नाना भाति अनेक ।।१८।।
तामे दो पक्षी बसहि, सदा समीप रहाइ ।
एक भखे फल वृक्ष के, एक कछू नहि खाइ ।।१९।।
जीवातम परमातम, ये दो पक्षी जान,
'सुन्दर' फल तरु के तजें, दोऊ एक समान ।।२०।।

(११) नाग बध

मनहर—जनमसिरा नौ जाइ   नाग पासि परि है ।।२१।।
(यह उपदेश चितावनी के अग दो में, २९ वा छद है)

(१२) हार बध

मनहर—जगमग पग तज   धारिये ।।२२।।
(यह उपदेश चितावानी के अग दो मे, ३० वा छद है)

(१३) ककण बध प्रथम

दुमिला—हठ योग धरौ   दूरि करै ।।२३।।
(यह उपदेश चितावानी के अग दो मे, ३२ वा छद है)

(१४) ककण बध द्वितीय

दुमिला—गुरु ज्ञान गहै   'राज करै ।।२४।।
(यह उपदेश चितावानी के अग दो मे ३३ वा छद है)

इति चित्रकाव्य के वध के प्रसंग ५

अथ कविता लक्षण प्रसग ६

छप्पय—नख शिख शुद्ध कवित्त, पढत अति नीका लागे ।
अग हीन जो पढे, सुनत कवि जन उठ भागे ।।
अक्षर घट बढ होइ, खुडावत नर ज्यो चल्लै ।
मात घटे बढि कोइ, मनो मतवारा हल्लै ।
औढेर[1] काण सो तुक अमिल, अर्थहीन अधा यथा । वहगा[1]
कहि 'सुन्दर' हरि यश जीव है, हरियश बिन मतृकहि तथा ।।२५।।

अथ गण विचार

छप्पय—माधोजी[1] है मगण, यहै है यगण[2] कहिज्जे । तीनो गुरु[1] प्रथम लघु[2]
रगण रामजी[3] होइ, सगण सगलै[4] सुलहिज्जै ।। मध्य लघु[3] अन्त गुरु[4]
तगण कहै तारक्क[5], जरात[6] सु जगण कहावे । अन्त लघु[5] मध्य गुरु[6]
भूधर[7] भणिये भगण, नगण सुनि निगम[8] बतावै ।। आदि गुरु[7] तीनो लघु[8]
हरि नाम सहित जे उच्चर हि तिनको शुभ गण अट्ठ है ।
यह भेद जके जाने नही 'सुन्दर' ते नर सट्ठ हैं ।।२६।।

गणो के देवता और फल

मनहर— सब गुरु 'म' 'न' लघु, आदि 'गल' भय जान,
'स' 'त' इम अन्त लेहु, मध्य 'ज' 'र' मानिये ।
भूमि नाक चन्द तोय, वायु सो गगन सूर,
अग्नि हु आठ यह देवता बखानिये ।।
लक्ष मन वुद्धि जस भय आयु भ्रमन स,
तरु वश नाश रोग जर मृत्यु ठानिये ।
अष्ट गण नाम अरु देवता समेत फल,
'सुन्दर' कहत या कवित्त मे प्रमानिये ।।३।। २७

म गण नगण मित्र भगण यगण भृत्य,
सगण रगण शत्रु जत सम नित्य है ।
मिले दोइ मित्र सिद्धि मित्र भृत्य जय जान,
मित्र सम मिले कुछ लक्षण कुछिल[1] है ।। हानि[1]
मित्र अरु शत्रु मिले दुख उप्पन्न होइ,
मिले भृत्य मित्र करै कारज को सत्य है ।
दास दोइ नाश होय भृत्य सम हानि सोइ,
'सुन्दर' अरति रिपु हार को उपत्य[2] है ।।४।। २८ उत्पन्न[2]

सम मित्र साधारण सम भृत्य से विपत्ति,
सम द्वै निफल सम रिपु वुद्ध[3] होइ जू।   विन्द्ध[3]
ग्ररि मित्र शून्य फल शत्रु दास त्रिय नाश,
रिपु सम मिलत हि हार होत सोइ जू॥
ग्ररि दोइ मिलै तहा प्रभु को हरत वह,
सु गण विचार धर ग्रशुभ न खोइ जू।
ह झ ध र घ न ख भ दग्ध ग्रक्षर ग्राठ,
'सुन्दर' कहत छन्द ग्रादि दे न जाइ जू॥५॥   २९

कोष्टक मे गण को स्पष्ट करते हैं—

स०	गण	गण रूप	देवता	फल	मित्रादिक
१	मगण	SSS	पृथ्वी	लक्ष्मी	मित्र
२	नगण	।।।	स्वर्ग	वृद्धि	मित्र
३	भगण	S।।	चन्द्रमा	यश	दास
४	यगण	।SS	जल	ग्रायु	दास
५	जगण	।S।	सूर्य	रोग	सम
६	रगण	S।S	ग्रग्नि	मृत्यु	शत्रु
७	सगण	।।S	वायु	भ्रमण	शत्रु
८	तगण	SS।	ग्राकाश	शून्य	सम

कक्का के वरण लघु बारखडी माहि त्रिय,
सुरा मध्य पच लघु ग्र ग्रादि समान है।
युत लघु पूरण दीरघ करै ग्राई ऊ ऋ,
ॡ ए ऐ ग्रो ग्रौ ग्रं सु दीरघ बखान है॥
दूषन चालीस ग्रौर भूषण चार सत,
पिंगल व्याकरण काव्य कोश सौं पिछान है।
जीतै पर सभा लखे बात मन हू की।
सब ही सराहै कवि सुन्दर कहान है॥६॥३०॥

कक्का = वर्णमाला के ग्रकारात (वा इकारात, उकारान्त ग्रादि) सब ग्रक्षर लघु ही रहते है। बाराखडी = बारह स्वरो सहित वर्णों मे से त्रिय = तीन वर्ण ग्रा = ईऊ वा इनसे सयुक्त ग्रक्षर। स्वरा मध्य = स्वरो (सोलहो) मे मे पच = ग्र-इ-उ ऋ ऌ। ग्र + ग्रा + इ + ई – उ + ऊ – ऋ—ॠ—ऌ + ॡ—ये समान हैं। 'युत लघु पूरव दीरघ करै' = सयुक्तो के पहिले वाले दीर्घ (गुरु) हो जाते हैं। ग्रा से ग्र तक ११९ वर (भाषा मे) ग्रौर इनसे सयुक्त व्यञ्जन भी दीर्घ होते हैं (गुरु) दूषण चालीस-काव्य के दूषण ग्रनेक हैं ग्रौर भूषण चार शत—इससे काव्य गुण ग्रौर ग्रलकारादि सब मिला कर कहे हैं, ऐसा ज्ञात होता है।

सख्या वर्णन प्रसग ७

गरणपति रदन[1] मही दिनेश[2] चक्र रथ, दात[1] सूर्य[2]
चन्द्र शुक्र नेत्र एक आतमा ही जानिये ।

गज दत अयन नयन कर पाद पक्ष,
नदी तट नाग जिह्वा द्विज दोइ मानिये ।।

राम हरनयन अगनि क्रम बलि सध्या,
काल ताप ज्वर सूल पद्म तीन आनियै ।

खानि वानी बरण आश्रम अजमुख वेद,
कूट जुग सेना मुक्ति फल चार पानिये ।।७।।३१।।

एक सख्या वाचक शब्द—गरणपति जी के एक दात है । मही = पृथ्वी । सूर्य रथ के एक ही पहिया है । चन्द्रश शुक्राचार्य के एक ही नेत्र, आत्मा एक । दो के वाची-हाथी के दो दात । अयन दो = उत्तरायरण, दक्षिरणायन । पाद = पाव दो । पक्ष = शुक्ल और कृष्ण वा पक्षी के दो पाख । नदी तट दो साप के जीभ दो । द्विज = दो जन्म होते हैं । तीन के वाचक राम = रामचन्द्र, परशुराम, बलराम । शिव के तीन नेत्र । अग्नि तीन = वाडवाग्नि, दावाग्नि, जठराग्नि = पेट की अग्नि । अथवा = दक्षिरणाग्नि, गर्हिपत्य, आहवनी । क्रम = विक्रम = बल (तन, मन, धन) बलि = त्रिबली की तीन रेखा । सध्या तीन = प्रात॰, मध्याह्न, साय । काल = भूत, वर्तमान, भविष्यत् । तीन ताप = तीन तापत्रय (दैहिक, दैविक, भौतिक) । ज्वर = बात ज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर । शूल = त्रिशूल के तीन काटे । पद्म = पुष्कर का वाचक शब्द-वृद्ध पुष्कर, मध्य पुष्कर, ज्येष्ठ पुष्कर । और क्रम विधि अर्थ मे-१ वेद विधि २ लोक विधि ३ कुल विधि । चार के वाचक शब्द-खानि = जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज । वारिणयें = परा, पश्यन्ती, मध्यमा । वैखरी चार । वर्ण-ब्राह्मरण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र चार । आश्रम = ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, सन्यास चार । अजमुख = ब्रह्मा के मुख चार । वेद चार—ऋग, यजु, साम, अर्थव । कूट = चारो दिशाओ के चार पर्वत । जुग = युग चार—सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर, कलियुग । सेना = चतुरगरिण—हाथी, घोडे, रथ, पैदल । मुक्ति चार = सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य । फल = धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । पानिये = विष्णु के चार हाथ । बोधक शब्द हैं ।

सनकादि वाररगरद, सम्प्रदा उपाय अग,
जोधार चरन दिशा चार अन्त करन है ।

तत्त्व शर इन्द्री हरमुख पाडु वर्ग यज्ञ,
पित मात कन्या पाप वायु पच बरन है ।

शासतर सम्पति करम दरशन रितु,
रस राग अग ईति पट सुतरन है ।
धातु द्वीप तूड ऋषि वार हय परवत,
समुदर पुरी सात कहत धरन है ।।८।।३२।।

सनकादि=सनक, सनन्दन, सनतकुमार, सनातन, चार। वारण रद= ऐरावत हाथी के चार दांत। सम्प्रदाय—श्री सम्प्रदाय, निम्बार्क, माध्व और वल्लभ, ये चार हैं। उपाय=साम, दाम दण्ड, भेद चार है। अग=मस्तक, धड हाथ, पाव। जोधार=योद्धा=गजारोही, अश्वारोही, रथारोही, पदाति। चरण=छन्द के चार और चोपायो के पाव चार। दिशा—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण। अन्त. करण—मन, बुद्धि, चित्त अहकार। पाच वाचक—तत्व पाच=पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। शर=कामदेव के पाच बाण—मोह, मत्त, शोक, विरह, अचेतन। इन्द्री=ज्ञानेन्द्रियां—आख, कान, नाक, जीभ, त्वचा, पाच। हरमुख= महादेवजी के पाच मुख। पाण्डव=युधिष्ठर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, पाच। वर्ग पाच=कुचु, टुतु, पु-कवर्गादि पाच। यज्ञ=पच महायज्ञ-स्वाध्याय, अग्निहोत्र, अतिथि-पूजन, पितृतर्पण, बलिवैश्वदेव। पिता=जन्मदाता, राजा, जीवदानदाता, गुरु, (दीक्षा विद्यादाता) और ससुर। पाच माता=जननी, गुरु पत्नी, राजा की राणी, सास, मित्र पत्नी। पाच कन्या=अहल्या, द्रोपदी, तारा, कुन्ती, मन्दोदरी। पाप=ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण की चोरी, गुरु पत्नी गमन और इनके साथ ससर्ग। वायु=प्राण, अपान, समान, उदान, व्याम। वरन=वर्णित। ६ के वाचक—शास्त्र ६ - चार वेद, पुराण, धर्मशास्त्र (स्मृति)। सम्पत्ति=शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, उपरति, समाधान। कर्म=यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान लेना, दान देना। दर्शन६=सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमासा, वेदात। ऋतु ६=वसत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर। रस=खट्टा, मीठा, खारा, कडवा, चरपरा, कसैला। राग=६—भैरव, मालकौस, हिंडोल, दीपक, श्री, मेघ (मलार)। अग=वेद के ६ अग-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त। ईति ६—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिडीदल, चूहादल, तोतादल, परतत्र (वा ओला पडना) यतिपट्—लक्ष्मण, हनुमान, भीष्म, भैरव, दत्त और गोरक्ष। तरन=तृण—६ चारे—घास, कडब, पत्ते, पत्नी, तुस, दाणा। सात के वाचक— धातु=७—धातु, सोना, चादी, तावा, लोहा, रागा, सीसा। वा—चर्म, रक्त, मास, मेद, हाड, चरबी, वीर्य। द्वीप=७—जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शालमली, मेद (वा लक्ष) पुष्कर। तृण=७ अन्न—जव, गेहूँ, चावल, मूग, अरहड, उडद, चना। ऋषि ७=कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौत्तम, वशिष्ट, यमदग्नि। वार= ७ रवि, सोम, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि। हय=सूर्य के सात घोडे।

नीचे की १० दिशा हैं। १० दोष—चोरी, जारी, हिंसा, निन्दा, झूठ, कठोर भाषण, अति बोलन, तृष्णा, कुचिन्तन, बुद्धि मदता, ये १० हैं। १० अवतार=कच्छ, मच्छ, वामन, वराह, नृसिंह, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण बुद्ध, कलकी। नाभि पद्म के ऊपर अनाहत नाद रूप ध्वनि प्रसिद्ध हैं। १० मुद्रा—योग मुद्रा=महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डियान, मूलबन्ध, जालधर बन्ध, विपरीत करणी, वज्रोली, शक्तिचालन। १० वायु=प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, देवदत्त, कृकल, धनञ्जय। ११ के वाचक—रुद्र=अजादि। १२ मास। १२ राशि। १२ आदित्य विवश्वानादि। १२ भक्त प्रहलादि। १२ सक्राति। १२ पथ=बारावाट। १२ पूर्णमासी। हृदय कमल १२ दल। १२ यम नियम।

तेरा तरवर ताल तेरा द्वार कहै फिर,
रतन बतावें तेरा ये भी वात सही सो।
रतन भवन विद्या जन भट इन्द्री देव,
विषय कही जे चौदा पद्रा तिथि कही सो॥
सुर सिंगार उपचार कला पारषद,
वय रभा सोला सत्रा कोटि जल मही सो।
समृति पुराणा प्रवराम सेना भारत की,
भार हु अठारा वै अठारा ध्याय लही सो॥१०॥　　३४॥

१३ के वाचक—तरु=१ उडुम्ब २ वट ३ पलक्ष ४ जम्बु ५ अर्जन ६ पिप्पल ७ कदर्व ८ पलाश ९ लोध्र १० तिन्द्रक ११ मधूक १२ आम्र १३ बदर। १३ ताल=बडे सरोवर—मान सरोवरादि वा १३ ताल—चौताल, त्रितालादि। १३ द्वार=देव द्वार, राजद्वारादि। १३ रत्न=मूठ के गुणो को तेरह रत्न कहते हैं। १४ के वाचक—१४ रत्न=लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, रम्भा, सुरा, अमृत, विष, ऐरावत, शारङधनु, धन्वतरि, कामधेनु, चन्द्रमा, कल्पवृक्ष, सप्तमुखी अश्वादि। १४ भवन ७ ऊपर के सात नीचे के। १४ विद्या प्रसिद्ध हैं। १४ यय=धर्म, राज, यमराज, मृत्यु, अतक, वैवस्वत, नील दघ्न, काल, सर्वभूत क्षय, परमेष्टी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त। १४ भट यम के। १४ इन्द्रिय ज्ञान, कर्म, अन्त करण ४, १४। १४ देव इन्द्रियो के। १४ मुख्य विषय। १५ के वाचक—१५ तिथि=प्रतिपदा आदि। १६ स्वर=वर्ण—अकारादि। १९ शृगार—शोच, उबटन, स्नान, केशबन्ध, अगराग, अञ्जन, दन्तरजन, मेहदी, बीडी, वस्त्र, भूषण, सुगन्ध, पुष्पमाला, तिलक, टीकी, ठोडी पर बिन्दु। १६ उपचार=षोडशोपचार=पूजन, आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताबूल, आरती, नमस्कार। (वा दक्षिणा) १६ कला=चन्द्रमा की १६ कलायें—अमृता, मानदा, पूषा,

तुष्टि, पुष्टि, रति, घृति, शशिनि, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योसना, श्रिय, प्रीति अगदा, पूर्णा, पूर्णामृता। १६ पारषद=जय, विजय, आदिक, रभा अपसरा की अवस्था १६ वर्ष की। १७ —पृथ्वी पर जल १७ कोटि। १८ पुराण। १८ स्मृति। १८ प्रवराम= १८ प्रधान प्रवर—आत्रेय, वशिष्ट, विश्वामित्र, भारद्वाज, यमदग्नि, आगिरस, गौत्तम, काश्यप, च्यवन, भार्गव, पराशर, शक्ति, शाडिल्य, आपुवान, मरीचि, बर्हसपत्य, अगस्त्य, वत्सस। सेना भारत की, महाभारत की सेना १८ अक्षौहिणी थी—११ कौरवो की, ७ पाडवो की। १८ भार वनस्पति के प्रत्येक का एक-एक लेकर तोलनेसे १८ भार होते है; बीस पसेरी का एक भार होता है। १८ भगवत् गीता के १८ अध्याय। १८ स्मृति—मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर, वशिष्ट, हारीत, नारद, अत्रि, आपस्तम्ब, शातातप, शख, लिखित, व्यास, भारद्वाज, काश्यप, दक्ष, विष्णु, यम वृहस्पति। १८ पुराण—विष्णु, वाराह, वामन, पद्य, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त्त, ब्रह्माण्ड, भविष्य, भागवत, मार्कंडेय, मत्स्य, नारद, लिंग स्कन्द, कूर्म, गरुड।

उगनीस और बात विस्वा नख मानुष के,
बीस चक्षु श्रुति भुजा रावण के सुनिया।
इक बीस स्वरग सु बाईसी सो पातसा की।
क्षौहणी तेईस जरासघ साथ गुनिया॥
चार बीस अवतार चार बीस तीर्थकर,
चार बीस तत्त्व पीर चार बीस घुनिया।
एक से चौवीस लग सख्या सज्ञा कही यह,
'सुन्दर' मिलावो जति कवि पुनि पुनियो॥११॥३५॥

१९ उन्नीस पिण्ड स्थान कहे जाते हैं। २० विश्वा बीस मनुष्य के हाथो पैरो के नख हैं। रावण के २० आखें २० कान, २० भुजा सुने जाते हैं। २१ स्वर्ग हैं। २२ बादशाह की सेना २२ की बाई सी कहाती है। २३ अक्षौणी जरा सध के पास थी। २४ अवतार=ब्रह्मा, वाराह, नारद, नर नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हस, हयग्रीव। २४ तीर्थंकर जैनियो के—ऋषभ, अजित नाथ, सभवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्म प्रभु, सुपार्श्वनाथ, चद्रप्रभ, सुबुधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपूज्य स्वामी, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर स्वामी आदि २४ तत्त्व=प्रकृति, महत्तत्व, अहकार, पाच ज्ञानेन्द्रिय, पाच कर्मन्द्रिय, मन पाच तन्मात्राये, पाच महाभूत। २४ पीर= मुसलमानो के २४ पैगम्बर=आदम, शीश, नूह, इब्राहीम, याकूब, इसहाक, यूसुफ, इस्माईल, जकरिया, यहया, यूनुम, दाऊद, अयूब, लूत, सुलेमान, स्वालह, शुएब, ईशा, मूसा, इलयास, हार, युसआ, जिलकिल्प, मुहम्मद।

अथ गणना छप्पय पचक

नव निधि के नाम

छप्पय—प्रथम पद्मनिधि कहत, दुतिय पुनि महा पद्म सुनि ।
तृतिय शख है नाम, चतुर्थ मकर कहैं मुनि ।।
पचम कच्छप होय, षष्ट सो प्रकट मुकन्द ।
कुन्द सप्तम जान, अष्टम निल्ल भणिंद ।।
अब नवम खर्व कविजन कहत, ये नव निधि के नाम हैं ।
कहि 'सुन्दर' सत न आदरहिं, ते बहहिं जु सकाम हैं ।।२७।।३६।।

अथ अष्ट सिद्धि के नाम

प्रथमहिं अणिमा सिद्धि दुतिय पुनि महिमा कहिये ।
तृतीय सु लघिमा जान, चतुर्थी प्रापति लहिये ।
प्रकाशक पचमी, ईशता षष्टी जान हुं ।
अवशिता जु सप्तमी, अष्टमी वशिता मानहु ।।
ये अष्ट महासिधि प्रकट ही, ग्रन्थन माहिं बखानिये ।
हरि भक्तन के आधीन हैं, 'सुन्दर' यू कर जानिये ।।२८।।३७।।

अथ वारों के नाम

प्रकट होय आदित्य, सोम जब हृदये आवे ।
मगल दशहू दिशा, बुद्ध तब ही ठहरावे ।
वृहस्पति ब्रह्म स्वरूप, शुक्र सब भासत ऐसे ।
थावर जगम मध्य, द्वैत भ्रम रहै सु कैसे ।।
है अति अगम्य अरु सुगम पुनि, सद्गुरु बिन कैसे लहै ।
यह वारहि बार विचार, सप्त वार सुन्दर कहै ।।२९।।३८।।

अथ बारह मास के नाम

कातिक काटै कर्म मार्ग शिर गति यज्ञासा ।
पोप मिल्यो सतसग माघ सब छाडी आसा ।।
फाल्गुन प्रफुलित अग चैत्र सब चिंताभागी ।
वैशाख अति फला जेष्ट निर्मल मति जागी ।।
आषाढ गयो आनन्द अति श्रावण श्रवति अमी सदा ।
भाद्रव द्रवति पर ब्रह्म जहि अश्विनि शाति 'सुन्दर तदा' ।।३०।। ।।३९।।

अथ बारह राशि के नाम

छप्पय—मीन स्वाद से बंधा, मेष मारन को आया ।
वृष सूका ततकाल, मिथुन कर काम बहाया ।।

जाग्रतादि—जाग्रत देह स्थूल, सकल गुण वर्तत जामहिं ।
स्वप्न सु लिंग शरीर, वहे[1] विधि जानहु तामहिं ।। जाग्रत की[1]
सुषुपति मे सब लीन, स्वप्न जाग्रत पुनि आवै ।
तीन अवस्था माहिं, भ्रमे सो जीव कहावै ।।
साक्षातकार तुरिया विषै, ईश्वर ताहि बखानिये ।
तुरिया अतीत सो ब्रह्म है, 'सुन्दर' यू कर जानिये ।।३५।।४५।।

अत्यज देह स्थूल, रक्त मल सूत्र रहे भर ।
अस्थि मास अरु मेद चर्म आच्छादित ऊपर ।।
शूद्र सु लिंग शरीर, वासना बहु विधि जामहिं ।
वैश्य सु कारण देह, सकल व्यापार सु तामहिं ।।
यह क्षत्री साक्षी आतमा, तुरिया चढे पहचानिये ।
तुरिया अतीत ब्राह्मण वही, 'सुन्दर' ब्रह्म बखानिये ।।३६।।४६।।

३५ मे चार अवस्था बताकर निगुर्ण को तुरीयातीत ब्रह्म कहा है । ३६ मे चार वर्ण और पाचवा अत्यज कह कर उक्त पाच अवस्थाओ को समझाने का रूपक दिया है और तुरिया वस्था रूप अश्व पर चढ कर तुरीयातीत को पहचानो ।

अहकार चाडाल, बहुत हिंसा का करता ।
मन का शूद्र स्वभाव, कर्म नाना विस्तरता ।।
बुद्धि वैश्य यह होय, करै व्यापार जहा लौ ।
चित्त सु क्षत्रिये जान, नृपति नहिं लोक तहा लौ ।।
यह ब्राह्मण साक्षी आतमा, सदा शुद्ध निर्मल रहै ।
तुरिया अतीत जानहु, वही ब्रह्म रूप 'सुन्दर' कहै ।।३७।।४७।।

३७ मे अन्त करण चार और पाचवा आतमा को लेकर वही वर्णों का अलकार बाधा है ।

भूमिका—प्रथम भूमिका श्रवण, चित्त एकाग्रहि धारै ।
दुतिय भूमिका मनन, श्रवण कर अर्थ विचारै ।।
तृतिय भूमि का निदिध्यास नीकी विधि कर ही ।
चतुर्भूमि साक्षातकार सशय सब हर ही ।।
अब तासे कहिये ब्रह्म विद, वर वरियान वरिष्ठ हैं ।
ये पच षष्ट अरु सप्तमी, भूमि भेद 'सुन्दर' कहै ।।३८।।४८।।

३८ मे साक्षात्कार तक चार और वर, वरियान, वरिष्ट तीन ये ज्ञान की ७ भूमिका कही हैं ।

आत्मा कैसे जाने—सुख दुख नीद अरूप, जबहि आपहि तब जाने।
शीत हु उष्ण अरूप, लगे से सब पहिचाने ।।
शब्द रु राग अरूप, सुने से जाने जाही।
वायु हु व्योम अरूप, प्रकट बाहर अरु माही ।।
इहि भाति अरूप अखण्ड है, सो कैसे कर जानिये।
कहि 'सुन्दर' चेतन आतमा, यह निश्चय कर आनिये ।।३९।।४९।।

सत्य ब्रह्म—एक सत्य परब्रह्म[1], एक से गिनती गिनये।
दश दश आगे एक, एक सौ ताईं भनिये ।।
एक हि का विस्तार, एक का अन्त न आवे।
आदि एक ही होय, अन्त एक हि ठहरावे ।।
ज्यो लूता[1] तन्तु पसारि के, बहुर निगल लूता रहै। मकड़ी[1]
यू 'सुन्दर' एक अनेक हो, अन्त वेद एकै कहै ।।४०।।५०।।

विचार से जगतलय—अन्त करण अदृष्ट, प्रमाता माप निहारो।
इन्द्रिय पच प्रमाण, प्रकट गज ताहि विचारो ।।
पच विषय सु प्रमेय, वही कपडा गह मापै।
इन से गज यह भया, प्रमा पुनि ताहि स्थापै ।।
चत्वार विभाग प्रपच यह, अज्ञान से दिखात है।
कहि 'सुन्दर' वस्तु विचार से, जगत विलय हो जात है ।।४१।।५१।।

(४१) मे प्रमाता, प्रमाण, प्रमा और प्रमेय को बजाज, गज और कपडे के दृष्टात से समझाया है।

अन्त.करण चतुष्ट, प्रमाता तोलत जानहु ।
इन्द्रिय पच प्रमाण, तराजू बाट बखान हु ।।
तोलन लागे ताहि, पच जे विषय प्रमेय ।
तोले से ठहराय, प्रमाता ही को ज्ञेय ।
कहि 'सुन्दर' वस्तु[1] विचार से, कहां प्रमाता पाइये। ब्रह्म[1]
पुनि कहो प्रमाण प्रमेय है, कहा प्रमा ठहराइये ।।४२।।५२।।

अथ अन्तर्लापिका प्रसग ९

छप्पय—लका मार क्षत्रिय प्रहार, हलधार रहै कर ।
महीपाल गोपाल, व्याल पुनि धाय गहै वर ।।
मेघ आशा धुनि प्यास, नाश रुचि कमल वास जिहि।
वुद्ध तात हनु तात, प्रकट जगतात जान तिहि ।।

तुम सुनहु सकल पण्डित गुणी, अर्थहि कहो विचार करि।
चत्वार शब्द 'सुन्दर' वदत, "रामदेव सारग हरि" ।।४३।।५३।।

इस मे १-राम-२ देव ३ सागर ४ हरि । चार शब्द निकलते हैं। प्रथम चरण मे १ रामचन्द्र २ परशुराम ३ बलराम निकलते हैं। जो राम शब्द के अर्थ हैं। दूसरे चरण मे राजा, कृष्ण, जो देव के बोधक हैं। व्याल (सर्प) को दौड कर पकड के खाय सो मयूर (सारग) है। मेघ पपीहा, भौरा, चातक भी सारंग है। मेघ की ध्वनि सुन कर जल की आशा मोर की होती है और जल से चातक की प्यास नाश होती है, भ्रमर को कमल की बास की रुचि होती है। बुध का पिता चन्द्रमा हरि है। हनुतात=हनुमान का पिता वायु भी हरि हैं। जगतात=भगवान भी हरि हैं।

देह मध्य कहि कौन, कौन या अर्थ हि पावे।
इन्द्रिय नाथ सु कौन, कौन सब काहू भावे।।
पायें उपजत कौन, कौन के शत्रु न जन मे।
उभय मिलन कहि कौन, दुष्ट के कहा न तन मे।।
अब 'सुन्दर' को पावन जगत, कौन रहै पुनि व्याप करि।
"प्रान जान मन मान सुख साधु सग हित नाम हरि" ।।४४।।५४।।

देह मध्य=प्राण। अर्थ पावे=ज्ञानी। इन्द्रियनाथ=मन। सब को भावे=मान, सम्मान पाये क्या =सुख। कौन के शत्रु नहीं=साधु के। दो मिले क्या=सग। दुष्ट के तन मे कान=परहित। जगत को पवित्र क्या करे=हरि नाम। व्यापक कौन हरि। यो अन्त के पाद से निकलते हैं।

कापालिक मत कौन, कौन त्रेता यग कर्मा।
रवि सुत कहिये कौन कौन जैनन के धर्मा।।
त्यक्त सुसंज्ञा कौन, कौन सतन मुख सो है।
वचन प्रमान मु कौन, कौन कतहू नहि मोहै।।
कहि 'सुन्दर' अकुश शिर, आन पकड काले कहो।
"योग यज्ञ यम नेन तज नाम सत्य दृढ करि गहो" ।४५।।५५।।

कापालिक=योग=उनका योग निराला ही है। त्रेता कर्म=यज्ञ। रविसुत=यम। जैन धर्म=नेम। त्यक्त सज्ञा का=तज। सतो के मुख हरिनाम। प्रमाण वचन=सत्य। कही भी नही मोहै सो को=दृढ। अकुश किसके शिर=हाथी के। आकर पकडो किसे कहते हैं=गहो। यह अतिमपाद से निकलते हैं।

बहिर्लापिका प्रसग १०

उत्तम जन्म सु कौन, कौन वपु चित्रत कहिये।
ब्रह्माखोज कौन, कौन पय ऊपर लहिये।।

धनुष सधियत कौन, कौन अक्षय तरु प्रागा।
दृग उन्मीलत कौन, कौन पशु निपट अभागा॥
अब दान कवन कर दीजिये, कौन नाम शिव रसन धर।
कहि 'सुन्दर' या का अर्थ यह, "नमोनाथ सब सुखकर" ॥४६॥५६॥

उत्तम जन्म=नर। किस वपु चित्रत=मोर। ब्रह्मा ने क्या खोजा=नार। (नारि=सावत्री)। पय=दूध पर क्या=थर (मलाई)। धनुष से क्या साधे=शर (तीर) प्रयाग में अक्षयता को=बर (अक्षय वट)। दृग खुले किसके रहैं=सुर=देवताओं के उनको नींद नहीं आती। इसी से उनका नाम अस्वप्न भी है। अभागा पशु को=खर=गधा। दानकवन कर दान किससे देते है=कर हाथ से।

अथ निमात प्रसंग ११

मनहर—जप तप करत धरत व्रत" ......लखत जन ॥७४॥५७॥

इसमे सब अक्षर अकारान्त हैं। यह सवैया ग्रन्थ के चाणक के अंग १२ में है।

अथ १ निगड बध प्रसंग १२

छप्पय—अधर[1]लगै जिन कहत, वर्ण कहि कौन आदि का। होठ[1]
सब ही से उतकृष्ट, कहा कहिये अनादि का॥
कौन बात सो आहि, सकल संसार हि भावे।
घट बढ फेर न होय, नाम सो कहा कहावे॥

कहि सत मिले उपजे कहा, दृढ कर गहिये कौन कहि।
अब मनसा वाचा कर्मना, 'सुन्दर' भज "परमानन्द हि ॥४८॥५८॥

निगड=जंजीर। इसमे परमानन्द ही। वाक्य मे जो शब्द निकलते हैं वा अक्षर नाम मे लिये जाते है वा गूथे हुये से है। इससे इसे निगडबन्ध नाम दिया है। प—पकार पवर्ग का आदि का वर्ण है। पवंग पाचो अक्षर होटो मे बुलते है। औष्ठय हैं। पर=उत्कृष्ट। अनादि परमात्मा। परमा=शोभा सबको भाती है। परमा=प्रमाण देने से बात पक्की हो जाती है। परमानन्द=सत मिलने मे परमानन्द मिलता है। परमानन्दहि=(हि इति निश्चयेन) परमानन्द ही को निश्चय करके दृढता से गहि=ग्रहण करो भज=प्राप्ति के लिये चिन्तन करो।

निगड बध २—प्रथम वर्ण मे अर्थ, तीन नीकी विधि जानहु।
द्वितीय वर्ण मिल अर्थ, तीन सोऊ पहचानहु॥

त्रितिय वर्ण मिल अर्थ, तीन ता मध्य कहिज्जे।
चतुर्वर्ण मिल अर्थ, तीन तिन कासु लहिज्जे॥

पुनि त्यो पचम षष्ट सप्तम, अष्टम नवम सुनहु पछू।
कहि 'सुन्दर' याका अर्थ यह, "करम देत काहू कछू" ॥४९॥५९॥

प्रथम वर्ण 'क'—इसके तीन अर्थ = जल, अग्नि, सुख। 'कर'—इसके तीन अर्थ = हाथ, किरण (सूर्य वा चन्द्र की) हाथी की सू ड। 'करन' इसके तीन अर्थ = राजा करण (महादानी), इन्द्रिय, देह। 'करमदे' इसके तीन अर्थ = करने दे (काम आदि को), दूसरा जगात (कर) न दे (मत दे) तीसरा—करनदे—कर्ण (कान) दे—उपदेश गुरु वचन मे। करनदेव—इसके तीन अर्थ १ करन (करण राजा) देता है। २ सूर्य वा चन्द्रमा कर (किरणें) देते हैं। तीसरा—कर (अपना हाथ) पतिव्रता स्त्री (दूसरे पुरुष को) नहीं देती—अनन्य भक्त दूसरे को नही भजता। 'करन देत क' इसके तीन अर्थ—(१) क्या करने देता है? अर्थात् कर्म करने से क्या रोकता है? (२) करन (करण राजा) क्या देता? सोना देता है। (३) करन (करण = कान) देता है? (लगाता है गुरु शास्त्र के वचनो मे) क्या? (पूछता है कि) क्या सुनता है ध्यान देकर? गुरु का उपदेश 'करन देत काहू—इसी प्रकार तीन अर्थ हो सकते हैं। करन देत काहू कछू—इस के भी कछू का प्रयोग करने से तीन अर्थ हो सकते हैं।

अथ सिंहावलोकनी प्रसग १२

छप्पय—सज्ञा कौन अखण्ड, कौन हरि सेवा लावे।
कठ विराजे कौन, कौन नर सग कहावे॥
गुनहगार का खाय, कहा चाहैं सब कोई।
कपि के गल मे कहा, कहा दु हुन मिल होई॥
अब 'सुन्दर' पथिक कहा कहै, मुक्ति क्षेत्र का नाम है।
कहि हर रिपु हजरत थान को, 'सदा मारसी काम" है॥५०॥६०॥

सिंह आगे देखकर पीछे देखता है, वैसे ही सिंहावलोकनी मे होता है "सदामारसी काम" इन अक्षरो से छप्पय मे स्थित प्रश्नो के उत्तर निकलते हैं।

उत्तर—सदा। दास। दामा (माला)। मादा। मार। रमा। रस्सी। शीघ्र। काशी। कामा। मका।

अथ प्रतिलोम अनुलोम प्रसग १३

छप्पय—काठ माहि कादेत, कहा प्रीतम को कीजे।
पाव चढत सो कहा, कहा धनुषहि सधीजे॥
कापर हो असवार, वचन का प्रत्यक्ष कहावे।
पान करे सो कहा, कहा मुन अति सुख पावे॥

मा	दु	कै	र	का	सु	न	सै
या	ख	मू	है	ग्रा	ख	हि	स
आ	खि	मा	र	आ	नु	त	औ२

मा	पा	दु	ख	कौ	मू	र	है	का	या	सु	ख	न	हिं	ले	स
का	या	वि	च	भ्र	मू	र	है	आ	या	मू	ख	न	हिं	के	स

मा या दु ख कौ मू र है का या सु ख न हिं ले स

का या वि च भ्र मू र है आ या म ख न हिं के म

गो	मी	गो	जी	न	र	गि	चे
वि	द	पा	ल	र	ह	रा	म

र	स	वि	वे	की	पा	इ	है	चा	तु	र	सा	र	वि	श्रा	म

गोमूत्रिका बध—१—२

प्रथम गोमूत्रिका बध "माया" इत्यादि दोहा स्पष्ट ही है।

इसके पढ़ने की विधि—

प्रथम चित्र मे प्रथम पंक्ति के प्रथम अक्षर 'मा' को द्वितीय पंक्ति के 'या' के साथ पढ़ने से 'माया' हुआ। इसी प्रकार प्रथम और द्वितीय पंक्तियो को मिला कर पढने से दोहे की प्रथम अर्धाली हो गई। और तृतीय पंक्ति के अक्षरो को द्वितीय पंक्ति के अक्षरो के साथ पढ़ने से दूसरी अर्धाली होगी। जो सारा छन्द दूसरे चित्रो मे स्पष्ट है। और तीसरे चित्र मे दूसरे की तरह तिरछे अक्षरो के पढने से भी वही पाठ पढा जावगा ॥ १ ॥ (र को ल भी पढा गया है)

दूसरे गोमूत्रिका छंद के पढने की विधि—

प्रथम पंक्ति प्रथम अक्षर 'गो' को द्वितीय पंक्ति के प्रथम अक्षर 'वि' के साथ पढ कर उसी द्वितीय पंक्ति के द्वितीय अक्षर 'द' को पढ़ कर उसके ऊपर के अक्षर 'जी' के साथ पढ़ने से 'गोविदजी' हुआ। इसही तरह आगे 'गोपालजी और फिर 'नरहर' और फिर 'रामचे' पढा जायगा यों ४-४ अक्षर के चार हुए। उत्तर अर्धाली स्पष्ट है ही ॥ २ ॥

अब कहा दृढावे जैनमत, का विरहनि उर लग बको।
कहि 'सुन्दर' अति अनुलोम है, "यह रस कथा दयालकी ॥५१॥६१॥

उत्तर—कील। याद। थाक। सर। हय। यह। कथा। दयालकी। उक्त छप्पय मे स्थित प्रश्नो के उक्त उत्तर निकलते हैं।

अथ दीर्घाक्षरी प्रसंग १४

मनहर—झूठे हाथी झूठे घोडा .. . . आनी है ॥५२॥६२॥

इसमे सब अक्षर गुरु=दीर्घ है। यह 'सवैया' के काल चितावनी अग ३ का २५ वा छन्द है।

ज्ञान प्रश्नोत्तरी प्रसग १५

छप्पय—प्रथम होय जिज्ञासु, गहै दृढ कर वैरागा।
बाहिर भीतर सकल, करे मन वच क्रम[1] त्यागा॥
सद्गुरु शरणे जाय, कहै प्रभु मेरे चिन्ता।
जन्म मरण बहु काल, भ्रमत नहिं आवै अन्ता॥
क्यो छूटू आवागमन से, मेरे यह चिन्ता भई।
अब आया हौ तुम्हरे शरण, तुम सद्गुरु करुणा मई॥५३॥६३॥

[1] कर्म

देखा अति जिज्ञासु, शुद्ध हृदये लय लीना।
सद्गुरु भये प्रसन्न, ज्ञान वासे कह दीना॥
जन्म मरण नहिं तोहि, बहुर सुख दुख न दोऊ।
काल कर्म नहिं तोहि, द्वन्द्व परसे नहिं कोऊ॥
अब तत्त्वमसीति विचार शिष, सामवेद भाषे स्वय।
कह 'सुन्दर' सशय दूर कर, तू है ब्रह्म निरामय॥५४॥६४॥

आतम ब्रह्म अखण्ड, निरन्तर है अनादिका।
जन्म मरण का सोच, करे नर वृथा वादिका॥
स्वप्ने गया प्रदेश, बहुर आया घर माही।
जब जागा घर माहि, गया आया कहु नाही॥
यह भ्रम ही को उपजा, भ्रम सब स्वप्न समान है।
कह 'सुन्दर' ताका भ्रम गया, जाके निश्चय ज्ञान है॥५५॥६५॥

प्रश्नोत्तर—पूछत शिष्य प्रसग, पूछ शका मत आने।
तुम कहियत हो कौन, मूढ तू मोहि न जाने॥
किहि विधि जानू तुमहिं, देह के कृतमत देखे।
तो प्रभु देखू कहा, ज्ञान कर आशय पेखे॥

गुरु कहो ज्ञान ज्यों मैं सुनो, सुनकर निश्चय आनि है ।
अब मैं प्रभुउर निश्चय किया, तो 'सुन्दर' का जानि है ।।५६।।६६।।

यह सुनते हैं कि सुन्दरदासजी के पास एक लाहौर से जिज्ञासु फतेहपुर आया था और उनसे प्रार्थना की थी कि मैंने आपके ज्ञान सम्बन्धी सवैया सुने और ज्ञान प्राप्ति के लिये आपके पास आया हूं । मुझे सक्षेप मे उपदेश कर के मेरा सशय नष्ट करके मुझे कृतार्थ करने की कृपा अवश्य करें । उसे उक्त प्रसग कहा था और वह कृतार्थ होकर पुन लाहौर लोट गया था ।

कायागढ पर विजय, प्रसग १६

कुडलिया—कायागढ का राव था, अहकार बलवड[1] ।　　अतिवली[1]
सो ले अपने वश किया, आतम बुद्धि[2] प्रचड ।।　　आत्मज्ञान से[2]
आत्मबुद्धि प्रचण्ड, खड नौ फेरि दुहाई ।
मन इन्द्रिय गुण रैत[3], आपने निकट बुलाई ।　　प्रजा[3]
सब से ऐसे कहा, बसो तुम हमरी छाया ।
'सुन्दर' यू गढ लिया, विषम होता गढ काया ।।५७।।६७।।

अथ संस्कृत श्लोक, प्रसंग १७

शार्दूल विक्रीडित—माधुर्योत्तर-सुदरा मम गिरा गोविंद सबन्धनीम् ।
यो नित्य श्रवण करोति सतत स मानवो मोदते ।।
न्यूनाधिक्य विलोक्य पन्डित जनो दोष च दूरी कुरु ।
मे चापल्यसुबाल बुद्धि कथित जानाति नारायण ।।१।।

अर्थ—मेरी वाणी भगवत्सबन्धी और शातरस प्रधान, अति मधुर, सुन्दर और प्रसाद गुण युक्त है । जो पुरुष इसे नित्य सुनता है वह ब्रह्मानन्द प्राप्त करता है । पडित जन इस मे कमी वेशी रूप दोष देखे तो उसे दूर करके सुधार लें, यह मेरी बाल बुद्धि की चपलता से कथित है । इसको परमात्मा ही जानते हैं कि यह कैसी है, जैसी है वैसी परमात्मा को ही सम्पर्ण है, वे ही कृपा करे इसे स्वीकार करे ।

पृथ्वी वारि च तेज वायु गगन शब्दादि तन्मात्रकम् ।
बाह्याभ्यन्तर ज्ञान कर्म करणैर्नाना हि यद्दश्यते ।
तत्सर्वंश्रुति वाक्य जाल कथित अन्ते च माया मृषा ।
एक ब्रह्म विराजते च सतत आनन्द सच्चिन्मयम् ।।२।।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश, पांचो तत्त्व और शब्द, स्पर्श रूप, रस, गध, ये पाच तन्मात्रायें, बाहर भीतरी अन्त करण, ज्ञानेन्द्रि, कर्मेन्द्रिय, ये जो स्थूल सूक्ष्म रूप मे नाना पदार्थ और कर्म दिखाई देते हैं वे सब सुनने और कहने के

जाल मात्र हैं। नाम रूपात्मक जगत जो दिखाई देता है सो सब मिथ्या माया रूप है। अन्त मे एक अखड सच्चिदानन्दमय ब्रह्म ही सदा विराजते है, स्थिर रहते हैं। अन्य कुछ नही।

छद अनुष्ठप्—अहं ब्रह्मेत्यह ब्रह्मास्य ब्रह्मेति निश्चयम्।
ज्ञाता ज्ञेय भवेदेक, द्विधा भाव विवर्जितम् ॥३॥

मैं आत्मा ब्रह्म हूँ, ब्रह्म हू, ब्रह्म, हूँ, यह निश्चय है।

ज्ञाता (जानने वाला) ज्ञेय (जानने योग्य) दोनो एक ही हैं। ब्रह्म ज्ञान होने पर द्वैत नही रहता। ब्रह्म, माया, मैं, तू ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान, ऐसा द्वैत भाव नही रहता।

अहं विख्यात चैतन्यं देहो नाह जडात्कम्।
जडाजडो न सम्बन्धो, देहातीत निरामयम् ॥४॥

मैं आत्मा विख्यात चेतन स्वरूप ब्रह्महू जड रूप स्थूल देह नही हूँ, जड के साथ चेतन का सत्य सम्बन्ध नही है, जो जड है वह चेतन नही हो सकता। चेतन जड से परे और निरामय, निर्लेप निरजन है, मायातीत और जड देह से भिन्न है।

छद भुजग प्रयात

न वेदो न तन्त्र न दीक्षा न मन्त्र, न शिक्षा न शिष्यो न आयुर्न यत्र।
न माता न ताता न बन्धुर्न गोत्र, नमस्ते नमस्ते नमस्ते विचित्रम् ॥५॥७२॥

जो न वेद है, न तन्त्र न शास्त्र हे, नही दीक्षा है, न मन्त्र है, न शिक्षा है, न शिष्य है, न आयु (काल) है, न यन्त्र है, न माता है, न पिता है, न बन्धु है, न गोत्र है। उस विचित्र परब्रह्म परमात्मा को तन, वचन, मन से बारम्बार नमस्कार नमस्कार नमस्कार है।

छद अनुष्ठप्—ब्र ई जी च त्रिधा प्रोक्त चि मा अ वै त्रिधास्तथा।
चि ब्र मा ई अजिज्ञातु सत्सा स सा स साश्रिता ॥६॥७६॥

ब्र = ब्रह्म ई = ईश्वर। जी = जीव, ये तीनो त्रिधा पृथक पृथक कहे हैं। चि = चित। मा = माया। अ = अविद्या, ये भी त्रिधा, ये भी पृथक पृथक कहे हैं। परन्तु छहो (ब्रह्म—ईश्वर—जीव—चित् = माया और अविद्या को तत्वत तत्त्वज्ञान से सत्मा (सच्छास्त्रों) स (सत्सग) सा (साधु सग) मे स (सत्य) सा (साम्य) सम दृष्टि से वा साधन से ही यथार्थ ज्ञान होता है। उक्त साधनो के बिना सत्य दिव्य ज्ञान की प्राप्ती नही होती है। अत ज्ञान के जिज्ञासु को उक्त साधन अवश्य ही करने चाहिये, केवल बातो से ही ज्ञान लाभ नहीं होता है। साधन से ही जनमाभाव रूप सिद्धि प्राप्त होती है।

अथ देशाटन के सवैये, प्रसग १९

इन्दव—लोग मलीन खडे चरकीन दया कर हीन लै जीव मघारत ।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य रु शूदर चारो हि वर्ण के माछ बघारत ॥
कारा है अग सिन्दूर की माग सु शखनिराड बुरै दृग फारत ।
ताहितें जान कही जन 'सुन्दर' पूरब देश न सत पधारत ॥१॥
दया नहिं लेश रु नील के भेष रु ऊभसे कैशन राड कुलच्छन ।
राधत प्याज विगारत नाज न आवत लाज करे सब भच्छन ॥
बैठि ये पास तो आवत बास सु सुन्दरदास तजो न ततच्छन ।
लोग कठोर फिरै जैसे ढोर सु सन्त सिधार करै कहा दच्छन ॥२॥
बात तहा की सुनी श्रवणो हम रीति पछाह की दूर से जानी ।
बोलि विकार लगे नहिं नीकी असाडे तुसाडे करे खतरानी ॥
काहु की छोत न मानत कोउजी भट्ठ दी रोटी रु खूह दा पानी ।
'सुन्दरदास' करै कहा जाइ के सग से होइजु बुद्धि की हानी ॥३॥
हिक्क लाहोरदा नीर भी उत्तम हिक्क लाहोर दा बागसिरा है ।
हिक्क लाहोरदा चीर भी उत्तम्म, हिक्क लाहोरदा मेवा सिरा है ॥
हिक्क लाहोर दे हैं विरहीजन हिक्क लाहोर दे सेवक भाये ।
कित इक बात भली लाहोरदी ताहि मे 'सुन्दर' देखन आये ॥४॥
औरतो देश भले सबही हम देखि भया गुजरात हु गाडी ।
आवत छोत अतीत से कीजे विलाई रु कूकर चाटत हाडी ॥
विवेक विचार कछू नहिं दीसत डौलत जूथ जहा तह राडी ।
'सुन्दरदास' चलो अब छाडके और रहोगे तो होयगी भाडी ॥५॥
वृक्ष न नीर न उत्तम चीर सुदेशन मैं गत देश है मारू ।
पाव मे गोखरू भुर्ट गडे अरु आँख मे आय पडे उड बारू ॥
रावडि छाछ पिवै सब कोइ जु ताहि ते खाज रतंधुरु न्हारू ।
'सुन्दरदास' रहो जनि बैठ के बेगि करो चलवे को विचारू ॥६॥
भूमि पवित्र हु लोग विचित्र हु राग रु रग उठत्त बहीते ।
उत्तम अन्न अशन्न वसन्न प्रसन्नहि मन्न जु खात तहीं ते ॥
वृक्ष अनन्त रु नीर बहत सु सुन्दर सत विराजे जहीतें ।
नित्य सुकाल पडै न दुकाल सु मालव देश भला सब हीतें ॥७॥
पूरब पश्चिम उत्तर दच्छिन, देश विदेश फिरै सब जाने ।
केतक द्यौस फतेपुर माँहिसु, केतक द्यौस रहे डिडवाने ॥
केतक द्यौस रहे गुजरात, वहा हु कछू नहिं आया है ठाने ।
सोच विचार के सुन्दरदास जु याहि ते आनि रहे कुरसाने ॥८॥

सुच्च अचार कछू न विचारत मास छठे कबहूक सन्हाही ।
मूड खुजावत बार परै गिरते सब आटे मे वोसन जाही ।।
बेटी रु बेटन का मल धोवत वैसे हि हाथन से अन खाही ।
'सुन्दरदास' उदास भया मन पूहड नारि फतेपुर माही ।।९।।
कद रु मूल भले फल फूल सुरस्सरि कूल बने जु पवित्तर ।
आधिनव्याधि उपाधि नही कछु तारि लगेते टरे जु मनत्तर ।।
ज्ञानप्रकाश सदाइ निवास सु सुन्दरदास तिरे भव दुस्तर ।
गोरखनाथ सराहि है जाहि जु जोग के जोग भली दिश उत्तर ।।१०।।८३।।

इति देशाटन के सवैये

अथ अन्त समय की साखी

निरालम्ब निर्वासना, इच्छा चारी येह ।
सस्कार पवन हि फिरे, शुष्क पर्ण ज्यो देह ।।१।।
जीवन मुक्त सदेह तू, लिप्त न कबहूं होइ ।
तो को सोई जान है, तब समान जो कोइ ।।२।।
मान लिये अतहकरण, जे इन्द्रिन के भोग ।
'सुन्दर' न्यारा आतमा, लगा देह के रोग ।।३।।
वैद्य हमारे रामजी, औषधि हू है राम ।
'सुन्दर' यहै उपाय अब, सुमिरन आठो याम ।।४।।
सात वर्ष सौ मे घटे, इतने दिन की देह ।
'सुन्दर' आतम अमर है, देह खेह की खेह ।।५।।
'सुन्दर' सशय को नही, बडा महोच्छव येह ।
आतम परमातम मिले, रहो कि विनशो देह ।।६।।८९।।

इति फुटकर काव्य सग्रह, ग्रन्थ ४२ समाप्त

फुटकर काव्य सग्रह ग्रन्थ की सर्व छद सख्या १५६

इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित समस्त सुन्दरग्रन्थावली सम्पूर्णम् ।
इति श्री पूज्य चरण स्वामी धनराम शिष्य स्वामी नारायणदास कृत सुन्दरग्रथावली की आवश्यक टीका, टिप्पणी और कठिन शब्दार्थ समाप्त । समाप्ति समय वि स २०४५ माघ शुक्ला ९ मगलवार शाति ३ ।

संतकवि कविरत्न स्वामीनारायणदासजी कृत ग्रथ

१ प्लवगम पुष्पमाला पद्य १२५ । २ श्रीवाह्यातर वृत्ति वार्ता पद्य ४९५ मू १) । ३ श्रीकृष्ण कृपाफल ३१४८ दोहे मू १।।) । ४. शिक्षा सप्तशती ७०८ दोहे मू ।) । ५ साधक सुधा प्रथम खण्ड पद्य २२९४ मू १।।।) । ६ साधकसुधा सम्पूर्ण मू २।।) । ७ दृष्टात दोहावली ७१६१ दोहे मू ७) । ८ नारायण भजन-

वली ५०५ भजन मू ।।।) । ९. सन्त प्रसाद पद्य २८१९ मू २) १० उत्तमउपदेश, पद १७०७ मू २) । ११ उभय तन शोधकसुधा पद्य १०९८ मू २) १२ वेदात प्रश्नोत्तरी, वेदात प्रक्रिया का ग्रन्थ मू ९) १३ शिक्षासूत्र १५०५ सूत्र अध्याय ८ मू ४० पै । १४ अबोध बोध भूमिका ७ अज्ञान और ७ ज्ञानकी पद्य १४१ । १५ अवस्था व्यवस्था, सात अवस्थाओ का परिचय, पद्य ५३ । १६ अद्भ वचन-सुधावली २७४ दोहे । १७ शिक्षा शतक, १०० दोहे, एक वर्ग को एक दोहे मे शिक्षा । १८ विनयभूत चेतावनी शतक १०० दोहे । १९ सुधारक सप्तसूत्री, ७ सूत्र । २० सन्तवाणी पर मेरे विचार, पाच हरिगीतक । २१ चेतावनी चौतीसा ३४ दोहे । २२ प्रार्थना पचदशी, १५ दोहे । २३ नारायण प्रश्नोत्तरी, २५७ अरिलों मे एक हजार प्रश्नोत्तर । २४ वृहत प्रश्नोत्तरी, १२ हजार प्रश्नोत्तर पद्य ३०६८ । की ६) । २५ सुन्दरदासजी और उनकी वाणी पर मेरे विचार, पद्य २१ । २६ दृष्टान्त-सुधा-सिन्धु इसमे ३००० से अधिक दृष्टान्त हैं, यह छ भागो मे छपा है, प्रथम सस्करण का मू १४) । है । २७ सिद्ध सन्त रामस्वरूपजी का जीवन चरित्र । २८ भक्त माल माहात्म्य । २९ भक्तमाल की आरती । ३० सुन्दरवाणी स्तवसप्तक । ३१. भक्ताष्टक । ३२ समय सप्तशती, अप्रकाशित ७१० दोहे । ३३ नारायण कवितावली—इसमे विविध विषयो के कवित्त हैं । मू ३) ३४ अध्यात्मरामायण का पद्यानुवाद, १० प्रकार के छन्दो मे मू ६) । ३५ श्रीदादूवाणी-दादूगिरार्थ-प्रकाशिका लोक प्रिय टीका है, इसका तीसरा सस्करण है, यह अच्छी टीका है । मू ३१) ३६ रज्जववाणी रज्जब गिरार्थ प्रकाशिका टीका, इसका प्रथम सस्करण ही है मू ३०) इसका प्रकाशको को द्वितीय सस्करण निकालने का अधिकार नही है, वह लेखक से पूछकर कोई भी निकाल सकता है । ३७ राघवदासजी कृत भक्तमाल व चतुर्दासजी कृत उसकी पद्य टीका भक्त चरित्र प्रकाशिका गद्य टीका मू १५) । ३८ श्री दादूचरितामृत ११७५ पृष्ठो मे दो भागो मे प्रकाशित है, वरिशिष्ट मे दादू सहस्र नामादि स्तोत्र भी छपे हैं, मू ३०) स्वामी लक्ष्मीराम चिकित्सालय जयपुर से मिलता है । ३९ श्रीदादूपथ परिचय (दादूपथ का इतिहास) लगभग तीन हजार पृष्ठो मे तीन भागो मे छपा है, मू प्रथम का १६) द्वितीय का १८) तृतीय का २०) । ४० राजस्थानी सन्तसाहित्य परिचय, इसमे ७२५ राजस्थानी सन्तों के साहित्य का परिचय है मू ८) ४१ स्तोत्रसुधाह्लद, इसमे ६४ स्तोत्र हैं । उनमे से वहुत अलग-अलग भी प्रकाशित हैं मू ३) । ४२ गणपति सहस्रनाम । ४३ गणपति आरती । ४४ गणेशाष्टक । ४५ अष्टोत्तरशत श्रीविष्णु नाम माला । ४६ विष्णु आरती । ४७ विष्णु अष्टक । ४८. सत्यनारायण की आरती । ४९ शकर सहस्रनाम । ५०. शकरजी की आरती । ५१ शकराष्टक । ५२ शक्ति सहस्रनाम ५३. शक्तिजी की आरती । ५४ शक्ति अष्टक । ५५, गगाजी की आरती । ५६

लक्ष्मीजी की आरती। ५७ सरस्वतीजी की आरती। ५८ मातामहिम्न, हिन्दी के २७ शिखरिणी श्लोक। ५९ सूर्य सहस्त्रनाम। ६० सूर्य आरती। ६१ सूर्याष्टक। ६२ नृसिंह सहस्त्रनाम ६३ नृसिंह आरती। ६४. नृसिंहाष्टक। ६५ राम सहस्त्रनाम। ६६. रामजी की आरती। ६७ रामाष्टक। ६८ रामप्रणति पचक। ६९ राममहिम्न, २८ शिखरिणी एक दोहा। ७०. कृष्ण सहस्त्रनाम ७१ कृष्णजी की आरती। ७२ कृष्णाष्टक। ७३ कृष्ण प्रार्थना पचक। ७४ कृष्ण कवच। ७५ कृष्णमहिम्न २९ शिखरिणी। ७६ मक्खन चोरी शका समाधान। ७७ हनुमत सहस्त्रनाम। ७८ हनुमानजी की आरती। ७९ हनुमत अष्टक। ८० हनुमतमहिम्न २८ शिखरिणी एक दोहा। ८१, नानक सहस्त्रनाम। ८२ नानकजी की आरती। ८३ नानकाष्टक। ८४ दादू सहस्त्रनाम। ८५. दादूजी की आरती। ८६ दादू प्रणति अष्ठक। ८७ दादूवाणी की आरती। ८८ दादूवाणी प्रार्थनाष्टक। ८९ दादूमहिम्न २८ शिखरिणी। ९० दादू प्रार्थना-ष्टक। ९१ दादूगिरागरिमा आद्यक्षरी दोहादशक। ९२. दादू प्रार्थना पचक। ९३. निज अभिलाषा शिखरिणी सप्तक। ९४ दादू अष्टपदी। ९५. परमेश्वर पचस-हस्त्रनाम माला। ९६ परमेश्वर की आरती। ९७ परमेश्वराष्टक। ९८ सद्गुरुसहस्त्रनाम। ९९ सद्गुरुआरती। १०० सद्गुरु-अष्टक। १०१ सद्गुरुमहिम्न, २९ शिखरिणी। १०२ ब्रह्मसहस्त्रनाम। १०३ ब्रह्म की आरती। १०४ ब्रह्माष्टक। १०५ सन्त साहित्य माहात्म्य सत्ताईसा २७ दोहे। १०६ गीता गरिमा, ४१ दोहे। १०७ धर्मवीर पचक, पाच हरिगीतक। १०८ शिक्षा पष्ठक। १०९ निज अभिलाषा अष्टपदी। ११० सन्तमाल मू २८)। १११ सन्तमाल माहात्म्य। ११२ सन्तमाल की आरती। ११३ सन्तो की आरती। ११४ श्री सन्ताष्टक-हरिगीतक। ११५ स्वामी मगलदास स्मृति सप्तक। ११६ विश्व वट विटप रहस्य सप्तक। ११७ परम्परागत श्री दादूवाणी प्रवचन पद्धति। ११८ दादूवाणी माहात्म्य। ११९ गुण गजनामा के ३७ अगो की टीका शेष अगो पर टिप्पणी १२० दादूजी का सक्षिप्त जीवन चरित्र, यह दादू गिरार्थ प्रकाशिका टीका सहित दादू वाणी की आदि मे छपा है। १२१ सुन्दर ग्र थावली की आवश्यक टीका, टिप्पणी और कठिन शब्दार्थ १२२ सुन्दरवाणी माहात्म्य दोहा शतक १२३ सुन्दरदासजी का जीवन चरित्र।

उक्त नारायण ग्र थावली के ग्रन्थो को खरीदकर पढिये और नास्तिक भावना तथा भ्रष्टाचार को रोकते हुये सदाचार और ईश्वर भक्ति के प्रचार मे सहायक बनिये। मिलने का पता-श्रीदादू महाविद्यालय, मोती डूगरी रोड, जयपुर (राजस्थान)। श्रीदादूवाणी स्वामी लक्ष्मीराम चिकित्सालय, जौहरी बाजार, जयपुर से मिलती है।

शुद्धि पत्र

जयपुर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८.	१५	सर्पन	समर्पन	२८४	८	कृकूर	कृकर
९	१६	जाता	जात	२९२.	६	चक्र	चक
२४.	२१	देद	देह	२९३	२४	आपनी	
२५.	१	माहोदिक	मोहादिक	२९४	४	हात	होत
२८.	१५	तीन	तीत	२९५	७	रग	रक
३६.	१	कोचित्	केचित	२९५.	२०	कोडी	कौडी
५४	११	मर्कक	मर्कट	२९६.	१६	चेंच	चूंच
६०	२६	ग्रन्थ	गद्य	२९७	४	पहुचान	पहुचावन
६२	२३	आगम	अगम	३०३.	१३	मन	मनका
६४.	२५	मया	भया	३०४	१०	विभूका	विकूका
८१.	२४	वर्ष	वर्षे	३०५	१८	होतो	होतो
८२	२४	पर	परवलि	३०५.	१९	हामा	होगा
८४	३१	डडा	टडा	३२७	८	पवत	पर्वत
९९	२१	पाया	पया	३३०	२४	गमनी	गमन
१०४	१२	खानव	खावन	३५५	७	खाज	खोच
१०५	१७	पाऊन	पाऊ	३६९	१४	सका	शका
११०	२२	आइय	अइया	३७२	२८	वतराय	वनराय
१२२.	८	दिमा	दिन	४०१	१०	घणा	घणी
१२३	१०	का	को	४०८	४	०	घरे
१२४.	१	पमन	पवन	४१७	९	ओर	और के
१३५	१८	जीव	जीत	४१७	१९	उघारी	उघारी
१५१.	६	कुहिनी	कुटटिनी	४१९.	२	अबे	ऊघे
१७८	१७	पियहू	पिय	४२९	३३	ईश्हर	ईश्वर
१८२	३२	लाधु	साधु	४३२	१६	मीठे	मोटे
१८५	३९	जाजो	जन	४४१	२०	खते	रखते
२१९	१४	लोह	लाहे	४४१	२६	अभिमाग	अभिमान
२२८	१४	सा	सान	४४२	७	मात्या	मात्मा
२३४	१	सत्य	सत्व	४४५.	११	शरा	काश
२५७	२८	हथ्यार	हथियार	४४९	२२	सह्नता	सहन
२७९	९	लच्छन	तच्छन	४५४	२७	दन्त	दत्त
२८१	८	भागे	भाग	४५९	७	देदना	वेदना
२८१	२९	न	०	४६०	७	सूत्र	मूत्र
२८२	२२	वार					

युगवीर-समन्तभद्र-ग्रन्थमाला : १६

जैन तत्त्वज्ञान-मीमांसा

Jain TattvaJnana-Mimansa

•

लेखक
डॉ० दरबारीलाल कोठिया

•

वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन